उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

खण्ड

1

प्रबन्धकीय लेखांकन

इकाई-1 5

लेखा विधि : एक परिचय

इकाई-2 15

प्रबन्धकीय लेखा-विधि

इकाई-3 29

प्रबन्ध लेखपाल

NMDC-129

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	मोतीलाल नेहरू इस्ट0 ऑव रिसर्च एण्ड बिजनेस एडमिनस्ट्रेशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 सुधीर शुक्ला	रीडर, वाणिज्य विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन– उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक – कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2024.

मुद्रक – के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा – 281003.

खण्ड-1 (परिचय)

इस खण्ड में प्रबन्धकीय लेखांकन की व्याख्या निम्नलिखित तीन ईकाइयों में की गई है-

इकाई - 1 में लेखा विधि का परिचय व अर्थ प्रस्तुत किया गया है।

इकाई - 2 में प्रबन्धकीय लेखा विधि की गहन व विस्तृत व्याख्या की गयी है।

इकाई - 3 में प्रबन्ध लेखपाल के बारे में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

NMDC-129

इकाई - 1 : लेखा-विधि : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा-

1.0 उद्देश्य

1.1 अर्थ व परिभाषा

1.2 लेखा-विधि की विशेषताएँ

1.3 लेखा-विधि के उद्देश्य

1.4 लेखा-विधि के कार्य

1.5 लेखा-विधि का महत्व

1.6 सैद्धान्तिक प्रश्न

1.0 : उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- लेखा-विधि का आशय, अर्थ, एवं परिभाषाओं की जानकारी होगी।
- लेखा-विधि की विशेषताएँ ज्ञात होगी।
- लेखा-विधि के उद्देश्य ज्ञात होंगे।
- लेखा-विधि का कार्य ज्ञात होगा।
- लेखा-विधि के महत्व की जानकारी होगी।

1.1 लेखा-विधि की परिभाषा

लेखा विधि एक प्राचीन कला है, लेकिन यह क्रिया उस समय इतनी विकसित नहीं थी जितनी की आज है । लेखा विधि का आशय किसी संस्था के दैनिक व्यवहारों को लेखा कर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप लेखा पुस्तकों में लिखने से होता है। इस मुख्य उद्देश्य संस्था द्वारा एक निश्चित अवधि में अर्जित लाभ या हानि की राशि ज्ञात करना तथा एक निश्चित तिथि पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत करना होता है जिससे संस्था में हित रखने वाले सभी पक्षों जैसे - अंशधारी, प्रबन्धक, ऋणदाता, कर्मचारी तथा सरकार आदि को संस्था के व्यवसाय के सम्बन्ध में आवश्यक वित्तीय सूचनायें प्रदान की जा सकें। व्यापारिक लाभ हानि खाता (आय विवरण) द्वारा तथा वित्तीय

स्थिति चिट्ठा (स्थिति विवरण) द्वारा प्रकट की जाती है। वस्तुतः लेखा विधि एक संस्था की सम्पूर्ण व्यावसायिक क्रियाओं के लेखा-जोखा से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत वित्तीय घटनाओं का विश्लेषण और क्रमबद्ध अभिलेखन, समंकों का उपयोगी और बोधगम्य वित्तीय प्रतिवेदनों के रूप में वर्गीकरण और प्रस्तुतीकरण तथा व्याख्या की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करने के कार्य सम्मिलित हैं।

लेखा विधि की सर्वाधिक प्रामाणिक परिभाषा अमरीका के इन्स्टीट्यूट ऑफ सर्टिफाइड पब्लिक अकाउन्टैन्ट्स की (A.I.C.P.A.) शब्दावली समिति की है, जो कि इस प्रकार है "लेखा विधि उन व्यवहारों और घटनाओं को जोकि कम से कम अंशतः वित्तीय प्रकृति के हैं, मुद्रा के रूप में प्रभावपूर्ण तरीके से लिखने, वर्गीकृत करने तथा सारांश निकालने एवं उनके परिणामों की व्याख्या करने की कला से है।" इस परिभाषा के अनुसार लेखा विधि एक कला है, विज्ञान नहीं। इस कला का प्रयोग वित्तीय प्रकृति के मुद्रा में मापनीय व्यवहारों और घटनाओं के अभिलेखन, वर्गीकरण संक्षेपण और व्याख्या के लिए किया जाता है।

मेसर्स स्मिथ और एशबर्न ने A. I. C. P. A. की परिभाषा को कुछ सुधार के साथ स्वीकृत किया है। उनके अनुसार, "लेखा विधि प्रधानतया वित्तीय प्रकृति के व्यवहारों और घटनाओं के अभिलेखन तथा वर्गीकरण का विज्ञान है और उन व्यवहारों और घटनाओं का महत्वपूर्ण सारांश बनाने, विश्लेषण तथा व्याख्या करने और परिणामों को उन व्यक्तियों को सम्प्रेषित करने की कला है, जिन्हें निर्णय लेने हैं।" इस परिभाषा के अनुसार लेखा विधि विज्ञान और कला दोनों ही है किन्तु यह एक पूर्ण निश्चित विज्ञान न होकर लगभग पूर्ण विज्ञान है। इसके अतिरिक्त इस परिभाषा में लेखा विधि का कार्य क्षेत्र भी विस्तृत कर दिया गया है। इस परिभाषा के अनुसार लेखा विधि का क्षेत्र परिणाम निकालने तक ही सीमित नहीं वरन् इसके अन्तर्गत परिणामों को उन व्यक्तियों को सूचित करना भी सम्मिलित होता है जिन्हें विभिन्न निर्णय लेने होते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर लेखा विधि को व्यवसाय के वित्तीय प्रकृति के लेन-देनों को सुनिश्चित, सुगठित एवं सुनियोजित तरीके से लिखने, प्रस्तुत करने , व्याख्या करने और सूचित करने की कला कहा जा सकता है।

1.2 लेखा-विधि की विशेषताएँ

लेखा विधि के उपरोक्त विवेचन से इसकी निम्नलिखित विशेषतायें ज्ञात होती हैं -

1. यह एक कला और विज्ञान दोनों है (It is both an art and a science)

एक कला के रूप में यह हमें अपने वित्तीय परिणाम जानने में सहायक होती है। इसमें अभिलिखित तथा वर्गीकृत व्यवहारों और घटनाओं का सारांश बनाया जाता है, उन्हें विश्लेषित किया जाता है तथा उनकी व्याख्या की जाती है। वित्तीय समकों का विश्लेषण और व्याख्या लेखा-विधि की

NMDC-129

कला ही है जिसके लिये विशेष ज्ञान, अनुभव और बुद्धि की आवश्यकता होती है। इसी तरह व्यवसाय के आन्तरिक और बाह्य पक्षों को वित्तीय समंकों का अर्थ और उनके परिवर्तन इस प्रकार संचारित करना जिससे कि वे व्यवसाय के सम्बन्ध में सही निर्णय ले सकें और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यवाही कर सकें, लेखा-विधि की कला ही है। इसके अतिरिक्त इसके प्रतिवेदनों की विश्वसनीयता निश्चित करने के लिये एक व्यवसाय की नीतियों, कार्यविधियों तथा अभिलेखों पर पुनर्विचार लेखा-विधि का कला स्वरूप ही है।

यह एक विज्ञान भी है। यह एक व्यवस्थित ज्ञान शाखा है। इसमें व्यवहारों और घटनाओं के अभिलेखन, वर्गीकरण तथा संक्षिप्तीकरण के निश्चित नियम हैं। इसके निश्चित नियमों के कारण ही लेखो का क्रमबद्ध व व्यवस्थति ढंग से अभिलेखन हो जाता है। किन्तु ध्यान रहे कि यह एक पूर्ण निश्चित विज्ञान न होकर लगभग पूर्ण विज्ञान है।

2. इसमें अभिलेखन, वर्गीकरण संक्षिप्तीकरण और व्याख्या होती है। (It involves recording, classifying, summarizing and interpretation)-

यहाँ पर अभिलेखन का आशय वित्तीय प्रकृति के लेन-देनों को उनके ज्ञात होने के पश्चात लेखा पुस्तकों में व्यवस्थित ढंग से लिखने से होता है । वर्गीकरण एक प्रकृति के लेन-देनों या लेखों को एक स्थान पर समूहन की प्रक्रिया है लेखा विधि में यह वर्गीकरण खाताबही में खाते खोलकर किया जाता है। संक्षिप्तीकरण का आशय वर्गीकृत समंकों को व्यवसाय के आन्तरिक और बाह्य पक्षों के लिए उपयोगी ढंग से प्रस्तुत करने से है। इसके अन्तर्गत तलपट तैयार करने तथा फिर उससे व्यावसाय के अन्तिम खाते तैयार करने की प्रक्रिया सम्मिलित है। व्याख्या का आशय संक्षेपित समंकों को इनके प्रयोगकर्ताओं की आवश्यकतानुसार तैयार करने से होता है। जिससे वे व्यवसाय की प्रगति, स्थिति और भविष्य के सम्बन्ध में सही निष्कर्ष निकाल सकें।

3. वित्तीय प्रकृति (Financial Character) - लेखा विधि में केवल वित्तीय प्रकृति के व्यवहारों और घटनाओं का ही अभिलेखन किया जाता है।

4- यह व्यवहारों का मुद्रा में अभिलेखन करती है (It records transactions in terms of money) - लेखा विधि में तथ्यों, घटनाओं और व्यवहारों का अभिलेखन मुद्रा के रूप में किया जाता है। इससे व्यवसाय की स्थिति समझने व तुलना करने में बड़ी सहायता मिलती है।

5. लेन-देनों का सही एवं सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है (It shows true and fair view of transactions) - लेखा विधि का सम्बन्ध किसी उपक्रम की क्रियाओं को प्रभावपूर्ण तरीके से लिखने तथा उनका वर्गीकरण करके सारांश रूप में प्रस्तुत करने से होता है जिससे व्यवसाय की आय और आर्थिक स्थिति की सही एवं सच्ची जानकारी प्राप्त की जा सके।

6. **इसमें संवहन होता है (It involves communication)** - विश्लेषण और व्याख्या के परिणाम प्रबन्धकों और अन्य रूचि रखने वाले पक्षों को प्रेषित किये जाते है।

7. **यह व्यावसायिक क्रियाओं से सम्बन्धित है (It is related with business operations)** - लेखा विधि का सीधा सम्बन्ध व्यवसाय से होता है। अतः व्यवसाय में जो कुछ घटित होता है उसी का अभिलेखन किया जाता है। वस्तुतः इसका प्रादुर्भाव व्यावसायिक क्रियाओं के अभिलेखन के लिए हुआ था और आज भी इसका प्रयोग व्यवसाय में होता है। किन्तु अब इसका प्रयोग गैर-व्यावसायिक संस्थाओं में भी किया जाता है।

1.3 लेखा-विधि के उद्देश्य (Objectives of Accounting)

लेखा विधि के उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1 **व्यासायिक लेन-देनों का विधिवत् अभिलेखन (Systematic recording of accouncing information) -**

प्रत्येक व्यावसायिक लेन-देन का पुस्तकों में लिखना व उचित हिसाब रखना लेखा विधि का पहला उद्देश्य है। इससे भूल व छल कपटों को दूर करने में सहायता मिलती है।

2 **शुद्ध लाभ का निर्धारण (Determination of Net Profit)** -

लेखा विधि के अन्त में उस काल का शुद्ध लाभ निर्धारित करना लेखा विधि का दूसरा उद्देश्य है। शुद्ध लाभ कुल आगमों और कुल व्ययों का अन्तर होता है। यह प्रबन्धकीय कुशलता और व्यवसाय की प्रगति का सूचक होता है। यही अंशधारियों में लाभांश वितरण का आधार होता है।

3 **व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को प्रकट करना (Presenting the financial position of the business)-**

इसके लिए लेखाविधि के अन्त में एक स्थिति विवरण तैयार किया जाता है जोकि उस तिथि पर व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है।

4 **प्रबन्धकीय नियंत्रण सुगम बनाना (Facilitating management control) -**

प्रबन्ध को व्यवसाय पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए व्यवसाय के विभिन्न कार्यों और विभागों के सम्बन्ध में वित्तीय सूचनाओं की आवश्यकता होती है। लेखा विधि का उद्देश्य प्रबन्ध को ऐसी सूचनाएं प्रदान करना होता है। इससे प्रबन्धकीय निर्णयों की कुशलता का मूल्यांकन भी सम्भव होता है।

5. **व्यवसाय में हित रखने वाले विभिन्न पक्षों को सूचनाएं प्रदान करना (Providing information to various interested parties) -**

व्यवसाय स्वामी, विनियोक्ता, बैंकर्स, कर्मचारी आदि विभिन्न पक्षों को व्यवसाय के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें प्रदान करना भी लेखा विधि का उद्देश्य है।

6 **कर- योग्य आय का निर्धारण (Determining taxable income) -**

व्यवस्थित लेखा प्रणाली के अपनाने से व्यवसाय की सही कर-योग्य आय निर्धारित की जा सकती है और कर अधिकारी के मनमाना कर-निर्धारण से बचा जा सकता है ।

1.4 लेखा-विधि के कार्य (Functions of Accounting)

ग्रान्ट और बैल (Grant and Bell) ने लेखा-विधि के निम्नलिखित कार्यों पर बल दिया है-

1. अंशधारियों व ऋण-पत्रधारियों को आवश्यक सूचनायें प्रदान करना।
2. प्रबन्धकीय उपयोग के लिए सूचनाऐं प्रदान करना।
3. सम्पत्ति व दायित्वों पर दृष्टि रखना।
4. कर-दायित्व निर्धारित करना।
5. व्यवस्थापकीय कानूनों (Regulatory Laws) के लिए आवश्यक सूचनायें तैयार करना।

स्मिथ और एशबर्न के अनुसार लेखा विधि के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1. **रचनात्मक (Constructive)** - इसका आशय आवश्यक सूचनाओं को अधिकतम कुशलतापूर्वक तरीके से प्रकट करने तथा इस कार्य में त्रुटियों एवं छल कपटों को रोकने अथवा कम से कम करने के लिये उपयुक्त लेखा प्रणाली के स्थापन और उसमें निरन्तर संशोधन और पुनर्गठन करने से है। इसके अन्तर्गत लेखपाल संस्था के आकार, व्यापार की प्रकृति व अन्य विशिष्टताओं के आधार पर लेखा प्रणाली व लेखों के प्रारूप पर विचार करता है।

2. **संलेखात्मक (Recordative)** - यह लेखा-विधि का आधारभूत कार्य है। मानव याददाश्त की सीमाओं के कारण इस कार्य का विशेष महत्व हो जाता है। इसका आशय व्यावसायिक लेन-देनों को लेखा पुस्तकों में लिखने, खाते तैयार करने, सारांश निकालने (तलपट तैयार करने)और प्रस्तुत करने (स्थिति विवरण और व्यय विवरण तैयार करने) की क्रिया से है। सामान्यतया लेखा विधि सम्बन्धी 80 प्रतिशत कार्य इसी क्रिया से सम्बन्धित होता है। इसे लेखा विधि का लिपिकीय कार्य

(clerical work) माना जाता है। लेखा विधि का यह कार्य पुस्तकालय (Book Keeping) कार्य भी कहलाता है।

3. **व्याख्यात्मक (Interpreative) -**

इसका आशय प्रबन्ध और व्यवसाय में हित रखने वाले बाह्य पक्षों (अंशधारी, बैंकर्स, लेनदार, सरकारी एजेन्सियाँ आदि) के उपयोग के लिये आवश्यक वित्तीय विवरण और प्रतिवेदन तैयार करने और उनकी व्याख्या करने से होता है। इस कार्य में व्याख्या के लिये समंकों का चुनाव वर्गीकरण , संक्षेपण और विश्लेषणात्मक प्रतिवेदनों की तैयारी सम्मिलित है। प्रबन्धकों व अन्य तृतीय पक्षों के दृष्टिकोण से लेखा-विधि का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। व्याख्या के लिये तुलनात्मक विवरण प्रवृत्ति विश्लेषण, अनुपात विश्लेषण, कोष प्रवाह विवरण आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

4. **परीक्षात्मक (Audative)** - इसका आशय लेखा-अभिलेखों, विवरणों और प्रतिवेदनों की शुद्धता वैधानिकता तथा सत्यता की जाँच करने से होता है। लघु आकार की संस्थाओं में यह कार्य स्वयं संस्था के स्वामी के द्वारा किया जाता है किन्तु बड़े व्यवसायों और कम्पनियों में यह कार्य आन्तरिक लेखा परीक्षकों या पेशेवर अंकेक्षरों द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य व्यवसाय की सम्पत्तियों की सुरक्षा है।

5. **प्रतिवेदन (Reporting)** - यह कार्य भी लेखा-विधि का ही माना जाता है। इसके अन्तर्गत व्यवसाय की क्रियाओं में हित रखने वाले विभिन्न पक्षों को उपलब्ध परिणामों की सूचना देने और उन्हें लेखों की बारीकियों से अवगत कराने का कार्य सम्मिलित है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त वैधानिक आवश्यकताओं (Legal Requirements) की पूर्ति (विशेषकर विभिन्न कर प्राधिकारियों की) करना भी लेखा विधि का कार्य ही एक कार्य हो जाता है।

लेखा विधि द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचनायें (Information provide by Accounting)-

लेखा-विधि विभिन्न पक्षों को विविध प्रकार की सूचनायें प्रदान करती है। वस्तुतः किस व्यक्ति को कैसी सूचनायें चाहिये, यह उनके व्यवसाय में हित की प्रकृति पर निर्भर करता है। लेखा विधि द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रमुख सूचनायें इस प्रकार हैं -

1. **शुद्ध लाभ का निर्धारण** - लेखा विधि एक निश्चित अवधि की व्यापारिक क्रियाओं के परिणाम प्रकट करती है। इससे चालू अवधि के परिणामों की गत अवधियों के परिणामों से तुलना करके व्यवसाय की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है तथा किन्हीं विशेष माह अथवा मौसम में धन अर्जन की प्रगति भी ज्ञात की जा सकती है।

2. **व्यवसाय की आय की प्रकृति स्पष्ट करना** - लेखा विधि से यह जाना जा सकता है

NMDC-129

कि व्यवसाय की आय के प्रमुख साधन क्या हैं और उनमें कितने स्थायी साधन है और कितने अस्थायी।

3. **व्ययों की प्रकृति स्पष्ट करना** - लेखा विधि विभिन्न व्ययों की मद तथा उनकी राशि प्रकट करती है। विभिन्न व्ययों में परिवर्तन की दिशा के अध्ययन से तथा उनका विक्रय पर प्रतिशत निकाल कर व्यावसायिक व्ययों में मितव्ययिता लायी जा सकती है।

4. **कर योग्य आय निर्धारित करना** - लेखा विधि कर-योग्य आय प्रकट करती है।

5. **क्रय-विक्रय सम्बन्धी सूचनायें प्रकट करना** - यह लेखावधि में क्रय विक्रय की स्थिति के सम्बन्ध में सूचनायें प्रदान करती हैं।

6. **व्यवसाय की रोकड़ स्थिति प्रकट करना** - इससे यह भी जाना जा सकता है कि व्यवसाय की तरल सम्पत्तियां तुरन्त देय दायित्वों के भुगतान करने में कहाँ तक सफल हैं।

7. **व्यापारिक लेनदारों और देनदारों की स्थिति स्पष्ट करना** - अर्थात यह प्रकट करना कि व्यवसाय को किस-किस से कितना धन लेना या देना है। देनदारों के विश्लेषण से देनदारों की वसूली में तत्परता व देरी और डूबत ऋणों की स्थिति स्पष्ट होती है।

8. **पूँजी की स्थिति स्पष्ट करना** - चालू वर्ष में स्वामी की पूंजी घटी या बढ़ी। पूँजी में वृद्धि व्यापारिक लाभों और स्वामी द्वारा चालू वर्ष में व्यवसाय में लगाई गई अतिरिक्त पूँजी के कारण होती है। इसी तरह पूँजी में कमी व्यापारिक हानि और आहरण (Drawings) के कारण होती है। वित्तीय लेखा विधि इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें प्रदान करती है।

9. **अन्तिम स्कन्ध की स्थिति स्पष्ट करना-** चालू वर्ष के अन्तिम स्कन्ध की गत वर्षों के अन्तिम स्कन्धों से तुलना करके स्कन्ध में लगी पूंजी की वांछनीयता पर विचार किया जा सकता है।

10. **व्यवसाय की सम्पत्तियाँ क्या-क्या हैं** - उनमें से कितनी स्थायी प्रकृति की हैं और कितनी चालू प्रकृति की? अमूर्त सम्पत्तियों की क्या स्थिति है? आदि के सम्बन्ध में सूचनायें वित्तीय लेखा-विधि द्वारा प्रकट की जाती हैं।

11. **वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता स्पष्ट करना** - व्यवसाय की सम्पत्तियों और दायित्वों के अध्ययन के आधार पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता ज्ञात होती है।

1.5 लेखा-विधि का महत्व (Importance of Accounting)

लेखा-विधि का महत्व निम्नलिखित है -

1. **व्यवसाय स्वामी (The Owner)** -

लेखा-विधि का प्रमुख उद्देश्य व्यवसाय के स्वामी को उसके व्यवसाय की क्रियाओं के बारे

में आवश्यक सूचनायें प्रदान करना होता है। वास्तव में लेखा-विधि का सर्वाधिक उपयोग व्यवसाय स्वामी के लिए ही होता है। व्यवसाय-स्वामी व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता और वित्तीय स्थिति दोनों में ही समान रूप से हित रखते हैं क्योंकि अच्छी लाभार्जन क्षमता से लाभांश सम्भावनाएं अच्छी हो जाती है और वित्तीय स्थिति के अच्छे होने पर उसकी पूंजी सुरक्षित रहती है। यद्यपि एक छोटे व्यवसाय का स्वामी बिना किसी या बहुत कम हिसाब-किताब रखकर भी अपना कार्य चला सकता है क्योंकि ऐसे व्यवसायों का संचालन व्यवसाय स्वामी की देख-रेख में भी होता है और अधिकतर सूचनायें स्वामी कन्ठस्थ रखता है किन्तु यह निर्विवाद ही है कि लेखा व्यवस्था व्यवसाय-स्वामी को प्राप्त होने वाली सूचनाओं में सुधार लाती हैं ।

जैसे-जैसे व्यवसाय का आकार और व्यवसायिक जटिलतायें बढ़ती जाती हैं, व्यवसाय-स्वामी के लिए लेखा-विधि की आवश्यकता बढ़ती जाती है। एक बड़े व्यवसाय का स्वामी न तो समस्त व्यावसायिक क्रियाओं की स्वयं देख-रेख ही कर सकता है और न ही सभी सूचनायें कंठस्थ ही रख सकता है। अतः व्यवसाय की क्रियाओं की सही जानकारी प्राप्त करने और व्यवसाय में त्रुटियों एवं छल-कपटों से बचने के लिए एक अच्छी लेखा व्यवस्था आवश्यक होती है। एक कम्पनी की दशा में, जहाँ पर व्यवसाय संचालन स्वामियों के हाथों में न होकर पूर्णतया उनके प्रतिनिधियों (प्रबन्धकों) के हाथों में होता है। कम्पनी के स्वामियों को व्यवसाय की सही जानकारी प्रदान करने के लिए व्यवसाय में लेखा-व्यवस्था अपरिहार्य हो जाती है इसके अतिरिक्त इससे संस्था को बैंक व अन्य साख संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में भी सुगमता रहती है।

2. **प्रबन्धक (Managers)** -

छोटे-छोटे व्यवसायों में व्यवसाय स्वामी ही प्रबन्धक होते हैं किन्तु बड़े व्यवसायों और संयुक्त पूंजी कम्पनियों में व्यवसाय संचालन का कार्य स्वामियों द्वारा न किया जाकर एक अलग प्रबन्धकीय टीम को सौंप दिया जाता है। इस टीम के सदस्यों को प्रबन्धक कहते हैं। प्रबन्धक स्वयं समस्त लेन-देन की प्रत्येक देख-रेख नहीं कर सकते हैं। अतः इन्हें व्यवसाय के सुसंचालन एवं प्रबन्धकीय निर्णयों में लगातार लेखा सूचनाओं पर ही विश्वास करना होता है। लेखपाल लेखा अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं से प्रबन्धकीय उपयोग के लिए प्रतिवेदन तैयार करके प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इन प्रतिवेदनों की सहायता से ही प्रबन्धक अपने व्यवसाय की सम्पूर्ण उद्योग से या इसी व्यवसाय में लगी अन्य इकाइयों से अथवा अपने ही व्यवसाय के गत वर्षों के अभिलेखों से अथवा पूर्व निर्धारित प्रमापों से तुलना करके व्यवसाय की विभिन्न इकाइयों तथा सम्पूर्ण व्यवसाय की प्रगति तथा कर्मियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता है तथा पूर्व कमियों को सुधारते हुए भावी अवधि के लिए लक्ष्य निर्धारित करता है। वास्तव में लेखा सूचनाएं ही प्रबन्ध की वित्तीय नीति, नियोजन एवं नियंत्रण का आधार होती है।

3. **सम्भावी विनियोक्ता और ऋणदाता (Potential Investors and Loaners)** -

विनियोक्ताओं के अन्तर्गत कम्पनी के सम्भावी अंशधारी और दीर्घकालीन ऋणदाता सम्मिलित होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य अपने मूलधन की सुरक्षा एवं उस पर पर्याप्त आय प्राप्त करना होता है। इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें अन्तिम खातों से प्राप्त होती है जो कि लेखा-प्रणाली के अन्तर्गत तैयार की जाती है। कम्पनी के भविष्य एवं लेखों में त्रुटियों की सूचना उसे क्रमशः अध्यक्षीय भाषण एवं अंकेक्षण के प्रतिवेदन से प्राप्त होती है। लेखा प्रतिवेदनों की सहायता से कोई विनियोक्ता विभिन्न विनियोग अवसरों के बीच तुलना कर सकता है।

4. व्यापारिक लेनदार, बैंक और अन्य ऋणदाता संस्थायें (Trade Creditors, Bankers and other lending institutions) -

इनका उद्देश्य ऋण की अंतिम वसूली ही नहीं होता बल्कि ये तो यह चाहते हैं कि उनके द्वारा दी गयी उधार अथवा ऋण की वापसी वायदानुसार समय पर की जाय। अतः ये ऋण लेने वाली संस्था की तरल स्थिति (Liquid position) को अधिक महत्व देते हैं। इस सम्बन्ध में आवश्यक सूचना सम्बन्धित संस्था के लेखा विवरणों (स्थिति विवरण)से ही प्राप्त हो सकती है। सामान्यतया ऋणदाता संस्थाएं ऋण के लिए इच्छुक संस्था की लेखा प्रतिवेदनों को ही ऋण स्वीकृति का आधार बनाती हैं। जो व्यवसायी समुचित लेखा-प्रणाली नहीं अपनाते, उन्हें इन संस्थाओं से ऋण प्राप्त करना बहुत कठिन होता है।

5. व्यवस्थापकीय एजेन्सियाँ (Regulatory Agencies) -

विभिन्न सरकारी विभाग तथा एजेन्सियाँ, जैसे कम्पनी लॉ बोर्ड, रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज, आयकर विभाग आदि भी कम्पनियों की वित्तीय सूचनाओं में रूचि रखती हैं । इन एजेन्सियों का उद्देश्य यह आश्वस्त करना होता है कि कम्पनी ने अपने लेखों में कर, लाभांश, ह्रास आदि के सम्बन्ध में अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन किया है अथवा नहीं तथा उसने अपने लाभों व वित्तीय स्थिति को सही व सच्चे ढंग से प्रकट किया है या नहीं।

6. सरकार (Government) -

सरकार व्यवसायिक संस्थाओं की करदान क्षमता का निश्चय उनके लेखा-प्रतिवेदनों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर करती है। ये सूचनायें ही सरकार की भावी कर नीति, उत्पादन मूल्य या लाभ नियंत्रण, अनुदान, कोटे, लाइसेंस, आयात-निर्यात में प्रदान की जाने वाली सुविधायें आदि का आधार होती है। इन्हीं के आधार पर राष्ट्र की आर्थिक प्रगति मापी जाती है।

7. कर्मचारी (Employees) -

संस्था की आर्थिक सुदृढ़ता में कर्मचारियों का रूचि का होना स्वाभाविक ही है। श्रम संघ लेखा प्रतिवेदनों से प्राप्त सूचनाओं को ही मजदूरी वृद्धि, बोनस आदि का आधार बनाते हैं। आधुनिक काल में नियोक्ताओं और श्रम संघों के बीच सामूहिक सौदेबाजी लेखा-विधि से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर की जाती है।

NMDC-129

8. शोधकर्ता (Researchers) -

इनका उद्देश्य किसी निश्चित उद्देश्य से व्यवसाय के वित्तीय विवरणों का विश्लेषण करना होता है। अतः इस विश्लेषण के लिए आवश्यक सूचनाएं लेखा अभिलेखों से ही प्राप्त होती है।

उपयुक्त के अतिरिक्त वित्तीय विश्लेषक और सलाहकार, वित्तीय प्रेस तथा अन्य सूचना देने वाली एजेन्सियाँ, स्टॉक ब्रोकर्स, चैम्बर आफ कामर्स तथा अन्य व्यापार संघ भी व्यवसाय की वित्तीय सूचनाओं में रूचि रखता है। इनका उद्देश्य अपने सदस्यों के हितों की सुरक्षा करना होता है।

1.6 सैद्धान्तिक प्रश्न

1. लेखा विधि से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं को बताइये।
2. लेखा-विधि के उद्देश्यों तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. लेखा विधि द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचनाओं को बताइये।
4. लेखा विधि क्या है? इसके महत्व का विवेचन कीजिए।

इकाई - 2 : प्रबन्धकीय लेखा-विधि

इकाई की रूपरेखा-

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रबन्धकीय लेखा विधि की प्रस्तावना

2.2 प्रबन्धकीय लेखा विधि का विकास

2.3 प्रबन्धकीय लेखा विधि का अर्थ

2.4 प्रकृति / विशेषताएं

2.5 प्रबन्धकीय लेखा विधि का क्षेत्र

2.6 प्रबन्धकीय लेखा विधि के उद्देश्य

2.7 प्रबन्धकीय लेखा विधि एवं प्रबन्धकीय निर्णय

2.8 सैद्धान्तिक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- प्रबन्धकीय लेखा विधि की आवश्यकता एवं विकास की जानकारी होगी।
- लेखा विधि का अर्थ ज्ञात होगा,
- लेखा विधि की विशेषताएं ज्ञात होंगी,
- लेखा विधि के क्षेत्र की जानकारी होगी,
- उद्देश्यों की जानकारी होगी।
- प्रबन्धकीय लेखा विधि तथा प्रबन्धकीय निर्णय के बीच उत्पन्न होने वाली समस्याओं की जानकारी होगी।

2.1 प्रबन्धकीय लेखा-विधि (Management Accounting)

आधुनिक काल में अधिकतर व्यावसायिक निर्णय अनिश्चितता के वातावरण में लिये जाते हैं। ऐसे वातावरण में स्वयंबोध अथवा भूल और सुधार की परम्परागत तकनीकों से लिए गये निर्णयों में विश्वसनीयता नहीं रहती। आधुनिक प्रबन्ध यह मानता है कि नीति-निर्णयों में थोड़ी सी त्रुटि फर्म को

NMDC-429

लाभ के सुअवसरों से वंचित कर सकती है और / अथवा प्रतियोगिता से बाहर कर सकती है। अतः निर्णयों में त्रुटि की जोखिम से बचने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि ये निर्णय शुद्ध परिमाणात्मक लेखा संमकों पर आधारित हों।

प्रबन्ध आन्दोलन के साथ-साथ प्रबन्धकीय निष्पादनों में लेखा विधि की सेवाओं में पर्याप्त विस्तार हुआ है । अब प्रबन्धकीय और लेखा विधि कार्य एक-दूसरे के पर्याप्त समीप आ गये हैं तथा यह माना जाता है कि व्यवसाय के कुशल नियोजन, नियंत्रण और निर्णय के लिए लेखा विधि की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। लेखा विधि की यह भूमिका इतनी महत्वपूर्ण और व्यापक है कि इसके लिए लेखा विधि की एक नई शाखा का विस्तार किया गया है। जिसे प्रबन्धकीय लेखा विधि कहते हैं।

2.2 प्रबन्धकीय लेखा विधि का विकास (Evolution of Management Accounting)

प्रारम्भ में लेखा विधि का कार्य क्षेत्र लेन-देनों के अभिलेखन तथा वित्तीय स्थिति और आय के आवधिक सारांश (अर्थात चिट्ठा व लाभ-हानि खाता) के तैयार करने तक सीमित था। यद्यपि यह सारांश पर्याप्त उपयोगी होता है, व्यवसाय के बाह्य पक्ष इससे महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त करते हैं किन्तु इससे भावी क्रियाओं के नियोजन और चालू क्रियाओं को निर्देशित और नियंत्रित करने में कोई सहायता नहीं मिलती है। यह कमी खण्डीय और विभागीय स्तर पर अति गम्भीर थी क्योंकि लेखाविधि सेवायें कदाचित् ही उपलब्ध थीं तथा इन स्तरों के प्रबन्धकों के समक्ष आने वाली समस्याओं के लिए लेखपाल के प्रतिवेदनों का कोई उपयोग नहीं था।

वैधानिक प्रबन्ध आन्दोलन ने व्यवसाय के प्रशासन व कार्यवाहियों में प्रबन्धकों के मार्गदर्शन के लिए विश्वसनीय परिमाणात्मक लेखा संमकों की सुविस्तृत मांग जाग्रत कर दी जिससे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लेखा विधि का पुराना स्वरूप अपर्याप्त सिद्ध हो गया। समय व परिस्थितियों की मांग ने लेखपाल के दृष्टिकोण को विस्तृत बना दिया तथा लेखा-विधि में भूतकालीन घटनाओं के अभिलेखन के साथ-साथ वर्तमान और भावी घटनाओं को भी सम्मिलित किया जाने लगा और इस प्रकार लेखा-विधि के क्रमिक विकास से आज यह आधुनिक प्रबन्ध प्रौद्योगिकी का एक अभिन्न अंग बन गयी है। यद्यपि लेखा-विधि एक स्टाफ प्रकार्य (Staff function) है किन्तु अब प्रबन्ध लेखपाल समंकों के चयन और व्यवस्था के द्वारा प्रबन्धकीय निर्णयों को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है। वास्तव में अब वह प्रबन्ध में एक सक्रिय भागीदार बन गया है।

प्रबन्धकीय लेखा विधि का विचार जेम्स एच. ब्लिस के मौलिक प्रयत्नों से उदित हुआ। उनके अनुसार, लेखा संमकों के बुद्धिमत्तापूर्ण व प्रभावशाली प्रयोग द्वारा ही प्रबन्ध व्यवसाय के संचालन व स्थिति के संबंध में पूर्ण विवरण ज्ञात कर सकता है और उन पर अधिकतम नियंत्रण कर सकता है। इस प्रकार यद्यपि नियन्त्रणकर्ता कार्य (controllership function), वित्तीय नियंत्रण क्रियात्मक

शोध (operational research) प्रबन्ध सेवायें, प्रणाली कार्य पद्धतियों और कार्य विधि, उत्पादन नियोजन और प्रबन्ध से सम्बन्धित अन्य पद्धतियों के सम्बन्ध में पहले भी पर्याप्त सुना गया था किन्तु लेखा विधि से पृथक एक विषय के रूप में प्रबन्धकीय लेखा विधि का विकास लगभग छः दशकों का ही है। प्रमाणानुसार प्रबन्धकीय लेखा विधि शब्द का प्रयोग सबसे पहले आंग्ल-अमरीका उत्पादकता परिषद् के तत्वावधान् में 1950 में अमरीका के भ्रमण पर आयी हुई लेखपालों की ब्रिटिश टीम ने किया। तब से यह शब्द अमरीका तथा अन्य देशों में काफी प्रचलित हो गया है।

प्रबन्धकीय लेखा विधि के विकास की प्रक्रिया लागत लेखा विधि में 'प्रमाणित परिव्ययन' (Standard Costing) के समावेश से प्रारम्भ होती है। इस तकनीक के समावेश से प्रत्येक सुपरवाइजर को पूर्व निर्धारित प्रमापित परिव्ययों के सम्बन्ध में उसके वर्तमान निष्पादनों से अवगत कराया जाता है तथा संस्था में लागत नियंत्रण को पुष्ट बनाया जाता है। इसी तरह 'बजटन' तकनीक के विकास से भावी वित्तीय नियोजन के उसी विचार को चुनी गयी समयावधि में सभी क्रियाओं को सम्मिलित करने के लिए विस्तृत किया गया। इस तकनीक के समावेश से प्रबन्ध अपनी परिचालन योजनाओं (Operating plans) के प्रत्याशित परिणामों का पूर्वानुमाना भी लगा सकता है तथा परिणामों को सुधारने के लिए वह इन योजनाओं में परिवर्तन भी ला सकता है।

लेखा विधि के अन्तर्गत प्रबन्धकीय लेखा विधि की शाखा के विकास से अब यह भूतकालीन व्यावसायिक घटनाओं से सम्बन्धित आय और व्यय के अभिलेखन और संकलन की युक्ति मात्र ही नहीं रह गयी है, वरन् अब तो यह व्यावसायिक अथवा आर्थिक क्रिया के पूर्वानुमान, नियोजन व विनियमन का एक प्रबल अस्त्र बन गई है।

2.3 प्रबन्धकीय लेखा-विधि का अर्थ (Meaning of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखा-विधि प्रबन्ध के प्रति लेखांकन सेवा है। वस्तुतः यह लेखा विधि का प्रबन्धक दृष्टिकोण से उपयोग है। इसे प्रबन्धोमुखी लेखा विधि (Management Oriented Accounting) कहा जा सकता है। इसमें लेखा कार्य का पुनर्विन्यास (Reorient) करके उसे प्रबन्धकीय कुशलता वृद्धि के लिए उपयोगी बनाया जाता है। इस प्रकार लेखा विधि का वह स्वरूप जोकि प्रबन्धकीय कुशल वृद्धि में सहायक हो, प्रबन्धकीय लेखा विधि कहलाता है। मेसर्स एन्थोनी और हैकिमिअन के शब्दों में "प्रबन्धकीय लेखा विधि लेखा अंकों का प्रबन्धकीय समस्याओं, विशेषकर कार्यकरण से सम्बन्धित समस्याओं के हल के लिए प्रयोग है।" इसलिए कुछ विद्वान इस विषय के लिए 'प्रबन्ध के लिए लेखा विधि' (Accounting for Management) शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त मानते हैं। वस्तुतः यह कोई नया विषय न होकर पुराने औजार का नया प्रयोग मात्र ही है। इसे वित्तीय लेखा विधि की अगली सीढ़ी कहा जा सकता है क्योंकि जहाँ पर वित्तीय लेखा विधि का कार्यक्षेत्र समाप्त होता है वहीं से प्रबन्धकीय लेखा विधि प्रारम्भ होती है। इस प्रकार से इसे वित्तीय

NMDC-129

लेखा विधि का पूरक कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत लेखा सूचनाओं का उद्देश्यानुसार विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है और इन्हें प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिससे उसे अपने नीति-निर्धारण नियोजन, निर्णयन तथा नियंत्रण के कार्यों के निष्पादन में सरलता रहे। इसीलिए इसे प्रबन्ध का एक यंत्र (tool of management) भी कहा जाता है।

प्रबन्धकीय लेखा विधि की एक अति सरल और संक्षिप्त परिभाषा रॉबर्ट एन्थोनी ने की है। उनके शब्दों में, ''प्रबन्धकीय लेखा विधि का सम्बन्ध लेखा सूचना से है जो कि प्रबन्ध के लिए उपयोगी होती है।'' इस परिभाषा से दो बातें स्पष्ट हैं। पहली, प्रबन्धकीय लेखा विधि के अन्तर्गत प्रयोग की जानेवाली सूचनायें वित्तीय लेखा विधि से प्राप्त होती है तथा दूसरी, इसके अन्तर्गत केवल उन्हीं लेखा सूचनाओं का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या की जाती है जोकि प्रबन्धकों के व्यवसाय के संचालन में उपयोगी हों। दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत वित्तीय लेखों से प्राप्त सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार रखा जाता है जिससे कि उसे व्यवसाय के संचालन, नीति निर्धारण व नियंत्रण में सरलता रहे।

प्रबन्धकीय लेखा विधि की सर्वाधिक स्वीकार्य परिभाषा आंग्ल-अमरीका उत्पादकता परिषद् की है। इसके अनुसार ''एक व्यावसायिक संस्था के दिन प्रति दिन के संचालन तथा नीति-निर्धारण में प्रबन्ध की सहायता हेतु लेखा सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण ही प्रबन्धकीय लेखा विधि है।'' इस परिभाषा से प्रकट होता है कि प्रबन्धकीय लेखा विधि का सम्बन्ध लेखा सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण से है न कि उनकी तैयारी मात्र से। वास्तव में इसका आशय वित्तीय लेखों का नये सिरे से लिखना नहीं हैं। वरन् इसका आशय तो वित्तीय लेखा विधि के अन्तर्गत किये गये लेखों का विश्लेषण एवं व्याख्या करके प्रबन्ध के समक्ष उचित ढंग से प्रस्तुत करने से है। लेखा सूचनाओं के इस प्रकार प्रस्तुतीकरण का उद्देश्य प्रबन्ध को व्यवसाय के कुशलतापूर्वक संचालन में सहायता देना होता है।

श्री टी. जी. रोज ने भी अपनी परिभाषा में इसी बात पर ही बल दिया है कि उनके शब्दों में ''प्रबन्धकीय लेखा विधि लेखा सूचना का इस प्रकार अनुकूलन, विश्लेषण निदान तथा व्याख्या है जिससे प्रबन्ध को सहायता मिलती है।

अन्य परिभाषायें

''प्रबन्धकीय लेखा विधि किसी उपक्रम के नियोजन और परिपालन में सभी स्तरों के प्रबन्ध के लिए उपयोगी वित्तीय समंक जुटाने से सम्बन्धित है।''

- वाल्टर मैक फारलैण्ड

''लेखा विधि का कोई भी रूप जोकि व्यवसाय को अधिक कुशलतापूर्वक संचालन योग्य बनाये, प्रबन्धकीय लेखा विधि माना जा सकता है।''

- आई0सी0डब्लू0ए0

"प्रबन्धकीय लेखाकर्म शब्द का प्रयोग उन लेखा पद्धतियों, प्रणालियों और तकनीकों का वर्णन करने के लिए किया जाता है जो कि विशिष्ट ज्ञान तथा योग्यता के संयोजन से प्रबन्ध को अपने लाभों को अधिकतम या हानियों को न्यूनतम करने के कार्य में सहायता प्रदान करती है।"

- जे0 बैटी

2.4 प्रबन्धकीय लेखा-विधि की प्रकृति या विशेषतायें (Nature or Characteristics of Management Accounting)

1. प्रबन्धकीय लेखा विधि भविष्य से सम्बन्धित है (Management Accounting is concerned with future) -

इसके अन्तर्गत भविष्य के पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं तथा जब यह भविष्य वर्तमान के रूप में सामने आ जाता है तो विभिन्न क्षेत्रों में व्यावसायिक क्रियाओं की उपलब्धियों की आलोचनात्मक जाँच की जाती है। उदाहरण के लिए, प्रबन्धकीय लेखा विधि की बजटरी नियंत्रण प्रणाली, प्रमाप परिव्यय प्रणाली आदि सभी में भावी पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं।

2. प्रबन्धकीय लेखा विधि चयनात्मक प्रकृति की है (Management Accounting is of selective nature) -

इसमें विभिन्न समान प्रकृति की योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके सर्वाधिक लाभप्रद एवं सर्वश्रेष्ठ योजनाओं का चुनाव किया जाता है। इसी तरह सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण में प्रबन्ध के समक्ष उन्हीं सूचनाओं का संवहन किया जाता है जिनकी जानकारी उनके लिए महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए स्वयं उत्पादन या क्रय के निर्णयों के सम्बन्ध में प्रबन्ध लेखपाल प्रबन्ध के समक्ष दोनों विकल्पों के विस्तृत आंकड़े के स्थान पर बाजार से क्रय के कारण बचत या अतिरिक्त व्यय के ही आँकड़े प्रस्तुत करेगा।

3. प्रबन्धकीय लेखा विधि कारण एवं उसके प्रभाव पर विशेष बल देती है (Management Accounting stresses on cause and effect relationship)-

उदाहरण के लिए शुद्ध लाभ को ही ले लीजिए। वित्तीय लेखा विधि से लाभ की मात्रा ज्ञात की जाती है परन्तु इस लाभ के कारण और उसके प्रभाव का अध्ययन तो प्रबन्धकीय लेखा विधि में ही किया जाता है। प्रबन्धकीय लेखा विधि में लाभ का विभिन्न मदों से सम्बन्ध स्थापित करके समुचित विश्लेषण किया जाता है।

4. प्रबन्धकीय लेखा विधि में वित्तीय लेखा विधि की भाँति निश्चित नियमों व प्रारूप का पालन नहीं किया जाता है (Management Accounting does not flow set rules and formats like financial accounting) -

प्रबन्ध लेखपाल के विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विभिन्न विषयों पर सामान्य स्वीकृत

NMDC-129

नियमों से भिन्न अपने पृथक नियम बना सकता है तथा सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण में अपनी प्रतिभा, कल्पना शक्ति एवं तर्क बुद्धि के प्रयोग से ऐसी सूचनायें सृजित कर सकता है जो कि प्रबन्धकीय निर्णयों में अति लाभकर सिद्ध होती है।

5. प्रबन्धकीय लेखा विधि समंक प्रदान करती है न कि निर्णय (Management accounting provides data, not the decisions) -

यह निर्णय के लिए आवश्यक समंक जुटाती है वस्तुतः निर्णय लेना तो प्रबन्धकों का कार्य हो जाता है।

6. यह प्रबन्धकीय आवश्यकताओं के प्रति अत्यधिक सचेत है (It is highly sensitive to management needs) -

मूल रूप में प्रबन्धकीय लेखा विधि प्रबन्धकों को व्यवसाय का प्रबन्ध करने में सहायता प्रदान करने के लिये विकसित आन्तरिक सूचना प्रणाली है। यह प्रबन्ध की सेवा के लिए है अतः इसके अन्तर्गत विवरणों व प्रतिवेदनों की तैयारी व प्रस्तुतीकरण सम्बन्धित प्रबन्धकों की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

7. प्रबन्धकीय लेखा विधि में 'लागत तत्वों की प्रकृति' के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है तथा सम्पूर्ण लागत को स्थिर, परिवर्तनशील व अर्द्ध स्थिर लागतों में बाँटा जाता है। प्रबन्धकीय निर्णयों में यह वर्गीकरण विशेष महत्व रखता है प्रबन्धकीय लेखा विधि के अन्तर्गत सीमान्त विश्लेषण प्रत्यक्ष लागत पद्धति, लागत मात्रा विश्लेषण आदि इसी वर्गीकरण पर आधारित है।

8. प्रन्धकीय लेखा विधि एक समन्वित पद्धति है (Management Accounting is an integrated system) -

प्रबन्धकीय लेखा विधि अनेक विषयों की तकनीकों का प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से उपयोग है। प्रबन्धकीय लेखा विधि के विकास में लागत लेखा विधि, वित्तीय लेखा विधि, वित्तीय प्रबन्ध के साथ साथ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, विधिशास्त्र, आदि विषयों से पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रबन्धकीय लेखा विधि की तकनीकों में इन शास्त्रों की विशिष्टताओं की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

2.5 प्रबन्धकीय लेखा-विधि का क्षेत्र (Scope of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखा विधि का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसके अन्तर्गत व्यावसायिक क्रियाओं के सभी पहलुओं की भूत व वर्तमान की वित्तीय गतिविधियों तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन तथा विश्लेषण करके भावी प्रवृत्तियों के अनुमान लागये जाते हैं जिससे उपलब्ध सूचनाओं से प्रबन्धकों को प्रबन्धकीय समस्याओं को समझने तथा सुलझाने में आवश्यक सहायता प्राप्त हो सके और जिनके आधार पर

भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सके। इसके अन्तर्गत उन सभी विषयों, पद्धतियों और तकनीकों का समावेश होता है जोकि इन सभी कार्यों के सम्पादन में सहायक होते हैं। इसके क्षेत्र के अन्तर्गत सामान्यतया निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाता है -

1. सामान्य लेखा विधि (General Accounting) -

इसका आशय वित्तीय लेखा विधि से है । यह व्यवसाय के बाह्य व्यवहारों का अभिलेखन (recording of external transactions) है। इसमें आय, व्यय, हस्तस्थ स्कन्ध, सम्पत्ति, दायित्व एवं नकदी की प्राप्ति व भुगतान के लेखों, वित्तीय विवरणों तथा प्रतिवेदनों की नियमित तैयारी सम्मिलित है।

2. लागत लेखा विधि (Cost Accounting) -

इसका आशय आन्तरिक व्यवहारों में द्विप्रविष्टि तकनीक (Double entry technique) के प्रयोग से है। सरल शब्दों में यह विभिन्न उपकार्यों क्रियाओं, विधियों तथा उत्पादन पर लागतों पर प्रयोग (application) है।

3. बजटन तथा पूर्वानुमान (Budgeting and Forecasting) -

इसमें व्यावसायिक क्रियाओं के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में पूर्वानुमान तैयार करना तथा विभिन्न विभागाध्यक्षों के सहयोग से संस्था के लिए एक संयुक्त बजट (जोकि विभिन्न विभागीय बजटों में बंटा होता है तैयार करना सम्मिलित है।

4. लागत नियंत्रण प्रक्रियायें (Cost control procedures) -

यह कार्य पूरा हो जाने पर वास्तविक लागतों की बजट के प्रमापों से तुलना, विवरणों के विश्लेषण तथा प्रबन्ध को सूचित करने से सम्बन्धित हैं। व्यावसायिक क्रियाओं पर नियंत्रण के लिए बजटरी नियंत्रण तथा प्रमाप परिव्ययन दोनों ही युक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

5. लागत और सांख्यिकी (Cost and Statistics) -

यह व्यवसाय के विभिन्न विभागों के लिए पूरक सांख्यिकी और विश्लेषणात्मक सेवायें प्रदान करने से सम्बन्धित है।

6. कर लेखा विधि (Tax Accounting) -

इसके अन्तर्गत केन्द्रीय प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों द्वारा लगाये गये विभिन्न करों के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण तैयार करना, इन्हें उचित समय पर सम्बन्धित कर अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना तथा कर निर्धारण के पश्चात कर राशि का सही तौर पर भुगतान सम्मिलित होता है।

7. पद्धतियों तथा कार्य विधियों की परिकल्पना तथा स्थापन (Methods and Procedures Design) -

NMDC-129

यह लेखा विधि तथा आफिस क्रियाओं की कुशलतम पद्धतियों के निर्धारण, उन्हें क्रमबद्ध करने, उनकी लागत कम करने तथा उन्हें और अधिक प्रभावशाली बनाने से सम्बन्धित है। यान्त्रिक और इलेक्ट्रानिक युक्तियों का प्रभावपूर्ण प्रयोग तथा लेखांकन व अन्य पुस्तिकाओं की तैयारी और प्रकाशन भी इसी में सम्मिलित होता है।

8. सूचित करना (Reporting) -

प्रबन्धकीय लेखा विधि में सूचित करने का कार्य दो स्तरों पर किया जाता है- सर्वोच्च प्रबन्ध को अन्तरिम सूचन और बाहरी पक्षों को बाह्य सूचन। अन्तरिम सूचन का आशय प्रबन्ध को मासिक, त्रैमासिक अथवा छमाही लेखे या विवरण प्रस्तुत करना है। जबकि बाह्य सूचन में वर्षोपरान्त विवरण व लेखे वित्तीय संस्थाओं, लेनदारों आदि के लिए तैयार किये जाते हैं ।

9. आंतरिक अंकेक्षण (Internal Auditing) -

इसका आशय आन्तरिक नियंत्रण को सफल बनाने के लिये सभी कार्यात्मक इकाइयों में आन्तरिक अंक्क्षेण स्थापित करना है। आन्तरिक अंक्क्षेण के द्वारा विभिन्न विभागों तथा अधिकारियों के कार्यकलापों की आन्तरिक जाँच की जाती है।

10. आफिस सेवा (Office Service) -

कुछ परिस्थितियों में आफिस सेवा की व्यवस्था प्रबन्ध-लेखापाल के अधीन ही रहती है। इसका तात्पर्य समंक विधायन (data processing) तथा अन्य सेवा कायम रखने से है। इन सेवाओं में संवहन, डाक, आवश्यक सामान की पूर्ति, मशीन से बहुत सी प्रतियाँ निकलवाना, छपाई आदि सेवायें प्रमुख हैं।

2.6 प्रबन्धकीय लेखा-विधि के उद्देश्य (Objectives of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन दक्षतापूर्वक करने हेतु आवश्यक सूचना प्रदान करना है। प्रबन्धकीय लेखाविधि प्रबन्ध को पूर्वानुमान, नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वयन तथा नियंत्रण में सहायता प्रदान करती है। इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. नियोजन व नीति निर्धारण में सहायक (Helpful in planning and formulating policy) -

पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्या करना चाहिये इसे निश्चित करना नियोजन कहलाता है। दूसरे शब्दों में भविष्य के सन्दर्भ में पूर्व से ही सोचने की प्रक्रिया को नियोजन कहते हैं। पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध की योजना बनानी पड़ती है। इस कार्य में प्रबन्धकीय लेखाविधि से काफी मदद मिलती है। उत्पादन, क्रय, विक्रय, पूंजी विनियोग, रोकड़ तथा अन्य आवश्यक तथ्यों के पूर्वानुमान के लिये योजना बनाने हेतु आवश्यक सूचनाओं को प्रदान करना होता है। वे सूचनाएं

MMOC-129

व्यवसाय के प्रबन्ध को प्रदान की जाती है। प्रबन्ध लेखापाल भूतकालीन आंकड़ों के आधार पर विवरण पत्र बनाते हैं एवं भविष्य का अनुमान लगाते हैं। वे व्यवसाय के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत विचार भी प्रबन्ध के समक्ष रखते हैं जिससे प्रबन्धकों को नियोजन करने एवं नीति निर्धारण के सम्बन्ध में मदद मिलती है। प्रबन्ध लेखाकार लागत, मूल्य, विक्रय, उत्पादन, आय तथा लाभ के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न विकल्पों का तुलनात्मक अध्ययन करके सर्वोत्तम विकल्प के चुनाव में प्रबन्ध की सहायता करता है। प्रबन्धकीय निर्णय में प्रबन्धकों को वित्तीय समंक, सीमांत लागतों, प्रमाप लागतों, बजट व अन्य तकनीकों से पर्याप्त सहायता मिलती है।

2. संगठन में सहायता (Helpful in organizing) -

संगठन का तात्पर्य संगठन के विभिन्न कर्मचारियों को संगठित करने से है। जब तक सभी कर्मचारी संगठित होकर कार्य नहीं करेंगे, संस्था का सही विकास कदापि सम्भव नहीं है। कर्मचारियों को संगठित होने अथवा करने में प्रबन्धकीय लेखाविधि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कर्मचारियों को एकजुट करने एवं कार्य में रूचि जगाने के लिए उनके बीच भारांपण के सिद्धान्तों को भी लागू किया जाता है। प्रत्येक प्रबन्धक अपनी संस्था को सर्वोत्तम ढंग से संगठित करने का प्रयास करता है। उसके लिए विभिन्न व्यक्तियों के बीच दायित्वों का बँटवारा तथा अधिकार अंतरण ये दोनों कार्य संगठन के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। प्रबन्धकीय लेखाविधि बजट तथा लागत के केन्द्रों पर विशेष बल देती है। बजट व लागत केन्द्रों की सहायता से विभिन्न अधिकारियों/कर्मचारियों के बीच दायित्वों का बँटवारा किया जा सकता है। इसके अलावा विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय की दर ज्ञात करके बजट व लागत केन्द्रों की प्रभावशीलता या लाभदायकता की जाँच की जा सकती है। जाँच के आधार पर आवश्यकतानुसार विभागों में सुधार लाये जा सकते हैं या सम्बन्धित किसी खास अधिकारी को अपने दायित्वों के प्रति सजग होने का आदेश दिया जा सकता है। निरन्तर जाँच की प्रक्रिया लागू होने से कर्मचारीगण स्वयं सजग हो जाते हैं।इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखाविधि सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ संगठन की स्थापना में सहायता प्रदान करती है।

3. कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना (Motivating of Employees) -

प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य कर्मचारियों को कार्य के प्रति अभिप्रेरित करना है, इसके लिए प्रभावपूर्ण एवं कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती हैं। वस्तुतः प्रभावपूर्ण एवं कुशल नेतृत्व तभी सम्भव है, जब प्रबन्ध को निरन्तर विभिन्न गतिविधियों की सही-सही सूचना मिलती रहे। इसके लिए प्रबन्ध लेखापाल प्रबन्ध के समक्ष प्रेरणा योजनाओं एवं अन्य महत्वपूर्ण सुझावों को रखता है। यह सूचनाओं के सृजन व प्रस्तुतीकरण से प्रबन्धकों के ज्ञान में वृद्धि करने का वातावरण तैयार करता है। इस प्रकार वे अभिप्रेरित होकर अपने कार्यों को सर्वोत्तम ढंग से करने का भरपूर प्रयास करेंगे।

4. समन्वय का उद्देश्य (Object of Coordination) -

किसी भी संस्था का प्रबन्धक विभिन्न क्रियाओं के बीच समन्वय तथा तालमेल स्थापित करने

का प्रयास करता है, ताकि सम्बन्धित विभाग अधिक कुशलता के साथ संचालित किया जा सके। प्रबन्धकीय लेखाविधि प्रबन्ध के समक्ष उन औजारों को प्रस्तुत करती है जिसकी सहायता से संस्था के विभिन्न विभागों के कार्य कलापों में समन्वय स्थापित किया जाना सम्भव हो पाता है। इस समन्वय का कार्य क्रियात्मक बजटिंग की सहायता से किया जाता है। प्रबन्ध लेखापाल समन्वय के सम्बन्ध में मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

5. प्रबन्ध को सूचना देना (Reporting to Management) -

यहाँ सूचना का तात्पर्य संस्था के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों (प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों) तथा संस्था एवं बाहरी व्यक्तियों (ग्राहकों, ऋण-पत्रधारियों, बैंकों तथा सरकारी अधिकारियों) के बीच निर्देशों एवं सूचनाओं के आदान प्रदान करने से है। प्रबन्धकीय लेखाविधि का प्रारम्भिक उद्देश्य प्रबन्ध को ताजी सूचनाओं (Up-to-date Information) से अवगत कराना है। समय-समय पर व्यवसाय की स्थिति के सम्बन्ध में प्रबन्ध को सूचित करते रहना प्रबन्धकीय लेखाविधि का एक महत्वपूर्ण कार्य है। उच्चस्तरीय प्रबन्ध को विभिन्न विभागों के कार्य निष्पादन के सम्बन्ध की सतत् सूचना प्रदान करना भी प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य होता है।यदि सूचना सम्प्रेषण का कार्य सही ढंग से नहीं हो तो व्यवसाय की समस्त क्रियाएं जैसे संगठन, समन्वय, नियंत्रण, नियोजन, नीति - निर्धारण आदि कभी भी समय पर नहीं हो सकती। संस्था के कर्मचारियों को संस्था की प्रगति के सम्बन्ध में सूचित करने के लिए प्रकृति चित्र, संक्षिप्त लेखे तथा विवरण तैयार किये जा सकते हैं। इसके लिए सम्बन्धित सूचना को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने, व्याख्या करने तथा उचित सन्दर्भ में उसका प्रयोग अति आवश्यक होता है।

6. निर्णयन में सहायक (Helpful in Decision making) -

उच्चस्तरीय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य संस्था से सम्बन्धित निर्णय लेना होता है। निर्णयन से तात्पर्य विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्पों का चुनाव करने से है। किसी भी संस्था के प्रबन्ध को विभिन्न मामलों पर निर्णय लेना होता है, ये मामले हैं - पूँजी व्यय, स्वयं उत्पादन अथवा क्रय किया जाना, मूल्य निर्धारण, विक्रय नीति आदि। इन समस्त समस्याओं के सम्बन्ध में श्रेष्ठतम निर्णय हेतु प्रबन्ध के समक्ष वैकल्पिक योजनाओं की तुलनात्मक स्थिति रखना प्रबन्ध लेखापाल का कार्य है। इसके लिए पूँजी बजटिंग, सीमान्त परिव्ययन, सम-विच्छेद विश्लेषण, लाभ-मात्रा विश्लेषण, परियोजना मूल्यांकन आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य प्रबन्ध को विभिन्न व्यावसायिक मामलों पर निर्णय लेने में सहायता करना है। उदाहरणतया श्रमिकों की जगह पर नई तकनीक की मशीनों को लाने का मामला हो सकता है। इसके लिए प्रबन्ध लेखापाल विभिन्न विकल्पों का रिपोर्ट तैयार करता है। जिसके आधार पर प्रबन्ध सही निर्णय लेने में सक्षम हो पाता है।

7. निष्पादनों के नियंत्रण में सहायक (Helpful in Controlling Performance) -

नियंत्रण का तात्पर्य पूर्व निर्धारित तथा वास्तविक लक्ष्यों में एकरूपता है या नहीं, इस ख्याल से वास्तविक परिणामों की सतत जाँच करते रहना तथा दोनों परिणामों में अन्तर होने पर सुधारात्मक कार्य करने से है। प्रबन्ध-कार्यों में नियंत्रण का सर्वोपरि स्थान है। समुचित नियंत्रण के अभाव में वांछित लक्ष्यों को कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता है। संस्था की विभिन्न गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए प्रबन्धकीय लेखाविधि में अनेक युक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

प्रबन्ध लेखांकन बाह्य पक्षों की गतिविधियों के नियंत्रण में भी पर्याप्त सहायता करता है। प्रबन्ध कार्यों की प्रभावशीलता से विभिन्न पक्षों को अवगत कराने हेतु वार्षिक वित्तीय विवरणों का प्रकाशन किया जाता है। ये सूचनाएं अंशधारियों, लेनदारों तथा सामान्य जनता के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। वस्तुतः प्रबन्धकीय लेखाविधि प्रबन्ध नियंत्रण की एक सही तरकीब है। बजटरी कन्ट्रोल एवं प्रमाप परिव्ययन इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इन तकनीकों की सहायता से ही प्रबन्ध, प्रबन्ध नियंत्रण में सफल होता हैं

8. वित्तीय सूचनाओं के निर्वचन में सहायक (Helpful in Interpretation of Financial Informations) -

प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य विभिन्न वित्तीय विवरणों का निर्वचन करना एवं उसके बाद प्रबन्ध को सूचित करना होता है। अतः प्रबन्धकीय लेखाविधि का उद्देश्य वित्तीय विवरणों एवं अन्य वित्तीय सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष सरल एवं बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करना होता है। वस्तुतः लेखाकन एक तकनीकी विषय है। प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह लेखांकन तकनीकी की प्रत्येक सूक्ष्मता को समझे। अतः प्रबन्ध लेखापाल लेखाकर्म सूचना को विभिन्न तकनीकों के प्रयोग से विश्लेषित कर प्रबन्ध के समक्ष तरल व बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रबन्ध लेखापाल विभिन्न तुलनात्मक विवरण (comparative statement) तैयार करता है। इसके लिए सांख्यिकीय विधियों एवं चार्ट का प्रयोग किया जाता है।

9. कर-प्रशासन में सहायता (Helpful in Tax- Administration) -

इन दिनों व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण की मात्रा बढ़ती जा रही हैं। आज व्यवसाय पर कर की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। इसके सम्बन्ध में प्रबन्धकीय लेखाविधि हर प्रकार की कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करने में प्रबन्ध की सहायता करती हैं

10. कानूनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायता करना (To help in Fulfilling Legal Requirements) -

वर्तमान व्यवसाय पर सरकारी नियंत्रण एवं कानूनी आवश्यकताएं इतनी अधिक हो गयी हैं कि व्यवसाय के लिए कानूनी अनिवार्यताओं की पूर्ति करना आवश्यक हो गया है। प्रबन्धकीय लेखाविधि इस कार्य में सहायता प्रदान करती है। प्रबन्धकीय लेखाविधि में लेखों, प्रतिवेदनों आदि के प्रारूप इस प्रकार तैयार किए जाते हैं ताकि किसी भी समय कानूनी आवश्यकता को पूर्ण किया जा सके।

NMDC-129

2.7 प्रबन्धकीय लेखा-विधि एवं प्रबन्धकीय निर्णय (Management Accounting and Managerial Decisions)

वर्तमान प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में किसी भी उपक्रम के प्रबन्धकों के समक्ष विभिन्न प्रकार की समस्याएं होती हैं जिनके सम्बन्ध मे उन्हें उपयुक्त समय पर ठोस निर्णय लेने होते हैं तथा नीति-निर्धारण की आवश्यकता पड़ती है ताकि संस्था के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। प्रबन्धक अपनी समस्याओं का हल उसी स्थिति में ढूंढ सकते हैं जबकि लेखाविधि को इस प्रकार निर्धारित किया जाये, ताकि उन्हें समस्या से सम्बन्धित आँकड़े उपलब्ध हो सकें । प्रबन्ध के समक्ष मुख्य समस्याएं क्रय, उत्पादन, विक्रय एवं वितरण से सम्बन्धित होती हैं जिनसे सम्बन्धित आँकड़े प्राप्त करने की दृष्टि से सुविधाजनक लेखाविधि निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ती हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातों का वर्णन किया जा रहा है :-

1. क्रय सम्बन्धी समस्याएं (Problems Regarding Purchases) -

प्रबन्धकों के समक्ष क्रय सम्बन्धी समस्याएं तब उत्पन्न होती है जब वे उत्पादन कार्य हेतु सामग्री के क्रय सम्बन्धी निर्णय लेना चाहते हैं। क्रय सम्बन्धी समस्याओं के निदान में निम्नलिखित बातें सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

1) एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत क्रय की गई वस्तुओं की मात्रा, उनकी दर तथा कुल रकम से सम्बन्धित आँकड़े।
2) अलग-अलग विभागों के लिए क्रय की गई वस्तुओं की मात्रा से सम्बन्धित विवरण,
3) कुल क्रय में से कितना क्रय पूंजीगत वस्तुओं को किया गया तथा कितना क्रय आगम वस्तुओं को किया गया इससे सम्बन्धित आँकड़े,
4) सामग्री क्रय करने हेतु भेजे गये आदेश तथा सामग्री पूर्ति की सम्भावना से सम्बन्धित विवरण,
5) संस्था के लिए कितनी सामग्री की आवश्यकता कब कब होगी, इसका विवरण,
6) संम्भावित उत्पादन हेतु सामग्री की कितनी मात्रा उपलब्ध है इसका विवरण,
7) सामग्री की कितनी न्यूनतम मात्रा सुरक्षित रखना आवश्यक है, इसका निर्धारण क्योंकि आवश्यकता से अधिक सामग्री स्टाक में रहने से व्यवसाय में अनावश्यक रूप से पूँजी फंस जाती है तथा सामग्री का कम स्टाक होने से उत्पादन कार्य अवरूद्ध होने का भय बना रहता है।

2. उत्पादन सम्बन्धी समस्या (Problems Regarding Production) -

प्रबन्धकों के समक्ष उत्पादन के सम्बन्ध में मुख्य समस्याएं यह होती है कि किसी वस्तु की

कितनी मात्रा, कब और कैसे किया जाए। इनके समक्ष लागत निर्धारण की भी समस्या आती है। उन्हें समय-समय पर वस्तुओं की माँग की लोच एवं प्रतिस्पर्धा का ध्यान रखते हुए उत्पादन स्तर का निर्धारण करना होता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु उत्पादन से सम्बन्धित निम्नांकित बातों की सूचना संग्रहित करने की व्यवस्था लेखांकन विधि द्वारा की जानी चाहिए।

1) आपूर्ति योग्य आदेशों हेतु कच्ची सामग्री, श्रम व अन्य व्ययों की व्यवस्था का विवरण

2) एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत प्राप्त आदेशों की जानकारी तथा इस बात की भी जानकारी कि उनमें से कितने आदेशों की पूर्ति की जा चुकी है।

3) प्राप्त आदेशों में से कितने आदेशों को क्रियान्वित करने के आदेश दिये जा चुके हैं, इसका विवरण;

4) प्रत्येक विभाग के श्रम एवं प्रशासकीय व्ययों का विवरण;

5) उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर स्थायी, अर्द्धपरिवर्तनशील एवं परिवर्तनशील व्ययों की प्रकृति का विवरण

6) भविष्य में किए जाने वाले उत्पादन की लागत का पूर्वानुमान किया जाना। इस सम्बन्ध में प्रमाप लेखांकन तथा बजटरी नियंत्रण विधियाँ काफी सहायक होती हैं।

3. विक्रय एवं वितरण सम्बन्धी समस्याएं (Problems Regarding Selling and Distribution -

विक्रय एवं वितरण सम्बन्धी नीति का निर्धारण करते समय प्रबन्धकों को इनसे सम्बन्धित ऑकड़ों की आवश्यकता होती है। विक्रय क्षेत्रों का बँटवारा, विक्रय कोटा का निर्धारण, विक्रय प्रर्वतन की नीति, उधार देने व न देने सम्बन्धी नीति विक्रय प्रर्वतन की योजनाएं आदि का निर्धारण करते समय इन आँकड़ों की उपलब्धता अनिवार्य हो जाती है। इसके लिए लेखाविधि ऐसी होनी चाहिए जिससे निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त हो सकें -

1) एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत विक्रय की गई वस्तुओं की कुल मात्रा एवं मूल्य का विवरण,

2) नकद तथा उधार विक्रय का विवरण,

3) विभिन्न विभागों द्वारा बेची गयी वस्तुओं का विवरण,

4) विभिन्न विक्रय क्षेत्रानुसार अथवा विक्रेता के अनुसार बेची गयी कुल मात्रा का विवरण,

5) ऐसे आदेशों का विवरण जिनकी पूर्ति नहीं की जा सकी,

6) ग्राहकों द्वारा वापस की गई वस्तुओं का विवरण,

7) विक्रय सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के व्ययों का विवरण आदि।

4. वित्त सम्बन्धी समस्याएं (Problems Related to Finance) -

NMDG-129

प्रबन्धकों के समक्ष वित्त सम्बन्धी जटिल समस्याएं होती हैं। वित्त सम्बन्धी समस्याएं अल्पकालीन व दीर्घकालीन हो सकती हैं साथ ही उनके नियोजन की समस्याएं भी होती है। मुख्य रूप से विभिन्न कार्यों हेतु दिये जाने वाले वित्त की व्यवस्था प्रबन्धकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। इसके लिए लेखाविधि ऐसी होनी चाहिए जिससे वित्त सम्बन्धी निम्न सूचनाएं प्राप्त की जा सकें।

1) सामग्री आदि के क्रय हेतु कितने वित्त की आवश्यकता होगी तथा कब-कब होगी,

2) स्थायी श्रमिकों को कितनी मजदूरी का भुगतान किया जाता है, से सम्बन्धित विवरण,

3) अस्थायी श्रमिकों की कितनी आवश्यकता तथा किन-किन उत्पादन स्तरों पर होती हैं तथा उनको कितना भुगतान किया जाता है,

4) श्रमिकों द्वारा अर्जित अधिसमय तथा बोनस आदि की राशि,

5) नकद तथा उधार बिक्री का अनुमान,

6) उधार बिक्री की राशि की वसूली अवधि,

7) विभिन्न व्ययों के लिए आवश्यक वित्त की मात्रा का विवरण,

8) लाभांश आदि बाँटे जाने का समय तथा उसकी अनुमानित राशि,

9) विभिन्न लेनदारों को भुगतान की जाने वाली राशि एवं उन्हें कब भुगतान किया जाना है, इसका विवरण,

10) क्रय के लिए दिये गये आदेश की पूर्ति का अनुमानित समय तथा उसमें लगने वाली राशि का विवरण आदि।

2.8 सैद्धान्तिक प्रश्न

1. प्रबन्धकीय लेखाविधि से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रकृति तथा क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

2. प्रबन्धकीय लेखाविधि के उद्देश्यों को समझाइये।

3. निर्णयन में प्रबन्धकीय लेखाविधि का औजार के रूप में प्रयोग का वर्णन कीजिए।

इकाई - 3 : प्रबन्ध लेखपाल (Management Accountant)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रबन्ध लेखपाल का प्रस्तावना

3.2 प्रबन्ध लेखपाल के कार्य

3.3 प्रबन्ध लेखपाल की प्रास्थिति

3.4 प्रबन्ध लेखपाल के कर्तव्य

3.5 प्रबन्ध लेखपाल का उत्तरदायित्व

3.6 सैद्धान्तिक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- प्रबन्ध लेखपाल का अर्थ ज्ञात होगा,
- उद्देश्य की जानकारी होगी,
- प्रबन्ध लेखपाल के कार्यों की जानकारी होगी,
- प्रबन्ध लेखपाल की स्थिति ज्ञात होगी,
- प्रबन्ध लेखपाल के कर्तव्य ज्ञात होंगे,
- प्रबन्ध लेखपाल का उत्तरदायित्व ज्ञात होगा।

3.1 प्रबन्ध लेखापाल का प्रस्तावना

जो व्यक्ति प्रबन्धकीय लेखाकरण का कार्य करते हैं, उन्हें प्रबन्ध लेखापाल कहा जाता है। प्रबन्ध लेखापाल किसी कम्पनी का वह अधिकारी होता है जो कि संस्था में प्रबन्धकीय लेखा विधि को व्यावहारिक रूप देता है। यह वह अधिकारी होता है जो कि लेखा विधि व वित्तीय मामलों पर आवश्यक सूचना एकत्रित करके विभिन्न स्तर के प्रबन्धकों को प्रस्तुत करता है और इस प्रकार उन्हें नीति-निर्धारण तथा दिन-प्रतिदिन के कार्यों के कुशलतापूर्वक निर्देशन व नियंत्रण में सहायता देता है।

वह एक स्टाफ अधिकारी होता है । प्रबन्ध लेखापाल संस्था का बहुत महत्वपूर्ण अधिकारी होता है। इसे प्रबन्ध का "आँख और कान" कहा जाता है। यह प्रबन्ध के लगभग वही कार्य करता है जो कि मानव शरीर में नाड़ी तंत्र करता है। वह एक कुशल व्यवसाय विश्लेषक होता है जोकि अपने प्रशिक्षण और अनुभव के कारण व्यवसाय के वित्तीय लेखों के रखने तथा प्रबन्ध के मार्गदर्शन के लिए इनकी व्याख्या करने के लिए संस्था का सर्वाधिक योग्य व्यक्ति होता है।

3.2 प्रबन्ध लेखापाल के कार्य (Functions of Management Accountant)

प्रबन्ध लेखपाल के कार्य क्षेत्र की सीमा बहुत ही व्यापक है परन्तु व्यक्तिगत प्रबन्ध लेखापाल के कार्य संस्था में उसकी स्थिति प्रबन्ध के साथ इस सम्बन्ध में हुए उसके समझौते तथा उसकी स्वयं की क्षमता पर निर्भर करते हैं। एक व्यावसायिक संस्था में उसकी स्थिति कुछ भी हो सकती है परन्तु यह तो निर्विवाद है कि उसका कार्य सभी स्तर के प्रबन्धकों को उनके विभिन्न कार्यों के कुशलतापूर्वक निष्पादन में सहायता देना है। अमेरिका में फाइनैन्सियल एक्जीक्यूटिव्स इन्स्टीट्यूट ने प्रबन्ध लेखापाल के निम्न कार्यों पर जोर दिया है -

1. नियंत्रण के लिए नियोजन (Planning for Control) -

व्यावसायिक क्रियाओं पर नियंत्रण हेतु प्रबन्ध के एक अभिन्न अंग के रूप में एकीकृत योजना बनाना, समन्वित करना तथा अधिकृत प्रबन्ध द्वारा लागू करना। व्यवसाय के आकार तथा आवश्यकतानुसार इस योजना में परिव्यय प्रमाप, व्यय बजट, बिक्री पूर्वानुमान, लाभ नियोजन तथा पूंजीगत विनियोग और उनके अर्थ प्रबन्धन का कार्यक्रम आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं साथ ही इसमें योजना के कार्यान्वयन हेतु आवश्यक कार्य-विधि भी दी जा सकती हैं

2. सूचित करना और व्याख्या (Reporting and Interpreting)-

वास्तविक परिणामों की अनुमोदित कार्यकारी योजनाओं और मापों से तुलना करना तथा सभी स्तर के प्रबन्धकों और व्यवसाय के स्वामियों को कार्यकरण के परिणामों की व्याख्या करना तथा उन्हें इनसे सूचित करना। प्रबन्ध लेखापाल के इस कार्य में लेखांकन नीति का निर्धारण, लेखांकन और परिव्यय प्रणालियों तथा कार्य विधियों में समन्वय तथा अपेक्षित सांख्यिकीय समंकों तथा विशेष प्रतिवेदनों की तैयारी सम्मिलित है।

3. मूल्यांकन तथा परामर्श करना (Evaluating and Consulting) -

व्यवसाय के उद्देश्यों की वैधता तथा इनके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त नीतियों, संगठन संरचना तथा कार्यविधियों की प्रभावशीलता का माप करना तथा इस सम्बन्ध में प्रबन्ध को सूचित करना। इसके लिए प्रबन्ध लेखापाल को सभी स्तर के प्रबन्धकों से परामर्श करना चाहिए।

4. कर व्यवस्था (Tax Administration) -

इसका आशय कर नीतियों तथा कार्यविधियों के प्रतिपादन और उनको लागू करने से है।

5. सरकार को सूचित करना (Government Reporting) -

कानून के अनुसार आवश्यक बातों पर सरकारी एजेन्सियों को भेजे जाने वाले प्रतिवेदनों व विवरणों की तैयारी का निरीक्षण करना, उनमें समन्वय स्थापित करना तथा उपयुक्त समय पर सम्बन्धित सरकारी एजेन्सियों को प्रेषित करना।

6. सम्पत्तियों की सुरक्षा (Protection of Assets) -

व्यवसाय की सम्पत्तियों की सुरक्षा के लिए प्रबन्ध लेखपाल को आन्तरिक निरीक्षक, आन्तरिक अंकेक्षण तथा बीमा व्यवस्था पर ध्यान देना होता है।

7. आर्थिक मूल्यांकन (Economic Appraisal) -

प्रबन्ध-लेखापाल के इस कार्य में व्यावसायिक क्रियाओं को प्रभावित करने वाली आर्थिक और सामाजिक शक्तियों तथा सरकारी नीतियों के प्रभावों का सतत् मूल्यांकन और व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करना सम्मिलित है।

प्रबन्ध लेखापाल के कार्यो के सम्बन्ध में दी गयी उपर्युक्त सूची यद्यपि पर्याप्त व्यापक है फिर भी इनके अतिरिक्त किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चुनाव में प्रबन्ध की सहायता करना तथा संस्था के कर्मचारियों को संस्था के उद्देश्यों के अनुकूल कार्य करने के लिए अभिप्रेरण की योजनायें क्रियान्वित करना भी उसके कार्य क्षेत्र में ही सम्मिलित होता है। अतः स्पष्ट है कि प्रबन्ध लेखपाल का कार्य वित्तीय व लागत लेखा तैयार करना नहीं है, वरन् उनका कार्य तो इन लेखों से प्राप्त सूचनाओं व अन्य बाह्य सूचनाओं के आधार पर प्रबन्ध को कम्पनी के उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता प्रदान करना है। ध्यान रहे कि विभागीय अधिकारियों को वह स्वयं कोई निर्देश नहीं देता है। वह तो सम्बन्धित अधिकारियों को उनसे सम्बद्ध सूचनायें उचित समय पर प्रस्तुत कर देता है। कार्यवाही करने व निर्णय लेने का कार्य तो प्रबन्ध का ही होता हैं

3.3 प्रबन्ध लेखापाल की प्रस्थिति (Position of Manage ment Accountant)

किसी संस्था के प्रबन्ध के पद सोपान में प्रबन्ध लेखापाल का कोई एक निश्चित स्थान नहीं है। किसी एक संस्था में उसे एक अधिकारी के रूप में माना जा सकता है तो किसी दूसरे में वह संचालक मण्डल का सदस्य भी हो सकता है। वस्तुतः संस्था में उसकी प्रस्थिति केवल उसके पद से जुड़ी हुई नहीं होती वरन् वह उसके व्यक्तित्व, उसकी मानसिक सज्जा, औद्योगिक पृष्ठभूमि तथा उसमें अपनी योग्यता, कार्यकुशलता और ईमानदारी के प्रति दूसरों को (अर्थात कम्पनी के प्रबन्धक, संचालक और संचालक मण्डल को)विश्वास दिलाने की क्षमता तथा प्रबन्ध के दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त इस पर उसकी नियुक्ति की शर्तों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। चूँकि उसकी नियुक्ति

की शर्तें कम्पनी का संचालक मण्डल अथवा पार्षद अन्तर्नियम निश्चित करते हैं, अतः विभिन्न कम्पनियों में प्रबन्ध लेखापाल की प्रस्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्तर पाया जा सकता है उसकी स्थिति के सम्बन्ध में कन्ट्रोलर्स इन्स्टीट्यूट कमेटी ने निम्न सुझाव दिये हैं -

1) प्रबन्ध लेखापाल नीति निर्धारण स्तर पर एक कार्यकारी अधिकारी होना चाहिए जोकि सीधा संस्था के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी हो। उसकी नियुक्ति या उसे पद से हटाये जाने के लिए संचालक मण्डल का अनुमोदन आवश्यक होना चाहिए।

2) प्रबन्ध लेखापाल से व्यवसाय के कार्यकरण परिणामों और वित्तीय स्थिति पर आवधिक प्रतिवेदन अन्य उपेक्षित सूचनाओं सहित सीधा संचालक मण्डल को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए।

3) प्रबन्ध लेखापाल संचालक मण्डल का सदस्य हो। यदि ऐसा नहीं है तो वह संस्था के अन्य सभी सर्वोच्च नीति निर्धारण करने वाले व्यक्तियों से निकट से जुड़ा होना चाहिए। कम से कम उसे संचालक मण्डल की सभाओं में उपस्थिति होने और अपनी बात कहने के लिए तो अवश्य आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

3.4 प्रबन्ध लेखापाल के कर्तव्य (Duties of Management Accountant)

प्रबन्ध लेखापाल का कर्तव्य-क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। अंकों को तैयार कर देने मात्र से ही उसका कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता वरन् उसे भी बहुत कुछ करना होता है। प्रबन्ध लेखापाल का प्रमुख कर्तव्य संस्था के प्रबन्धकों के प्रति होता है। उसकी उपयोगिता प्रबन्धकों को उनके प्रबन्धकीय कार्यों के कुशलतापूर्वक निष्पादन में सहायता देने में है। प्रबन्ध-लेखापाल लेखा-विधि से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर ही प्रबन्धकों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने की स्थिति में होता है। अतः विभिन्न स्तर के प्रबन्धकों के लिये आवश्यक सूचनाओं का संग्रहण तथा तैयारी प्रबन्ध लेखापाल का प्रमुख कर्तव्य है। सूचनाओं का संग्रहण वित्तीय व परिव्यय लेखाविधियों तथा संस्था के अन्य आन्तरिक स्त्रोतों तथा क्रियाओं से किया जाता है। प्रबन्ध लेखापाल को संस्था के बाहर व्यापार जगत की घटनाओं से भी अवगत रखना होता है, परन्तु संस्था के आन्तरिक व बाह्य स्त्रोतों से सूचनायें संग्रह करने तथा उनसे विवरण तैयार कर देने से ही प्रबन्ध लेखापाल का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता है। वास्तव में यह तो उसके कर्तव्यों का प्रथम चरण ही है। उसे तो इन अंकों या सूचनाओं को प्रबन्धकों के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है जिससे कि व्यवसाय के संचालन एवं नियंत्रण में इनसे अधिकतम सहायता मिल सके। अतः अंकों को तैयार कर देने के अतिरिक्त एक प्रबन्ध लेखापाल को निम्नलिखित कार्य करने होते हैं-

1) सूचनाओं का विश्लेषण एवं पुनर्विन्यास (Analysis and Rearrangement of Information) -

विभिन्न स्त्रोतों से संग्रह की गई सूचनायें बहुत ही अव्यवस्थित तथा उलझी हुई होती हैं । यदि इन्हें इसी रूप में प्रबन्धकों के सम्मुख रख दिया जाये तो वे इनसे कोई लाभकारी निष्कर्ष नहीं निकाल सकते हैं । अतः इन्हें विश्लेषित कर उपयोगी रूप से विन्यसित करना प्रबन्ध लेखापाल का पहला कर्तव्य है। इसके लिए प्रबन्ध लेखापाल विभिन्न सूचनाओं में समन्वय स्थापित करता है तथा उन्हें उपर्युक्त शीर्षकों में विभक्त करके प्रबन्धकों के उपयोग योग्य बनाता है।

2) सूचनाओं का मूल्यांकन (Evaluation of Information) -

उसे सभी सूचनाओं की स्वयं ही जांच करनी चाहिए तथा महत्वपूर्ण व अमहत्वपूर्ण सूचनाओं में भेद करना चाहिए। प्रबन्ध लेखापाल सभी असंगत तथा व्यर्थ की सूचनाओं को छोड़ देता है और सभी संगत सूचनाओं को प्रबन्ध के दृष्टिकोण से उनकी महत्ता के क्रम में विन्यसित करता है अर्थात सबसे महत्वपूर्ण सूचना प्रतिवेदन में सबसे पहले दी जायेगी और सबसे कम महत्वपूर्ण सबसे बाद में।

3) सूचनाओं की व्याख्या (Interpretation of Information)-

सभी वित्तीय सूचनाओं की व्याख्या करना प्रबन्ध लेखापाल का कर्तव्य है। व्याख्या करने से लेखों की बारीकियाँ स्पष्ट होती हैं। कार्य निष्पादन पर प्रबन्ध लेखापाल वास्तविक परिणामों की तुलना प्रमापों से करता है। तथा विवरण के कारणों तथा उसके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों का पता लगाता है। और व्यवसाय के लक्ष्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रबन्ध को अपना प्रतिवेदन देता है।

4) सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण (Presentation or Reporting of Information) -

प्रबन्ध के कार्यों के कुशलतापूर्वक निष्पादन के लिए सभी महत्वपूर्ण सूचनाओं को उचित समय पर प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करना प्रबन्ध लेखापाल का कर्तव्य हैं।

3.5 प्रबन्ध लेखापाल का उत्तरदायित्व (Responsibility of Management Accountant)

प्रबन्ध लेखापाल के कार्यों में प्रबन्ध को सूचनाओं का प्रेषण एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठता है कि उसके द्वारा दी गयी सूचनाओं के आधार पर यदि प्रबन्धक गलत निर्णय ले लेते हैं तो उनके लिए कौन उत्तरदायी ठहराया जाय ? प्रबन्धक (जिसे सूचनायें भेजी गयी थीं और जिनके आधार पर उसने गलत निर्णय लिया है) या प्रबन्ध लेखापाल। इस समस्या का समाधान मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि प्रबन्ध लेखापाल समुचित होशियारी बरतते हुए अपनी जानकारी में शुद्ध सूचनायें प्रेषित करता है तो उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिससे उनका

सही निर्वचन किया जा सके तो प्रबन्धकों द्वारा इन सूचनाओं के आधार पर किये गये निर्णय में की गयी गलतियों के लिये उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। परन्तु यदि उसके द्वारा प्रेषित सूचनायें अशुद्ध, पक्षपातपूर्ण और भ्रमोत्पादक हैं तो सूचनाओं के आधार पर किये गये निर्णयों की गलतियों के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।

प्रबन्ध लेखापाल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में संस्था में उसकी स्थिति पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि उसका कार्य सूचनाओं के अभिलेखन तथा उनके प्रेषण तक ही सीमित है तो प्रबन्धकीय निर्णयों में की गयी भूलों व गलतियों के लिए उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। दूसरी ओर यदि व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन और निर्णय लेने में सक्रिय भाग लेता है और वह प्रबन्ध समुदाय का एक महत्वपूर्ण सदस्य है तो उसकी स्थिति के आधार पर उसे प्रबन्धकीय निर्णयों में की गयी भूलों के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

3.6 सैद्धान्तिक प्रश्न

1. प्रबन्ध लेखापाल कौन होता है? इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. प्रबन्ध लेखापाल की प्रस्थिति तथा उत्तरदायित्व का विवेचन कीजिए।
3. प्रबन्ध लेखापाल के कर्तव्यों को बताइये।

NMDC-129

खण्ड

2

वित्तीय विवरणों का विश्लेषण

इकाई -1	वित्तीय विवरणों का विश्लेषण	5
इकाई -2	प्रवृत्ति विश्लेषण	22
इकाई -3	अनुपात विश्लेषण	35
इकाई -4	कोष प्रवाह विवरण	53
इकाई -5	रोकड़ प्रवाह का विवरण	70

NMDC-129

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	मोतीलाल नेहरू इस्ट0 ऑव रिसर्च एण्ड बिजनेस एडमिनस्ट्रेशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 प्रेरणा दाहिने	रीडर, महाकाल इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैय

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक - कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज-2023

मुद्रक - के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

खण्ड- परिचय

प्रबन्धकीय लेखांकन के इस खण्ड में वित्तीय विवरणों का विश्लेषण निम्नलिखित 5 इकाईयों में प्रस्तुत किया गया है -

इकाई - 1 में वित्तीय विवरणों का विस्तृत व गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई - 2 में वित्तीय विवरणों का प्रवृत्ति विश्लेषण की गहन व्याख्या की गई है।

इकाई - 3 में अनुपात विश्लेषण को विश्लेषित किया गया है।

इकाई - 4 में कोष प्रवाह विवरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण व्याख्या की गयी है।

इकाई - 5 में रोकड़ प्रवाह विवरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

NMDC-129

NMDC-129

इकाई 1 : वित्तीय विवरणों का विश्लेषण (Analysis of financial Statement)

इकाई रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वित्तीय विश्लेषण की सीमाएँ

1.3 वित्तीय विश्लेषण के प्रकार

1.4.1 क्षैतिज या गतिशीलत विश्लेषण

1.4.2 लम्बवत् या स्थित विश्लेषण

1.4 वित्तीय विवरणों को तैयार करना एवं प्रदर्शित करना

1.5 चिह्नों का प्रारूप

1.5.1 चिट्ठे के दायित्व पक्ष के पदों का विवेचन

1.5.2 चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष के मदों का विवेचन

1.6 लाभ-हानि खाते के स्वरूप

1.6.1 लाभ-हानि खाते में आने वाली मदें

1.6.2 लाभ-हानि खाते का प्रारूप

1.7 सारांश

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- विश्लेषण का अर्थ एवं उद्देश्य ज्ञात होंगे।
- विश्लेषण की सीमाएँ ज्ञात होंगी।
- विश्लेषण के प्रकार ज्ञात होंगे।
- विश्लेषण को तैयार करने तथा प्रदर्शन की जानकारी होगी।
- चिट्ठे के समाप्ति और दायित्व पक्षों की जानकारी होगी
- लाभ-हानि खाते की मदों व स्वरूपों की जानकारी होगी।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी संस्था का मुख्य उद्देश्य अपने अंशधारियों, ग्राहकों आदि को समय-समय पर सूचना प्रदान करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्था द्वारा विभिन्न लेखे बनाए जाते हैं। लाभ-

हानि, चिट्ठा एवं अंकेक्षकों की रिपोर्ट के आधार पर यह तय किया जाता है कि संस्था की वित्तीय स्थिति कैसी है, भविष्य में संस्था की प्रगति की क्या संभावनाएँ हैं। इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु वित्तीय लेखे जैसे-लाभ हानि खाता, चिट्ठा, अनुपात आदि का गहन अध्ययन ही वित्तीय विश्लेषण कहलाता है।

1.2 वित्तीय विश्लेषण के उद्देश्य (Objective of financial Analysis

वित्तीय विश्लेषण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. संस्था की वित्तीय जानकारी प्रदान करना।
2. वित्तीय जानकारी के आधार पर भविष्य के निर्णय लेना।
3. कोष प्रवाह विवरण व रोकड़ प्रवाह विवरण के लिये उचित जानकारी प्रदान करना।
4. संस्था की ऋण क्षमता का निर्धारण करना, ताकि उचित समय पर ऋण की व्यवस्था की जा सके।
5. संस्था की अल्पकालीन व दीर्घकालीन शोधन क्षमता का निर्धारण करना।

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में अनेक पक्षकारों - जैसे प्रबन्धकों, श्रमिकों, ऋणदाताओं का हित होता है। अतः वित्तीय विवरणों के विश्लेषण के उद्देश्य भी विभिन्न पक्षकारों के दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। किसी विशेष परिस्थितियों में विश्लेषण का क्या उद्देश्य है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि विश्लेषण किसके द्वारा व किस लिए कराया जा रहा है।

वित्तीय विवरणों के प्रकार - (Types of Financial Statements)

सामान्यतया निम्न प्रकार के वित्तीय विवरण तैयार किए जाते हैं :

1. **लाभ - हानि खाता** - इसे आय विवरण भी कहा जाता है जो संस्था के क्रियाकलापों का परिणाम ज्ञात करने के लिए बनाया जाता है। इसमें वित्तीय वर्ष के आय और व्यय प्रदर्शित किए जाते हैं। आय की मात्रा व्यय से अधिक हो तो लाभ होता है और आय की मात्रा व्यय से कम हो तो हानि होती है। इसमें निर्माणी खाता, व्यापारिक खाता, लाभ-हानि खाता, लाभ-हानि नियोजन खाता तैयार किया जाता है।

2. **आर्थिक चिट्ठा** - यह विवरण एक निश्चित समय बिन्दु पर बनाया जाता है जो संस्था के वित्तीय स्वास्थ्य को प्रकट करता है। आर्थिक चिट्ठे के दाहिने पक्ष में सम्पत्तियों को और बायें पक्ष में दायित्वों को प्रदर्शित किया जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 में कम्पनियों, के आर्थिक चिट्ठे का निर्धारित प्रारूप दिया हुआ है जिसमें वर्तमान व गत वर्ष दोनों के आँकड़े दिखलाने होते हैं।

3. **कोष प्रवाह विवरण** - यह विवरण दो निश्चित अवधियों के मध्य वित्तीय दशा में परिवर्तन को प्रदर्शित करने के लिए बनाया जाता है। कोष शब्द का अर्थ शुद्ध कार्यशील

पूँजी होता है जो चल सम्पत्तियों में से चल दायित्वों को घटा करके ज्ञात होती है। कोष प्रवाह विवरण में कोष के स्रोतों एवं प्रयोगों को दिखलाया जाता है। यह विवरण प्रबन्धकों के नीति-निर्माण एवं निष्पादन मूल्यांकन में सहायक होता है।

4. **रोकड़ प्रवाह विवरण** - यह विवरण कोष प्रवाह विवरण के समतुल्य होता है जो रोकड़ के आगमन एवं बहिर्गमन को दिखलाता है। यह विवरण आर्थिक चिट्ठा, लाभ-हानि खाता तथा दी गई अन्य सूचनाओं की सहायता से तैयार किया जाता है।

5. **अनुसूचियाँ** - आर्थिक चिट्ठे में प्रदत्त सूचनाओं को अधिक स्पष्ट करने के लिए कई अनुसूचियाँ भी तैयार की जाती हैं। स्थायी सम्पत्तियों, विनियोगों, देनदारों, अग्रिम व ऋणों आदि के लिए ये अनुसूचियाँ बनाई जा सकती हैं। यह अनुसूचियाँ वित्तीय विवरणों के महत्वपूर्ण पूरक हो गए हैं।

6. **संचालक का प्रतिवेदन** - वित्तीय विश्लेषक को संचालक के प्रतिवेदन से महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान होती है। इसमें कम्पनी की स्थिति, विभिन्न कोषों से ले जाई जाने वाली प्रस्तावित राशि, प्रस्तावित लाभांशगत प्रतिवेदन से इस वित्तीय वर्ष के अन्त तक महत्वपूर्ण परिवर्तन, भावी प्रगति आदि दिखलाए जाते हैं।

7. **अध्यक्ष का भाषण** - वर्तमान समय में अध्यक्ष का भाषण भी वित्तीय विवरणों का अनिवार्य अंग बन गया है। इस भाषण में निम्न से सम्बन्धित विवरण देते हैं - (1) सम्बन्धित वर्ष के दौरान कम्पनी की प्रगति (2) कम्पनी के व्यवसाय के भविष्य का आकलन (3) भविष्य की सम्भावित कठिनाइयाँ (4) सरकारी नीति तथा उनका कम्पनी पर प्रभाव, इत्यादि।

वित्तीय विश्लेषण की कार्यविधि- (Procedure of Financial Analysis)

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में निम्न कार्यविधि अपनानी चाहिए :

1. **विश्लेषण सीमा का निर्धारण** - सर्वप्रथम विश्लेषक को अपने अध्ययन की सीमा का निर्धारण करना पड़ता है। अध्ययन की सीमा विश्लेषण के उद्देश्य पर निर्भर करती है। ये उद्देश्य संस्था की प्रगति, स्थिति तथा भावी सम्भावना के बारे में जानकारी करना हो सकता है। अगर प्रगति का माप करना है तो केवल लाभ-हानि खाते का विश्लेषण करना होगा, परन्तु अगर वित्तीय स्थिति और भावी सम्भावना की जानकारी करनी हो तो आर्थिक चिट्ठा का भी विश्लेषण करना होगा।

2. **वित्तीय विवरणों का अध्ययन** - जब सीमा निर्धारण हो गई तो उसके बाद आवश्यक वित्तीय विवरणओं का अध्ययन कर लेना चाहिए जिससे कि महत्वपूर्ण सूचनाओं की झलक मिल सके। विश्लेषक को खास-खास बिन्दुओं पर स्वयं को केन्द्रित करना चाहिए।

3. **संख्याओं का सन्निकटन** - वित्तीय विवरणों के अंकों की जटिलता के दूर करके उन्हें सरल बनाने के लिए सन्निकटता के आधार पर पूर्णांक बना लेना चाहिए।

4. **समंकों का पुनर्विन्यासन** – लर्नर के अनुसार "जिस प्रकार एक तितर-बितर भीड़ में खड़े व्यक्तियों को गिनना कठिन है, इसी प्रकार असम्बन्धित वित्तीय तथ्यों के झुण्डों से निष्कर्ष निकालना कठिन है। एक बार भीड़ को कतारों व लाइनों में विन्यासित कर लिया जाय तो गणना सरल हो जाती है।"

5. **तुलना** – वित्तीय विवरणों में निरपेक्ष समंक अपने आप में अर्थहीन होते हैं। उनसे निष्कर्ष निकालने के लिए उनकी सापेक्षिक मात्रा का माप आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त एक फर्म के आंकड़ों की तुलना उसी प्रकार की अन्य फर्म के आंकड़ों से की जा सकती है।

6. **प्रवृत्ति का अध्ययन** – प्रवृत्ति अध्ययन से संस्था की वित्तीय दशा एवं भावी सम्भावनाओं के बारे में सही आँकलन किया जा सकता है।

7. **प्रस्तुतीकरण** – अन्त में, वित्तीय विवरणों की व्याख्या एवं विश्लेषण से ज्ञात निष्कर्षों को प्रतिवेदनों, चित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

वित्तीय विश्लेषण की तकनीकें (Techniques of Financial Analysis)

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की निम्नलिखित प्रमुख तकनीकें है-

1. **तुलनात्मक वित्तीय विवरण** – तुलनात्मक वित्तीय विवरण का निर्माण इस ढंग से किया जाता है कि विभिन्न लेखाविधि में संस्था की वित्तीय स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। इसमें प्रत्येक मद की राशि और उसमें वृद्धि - कमी की राशि और प्रतिशत मात्रा परिवर्तन प्रदर्शित किया जाता है। तुलनात्मक वित्तीय विवरणों में (अ) तुलनात्मक आर्थिक चिट्ठा, और (ब) तुलनात्मक लाभ-हानि खाता प्रमुख स्थान रखते हैं।

2. **समान आकार वित्तीय विवरण** – इस विधि के अन्तर्गत लाभ-हानि खाते और चिट्ठे के योग को 100 मानकर व्यक्तिगत मदों का प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। लाभ-हानि खाते के मामले में विक्रय को 100 मान लिया जाता है और सभी मदों के विक्रय के सन्दर्भ में व्यक्त किया जाता है। चिट्ठे के मामले में कुल सम्पत्ति और कुल दायित्व को 100 के बराबर मानकर सभी व्यक्तिगत सम्पत्तियों और दायित्वों का प्रतिशत निकाला जाता है। यह विधि तुलनात्मक वित्तीय विवरण की तुलना में अधिक विश्वसनीय है क्योंकि यह एक गुणात्मक मूल्यांकन करती है न कि मात्रात्मक मूल्यांकन।

3. **अनुपात विश्लेषण** – वित्तीय विवरणों में दिए गये समंकों का व्यक्तिगत रूप से कोई महत्व नहीं होता है। वे आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। अतः उचित निष्कर्ष निकालने के लिये आवश्यक है कि इन मदों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाए। दो या दो से अधिक मदों के बीच नियमबद्ध पद्धति के आधार पर सम्बन्ध स्थापना का कार्य अनुपात विश्लेषण करता है। अनुपात विश्लेषण द्वारा वित्तीय विवरणों के संख्यात्मक सम्बन्धों को अनुपात दर या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

4. **कोष प्रवाह विवरण** – वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में कोष प्रवाह विवरण अति लोकप्रिय तकनीक है। कोष प्रवाह विवरण सारांश रूप में तैयार किया गया ऐसा विवरण

NMDC-129

है जो दो तिथियों के बीच कोषों में परिवर्तन का अध्ययन करता है। कोष प्रवाह विवरण में कोषों के स्रोत एवं उनके उपयोग को दर्शाया जाता है। यह विवरण एक निश्चित अवधि में कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालता है।

5. **रोकड़ प्रवाह विवरण** – यह भी कोष प्रवाह विवरण की ही भाँति होता है। जिसमें नकद के विभिन्न स्रोतों एवं उपयोगों का विश्लेषण किया जाता है। यह संस्था के अल्पकालीन वित्तीय परिवर्तनों के जाँच की एक तकनीक है। यह विवरण आर्थिक चिट्ठा, लाभ -हानि खाता एवं अन्य सूचनाओं की सहायता से तैयार किया जाता है। यह विवरण रोकड़ के अन्तप्रर्वाह एवं बहिर्प्रवाह को दर्शाता है।

6. **सम-विच्छेद विश्लेषण** – यह तकनीक लागतों की स्थाई व परिवर्तनशील में विभक्त करके लागत, मात्रा व लाभ के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है। सम-विच्छेद बिन्दु उस विक्रय स्तर को कहते हैं जिस पर उत्पादन का कुल आगम, ठीक कुल लागत के बराबर होता है जिससे कि फर्म को न लाभ होता है न हानि। सम-विच्छेद बिन्दु से पहले की मात्रा का उत्पादन व विक्रय विक्रेता को हानि पहुँचाता है और उस बिन्दु के बाद के विक्रय से लाभ होता है।

1.3 वित्तीय विश्लेषण की सीमाएं (Limitation of financial Analysis

1. मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन की वित्तीय विवरणों में कोई जानकारी नहीं होती है।
2. एक संस्था के वित्तीय विवरणों की तुलना दूसरी संस्था के वित्तीय विवरणों से नहीं हो सकती है।
3. एक वर्ष के वित्तीय विवरणों से निष्कर्ष नहीं निकल सकते हैं।
4. भूतकाल के आधार पर भविष्य का सही अनुमान लगा पाना हमेशा संभव नहीं हो पाता।
5. वित्तीय खातों में पूर्ण सूचनाएं प्राप्त नहीं होती है। जैसे प्रशासन में परिवर्तन प्रतियोगिता, औद्योगिक अशान्ति, आदि अमौद्रिक दशाओं को इनमें समाहित नहीं किया जाता अतः इसके अभाव में वित्तीय विश्लेषण वस्तुपरक नहीं हो सकता है।

1.4 वित्तीय विश्लेषण के प्रकार (Type of Analysis)

वित्तीय विश्लेषण के मुख्य रूप से प्रयुक्त होने वाले दो प्रकार निम्नलिखित हैः-

1. **क्षैतिज या गतिशील विश्लेषण (Horizontal of Dynamic Analysis)**– कई वर्षों के वित्तीय विवरणों के विश्लेषण को क्षैतिज या गतिशील विश्लेषण कहते हैं। इस प्रकार के विश्लेषण में विभिन्न वर्षों के लाभ-हानि खाते व चिट्ठों का अध्ययन किया जाता है।

इस विश्लेषण के अन्तर्गत एक वर्ष की पिछले वर्ष से या कई वर्षो से तुलना हो सकती है। इसी आधार पर इसे गतिशील विश्लेषण भी कहा जाता है। जन एन. मायर के अनुसार ''क्षैतिज विश्लेषण विवरण में निहित प्रत्येक मद के व्यवहार का अध्ययन है''

क्षैतिज वृद्धि या कमी के आधार पर (on the basis of actual increase or decrease in figure) - इसमें दो अवधियों के बीच में अन्तर की राशि को धन (+) या ऋण (−) चिन्हों से दर्शाते हैं। धन वृद्धि तथा ऋण कमी मानी जाती है।

2. **प्रतिशत के आधार पर वृद्धि या कमी (on the basis of percentage increase or decrease)**- इस विधि के अनुसार उपर्युक्त विधि से निकाली गई राशि में चालू वर्ष की राशि का भाग देकर वृद्धि या कमी के प्रतिशत की गणना की जाती है।

3. **सूचकांक के आधार पर वृद्धि या कमी (increase or decrease on the bais of Indexes)**- इस विधि के अनुसार किसी सामान्य वर्ष को आधार बनाकर एवं उस वर्ष की राशि को 100 मानकर बाद में चालू वर्ष की राशि में आधार वर्ष की राशि से भाग देकर और प्राप्त हुए भागफल को 100 से गुणा कर चालू वर्ष का सूचकांक ज्ञात किया जाता है।

4. **अनुपात के आधार पर परिवर्तन (Change on the basis of ratio)** - इस विधि के अनुसार आधार वर्ष की राशि को 1 मान लिया जाता है। तत्पश्चात् चालू वर्ष की राशि का भाग देकर अनुपात की गणना की जाती है।

(ब)लम्बवत् या स्थित विश्लेषण (Vertical or static Analysis) लम्बवत् स्थिर विश्लेषण एक निश्चित अवधि में विभिन्न अवयवों के बीच के संबंध का विश्लेषण करता है। यह एक निश्चित तिथि को प्रत्येक संपत्ति का कुल संपत्तियों में कितना भाग है, दर्शाता है। इसके लिए कुल संपत्ति को 100 मानकर अन्य संपत्तियों के अनुपात की गणना की जाती है। यह विश्लेषण भूतकाल या भविष्यकाल के संबंधों को स्पष्ट नहीं करता, यह केवल वर्तमान संबंधों को ही बताता है।

वित्तीय विश्लेषण के उपरोक्त दोनों प्रकार (क्षैतिज व लम्बवत् विश्लेषण) प्रतियोगी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। जान.एन. मायर का कथन ठीक ही है कि ''क्षैतिज एवं लम्बवत् दोनों प्रकार के विश्लेषण वित्तीय विश्लेषण प्रविधि की रीढ़ की हड्डी हैं। इनमें कोई विरोध नहीं है, प्रत्येक विशेष प्रकार की सूचना प्रदान करते हैं दोनों ही स्थिर, गतिशील एवं सम्पूर्ण विश्लेषण के लिए आवश्यक है।''

1.5 वित्तीय विवरणों को बनाना एवं प्रदर्शित करना (Preparation & Presentation of financial statements)

कंपनी अधिनियम, 1956 के अनुसार हर संस्था जो इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है, उसे कंपनी अधिनियम की कंडिका 4 के अनुसार अपने वित्तीय विवरणों को बनाना एवं प्रतर्शित करना होगा। यह वित्तीय विवरणों का वही प्रारूप होगा, जिसके द्वारा संस्था सभी बाहरी लोगों के लिए सूचना प्रदान करेगी। कंडिका 4 बनाने

का मूल कारण ही बाहरी लोगों तक जानकारी पहुँचाना है। वित्तीय विवरण बनाने का मूल उद्देश्य पारदर्शी सूचना प्रदान करना है। पारदर्शी सूचना प्रदान करने के लिए कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ मुख्य बातें हैं जो उजागर करना किसी भी कंपनी के लिए अति आवश्यक है।

आर्थिक चिट्ठे की प्रकृति (Nature of Balance) - आर्थिक चिट्ठे की प्रकृति निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट की जा सकती है :-

1. आर्थिक चिट्ठा एक विवरण होता है, खाता नहीं (Account) है। आर्थिक चिट्ठे का प्रारूप दायित्व (Liabilities) और सम्पत्ति (Assets) में विभक्त होता है।
2. आर्थिक चिट्ठा लेखांकन प्रक्रिया के शेषों का पत्रक होता है, जिन खातों में कोई शेष नहीं होता है, वे आर्थिक चिट्ठे में नहीं प्रदर्शित होते हैं।
3. आर्थिक चिट्ठा चालू व्यापार की स्थैतिक स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है। यह एक निश्चित तिथि पर सम्पत्ति और दायित्वों की स्थिति दिखलाता है।
4. आर्थिक चिट्ठा सदैव सन्तुलित होता है। जिसमें सम्पत्ति और दायित्व पक्ष का योग सदैव समान होता है। संक्षेप में -

   Assets = Owner's Equity + Liabilities

1.6 चिट्ठे का प्रारूप (Proforma of Balance Sheet)

कंपनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत चिट्ठे को दो तरह के प्रारूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

(अ) क्षैतिज प्रारूप (Horizontal form)

(ब) लम्बवत् प्रारूप (Vertical form)

सामान्यतः संस्थाओं द्वारा लम्बवत् प्रारूप ही उपयोग में लिया जाता है। निम्नलिखित मदों को चिट्ठे में शामिल किया जाता है-

	Liabilities	**Assets**
1.	Share Capital (अंश पूंजी)	Fixed Assets (स्थायी संपत्ति)
2.	Reserve & Surplus (संचय एवं) एवं अधिक्य)	Current Assest Loans & Advance (चालू संपत्तियाँ, ऋण व अग्रिम)
3.	Secured loans (सुरक्षित ऋण)	Investment (विनियोग)
4. (Non	Unsecured Loans (असुरक्षित ऋण)	MIscellaneous Expenses written off)
5.	Current Liabilities & Provisions (चालू दायित्व एवं आयोजन)	P & L Debit Balance (लाभ हानि का नाम शेष)

(अ) चिट्ठे के दायित्व पक्ष के मदों का विवेचन (Explanation of the items on the liability side of Balance Sheet)

(1) अंश पूंजी (Share Capital) चिट्ठे के दायित्व पक्ष में प्रथम मद अंश पूंजी होती है। अंश पूंजी व्यवसाय के स्वामित्व की जानकारी देती है। सामान्यतः दो तरह की अंश पूंजी होती है-

1. साधारण अंश पूंजी (Ordinary Share Capital)
2. पूर्वाधिकार अंश पूंजी (Preference Share Capital)

साधारण अंश पूंजी के लिए अंशधारी को लाभ व हानि वहन करना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर पूर्वाधिकार अंश पूंजी के लिए पूर्वाधिकार अंशधारी को एक निश्चित् दर पर लाभांश मिलता है एवं संस्था के समापन के समय भुगतान पाने में पूर्वाधिकार मिलता है।

भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत् किसी भी संस्था को अंश पूंजी को निम्नलिखित तरीकों से प्रदर्शित करना अनिवार्य है :-

1. अधिकृत पूंजी (Authorised Capital) अधिकृत पूंजी संस्था की कुल पूंजी होती है। संस्था के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह पूरी अधिकृत पूंजी के अंश जारी करे।

Authorised Capital	
15000 Ordinary Shares of Rs. 10 each	1,50,000
500 Preference Shares of Rs. 100 each	50,000
Total	**2,00,000**

2. निर्गमित पूंजी (Issued Capital) - निर्गमित पूंजी अधिकृत पूंजी का वह भाग है, जिसके लिये अंश जारी किये गये हैं।

Issued Share Capital	
7500 Ordinary Shares of Rs. 10 each	75,000
500 Preference Shares of Rs. 100 each	50,000
Total	**1,25,000**

3. प्रार्थित पूंजी (Called up Capital) - प्रार्थित पूंजी वह अंश पूंजी है, जिसके लिये जनता या अंशधारियों ने आवेदन किया हो।

4. परिदत्त पूंजी (Paid up Capital) - परिदत्त पूंजी वह अंश पूंजी है, जिसकी राशि निवेशकों द्वारा संस्था को भुगतान कर दी गई है।

Issued Share Capital	
7500 Ordinary Shares of Rs. 10 each	75,000
500 Preference Shares of Rs. 100 each	50,000
Total	**1,25,000**

अदत्त याचना (Calls unpaid) - का विवरण विशेष रूप से संचालक, सचिवों, कोषाध्यक्षों आदि को समयानुसार भेजना चाहिए। अपहृत अंशों (forfeited Share) की राशि परिदत्त पूंजी से अलग दिखाना चाहिये ।

(2) संचय एवं आधिक्य (Reserve and Surplus) संचय एवं आधिक्य लाभ का वह हिस्सा है, जिसे लाभांश के रूप में अंशधारियों को नहीं बाँटा जाता। यह चिट्ठे में दायित्व पक्ष में लिखी जाने वाली दूसरी मद है। उदाहरण के लिए अगर संस्था अपने संचालन के प्रथम वर्ष मं रुपये 2,00,000 का लाभ कमाया है। इसमें से रुपये 1,00,000 लाभांश की तरह वितरित कर दिये हैं एवं रूपये 1,00,000 संचय कर लिये हैं। अब अगर अगले वर्ष संस्था को रुपये 5000 की हानि हुई है, तो उस वर्ष रूपये, 5000 (संचय में से बचे हुए) का लाभ माना जाएगा।

(3) ऋण (Loans) - चिट्ठे के दायित्व पक्ष में अगली आने वाली मद ऋण है। ऋण भी दो प्रकार के हैं, जिन्हें चिट्ठे में अलग-अलग दर्शाया जाएगा। ये निम्न हैं-

1. **सुरक्षित ऋण (Secured Loans)** - सुरक्षित ऋण में कंपनी की संपत्ति प्रतिभूति के रूप में दी जाती है। इसके अर्न्तगत कंपनी द्वारा निर्गमित ऋण पत्र बैंक से लिये गए ऋण आदि आते हैं।
2. **असुरक्षित ऋण (Unsecured Loans)** - असुरक्षित ऋण में कंपनी द्वारा संपत्ति प्रतिभूति के रूप में नहीं दी जाती है। इसमें बैंक से लिये गए अल्पकालीन ऋण, जनता से प्राप्त स्थायी निक्षेप शामिल होते हैं।

(4) चालू दायित्व एवं आयोजन (Current Liabilities & Provision) - चालू दायित्व एवं आयोजन ऐसे दायित्व हैं, जिनका भुगतान एक वर्ष के भीतर करना होता है। चालू दायित्वों की राशि अगर निश्चित् हो तो उसे चाल दायित्व में दर्शाया जाएगा अन्यथा उसे आयोजन या प्रावधान में दिखाया जायेगा। चालू दायित्व में स्वीकृतियाँ (Acceptance), देय बिल (Bills Payable), लेनदार (Creditors), बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft), अदत्त व्यय (Outstanding Expenses), देय लाभांश (Dividend Payable), आयचित लाभांश (Unclaimed Dividend) आदि आते हैं। आयोजन के अन्तर्गत कर के लिये प्रावधान (Provision for taxation) प्रस्तावित लाभांश (Proposed dividend) आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान (Provision for contigencies) बीमा, पेंशन आदि का प्रावधान (Provision for Insurance & Pension etc,) अन्य प्रावधान, (Other provisions) आदि आते हैं।

(5) संभावित दायित्व (Congingent Liabilities) संभावित दायित्व वास्तविक दायित्व न होते हुए सिर्फ दायित्व होने की संभावना है। ये दायित्व हो भी सकता है और नहीं भी।

(ब) चिट्ठे के संपत्ति पक्ष के मदों का विवेचन (Explanation of the items on the Assets side of Balance Sheet)

चिट्ठे में संपत्ति पक्ष की मदों का विवरण निम्नलिखित है :-

(1) स्थायी संपत्तियाँ (Fixed Assets) - स्थायी संपत्तियाँ वो संपत्ति होती है, जिसका भौतिक अस्तित्व होता है और ये संपत्ति सामान्यतः व्यवसाय में एक लंबे समय के लिए लगाई जाती है। स्थायी संपत्ति से लाभ न सिर्फ उस वर्ष होता है, जिस वर्ष उसे खरीदा गया, अपितु, आने वाले कई वर्षों तक स्थायी संपत्ति का लाभ में योगदान होता है। इन्हें ब्लाक (Block) पूंजी संपत्तियाँ (Capital Assets) भी कहते हैं। स्थायी संपत्तियों में सामान्यतः भूमि (Land) उपस्कर (Furniture), भवन (Building), मशीन (Machine), संयन्त्र (Plant), वाहन (Vehicle), पशुधन (Live stock), पट्टा (Lease hold) आदि को सम्मिलित किया जाता है।

स्थायी संपत्ति को वास्तविक मूल्य पर ही चिट्ठे में दर्शाया जाता है। वास्तविक मूल्य को लेकर विद्वानों के बीच कुछ मतभेद हैं। कुछ विशेषज्ञ संपत्ति को वास्तविक मूल्य उसकी उपयोगिता (usefulness) को बताते हैं, जो कि संपत्ति की लागत में से ह्रास घटाकर निकाल सकते हैं।

उदाहरण के लिए रमेश लिये रमेश लिमिटेड कंपनी एक मशीन खरीदते हैं, जिसकी कीमत रूपये 20,00,000 है। मान लीजिये मशीन दस वर्ष बाद उपयोगी नहीं रहेगी।

Machine at cost	20,00,000
At the end of 1st year cost of Machine	20,00,000
Less : Depreciation	4,00,000
Net Value	16,00,000
At the end of 2nd year cost of Machine	20,00,000
Less : Depreciation till date	8,00,000
Net Value (W.D.V.)	12,00,000

*** W.D.V. written down value**

इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष ह्रास की राशि ज्ञात की जाएगी। ह्रास की राशि संपत्ति की लागत से ज्यादा नहीं होना चाहिए।

2. **विनियोग (Investment) -** सामान्यतः कंपनियाँ, अंशों, ब्राण्डों एवं ऋण पत्रों, सरकारी, प्रतिभूतियों, अचल संपत्तियों में विनियोग करती है। जब कभी कंपनियों के पास आधिक्य में रोकड़ की उपलब्धता होती है, तब वे इस तरह के विनियोग करती है। विनियोग को हम चालू संपत्ति मानेंगे, यदि वो एक वर्ष में कम के लिए किया गया हो।

3. **चालू संपत्तियाँ (Current Assets) -** चालू संपत्तियाँ वे संपत्तियाँ होती हैं, जो एक वर्ष से कम में रोकड़ परिवर्तित की जा सकती है। निम्नलिखित मदों को चालू संपत्तियों में सम्मिलित किया जाता है-

1. **रोकड़ (Cash)-** रोकड़ में सामान्यतः चेक, रोकड़ आदि को सम्मिलित किया जाता है। रोकड़ को चालू संपत्ति जब माना जाता है। जबकि उसे प्रतिदिन के कार्यों में उपयोग किया जाता

है।

2. प्राप्य बिल (Bills receivable) प्राप्य बिल मूलतः लेनदारों को उधार दिया गया रोकड़ दर्शाता है। इनका भुगतान लेनदारों को एक वर्ष के भीतर करना होता है। यदि लेनदार भुगतान नहीं कर पाता है तो प्राप्य विपत्र **Baddebts** में परिवर्तित हो जाते हैं।

3. स्कंध (Inventory)-

लाभ-हानि खाता (Profit and Loss Account)

लाभ-हानि खाता किसी भी संस्था के द्वारा उत्पन्न आय को दर्शाता है। धारा 211(2) के अनुसार प्रत्येक कम्पनी का लाभ-हानि खाता कम्पनी के वितीय वर्ष के सच्चे व उचित लाभ व हानि का चित्र प्रस्तुत करता है। व्यापारिक लाभ-हानि खाते का एक भाग है। लाभ-हानि खाते के प्रथम भाग व्यापारिक खाता लाभ-हानि खाते का एक भाग है व द्वितीय भाग लाभ-हानि खाता होता है। वर्तमान हानि में व्यापारिक खाता शीर्षक अलग से डालने का प्रचलन कम हो गया है। कम्पनी अधिनियम, 1956 में व्यापारिक खाते का उल्लेख नहीं किया गया है। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कम्पनी को केवल लाभ-हानि खाता व चिट्ठा ही बनाना आवश्यक है।

लाभ-हानि खाते की प्रकृति (Nature of Profit and loss Account)

लाभ-हानि खाते की प्रकृति निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट की जा सकती है :

1. यह एक गतिशील प्रलेख है जो एक निर्धारित वर्ष के व्यापारिक परिणामों को बताता है।
2. यह कुल आगम और कुल व्यय को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता है।
3. यह आगमों और व्ययों के अन्तर के आधार पर लाभदायक का मापन करता है।
4. लाभ-हानि खाते द्वारा मापित परिणाम आर्थिक चिट्ठे में दिखाया जाता है।

लाभ हानि खाते का स्वरूप (Structure of Profit and Loss A/C)

लाभ-हानि खाते का आधार (Structure of profit and loss A/C) कंपनी के लाभ हानि खाते को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है।

(अ) लाभ-हानि खाते का प्रथम भाग कुल लाभ या कुल हानि प्रदर्शित करता है। इस लाभ की गणना निर्माण प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद की जाती है। कुल लाभ या हानि की गणना एक निश्चित् अवधि में बिक्री हुए माल में से इसकी लागत घटाने पर जो शेष राशि आती है वहीं कुल लाभ होता है। यदि बिक्री हुए माल की लागत अधिक हो एवं बिक्री मूल्य कम हो तो कुल हानि प्रकट होती है।

(ब) लाभ-हानि खाते का द्वितीय भाग शुद्ध लाभ या शुद्ध हानि को प्रदर्शित करता है। शुद्ध लाभ की गणना कुल लाभ में से परिचालन व्यय एवं आयकर घटाकर की जाती है। परिचालन व्यय वे व्यय है जो किसी भी व्यवसाय को चलाने के लिए अनिवार्य है, परन्तु इन व्ययों का सीधे

तौर पर निर्माण कार्य से, कोई सम्बन्ध नहीं होता है। यह सामान्यतः प्रशासनिक (Administration) व्यय भी कहा जाता है। शुद्ध की गणना हमेशा आयकर के भुगतान के बाद की जाती है।

1.7 लाभ हानि खाते का प्रारूप

[Format of Profit and Loss A/c]

Profit & Loss Account

[For the year ending 31st march...]

Particulars	Rs.	Particulars	Rs.
To operating Stock		By Sales	
i) Raw Material		Less Sales Return	
ii) W/P			
iii) Manufacture goods		By Closing Stock	
		i) Raw Material	
To purchase Raw Material			
		ii) W/p	
Less : Purchase Return		iii) Manufactured goods	
To carriage inward			
To Import duty			
To purchase expenses		By gross loss C/d (Balance)	
To Manufacturing exp.			
To Wages			
To fuel & Power			
To Factory expenses			
To Gross Profit C/d (Balance)			
Total		Total	
To Gross Loss b/d (Balance)		By Gross Profit b/d (Balance)	
To Office Salary			
To Sales Expnses		By Discount Received	
To Direct Fees		By Profit on Sales of fixed Assets	
To Insurance Expense			
To Sales discount		By Rent Received	
To Bad debts		By profit on Sale of Investment	
To Loss on sale of fixed assets			
To Loss on sales of Investment		By Interest Recived	
To Loss on Sales of Investment		By Dividend Received	
To Provision for income tax		By Net Loss c/d (balance)	
To Reserve for doubtful debts			
To Carriage outward			
To Preliminary exp. written off			
To Repairs			
To Sundry Expenses			
To Net Profit b/d (Balance)			
Total		Total	

कंपनी अधिनियम, 1956 के अनुसार, ह्रास की दरों की जानकारी देती है। इसके अनुसार ह्रास की गणना करने के लिए स्थायी सम्पत्तियों को चार वर्गों में बांटा गया है :-

भवन

प्लांट और मशीनरी

फर्नीचर और फिटिंग्स

जलयान

अंतिम खाते में यह ह्रास की कौन सी प्रणाली का प्रयोग किया गया है एवं किन दरों पर ह्रास लगाया है, इसका उल्लेख करना अनिवार्य है।

उदाहरण - 1 अरविन्द कम्पनी लिमिटेड, जिसकी प्राधिकृत, निर्गमित, प्रार्थित एवं चुकता पूंजी रूपये 2,00,000 है, प्रत्येक 100 रु0 वाले 2000 समता अंशों में बंटी है। प्रपंजी ने 31 मार्च, 2008 को निम्न शेष बताए हैं :

Arvind company Ltd., has an authorised, issued, subscribed and paid up capital of Rs. 2,00,000 divided into 2000 equity shares of Rs. 100 each. The ledger shows the following balance at 31st March 2008.

M/s Arvind Co. Ltd.

Balance Sheet As on 31st March ' 2008

Liabilities	Amount (Rs.)	Assets	Amount (Rs.)
SHARE CAPITAL		FIXED ASSETS	

TRAIL BALANCE

AS ON 31ST MARCH'2008

Liabilities	Amount (Rs.)	Assets	Amount (Rs.)
		Share Capital	2,00,000
Land & Building	90,000	4% Debentures	1,00,000
Tools & Equipments	9,400	4,000 DEB, @Rs. 100 Each	
Plant & Machinery	1,65,600	Creditors	30,600
Furnitures & Fixtures	3,600	General Reserved	15,000
Motor Car	3,600	P & LAPP A/C As on 01-04-07	8,800
Goodwill	16,000	Bank Over Draft	1,080

Liabilities	Amount (Rs.)	Assets	Amount (Rs.)
Preliminary Expenses	4,900	Sales	3,07,800
Cash in Hand	500	Purchase Return	5,000
Calls in Arrears	1,500	Discount Received	5,600
7% Govt. Bonds	9,880		
Bills Receivnable	13,000		
Debtors	20,800		
Purchase	2,40,000		
Sale Returns	7,000		
Advertisement	2,540		
Legal Charges	1,000		
Wages	23,200		
Carriage Inword	3,700		
Rent	4,900		
Stock	47,600		
Income Tax	2,800		
Factory Expenses	1,500		
Repairs	860		
Total	**6,73,880**	**Total**	**6,73,880**

अतिरिक्त सूचनाएं :-

दी गई सूचना द्वारा लाभ-हानि खाता व चिट्ठा तैयार कीजिए। देनदारों पर 5% दर से संदिग्ध ऋण आयोजन बनाइये। मशीनरी पर 5% फर्नीचर पर 7.5% उपकरणों पर 10% व मोटर गाड़ी पर 02% से ह्रास लगाइये। 31 मार्च, 2008 को स्कन्ध का मूल्य 44,200 रु था। संचालकों ने 30 सितम्बर, 2007 को समाप्त होने वाली छमाही के लिए 16 नवम्बर, 2007 को 05% की दर से लाभांश घोषित किया।

Additional Information :

Prepare profit & Loos A/C & Balance Sheet with given Information. Create a provision for bad debts of 5% on debtors. Charge 5% depreciation on plant. 7.5% on furniture, 10% on loose tools & 2% on motor car, The strock in trade as on 31 st March, 2008 was valued at Ra 44,200. On 16th Nov. 2007 the directors declars on Interim dividend of 5% for six month ending 30sep. 2007. Solution .

M/s Arvind Co. Ltd.

Profit & Loss A/c

For the Year Ended 31st December 2008

Dr. Cr.

Particulars	Amount (Rs.)	Particulars	Amount (Rs.)
		By	
To Opening Stock	47,600	Sales 3,07,800	
To Purchase 2,40,000		Less Return 7,000	3,00,800
Less Return 5,000	2,85,000	By Closing Stock	44,200
To Wages	23,200		
To Carriage in Word	3,700		
To Factory Expenses	1,500		
To Gross Profit c/d	34,000		
Total	**3,45,000**	**Total**	**3,45,000**
To Advertisement	2,540	By Gross Profit	34,000
To Legal Charges	1,000	By Discount Returned	5,600
To Rent	4,900		
To Provision for Bad Debit	1.040		
To Depreciation :			
Plant & Machinery 8,280			
Losse Tools 940			
Furnitures 270			
Motor Car 72	9562		
To Repairs	860		
To Net Profit (c/d to p& l Appropriation A/c)	19.698		
Total	**39,600**	**Total**	**39,600**

M/s Arvind Co. Ltd.

Profit & Loss Appropriation A/c

Dr. Cr.

Particulars	Amount (Rs.)	Particulars	Amount (Rs.)
		By	
To Income Tax	2,800	Balance p/d	8,800
To Interim Dividend	5,000	By Net Profit (b/d From P/L A/c)	19,698
To Balance c/d (c/s to B/s	20,698		
Total	**28,498**	**Total**	**28,498**

M/s Arvind Co. Ltd.

Balance Sheet as on 31st March 2008

Liabilities	Amount (Rs.)	Assets	Amount (Rs.)
(A) Shares Capital		**(A) Fixed Assets**	
Authorised & Issued		Goodwill	16,000
Sh. Cap. 2000 EquityShares @		Land & Building	90,000
Rs. 100 Each	2,00,000	Plant & Machinery 1,65,600	
Subscribed & Paidup		Less Depreinition 8,280	1,57,320
2,000 Equity Shares @100 :		Tools & Equipments 9,400	
2,00,000		Less Deprenation 940	8,460
Less Calls in Arrears : 1,500		Furnitures 3,600	
	1,98,500	Less Depreciation 270	3,330
(B) Reserved & Surplus			
General Reserve 15,000		Motor Car 3,600	3,528
P & L App. A/c 20,698	35,698	Less Depreciation 72	
(C) Long Term Loans :		**(B) Investments**	9,880
Secured Loans		7% Govt. Bonds	
4% Debentures @Rs 100 each	1,00,000	**(C) Current Assets :**	
		Cash in Hand 500	
		Bill Receivables 13,000	
		Debtors 20,800	
(D) Current Liabilities		Less Prov. 1,040 19,760	
Creditors 30,600		Stock in Trade 44,200	77,460
Bank Over Draft 1,080	31,680		
Unclaimed Dividend	5,000	**(D) Misc. Expenditures**	
		Preliminary Expenses	4,900
Total;	**3,70,878**	**Toal**	**3,70,878**

इस पाठ में चिट्ठे व लाभ- हानि खाते का विस्तृत व्याख्यान किया है। चिट्ठा किसी भी संस्था की वित्तीय स्थिति पर प्रकाश डालता है। चिट्ठा कंपनी में हित रखने वाले सभी लोगों को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। यह कंपनी के दायित्वों व संपत्तियों की विस्तृत जानकारी देता है, जिसके बल पर अंशधारी व अन्य लोग विनियोग संबंधी निर्णय ले सकते हैं।

पाठ के दूसरे भाग में लाभ-हानि खाते का व्याख्यान है। लाभ-हानि खाता किसी भी संस्था के अर्जित लाभ को दर्शाता है। लाभ-हानि खाता संस्था के खर्चों व आय की व्याख्या करता है। अतः किसी भी संस्था के वित्तीय हालात की जानकारी के लिए चिट्ठे और लाभ-हानि के खाते का विश्लेषण आवश्यक है।

1.7 Self Assessment Question-

1. चिट्ठा व लाभ हानि खाते से क्या आशय है? इन्हें क्यों बनाया जाता है?

   What is meant by Balance Sheet & Profit & Loss Account ? Why are they Prepared ?

2. वित्तीय विवरणों से आप क्या समझते हैं? वित्तीय विवरणों की प्रकृति तथा सीमाओं को बताइए।

   What do you understand by financial statements state the nature

and limitations of financial statements.

3. व्यावसायिक संस्था में हित रखने वाले विभिन्न पक्षों के लिए वित्तीय विवरणों के महत्व का विवेचन कीजिए। वित्तीय विवरणों के प्रमुख प्रकार क्या हैं?

Discuss the importance of financial statements for the various parties interested in the business concern. What are the main types of financial statements?

4. क्या आर्थिक चिट्ठा शेषों का पत्रक है? काल्पनिक संख्याओं का प्रयोग करते हुए आर्थिक चिट्ठे के क्षैतिज एवं लम्बवत् प्रारूप को दीजिए।

Is balance sheet a sheet of balances ? Using imaginary figures give Horizntal and Vertical form of Balance Sheet.

NMDC-129

इकाई - 2 प्रवृत्ति विश्लेषण (Trend Analysis)

इकाई की रूपरेखा-

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रवृत्ति विश्लेषण का अर्थ

2.3 प्रवृत्ति विश्लेषण का महत्व

2.4 प्रवृत्ति विश्लेषण की सीमाएँ

2.5 प्रवृत्ति विश्लेषण की विधियाँ

2.6 सारांश

2.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न

2.8 पुस्तक सूची संदर्भ

2.0 : उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी इस योग्य हो जायेंगे कि -

- व्यवसाय का रूख या प्रवृत्ति उन्नति की ओर है या अवनति की ओर है,
- विभिन्न तुलनात्मक विवरणों का अध्ययन करना एवं उन्हें संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना,
- प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करने के विभिन्न विषयों जैसे -

प्रवृत्ति प्रतिशत

प्रवृत्ति अनुपात

बिन्दु रेखीय एवं चित्रमय प्रदर्शन

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यवसाय एक गयात्मक क्रिया है । किसी एक वर्ष के लेखों के परीक्षण से ही व्यवसाय के बारे में पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक विश्लेषणकर्ता को अगर यह जानना है कि व्यवसाय उन्नति की ओर है या अवनति की ओर तो उसके लिए विभिन्न वर्षों के आँकड़ों का

अध्ययन करना होगा ताकि भविष्य की प्रवृत्ति के बारे में जाना जा सके। किसी भी संस्था की प्रवृत्ति की जानकारी केवल एक ही वर्ष के आँकड़ों या लेखों से सम्भव नहीं होती, इसी कारण प्रवृत्ति विश्लेषण के अन्तर्गत अनेक वर्षों के आंकड़े एवं लेखों की सहायता ली जाती हैं।

2.2 प्रवृत्ति विश्लेषण का अर्थ

"एक निश्चित तिथि या अध्ययन की प्रारम्भिक अवधि की तुलना में क्रमिक वर्षों में वित्तीय विवरणों की मदों में परिवर्तन के रूख के आधार पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का अध्ययन करने की विधि प्रवृत्ति विश्लेषण विधि कहलाती है।"

तुलनात्मक विवरणों में किसी भी संस्था का रूख उन्नति की ओर है अथवा अवनति की ओर, इस बात की जानकारी नहीं मिलती है। वह रूख जानने के लिये अनेक वर्षों से आँकड़ों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक होता है जिसके लिए प्रवृत्ति विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है।

2.3 प्रवृत्ति विश्लेषण का महत्व

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की इस विधि में निम्नांकित गुण होने के कारण यह अधिक उपयोगी समझी जाती है ।

1. सरल विधि Simple Method

यह एक अत्यन्त सरल विधि है। इसमें गणना का कार्य सरल हो जाता है तथा इसे निर्मित करने के लिये अधिक प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता नहीं होती है।

2. संक्षिप्त प्रदर्शन (Brief Presentation of Data)

प्रवृत्ति विश्लेषण विधि के अन्तर्गत वास्तविक आंकड़ों की प्रवृत्ति प्रतिशतों या अनुपातों में प्रदर्शित कर देने से प्रस्तुतिकरण स्पष्ट हो जाता है जिससे आँकड़ों को सरलता से समझा जा सकता है।

3. त्रुटियों की कमी (Less Errors)

इस विधि में त्रुटियों की संभावना कम हो जाती है क्योंकि आंकड़ों का प्रतिशत परिवर्तनों से ज्ञात परिणामों की तुलना उनके निरपेक्ष परिवर्तनों से की जा सकती है।

4. आँकड़ों की तुलनीयता (Comparability of Data)

इस विधि से परिवर्तनों की दिशा सरलता से जानी जा सकती है। इस विधि के अन्तर्गत कई वर्ष के आँकड़ों को केवल एक ही आधार वर्ष के आँकड़ों के अनुसार प्रवृत्ति प्रतिशत या प्रवृत्ति अनुपातों को बदला जाता है।

2.4 प्रवृत्ति विश्लेषण की सीमाएँ (Limitation of Trend Analysis)

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में प्रवृत्ति विश्लेषण का प्रयोग करते समय इनकी सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये सीमाएं निम्नलिखित हैं -

1. **सीमित महत्व (Limited Importance)** - किसी एक अकेले मद की प्रवृत्ति स्वयं में सीमित महत्व रखती है, जब तक कि उसकी सापेक्षिक तुलना किसी अन्य मद की प्रवृत्ति से नहीं की जाए।

2. **आधार वर्ष का चुनाव (Selection of Base Year)** - प्रवृत्ति प्रतिशतों या अनुपातों की गणना के आधार पर वर्ष की मदों की रकमों के संदर्भ में की जाती है। अतः आधार वर्ष सभी दृष्टिकोण से सामान्य होना चाहिये।

2.5 प्रवृत्ति विश्लेषण की विधियाँ

प्रवृत्ति विश्लेषण में तीन विधियाँ प्रमुख होती हैं -

(अ) प्रवृत्ति प्रतिशत (Trend Percentage)

(ब) प्रवृत्ति अनुपात (Trend Ratio)

(स) बिन्दु रेखीय या चित्रमय प्रदर्शन (Graphic or Diagrammatic Pre sentation)

(अ) प्रवृत्ति प्रतिशत (Trend Percentage) -

इस विधि के अनुसार कई वर्षों के वित्तीय विवरणों की सूचनाओं का सारणीयन कर लिया जाता है। इसके पश्चात किसी एक वर्ष सामान्यतया प्रथम वर्ष को आधार मानकर अन्य वर्षों की प्रतिशत में वृद्धि या कमी ज्ञात कर ली जाती है। ये प्रतिशत प्रवृत्ति कहलाते हैं। इनसे आधार वर्ष की तुलना में अन्य वर्षों में होने वाले परिवर्तनों की दरों का ज्ञान होता हैं ।उदाहरण के लिये किसी संस्था की बिक्री का मूल्य विभिन्न वर्षों के अंत में निम्न प्रकार है :

Year / 31 March	2005	2006	2007	2008	2009
Sales	160000	200000	150000	175000	1900000

Trend Percentage

31st March	Sales Rs	Increase or Decrease in comparison to 2005	Increase or Decrease in % (Incr.or Dec./ Sales of base year) x 100
2005	160000		
2006	200000	+40000	+25%
2007	150000	-10000	6.25%
2008	175000	+15000	+9.3%
2009	190000	+30000	+18.75%

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि पिछले वर्ष की तुलना में अगले वर्ष में किस मद में कितने प्रतिशत की कमी या वृद्धि हुई है, किन्तु इससे स्पष्ट व्याख्या तथा निष्कर्ष निकालना कठिन होता है। अतः विश्लेषण की वृद्धि से वित्तीय विवरणों के समंकों को किसी स्थायी आधार वर्ष के प्रतिशत के रूप में दर्शाना अधिक प्रभावपूर्ण होता है।

उदाहरण - 1

लाभांश लेखा की पिछले चार वर्षों की प्रशासनिक व्यय (Administrative Expenses) विक्रय व्यय (Selling Expenses) तथा वितरण व्यय (Distribution Expenses) की मदें निम्नानुसार हैं -

Expenses	2006 (Rs)	2007 (Rs)	2008 (Rs)	2009 (Rs)
Administrative Exp प्रशासनिक व्यय	100000	9000	12000	14400
Selling Expenses विक्रय व्यय	4000	3000	3600	4500
Distribution Exp. वितरण व्यय	1000	800	1200	900

इनकी प्रवृत्ति प्रतिशतों की गणना करने की कृपा करें।

Following given is the value of Administrative expenses, selling expenses and distribution expenses for last four years. Calculate the trend percentage.

हल 1

उदाहरण 1 में 2006 की राशि को आधार माना जावे तो 2007, 2008 तथा 2009 की वृद्धि निम्नांकित प्रकार से प्रदर्शित की जायेगी -

NMDC-129

	2007		2008		2009	
Administrative Expenses (प्रशासनिक व्यय)	-1000	-10%	+2000	+20%	+400	+44%
Selling Expenses (विक्रय व्यय)	-1000	-25%	-400	-10%	+500	12.5%
Distribution Expenses (वितरण व्यय)	-200	-20%	+200	+20%	-100	-10%

उदाहरण 2

निम्न दिए गये हिन्दुस्तान लि. लिमिटेड के वर्ष 2008 एवं 2009 के स्थिति विवरण से प्रवृत्ति प्रतिशत ज्ञात कर व्याख्या कीजिए।

From the following balance sheet of Hindustan Level Ltd. of 2008 and 2009 calculate trend percentage and comment.

Balance sheet as on 31st December, 2009

Liabilities and Capital	Amount (Rs.in thousand)	Assets		Amount (Rs in thousand)
Current Liabilities		**Current Assets:**		
Bank Overdraft	6,488	Cash and Bank Balance		4,214
Creditors	17,907	Sundry Debtors	8,127	
Provision for Retirement	2,229	Less:Provision for		
Provision for Taxation	12,772	Bad Debts	63	8,064
Proposed Dividend	7,798	Stores and Spare Parts		66,136
		Inventory		4,330
		Prepaid Expenses		3,540
		Deposits with Govt.		2,384
Total Current Liabilities	**47194**	**Total Current Assets**		**88,667**
Equity Share Capital	55,700	**Fixed Assets:**		
Capital Reserve	6,262	Land		320
Revenue Reserve	4,915	Buildings	17,011	
Surplus	8,993	Less:Depreciation	4,233	12,778
		Machinery	26,784	
		Less: Depreciation	7,749	19,035
		Furniture	1,585	
		Less:Depreciation	752	833
		Motor Vehicle	1,636	

		Less: Depreciation 828	808
		Goodwill	623
		Total Fixed Assets	1,23,064
Total:	**1,23,064**	**Total =**	**1,23,064**

	Assets			
	2008 (Rs.in thousand)	2009 (Rs. in thousand)	increase Rs.	Decrease Rs.
Current Assets:				
Cash & Bank Balance	9,821	4,214	-5,607	-57.1
Sundry Debtors	11,080	8,127	-2.953	-26.7
Stores and Spare parts	3,820	66,136	+22,742	+52.4
Inventory	43,394	4,330	+510	+134
Prepaid Expenses	3,660	3,540	-120	-3.3
Deposits with Govt.	2,752	2,383	-369	-13.4
	74,527	**88,730**	**+14,203**	**+ 19.1**
Less: Provision for				
Bad Debts	52	63	+11	+21,2
	74,475	**88,667**	**+14,192**	**+19,01**
Fixed Assets:				
Land	320	320	-	-
Buildings	16,596	17,011	+415	+2.5
Machinery	25,342	26,784	+1,442	+5.7
Furniture	1,428	1,585	+157	+11.0
Motor Vehicle	1,250	1,636	+386	+30.9
Goodwill	623	623	-	-
Total cost of Fixed Assets	**45,559**	**47,959**	**+2,400**	**+5.3**
Less: Provision for Depreciation on				
Building	3,603	4,233	+630	+17.5
Machinery	5,542	7,749	+2,207	+39.8
Furniture	656	752	+96	+14.6
Motor vehicles	565	828	+263	46.5
	10,366	**13,562**	**+3,196**	**+30.8**
Book Value of Fixed Assets	**35,193**	**34,397**	**-796**	**-2.3**
Total	**1,09,668**	**1,23,064**	**+13,396**	**+12.2**

NMDC-129

प्रदर्शित स्थिति विवरणों तथा इनके आधार पर निर्मित स्थिति विवरण सारांश एवं प्रवृत्ति प्रतिशत द्वारा प्रदर्शित परिवर्तनों को देखने से संस्था के सम्बन्ध में निम्न बातें ज्ञात होती हैं-

1. संस्था की अंशपूँजी एवं पूँजी संचय में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

2. संस्था की चल सम्पत्तियों में 14192000 रूपये की वृद्धि हुई है, जो पिछले वर्ष की अपेक्षा 19.1 प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार चल दायित्वों में 13037000 रूपये की वृद्धि हुई है जो पिछले वर्ष की अपेक्षा 38.2 प्रतिशत अधिक है। कुल चल सम्पत्ति की अपेक्षा कुल चल दायित्व कुछ कम बढ़े हैं जिससे संस्था की कार्यशील पूँजी की स्थिति ठीक हुई है। किन्तु प्रतिशत के रूप में चल दायित्व बहुत अधिक बढ़े हैं जो कि इस बात के प्रतीक हैं कि इनका अधिकांश उपयोग सम्पत्तियों को क्रय करने में हुआ है।

3. इन्वेन्ट्री तथा स्टोर्स को छोड़कर अन्य अस्थायी सम्पत्तियों में कमी हुई है। मुख्य रूप से रोक तथा अधिकोष आधिक्य में 5607000 रूपये अर्थात 57.1 प्रतिशत की कमी हुई है।इससे ऐसा लगता है कि मुख्य रूप से इन्वेन्ट्री तथा स्टोर्स में वृद्धि करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

4. स्थायी सम्पत्तियों की राशि में 796000 रूपये अर्थात 2.3 प्रतिशत की कमी आई है। स्थायी सम्पत्ति शुद्ध मूर्त स्वामित्व का 44.8 प्रतिशत है जो कि लगभग उचित ही है।

5. ट्रेडमार्क तथा ख्याति की पिछली राशि 623000 रूपये पर ही दिखाया गया है। ये अमूर्त सम्पत्तियाँ हैं तथा जब तक इनका विक्रय न हो तब तक इन्हें स्थिति विवरण में दिखलाना उचित नहीं है। 1957 में लाभ पर्याप्त मात्रा में हुआ है जिससे संचय तथा आधिक्य भी बच रहा है, अतः इन अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन कर दिया जाय तो उचित था।

6. अधिकोष अधिविकर्ष में 5099000 रूपये की वृद्धि हुई है जो 36.7 प्रतिशत है। इस राशि में इतनी बड़ी वृद्धि यह बतलाती है कि संस्था को अपनी अल्पकालीन आवश्यकता को पूरा करने के लिए राशि को बैंक से उधार लेना पड़ा है। यदि ध्यान से देखें तो यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि अधिकांश राशि को कच्ची सामग्री तथा स्टॉक खरीदने के लिए लिया गया है क्योंकि वर्ष के अन्त में कच्ची सामग्री एवं स्टॉक बड़ी मात्रा में मौजूद हैं। सम्भवतः ऐसा भविष्य में कच्चे माल की उपलब्धि की कठिनाई को ध्यान में रखकर किया होगा।

7. उत्तमर्णों में 389000 रूपये की अर्थात 2.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो ठीक ही है। अधिकोष अधिविकर्ष में वृद्धि की तुलना में यह राशि कुछ अधिक प्रतीत नहीं होती।

8. रिटायरमेन्ट ग्रेच्युटी के लिए राशि में 760000 रूपये अर्थात 25.4 प्रतिशत की कमी हुई है जो सम्भवतः बदले हुए नियमों के कारण भविष्य के लिए अपेक्षाकृत कम जरूरतों को ध्यान में रखकर की गई होगी।

9. लाभांश की प्रस्तावित राशि पिछले वर्ष की अपेक्षा 3621000 रूपये अर्थात 86.7 प्रतिशत

अधिक है जो संस्था की अर्जन क्षमता तथा प्रबन्ध क्षमता के प्रति अंशधारियों में विश्वास निर्मित करने के लिए काफी है। लाभांश की मात्रा में यह वृद्धि संस्था के उज्जवल भविष्य का प्रतीक है।

10. संस्था के आयात कोष एवं आधिक्य में 359000 रूपये अर्थात 2.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है इससे संस्था अपने आन्तरिक साधनों द्वारा कार्यशील पूँजी में वृद्धि करने में सफल रही है।

11. संस्था की शुद्ध कार्यशील पूँजी (अर्थात चल सम्पत्ति - चल दायित्व) जो 2008 में 74475000 - 34157000 = 40318000 रूपये हो गई । इस प्रकार इसमें 1155000 रूपये की वृद्धि हुई है जो लगभग 2.9 प्रतिशत है जो ठीक ही है।

12. चल अनुपात अर्थात चल सम्पत्तियों तथा चल दायित्वों का अनुपात जो 2008 में 1:2:18 था, 2009 में घटकर 1 : 1.88 हो गया है। इस प्रकार चल अनुपात में लगभग 13.8 प्रतिशत की कमी हुई है। ऐसा लगता है कि यह कमी मुख्य रूप से बैंक द्वारा अधिक मात्रा में अधिविकर्ष लेने के कारण हुई है।

13. मूर्त शुद्ध स्वामित्व में 2008 की अपेक्षा 2009 में 359000 रूपये की अर्थात 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो संस्था की प्रगति का उज्जवल पक्ष प्रस्तुत करती है। मूर्त शुद्ध स्वामित्व की गणना निम्न प्रकार की गई है -

	2008	2009
Equity Share Capital	5,57,00,000	5,57,00,000
Capital Reserve	62,62,000	62,62,000
Revenue Reserve & Surplus	1,35,49,000	1,39,08,000
	7,55,11,000	7,58,70,000
Less: Intangible Assets		
(Trade Mark & Goodwill)	6,23,000	6,23,000
Tangible Net worth	7,48,88,000	7,52,47,000
		Increase 3,59,000 i.e. 48%

ब) प्रवृत्ति अनुपात (Trend Ratio)

प्रवृत्ति अनुपात में धन (+) तथा (-) चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। अतः प्रवृत्ति अनुपातों का उपयोग अधिक उपयुक्त होता है। यह वित्तीय विश्लेषण की वह विधि है जिसका प्रयोग विवरणों में दी गई मदों का रूख जानने के लिये किया जाता है। इसके अन्तर्गत विश्लेषण के लिये कई वर्षों के वित्तीय विवरणों को लिया जाता है और उसमें से एक वर्ष की प्रत्येक मद की तुलना अन्य वर्षों की मद से की जाती हैं। इसके लिये आधार को 100 मानकर दूसरे वर्षों

के मूल्य का प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है। इसके पश्चात यह देखा जाता है कि प्राप्त आँकड़ों की प्रवृत्ति कैसी है घटने की अथवा बढ़ने की और इन प्रवृत्तियों वर्ष के आधार पर आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

उदाहरण - 3

निम्नलिखित सूचनाओं से निर्माणी संस्था के कार्य परिणामों की व्याख्या, प्रवृत्ति अनुपात का प्रयोग करते हुए करें -

From the following information's interpreter the results of operations of a manufacturing concern using Trend Ratio:

Particulars	Years		
	2006	2007	2008
Sales (बिक्री)	160000	140000	110000
Cost of goods sold (बेचे गये माल की लागत)	90000	70000	60000
Gross Profit (सकल लागत)	**70000**	**70000**	**50000**
Sales Expenses (बिक्री पर व्यय)	30000	10000	20000
Net operating profit शुद्ध लाभ	**40000**	**60000**	**30000**

हल - 3

Calculation of Trend Ratio

(When 2006=100)

Particular	Years		
	2006	2007	2008
Sales बिक्री	100	87.5	68.75
Cost of goods sold (बेचे गये माल की लागत)	100	77	85.7
Gross Profit (सकल लाभ)	**100**	**100**	**71**
Selling Expenses (बिक्री पर व्यय)	100	33	66.67
Net Operating Profit (शुद्ध लाभ)	**100**	**150**	**75**

व्याख्या - 2008 की तुलना में 2007 में बिक्री की मात्रा में कमी, बिक्री माल की लागत में कमी, सकल लाभ बराबर, बिक्री व्यय में कमी एवं शुद्ध लाभ में वृद्धि हुई है। दूसरी ओर 2008 में बिक्री में कमी, बिके माल की लागत में कमी, सकल लाभ में कमी, बिक्री व्यय में कमी एवं शुद्ध लाभ में कमी भी आई है, क्योंकि बिक्री की मात्रा की तुलना में बिके माल की लागत में कम कमी आई है।

उदाहरण - 4

अरविन्द लिमिटेड की विक्रय राशि पिछले चार वर्षों में अर्थात 2006, 2007, 2008 एवं 2009 में क्रमशः 100000, 85,000, 120000 तथा 140000 रूपये है अन्य व्यय निम्नानुसार है -

	2006	2007	2008	2009
Administration Exp. (प्रशासनिक व्यय)	100000	9000	12000	14400
Selling Expenses (विक्रय व्यय)	4000	3000	3600	4500
Distribution Exp. (वितरण व्यय)	1000	800	1200	900

हल - 4

Expenses (व्यय)	2006	2007	2008	2009
Administration Exp.	100	85	120	140
(प्रशासनिक व्यय)	100	900	120	144
Selling Expenses (विक्रय व्यय)	100	75	90	112.5
Distribution Expenses (वितरण व्यय)	100	80	100	90

उपर्युक्त अनुपातों को देखने से यह पता लगाया जा सकता है विक्रय में वृद्धि के साथ-साथ विभिन्न व्ययों में भी वृद्धि हुई है ऐसा केवल 2009 में वितरण व्यय की स्थिति में नहीं हुआ है।

उदाहरण - 5

NMDC-129

उदाहरण 02 में दिये गये हिन्दुस्तान लि. लिमिटेड के वर्ष 2008 एवं 2009 के स्थिति विवरण से प्रवृत्ति अनुपात ज्ञात कीजिए।

From the balance sheets of year 2008 and 2009 of Hindustan Lever Ltd. given in example 2 calculate trend ratio.

हल - 5

		Assets		
Current Assets	2008	2009		
Cash & Bank balance	9,821	4,214	100	42.9
Sundry Debtors	11,080	8127	100	73.3
Stores & Spare Parts	3,820	66,136	100	152.4
Inventory	43,394	4,330	100	113.4
Prepaid expenses	3,660	3,540	100	96.7
Deposits with Govt.	2,752	2,383	100	86.6
	74,527	**88,730**	**100**	**119.1**
Less: Provision for Bad Debts	52	63	100	121.2
	74475	88,667	100	119.1
Fixed Assets:				
Land	320	320	100	100
Buildings	16,596	17,011	100	+2.5
Machinery	25,342	26,784	100	+5.7
Furniture	1,428	1,585	100	+11.0
Motor Vehicle	1,250	1,636	100	+30.9
Goodwill	623	623	100	-
Total Cost of Fixed Assets	**45,559**	**47,959**	**100**	**+5.3**
Less: Provision for Depreciation on				
Building	3,603	4,233	+630	+17.5
Machinery	5,542	7,749	+2,207	+39.8
Furniture	656	752	+96	+14.6
Motor Vehicles	565	828	+263	46.4
	10,366	**13,562**	**+3,196**	**+30.8**
	35,193	**34,397**	**-796**	**-2.3**
Book Value of Fixed Assets				
Total	**1,09,668**	**1,23,064**	**+13.396**	**+12.2**

(स) बिन्दु रेखीय या चित्रमय प्रदर्शन

प्रवृत्ति विश्लेषण को चित्रों एवं रेखाचित्रों के माध्यम से भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रदर्शन से व्यावसायिक गतिविधियों का प्रगति पथ अधिक स्पष्ट एवं शीघ्रतापूर्वक आसानी से समझा जा सकता है। यदि किसी संस्था के इस वर्षों के विक्रय, विक्रय की लागत, विक्रय व्यय आदि के प्रवृत्ति अनुपातों का प्रतिशतों को एक रेखा चित्र से दर्शाया जाये, तो ऐसा रेखा चित्र राशियों की कमी या वृद्धि को प्रवृत्ति प्रतिशत विवरण की अपेक्षा अधिक कमी या वृद्धि स्पष्टता एवं शीघ्रता से व्यक्त करता है। यही कारण है कि वर्तमान में भारत में अधिकांश व्यावसायिक संस्थाएं अपने वार्षिक खातों के साथ-साथ अनेक चित्रों एवं रेखा चित्रों का प्रकाशन करने लगी है।

इन्टेक्स लि. के पांच वर्षों के सकल लाभ को रेखा चित्र तथा दण्ड चित्र के माध्यम से निम्न प्रकार प्रदर्शित किया गया है।

2.5 सारांश

इकाई के इस भाग में प्रवृत्ति विश्लेषण का व्याख्यान किया गया है। प्रवृत्ति विश्लेषण वित्तीय विश्लेषण की एक तकनीक है, जिसमें वित्तीय विवरणों का पिछले कुछ वर्षों का रूख ज्ञात कर लिया जाता है। प्रवृत्ति विश्लेषण की मुख्यतः तीन विधियां हैं, ये - प्रवृत्ति प्रतिशत, प्रवृत्ति अनुपात व बिन्दु रेखीय या चित्रमय प्रदर्शन ।

2.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. प्रवृत्ति विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? इसकी विभिन्न विधियों को विस्तृत रूप से समझाइये।

   What do you understand by Trend Analysis? Explain its various method in detailed.

2. निम्न दी गई सूचना के आधार पर प्रवृत्ति प्रतिशत ज्ञात कर उस पर टिप्पणी कीजिए।

   From the following information calculate the Trend percentage and give your comments.

Income Statement
(for the year ending 31st March)

	2006	2007	2008
Sales	9000	2200	2500
Cost of goods sold	1500	1200	1250

Gross Profit	**1500**	**1000**	**1250**
Selling expenses	500	300	200
Net operating Profit	**1000**	**700**	**1050**

3. निम्न दी गई आय एवं व्यय की सूचना के आधार पर प्रवृत्ति अनुपात एवं प्रवृत्ति प्रतिशत ज्ञात कर व्याख्या कीजिए।

From the following information calculate trend percentage and trend ratio.

Particulars	2008 (Rs)	2009 (Rs)
Gross Sales	15,300	18,360
Sales Return	300	350
Opening stock	2000	2100
Carriage inwards	200	250
Purchases	9,000	9,800
Closing Stock	2,100	2,050
Selling Expenses	3,000	3,300
Administrative Expenses	1,500	1,700
Other Income	150	200
Other Expenses	200	300

2.7 पुस्तक सूची संदर्भ

1. प्रबंध लेखांकन - जगदीश प्रकाश एवं नागेश्वर राव, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. उच्चतर लेखांकन - जगदीश प्रकाश एवं डॉ. डी.के. वर्मा, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. लेखांकन : सिद्धान्त एवं व्यवहार - प्रो. रमेन्दु राव, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. प्रबंधकीय लेखांकन - जे.के. अग्रवाल, आर के. अग्रवाल, रमेश बुक डिपो, जयपुर
5. लेखांकन के सिद्धान्त - डा. एस.एम. शुक्ल, साहित्य भवन पब्लिकेशन।
6. वित्तीय लेखांकन - डॉ. पी.के.जैन, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

इकाई 3 : अनुपात विश्लेषण

इकाई रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 लेखांकन अनुपातों का महत्व

3.3.1 तुलना में सहायक

3.3.2 समन्वय में सहायक

3.3.3 नियंत्रण में सहायक

3.3.4 निर्णय लेने में सहायक

3.3.5 पूर्वानुमान एवं नियोजन में सहायक

3.4 अनुपात विश्लेषण की सीमाएँ

3.5 अनुपातों का वर्गीकरण

3.6 सैद्धान्तिक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- अनुपात विश्लेषण का अर्थ एवं आशय ज्ञात होगा।
- लेखांकन अनुपातों की जानकारी होगी।
- अनुपात विश्लेषण की सीमाएँ ज्ञात होगी।
- अनुपातों के वर्गीकरण की जानकारी होगी।
- अनुपातों की गणना की प्रक्रिया ज्ञात होगी।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

दो सजातीय संख्याओं के आपसी संबंध को अनुपात कहते हैं। सामान्यतः कोई भी संख्या खुद कोई अर्थ स्पष्ट नहीं करती है। किसी भी संख्या की दूसरी संख्या से तुलना होने पर ही उसका अर्थ स्पष्ट हो पाता है। उदाहरण के लिए अगर यह कहा जाए कि लाभ-हानि खाते के अनुसार संस्था की स्थिति संतोषजनक है। अगर हम इस लाभ की तुलना बिक्री लागत से करें, जो कि 20 करोड़ रुपये है तो ये पता लगता है कि बिक्री लागत केवल 0.1 प्रतिशत है, जो कि संस्था की असंतोषजनक स्थिति को प्रस्तुत करता है। अनुपात विश्लेषण वित्तीय विवरणों के विश्लेषण व निर्वचन की प्रमुख तकनीक है। इसमें चयनित समंकों के आधार पर विभिन्न अनुपातों की गणना करके उनका निर्वचन

NMDC-129

किया जाता है। अनुपात विश्लेषण में (1) वित्तीय विवरणों से उचित समंकों का चुनाव किया जाता है, (2) चयनित समंकों से उपयुक्त अनुपातों की गणना की जाती है। (3) मानक अनुपातों से वर्तमान वर्ष के अनुपातों की तुलना की जाती है। (4) सम्बद्ध अनुपातों से निर्वचन करके उचित निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

3.3 लेखांकन अनुपातों का महत्व (Importance of Financial Ratio's)

किसी भी संस्था के वित्तीय विश्लेषण में अनुपात विश्लेषण की मुख्य भूमिका होती है। अनुपात विश्लेषण लेखांकन को सरल और विस्तृत बना देता है। अनुपात विश्लेषण व्यापार के विभिन्न पहलुओं पर निर्णय लेने में सहायता देता है। अनुपात विश्लेषण के महत्व निम्नलिखित हैं :-

3.3.1 तुलना में सहायक

अनुपात विश्लेषण की सहायता से कई तरह के तुलनात्मक विश्लेषण किये जा सकते हैं। जैसे एक ही कंपनी की पहले की वित्तीय स्थिति व चालू वित्तीय स्थिति की तुलना की जा सकती है। अगर प्रतिकूल स्थिति पता चले तो सुधारात्मक कार्यवाही भी सम्भव हो सकती है।

3.3.2 समन्वय में सहायक

अनुपात विश्लेषण द्वारा संस्था के प्रमुख अनुपातों के बीच पाये जाने वाले संबंधों का प्रयोग कर वांछनीय फल प्राप्त किया जा सकता है।

3.3.3 नियंत्रण में सहायक

अनुपात विश्लेषण द्वारा व्यवसाय की गतिविधियों पर नियंत्रण रखा जा सकता है। व्यवसाय के हर भाग में होने वाली लागत पर भी आसानी से नियंत्रण रखा जा सकता है।

3.3.4 निर्णय लेने में सहायक

अनुपात विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य ही निर्णय में सहायक होता है। विभिन्न अनुपात की स्थिति देखते हुए हर क्षेत्र में निर्णय लिये जा सकते हैं।

3.3.5 पूर्वानुमान एवं नियोजन में सहायक

भविष्य में होने वाली वित्त की आवश्यकता का अनुमान, नियोजन कैसे किया जाए, के संबंध में अनुपात विश्लेषण से काफी मदद मिलती है।

3.4 अनुपात विश्लेण की सीमाएँ (Limitations of Ratio Analysis)

आधार- एक अवधि के अनुपातों की तुलना दूसरी अवधि के अनुपातों से करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि दोनों वर्षों का लेखांकन आधार एक है अथवा नहीं? अगर आधार अलग है तो तुलना संभव नहीं है।

विण्डो ड्रेसिंग - अनुपात विश्लेषण में विण्डो ड्रेसिंग की संभावना अधिक रहती है। लोग अपने व्यवसाय की तड़क-भड़क वाली छवि दिखाने के लिए अनुपात में बदलाव लाते हैं।

ह्रास की विधियाँ - दो संस्थानों के अनुपात की तुलना तभी हो पाती है, जब दोनों संस्थानों ने एक ही ह्रास की गणना की विधि अपनायी हो। अगर विधि अलग हो तो तुलना नहीं हो सकती है।

उचित प्रमापों का अभाव - अनुपात विश्लेषण के लिए उचित प्रमापों का हमेशा से ही अभाव रहा है। अनेक शब्द जैसे चालू दायित्व, चालू संपत्ति आदि के अर्थ में विभिन्नता के कारण एक संस्था के अनुपातों की तुलना दूसरी संस्था के अनुपात से नहीं कर सकते।

3.5 अनुपातों का वर्गीकरण (Classification of Ratio's)

सुविधा को ध्यान में रखते हुए अनुपातों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हुआ है-

(अ) लाभदायक अनुपात (Profitability Ratio)

(ब) निष्पादन अनुपात (Performance or Activity Ratio)

(स) वित्तीय स्थिति का अनुपात (Financial Position Ratio)

लाभदायक अनुपात (Profitability Ratio)

प्रत्येक संस्था का प्रमुख उद्देश्य अपनी संस्था की लाभदायकता को बढ़ाना होता है। किसी भी संस्था द्वारा उपलब्ध साधनों के सर्वोत्तम प्रयोग से अधिक लाभ कमाने की क्षमता को उसकी लाभदायकता कहा जाएगा। लाभदायकता की स्थिति हमेशा परिवर्तशील होती है। वस्तुतः लाभदायकता संस्था के विनियोग व बिक्री पर निर्भर करती है। अतः हम लाभदायकता का विनियोजित पूंजी व विक्रय के आधार पर अध्ययन करेंगे।

(अ) विक्रय पर आधारित लाभदायकता अनुपात (Profiability based on sales)

(ब) विनियोजित पूंजी पर आधारित लाभदायकता अनुपात (Profitability based on Capital Employed)

(स) अंशों पर अर्जित लाभदायकता अनुपात (Profitability based on Shares)

(अ) विक्रय पर आधारित लाभदायकता अनुपात (Profiability based on sales)

i) सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio) शुद्ध विक्रय में बेचे गये माल की लागत को घटाने पर जो शेष प्राप्त होता है, उसे सकल लाभ कहते हैं। सकल लाभ विक्रय एवं निर्माण लागत के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। संस्था की लाभार्जन क्षमता इस अनुपात के माध्यम से जानी जा सकती है। यह अनुपात जितना अधिक होगा, संस्था की लाभदायकता उतनी ही अधिक होगी। इसके विपरीत अगर यह अनुपात कम होगा, तो व्यवसाय का लाभ विक्रय के अनुपात में कम है, प्रत्यक्ष लागत में वृद्धि हुई है आदि। विक्रय मूल्य में कमी एवं बिक्री लागत अपरिवर्तित होने की स्थिति में भी यह अनुपात कम होगा।

$$\text{सकल लाभ अनुपात} = \frac{\text{सकल लाभ}}{\text{शुद्ध बिक्री}} \times 100$$

$$Gross\ Profit\ Ratio = \frac{Gross\ Profit}{Net\ Sales} \times 100$$

ii) **शुद्ध लाभ अनुपात (Net Profit Ratio)** सकल लाभ के अप्रत्यक्ष व्यय घटाने तथा अप्रत्यक्ष आय जोड़ने के बाद तो लाभ प्राप्त होता है। वह शुद्ध लाभ कहलाता है। इसका अनुपात शुद्ध बिक्री के साथ निकाला जाता है। यह अनुपात संस्था की लाभदायक का सूचक होता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा। संस्था की लाभदायकता भी उतनी ही अधिक होगी। शुद्ध

$$\text{शुद्ध लाभ अनुपात} = \frac{\text{शुद्ध लाभ}}{\text{शुद्ध बिक्री}} \times 100$$

$$Net\ Profit\ Ratio = \frac{Net\ Profit}{Net\ Sales} \times 100$$

iii) **संचालन से शुद्ध लाभ अनुपात (Net operating Profit Ratio)** सकल लाभ में से संचालन व्ययों को घटाने पर एवं संचालन आयों को जोड़ने पर संचालन से शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। यह अनुपात संस्था की लाभदायकता का प्रतीक होता है। कुछ व्यवसायों में मुख्य गतिविधियों की अपेक्षा बैंक जमा पर ब्याज, लाभांश आदि से आय अधिक होती है। अतः संस्था का लाभ लेखों में अधिक प्रदर्शित होता है। परन्तु संचालन लाभ अनुपात इस बात को स्पष्ट करता है कि संस्था की कार्यक्षमता कम है। यह अनुपात जितना अधिक होगा संस्था की कार्यक्षमता उतनी ही अधिक होगी।

संचालन से शुद्ध लाभ अनुपात की गणना करने का सूत्र निम्नलिखित है :-

$$\text{संचालन से शुद्ध लाभ अनुपात} = \frac{\text{संचालन से शुद्ध लाभ}}{\text{शुद्ध बिक्री}} \times 100$$

$$\text{Net Operating Profit Ratio} = \frac{\text{Net Operating Profit}}{\text{Net Sale}} \times 100$$

iv) **संचालन अनुपात (Operating Ratio)** सभी संचालन व्ययों को बेचे हुए माल की लागत में जोड़कर जो राशि प्राप्त हुई है, उसका अनुपात शुद्ध बिक्री से निकालना संचालन अनुपात कहलाता है। इस अनुपात से यह पता चलता है कि शुद्ध विक्रय का कितना प्रतिशत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्ययों द्वारा शोषण कर लिया गया। अतः यह अनुपात जितना कम होगा, गैर संचालन व्ययों को पूरा करने के लिए उतना ही लाभ उपलब्ध होगा तथा शुद्ध लाभ भी अधिक होगा।

इस अनुपात की गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र है :-

$$\text{संचालन अनुपात} = \frac{\text{बिक्री की लागत + सभी संचालन व्यय}}{\text{शुद्ध बिक्री}} \times 100$$

$$\text{Operating Ratio} = \frac{\text{Cost of Sales + All Operating Exp.}}{\text{Net Sales}} \times 100$$

(ब) विनियोजित पूंजी पर आधारित लाभदायक अनुपात (Profiability based on capital Employed)

किसी भी संस्था की पूंजी विभिन्न विनियोजकों व साधकों द्वारा एकत्रित की जाती है। कंपनी को अपने लाभों में से प्रत्येक साधन से प्राप्त पूँजी की लागत का भुगतान करना होता है। अतः विभिन्न विनियोजकों से प्राप्त पूंजी की लागतों का तुलना में विनियोजित पूंजी पर लाभ का अध्ययन संस्था के प्रबन्धन के लिए आवश्यक है।

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित मुख्य अनुपात आते हैं :-

i) विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय (Return on Capital Employed)

ii) स्वामित्व कोषों या अंशधारियों के विनियोगों पर प्रत्याय (Return on Proprietor fund or Share holders Investment)

iii) समता पूंजी पर प्रत्याय (Return on Equity Capital)

i) विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय (Return on Capital Employed) किसी भी संस्था में ह्रास के बाद की स्थायी संपत्तियाँ एवं चल संपत्तियों के योग को सकल विनियोजित पूंजी कहते हैंयह अनुपात व्यवसाय में लगाये गये कोषों के प्रयोग में प्रबंधकों की कुशलता का मूल्यांकन करता है। इस अनुपात में लाभदायकता का संपूर्ण माप संभव हो पाता है। क्योंकि इसकी गणना में लाभ विक्रय एवं विनियोजित पूंजी को ध्यान में रखा जाता है।

$$\textit{Return on Capital Employed} = \frac{\textit{Net profit BeforeTax \& Interest}}{\textit{Capital Employed}} \times 100$$

ii) स्वामित्व कोषों पर प्रत्याय (Return on Proprietor's fund) यह अनुपात शुद्ध लाभ तथा स्वामित्व कोषों के बीच संबंध को प्रस्तुत करता है। इस अनुपात की गणना करते समय शुद्ध लाभ कर व ब्याज घटाने के बाद लिया जाता है।

$$\textit{Return on proprietors fund} = \frac{\textit{Net profit after Tax \& Interest}}{\textit{Proprietors fund}} \times 100$$

Proprietors fund = Equity share capital + Preference Share Capital + Reserve & Surplus - Preliminary expenses - Underwriting Commission.

iii) **समता पूंजी पर प्रत्याय (Return on Equity Capital)** यह अनुपात समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध शुद्ध लाभ तथा समता अंश पूँजी के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग होता है-

$$Return\ on\ Equity\ Capital = \frac{Net\ profit\ after\ Tax\ \&\ Interest}{Paid\ up\ Equity\ Share\ Capital} \times 100$$

समता पूंजी पर प्रत्याय संस्था की लाभर्जन क्षमता की गणना करता है। यह जितना अधिक होगा, संस्था उतनी ही अच्छी स्थिति में होगी। इस अनुपात के आधार पर दो संस्थाओं में तुलना भी की जा सकती है।

(स) अंशों पर अर्जित लाभदायकता अनुपात (Profitability based on Shares) इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अनुपात आते हैंः-

i) प्रति अंश आय अनुपात (Earning per Share Ratio)

ii) मूल्य अर्जन अनुपात (Price Earning Ratio)

iii) अर्जन प्रतिफल अनुपात (Earning Yield Ratio)

iv) प्रतिअंश लाभांश अनुपात (Dividend per Share Ratio)

v) लाभांश प्रतिफल अनुपात (Dividend Yield Ratio)

vi) भुगतान अनुपात (Payment Ratio)

i) **प्रति अंश आय अनुपात (Earning per Share Ratio)** व्यवसाय के लाभ में से व्याज, कर व पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश का भुगतान करने के बाद जो शेष बचता है, उस पर समता अंशधारियों का अधिकार होता है। इस लाभ में समता अंशों की संख्या से भाग देकर प्रति अंश आय की गणना की जाती है। यह अनुपात बाजार में कंपनी के अंशों का मूल्य दर्शाता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा, कंपनी उतनी ही अतिरिक्त पूंजी की व्यवस्था पर जाएगी। इसकी गणना का सूत्र निम्नलिखित है-

$$Earning\ per\ Equity\ share = \frac{Net\ profit\ after\ Tax,\ Interest\ \&\ Dividend}{No.\ of\ Equity\ Shares} \times 100$$

ii) **मूल्य अर्जन अनुपात (Price Earning Ratio)** यह अनुपात अंशों के बाजार मूल्य एवं उस पर अर्जन की दर पर आधारित होता है। यह अनुपात इस बात को स्पष्ट करता है कि समता अंश का प्रति अंश बाजार मूल्य अर्जनों का कितने गुना है।

$$Pricing\ Earning\ Ratio = \frac{Average\ MarketPrice\ per\ Share}{Earning\ per\ Share} \times 100$$

मूल्य अर्जन अनुपात किसी भी अंश के मूल्य का सर्वोत्तम माप है। अगर किसी संस्था का मूल्य अर्जन अनुपात नीचा है, तो उसके अंशों का कम मूल्य आंका जाता है एवं अनुपात अधिक होने पर अंशों का मूल्यांकन अधिक मूल्य पर होता है।

iii) **अर्जन प्रतिफल अनुपात (Earning Yield Ratio)** यह अनुपात प्रति अंश आय एवं अंश के बाजार मूल्य के बीच संबंध प्रस्तुत करता है। इसकी गणना निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जाती है।

$$\text{Earning Yield Ratio} = \frac{\text{Earning per Share}}{\text{Market price per Share}} \times 100$$

iv) **प्रतिअंश लाभांश अनुपात (Dividend per Share Ratio)** प्रत्येक समता अंश पर जितना लाभांश प्राप्त होता है, उसे ही प्रति अंश लाभांश कहते हैं। निम्नलिखित सूत्र से इसकी गणना की जाती है-

$$Dividend\ Per\ Share\ Ratio = \frac{Dividend\ Paid\ to\ Equity\ Share}{No.\ of\ \ Equity\ Share} \times 100$$

इस अनुपात की मदद से अंशधारियों को प्रति अंश दिये जाने वाले लाभांश की जानकारी होती है।

v) **लाभांश प्रतिफल अनुपात (Dividend Yield Ratio)** लाभांश प्रतिफल अनुपात प्रति अंश लाभांश एवं अंश के बाजार मूल्य के बीच संबंध स्थापित करता है। निम्न सूत्र द्वारा इसकी गणना की जा सकती है-

$$\text{Dividend Yield Ratio} = \frac{\text{Dividend per Share}}{\text{Market price per Share}} \times 100$$

vi) **भुगतान अनुपात (Payment Ratio)** व्यवसाय कर के बाद के लाभ का कितना भाग लाभांश के रूप में भुगतान कर रहा है तथा कितना भाग प्रतिफल लाभ के रूप में रख रहा है, यह पता लगाने के लिए भुगतान अनुपात की गणना की जाती है। इसका गणना निम्नलिखित सूत्र से की जाती है-

$$\text{Pay Out Ratio} = \frac{\text{Dividend per Equity Share}}{\text{Earning per Share}} \times 100$$

उदाहरण - 1

31 दिसम्बर, 2008 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए अपेक्स लिमिटेड का व्यापारिक एवं लाभ-हानि खाता निम्नलिखित है-

Following is the Trading & Profit & Loss Account of Apex Ltd. for the year ended 31 December, 2008

Dr. Cr

Particulars	Amount	Particulars	Amount
To Opening Stock	7000	By Sales 520000	
To Purchase	250000	Less : Return 20000	5,00,000
To Carriage	5000	By Closing Stock	90,000
To Wages	10000		
To Factory Rent	10000		
To Gross Profit C/d	2,45,000		
Total	**5,90,000**	**Total**	**5,90,000**
To Administrative Exp.	80,000	By Gross Profit	2,45,000
To Selling & Distribution Exp.	30,000	By Non Operating Income	5,000
To Financial Exp.	10,000		
To Non Operating Exp.	5,000		
To Net Profit	1,25,000		
Total	**2,50,000**	**Total**	**2,50,000**

Calculation following ratio -

निम्नलिखित अनुपातों की गणना कीजिये -

1. सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio)
2. संचालन अनुपात (Operating Ratio)
3. व्यय अनुपात (Expenses Ratio)
4. शुद्ध संचालन लाभ अनुपात (Operating Net Profit Ratio)
5. शुद्ध लाभ अनुपात (Net Profit Ratio)

Solution -

$$\text{Gross Profit Ratio} = \frac{\text{Gross profit}}{\text{Net Sales}} \times 100$$

$$=\frac{245000}{500000}\times 100=49\%$$

$$\text{Operating Ratio}=\frac{\text{Cost of goods sold}+\text{Operating Exp.}}{\text{Net Sales}}\times 100$$

Where, Cost of goods sold = (Selling Price - Gross Profit)

= [500000 - 245000] = 255000

Where, Operating Exp. = Administrative Exp. + Selling & Dist. Exp. + Financial Exp.

= 80,000 + 30,000 + 10,000 = 1,20,000

$$=\frac{255000+120000}{500000}\times 100=75\%$$

3. Expenses Ratio

i) Administrative Expenses Ratio =

$$\frac{\text{Administrative Expenses}}{\text{Net Sales}}\text{ x } 100$$

$$\frac{80,000}{5,00,000}\times 100 = 16\%$$

ii) Selling & Distribution Expenses Ratio =

$$\frac{\text{Selling Expenses}}{\text{Net Sales}}\text{ x } 100$$

$$\frac{30,000}{5,00,000}\times 100 = 6\%$$

iii) Financial Expenses Ratio =

$$\frac{\text{Financial Expenses}}{\text{Net Sales}}\text{ x } 100$$

$$\frac{10,000}{5,00,000}\times 100 = 2\%$$

iv) Operating Expenses Ratio =

$$\frac{\text{Operating Net profit}}{\text{Net Sales}}\text{ x } 100$$

$$\frac{1,25,000}{5,00,000}\times 100 = 25\%$$

V) Net Profit Ratio

$$\frac{\text{Net profit}}{\text{Net Sales}} \times 100$$

$$\frac{1{,}25{,}000}{5{,}00{,}000} \times 100 = 25\%$$

(ब) निष्पादन या क्रियाशील अनुपात (Activity Ratio) ये अनुपात संख्या की क्रियाशीलता से संबंधित होते हैं। इन अनुपात की मदद से संस्था की कार्य निष्पति एवं प्रबंधकों की कार्यकुशलता का मूल्यांकन किया जाता है। निष्पादन अनुपात के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि संस्था उपलब्ध साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर रही है या नहीं ? यह अनुपात (Times) में ज्ञात किये जाते हैं। इसमें निम्नलिखित अनुपात सम्मिलित होते हैं-

1. स्कंध आवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratio)
2. संपत्ति आवर्त अनुपात (Assets Turnover Ratio)
3. स्थायी संपत्ति आवर्त (Fixed Assets Turnover Ratio)
4. चालू संपत्ति आर्वत अनुपात (Current Assets Turnover Ratio)
5. कार्यशील पूंजी आवर्त अनुपात (Working Capital Turnover Ratio)
6. देनदार आवर्त अनुपात (Debtors Turnover Ratio)
7. औसत संग्रह अवधि (Average Collection Period)
8. लेनदार आवर्त अनुपात (Creditors Turnover Ratio)
9. औसत साख अवधि (Average Credit Period)

1. **स्कंध आवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratio)** स्कंध आवर्त अनुपात से इस बात की जानकारी मिलती है कि वर्ष में किसी बार स्कंध का विक्रय तथा प्रतिस्थापन हुआ है, साथ ही स्कंध का सही उपयोग हो रहा है या नहीं। इस अनुपात से इस बात की जानकारी मिलती है कि स्कंध में आवश्यकता से अधिक पूंजी तो विनियोजित नहीं कर दी गई है। यह अनुपात जितना अधिक होता है, उत्तम समझा जाता है, किन्तु उच्च स्कंध की मात्रा कम होती है, क्योंकि समय पर ग्राहकों की आवश्यकता पूरी नहीं होती है। इसके विपरीत नीचा स्कंध आवर्त व्यवसाय मे मंदी, स्कंध में अधिक विनियोग आदि का प्रतीक माना जाता है।

$$\text{स्कंध आवर्त अनुपात} = \frac{\text{बेचे गये माल की लागत}}{\text{औसत रहतिया (निर्मित माल)}}$$

$$\text{Stock Turnover Ratio} = \frac{\text{Cost of Goods sold}}{\text{Average Stock (Finished Goods)}}$$

2. **संपत्ति आवर्त अनुपात (Assets Turnover Ratio)** इस अनुपात के आधार पर कुल संपत्तियों तथा बिक्री की लागत अथवा शुद्ध बिक्री की राशि के बीच संबंध स्थापित किया जाता है। इस अनुपात से यह ज्ञात होता है कि विक्रय कुल संपत्तियों की तुलना में कितनी बार हुआ है। यदि आवर्त अधिक बार हुआ है तो इसका यह अर्थ है कि संस्था अपनी संपत्तियों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से कर रही है।

$$Assets\ Turnover\ Ratio = \frac{Cost\ of\ Goods\ sold}{Total\ Assets\ (Actual)}$$

$$OR$$

$$Assets\ Turnover\ Ratio = \frac{Net\ Sales}{Total\ Assets}$$

3. **स्थायी संपत्ति आवर्त अनुपात (Fixed Assets Turnover Ratio)** यह अनुपात संपत्तियों के कुशल एवं लाभदायक प्रयोग का सूचक होता है। इस अनुपात से इस बात की जानकारी मिलती है कि संस्था में स्थायी संपत्तियों (ह्रास घटाकर) का सही प्रयोग हो रहा है अथवा नहीं। इसके अंतर्गत स्थायी संपत्तियों एवं बिक्री की लागत या शुद्ध बिक्री के बीच संबंध स्थापित किया जाता है।

$$\text{Fixed Assets Turnover Ratio} = \frac{\text{Cost of Sales or Net Sales}}{\text{Net Fixed Assets}}$$

इस अनुपात का अधिक होना निष्पादन कुशलता का प्रतीक होता है।

4. **चालू संपत्ति आवर्त अनुपात (Current Assets Turnover Ratio)** यह अनुपात चालू संपत्तियों तथा बिक्री की लागत के संबंध को बताता है, साथ ही इसमें इस बात की जानकारी भी होती है कि चालू संपत्तियों का सही प्रयोग हो रहा है या नहीं। यह अनुपात चालू संपत्तियों की कार्यशीलता पर प्रकाश डालता है। इस अनुपात से चालू संपत्तियों में अति विनियोग, अल्प विनियोग तथा आदर्शतम विनियोग की जानकारी होती है।

$$\text{Current Assets Turnover Ratio} = \frac{\text{Cost of Sales or Net Sales}}{\text{Current Assets}}$$

5. **कार्यशील पूंजी आवर्त अनुपात (Working Capital Turnover Ratio)** चालू दायित्व के ऊपर चालू संपत्ति के आधिक्य को कार्यशील पूंजी कहते हैं। यह अनुपात इस बात की जानकारी देता है कि संस्था में कार्यशील पूंजी का प्रयोग सही ढंग से हो रहा है अथवा नहीं।

$$\text{Working Capital Turnover Ratio} = \frac{\text{Cost of Sales or Net Sales}}{\text{Working Capital}}$$

6. **देनदार आर्वत अनुपात (Debtors Turnover Ratio)** प्रत्येक संस्था का उद्देश्य होता है कि देनदारों व प्राप्य विपत्रों से राशि समय पर वसूल हो जाये। अतः यह जानने के लिये कि संस्था इस उधार वसूली में कहाँ तक सफल हुई है, देनदार आवर्त की गणना की जाती है। यह अनुपात संस्था के कुल देनदारों एवं शुद्ध उधार विक्रय में संबंध स्थापित करता है। यह अनुपात इस बात की जानकारी देता है कि विक्रय का कितना भाग देनदारों के रूप में बचा हुआ है। इस अनुपात का अधिक होना देनदारों के बकाया राशि संग्रह की कुशलता का सूचक होता है। इस अनुपात का कम होना इस बात का सूचक है कि उधार बिक्री की संग्रह व्यवस्था कुशल नहीं है या देनदार ऐसे हैं जिनसे पैसे वसूलना कठिन है।

$$Debtors\ Turnover\ Ratio = \frac{Net\ Credit\ Sales}{Debrots\ Bills\ Receivables}$$

7. **औसत संग्रह अवधि (Average Collection Period)** यह वह अवधि है, जिसमें देनदारों से धन की वसूली के औसत समय को प्रदर्शित करता है। इस अवधि की गणना करने के लिए व्यापारिक प्राप्तियों में उधार बिक्री का भाग दिया जाता है। उधार बिक्री की राशि जितनी शीघ्र वसूल होती है, व्यवसाय में चालू दायित्वों का भुगतान करने की क्षमता उतनी ही अधिक होती है। इसके विपरीत व्यवसाय में ऋण की वसूली में विलंब अप्राप्त ऋण की राशि में वृद्धि, प्रबंधन की लापरवाही का प्रतीक है।

$$Average\ Collection\ Period\ (Pay\ Day) = \frac{Trade\ Receivables}{Net\ Credit\ Sales\ for\ year} \times 365$$

8. **लेनदार आवर्त अनुपात (Creditors Turnover Ratio)** कोई संस्था जिससे उधार खरीदती है एवं उधार क्रय के बदले जो विपत्र स्वीकार किये जाते हैं, उन्हें देय विपत्र कहते हैं। इसकी मात्रा जितनी अधिक होगी, संस्था में कार्यशील पूंजी की व्यवस्था उतनी अधिक होगी। किन्तु समय पर भुगतान नहीं होने से भविष्य में कार्यशील पूंजी मिलने में कठिनाई होगी।

$$\text{Creditors Turnover Ratio} = \frac{\text{Net Credit Purchases}}{\text{Trade Creditors + B / P}}$$

9. **औसत साख अवधि (Average Credit Period)** साख अवधि से इस बात की जानकारी होती है कि हमने लेनदारों को भुगतान करने में औसतन कितना समय लिया है।

$$Average\ Credit\ Period = \frac{Average\ Trade\ Payable}{Credit\ Purchases\ for\ the\ year} \times 100$$

(स) वित्तीय स्थिति अनुपात (**Financial Position Ratio**) इसके अंतर्गत किसी व्यावसायिक

संस्था की वित्तीय स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति/ संस्था अपने हित को ध्यान में रखते हुए ऐसे अनुपातों का प्रयोग करती है, जिससे संस्था की वित्तीय स्थिति की सही जानकारी का पता किया जा सके। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित अनुपात आते हैं :-

1. चालू अनुपात (Current Ratio)
2. तरल अनुपात (Liquid Ratio)
3. पूर्णतया तरलता अनुपात (Absolute Liquidity Ratio)
4. स्वामित्व अनुपात (Proprietary Ratio)
5. ऋण समता अनुपात (Debt Equity Ratio)
6. पूँजी मिलन अनुपात (Capital Gearing Ratio)
7. शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratio)

1. चालू अनुपात (Current Ratio) यह अनुपात चालू संपत्ति एवं चालू दायित्वों में संबंध स्थापित करता है। चालू दायित्वों एवं चालू संपत्तियों के अनुपात का अध्ययन कर संस्था की अल्पकालीन वित्तीय स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

$$\text{Current Ratio} = \frac{\text{Current Assets}}{\text{Current Liabilities}}$$

यह अनुपात अगर अधिक होता है, लेनदारों की स्थिति उतनी ही अच्छी समझी जाती है, क्योंकि ऊँचे अनुपात का यह आशय होगा कि जैसे ऋण देय होंगे, उनकी अदायगी कर दी जायेगी, किन्तु इस अनुपात का अधिक होना अंशधारियों के दृष्टिकोण से अच्छा नहीं समझा जाता है। सामान्यतः **2 : 1** का तरल अनुपात आदर्श अनुपात माना जाता है।

2. तरल अनुपात (Liquid Ratio) तरल अनुपात के अन्तर्गत रहतिया एवं पूर्वदत्त व्ययों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। यह अनुपात जितना अधिक होगा, संस्था की तरल स्थिति उतनी ही अच्छी होगी, किन्तु आवश्यकता से अधिक होने पर यह प्रबंधकीय त्रुटिपूर्ण वित्तीय विनियोजन नीति तथा तरल संपत्तियों की ओर भी संकेत करता है। सामान्यतः **1:1** का अनुपात आदर्श अनुपात माना जाता है।

$$\textit{Liquid Ratio} = \frac{\textit{Current Assets}}{\textit{Current Liabilities}}$$

OR

$$\frac{\textit{Current Assets} - (\textit{Stock} + \textit{Prepaid}}{\textit{Current Liabilities}}$$

3. पूर्णतया तरलता अनुपात (Absolute Liquidity Ratio) यह अनुपात पूर्ण

तरल संपत्तियों एवं तरल दायित्वों के बीच के संबंध को स्पष्ट करता है। पूर्ण तरल संपत्तियों के अन्तर्गत रोकड़, बैंक तथा शीघ्र विपणन योग्य प्रतिभूतियाँ आती हैं। तरल दायित्वों के अन्तर्गत बैंक अधिविकर्ष को सम्मिलित नहीं किया जाता है। इसके लिये **05:1** का अनुपात आदर्श अनुपात माना जाता है।

$$Absolute\ Liquidity\ Ratio = \frac{Absolute\ Liquidity\ Assets}{Current\ Liabilities}$$

OR

$$Absolute\ Liquidity\ Ratio = \frac{Cash + Marketable\ Securities}{Current\ Liabilities}$$

4. **स्वामित्व अनुपात (Propritory Ratio)** यह अनुपात स्वामी पूंजी (Cash + Marketable + Securities / Current Liabilities) एवं कुल वास्तविक संपत्ति के बीच संबंध स्पष्ट करता है। इस अनुपात से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कुल मूर्त संपत्तियों के किस भाग के लिए अंशधारियों ने पूंजी लगाई है।

$$Proprietory\ Ratio = \frac{Propretary\ fund\ /\ Networth}{Total\ Tangible\ Assets}$$

OR

$$Proprietory\ Ratio = \frac{Shareholders'\ Funds}{Total\ Tangible\ Assets}$$

5. **ऋण समता अनुपात (Debt-Equity Ratio)** ऋण समता अनुपात स्वामित्व पूंजी एवं ऋणगत पूँजी के संबंध को स्पष्ट करता है। इसमें स्वामित्व पूंजी के अन्तर्गत समता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी, पूँजी संचय एवं प्रतिभूति अर्जन (Retained Earnings) सम्मिलित किये जाते हैं। दूसरी ओर बाह्य ऋण में दीर्घकालीन व अल्पकालीन ऋण सम्मिलित होते हैं। जैसे ऋण पत्र, बाण्ड्स बंधक, लेनदार देय बिल, अधिविकर्ष आदि।

$$\text{Debt equity ratio} = \frac{\text{External Equities or Debt}}{\text{Internal Equities or Equity}}$$

अथवा

$$\text{Debt Equity Ratio} = \frac{\text{Outsider's Fund}}{\text{Owner's Equity}} \text{ or } \frac{\text{Long Term Debts} + \text{Short Term Debt}}{\text{Shareholders Fund}}$$

यह अनुपात किसी व्यावसायिक संस्था की दीर्घकालीन वित्तीय स्थिति के विश्लेषण में अधिक महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः **1:1** का अनुपात उपयुक्त माना जाता है।

6. **पूँजी मिलन अनुपात (Capital Gearing Ratio)** यह अनुपात स्थिर आय वाली

पूंजी एवं अस्थिर आय वाली पूंजी के संबंध बताता है। जिस पर ब्याज व लाभांश की दर स्थिर होती है। जैसे-ऋण पत्र एवं दीर्घकालीन ऋण जिन पर ब्याज की दर स्थिर होती है। दूसरी ओर अस्थिर आय वाली पूंजी जिस पर लाभांश की दर अस्थिर होती है, जैसे समता अंश।

$$Capital\ Gearing\ Ratio = \frac{Equity\ Share\ Capital + Undistributed\ profit\ Reserve\ \&\ Surplus}{Preference\ Share\ Capital + Long\ Term\ Loan}$$

$$or$$

$$\frac{Variable\ Cost\ Capital}{Fixed\ Cost\ Capital}$$

7. **शोधन क्षमता अनुपात (Solvency Ratio)** यह अनुपात कंपनी की कुल संपत्तियों एवं कुल दायित्वों के संबंध को व्यक्त करता है।

$$\text{Solvency Ratio} = \frac{\text{Total Outside Liabilities}}{\text{Total Assets}}$$

उदाहरण -2 निम्नलिखित सूचनाओं की गणना करें -

1. चालू अनुपात (Current Ratio)
2. तरल अनुपात (Liquid Ratio)
3. पूर्णतया तरलता अनुपात (Absolute Liquidity Ratio)

Liabilities	Amount	Assets	Amount
Share Capital	30,000	Land	20,000
Debentures	12,000	Plant	16,000
Creditors	6,000	B/R	5,000
B/P	5,200	Debtors	8,000
Outstanding Exp.	2,800	Stock	4,000
Bank over Draft	4,000	Cash in hand	1,000
		Marketable Stock	6,000
Total	**60,000**	**Total**	**60,000**

Solution -

1- $$\text{Current Ratio} = \frac{24{,}000}{18{,}000} = 1.33:1$$

2- $$\text{Liquid Ratio} = \frac{20{,}000}{18{,}000} = 1.11:1$$

3- $\textit{Absolute Liquid Ratio} = \dfrac{7,000}{14,000} = 1:2$

उदाहरण - 3

निम्न अंकों के आधार पर औसत रहतिया, क्रय, लेनदार आवर्त अनुपात, औसत भुगतान अवधि, औसत संग्रह अवधि और कार्यशील पूंजी आवर्त अनुपात की गणना कीजिए :

Find out Average Stock, Purchase, Creditors' Turnover Ratio, Average payment period, Average Collection, Period and Working Capital Turnover Ratio on the basis of following figures :

(i) Stock Turnover Ratio = 6 times

(ii) Gross Profit Ratio = 20% on Sales

(iii) Sales = Rs. 3,00,000

(iv) Closing Stock is Rs. 10,000 more than the opening stock

(v) Opening Creditors = Rs. 20,000

(vi) Closing Creditors = Rs. 30,000

(vii) Trade debtors at the end = Rs. 60,000

(viii) Net Working capital = Rs. 50,000

Solution -

Cost of Goods sold = Sales - Gross profit

= Rs. 3,00,000 – 20% Rs. 3,00,000

= Rs. 3,00,000 – 60,000

= Rs. 2,40,000

1. Average Stock

*जवबा जनतदवअमत त्जपव = $\dfrac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$

$$6 = \frac{\text{Rs. 2,40,000}}{\text{Average Stock}}$$

$$\text{Average Stock} = \frac{2,40,000}{6}$$

$$= 40,000$$

2. Purchases

Cost of Goods Sold = Opening Stock + Purchases - Closing Stock

or Purchase = Cost of Goods Sold + Closing Stock – Opening Stock.

$$\text{Average Stock} = \frac{\textit{Opening Stock} + \textit{Closing Stock}}{2}$$

Closing Stock is given Rs. 10,000 more than the opening stock

So,

$$\text{Rs. } 40000 = \frac{\text{Opening Stock} + (\text{Rs. } 10000 + \text{Opening Stock})}{2}$$

$$80000 = 2 \text{ Opening Stock} + \text{Rs. } 10,000$$

$$\text{Opening Stock} = \frac{7000}{2} = \text{Rs. } 35,000$$

Closing Stock = Rs. 35000 + Rs. 10000 = Rs. 45,000

Purchase = 2,40,000 + 45,000 – 35,000 = Rs. 2,50,000

$$\text{3. Creditors' Turnover Ratio} = \frac{\text{Net Credit Purchases}}{\text{Average Creditors}}$$

All Purchase are supposed as credit purchase.

$$\textit{Creditor's Turnover Ratio} = \frac{2,50,000}{\frac{20000 + 30000}{2}}$$

$$= \frac{2,50,000}{25,000} = 10 \text{ times}$$

$$\text{4. Average Payment Period} = \frac{\text{Average Creditors}}{\text{Net Credit Purchase}} \times 365$$

$$= \frac{25000}{250000} \times 365 = 36.5 \text{ days or } 37 \text{Days}$$

$$\text{5. Average Collection Period} = \frac{\text{Average Debtors}}{\text{Net Credit Sales}} \times 365$$

$$= \frac{60000}{300000} \times 365$$

$$= 73 \text{ days}$$

$$Working\ Capital\ Turnover\ Ratio = \frac{Cost\ of\ Goods\ Sold}{Net\ Working\ Capital}$$

$$= \frac{2,40,000}{50,000}$$

$$= 4.8\ times$$

3.6 Self Assessment Questions

1. अनुपात विश्लेषण क्या है? अनुपात विश्लेषण के क्या उद्देश्य व सीमाएँ हैं ?

   What is Ratio Analyais ? What are the object & Limitations of Ratio Analysis ?

2. वित्तीय विवरणों के निर्वचन में अनुपात विश्लेषण का महत्व बताएँ।

   Explain the role of Ratio Analyais in the interpretation of finandial statement.

3. एक आधुनिक व्यावसायिक फर्म द्वारा आकल्पित, प्रमुख तरलता एवं लाभदायक अनुपातों का वर्णन कीजिए।

   Describe the main liquidity and profitability ratio computed by a modern business firms.

4. एक संस्था की लाभदायक्ता के विश्लेषण व निर्वचन हेतु प्रयुक्त अनुपातों को स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

   Explain clearly the principal ratio's which may be used in analysing and enterpreting the profitability of a concern.

5. किन्ही पाँच लेखांकन अनुपातों का वर्णन उदाहरण वाहिका कीजिये और उनका महत्व संक्षेप में बताइए।

   Describe illustrate any five accounting ratio's and briefly state their Significance.

इकाई 4 : कोष प्रवाह विवरण (Funds Flow Statement)

इकाई रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 कोष प्रवाह का अर्थ

4.4 कोष प्रवाह विवरण की विशेषताएँ

4.5 कोष प्रवाह विवरण का महत्व

4.6 कोष प्रवाह विवरण की सीमाएँ

4.7 कोष प्रवाह विवरण एवं चिट्ठे में अन्तर

4.8 कोष प्रवाह विवरण और लाभ-हानि खाते में अन्तर

4.9 कोष प्रवाह विवरण तैयार करना

4.10 कोषों के स्रोत एवं उपयोग का विवरण

4.11 सारांश

4.12 सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- कोष प्रवाह के उद्देश्य ज्ञात होंगे।
- कोष प्रवाह का अर्थ ज्ञात होगा।
- विशेषताएँ ज्ञात होंगी।
- कोष प्रवाह के महत्व की जानकारी होगी।
- कोष प्रवाह की सीमाओं की जानकारी होगी।
- कोष प्रवाह विवरण, चिट्ठे एवं लाभ-हानि खाते में अन्तर ज्ञात होगा।
- कोष प्रवाह विवरण तैयार करने की प्रक्रिया ज्ञात होगी।
- कोषों के स्रोत एवं उपयोग की जानकारी होगी।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

लेखांकन में एक निश्चित अवधि में तैयार किये गये अन्तिम लेखे संस्था की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा देते हैं। किसी भी संस्था में सामान्यतःदो तरह के लेखे बनाए जाते हैं। इनमें सर्वप्रथम चिट्ठा (Balance Sheet) बनाया जाता है, जो कि वित्तीय वर्ष के अंतिम दिन संस्था की वित्तीय दशाओं

NMBC-129

का चित्रण करता है। इसके साथ संस्था लाभ-हानि खाता भी बनाती है, जो संस्था के वित्तीय वर्ष के सच्चे व उचित लाभ हानि का चित्र प्रस्तुत करता है। उपरोक्त दोनों ही लेखे संस्था के प्रबंधकों, व्यवसाय के स्वामी व विनियोजकों को एक निश्चित समयावधि में हुए लाभ-हानि एवं संपत्तियों व देयताओं का ज्ञान कराते हैं। परन्तु इन दोनों लेखों में धन की प्राप्ति के साधन एवं धन के व्यय के साधनों की जानकारी नहीं हो पाती है। किसी भी संस्था द्वारा यह जानकारी कोष प्रवाह विवरण तैयार कर प्राप्त की जा सकती है।

4.3 कोष का अर्थ

कोष प्रवाह विवरण के संदर्भ में ''कोष'' का अर्थ विशेष रूप से लगाया जाता है। यहाँ कोष से तात्पर्य कार्यशील पूंजी है, जो वस्तुतः नगदी से अलग होती है। कार्यशील पूंजी को स्वतंत्र या शुद्ध चालू संपत्ति भी कहते हैं। अतः कुछ चालू संपत्ति व कुल चालू दायित्व का अन्तर ही ''कोष'' कहलाता है। जिन व्यावसायिक कार्यों की वजह से शुद्ध कार्यशील पूंजी बढ़ जाती है, उन्हें कोष का साधन मानते और जिन व्यावसायिक कार्यों को शुद्ध कार्यशील पूंजी घट जाती है, उसे कोष का प्रयोग मानते हैं। ऐसा लेन-देन जिससे कार्यशील पूंजी प्रभावित नहीं होती, उसे कोष प्रवाह विवरण में सम्मिलित नहीं करते हैं।

कोष प्रवाह का अर्थ -

कार्यशील पूंजी में परिवर्तन कोष प्रवाह कहलाता है। निम्नलिखित कारणों से कार्यशील पूँजी में परिवर्तन हो सकता है-

1. जब चालू संपत्ति में वृद्धि होती है, परन्तु चालू दायित्वों में कोई वृद्धि नहीं होती।
2. जब चालू संपत्ति में कमी आती है, परन्तु दायित्वों में कोई बदलाव नहीं आता।

जब भी चालू दायित्वों और चालू संपत्तियों में समान रूप से परिवर्तन है तो केवल चालू संपत्तियों एवं चालू दायित्वों के योग में ही परिवर्तन होता है, एवं कार्यशील पूंजी पर कोई प्रभाव नहीं आता है। अतः ऐसी स्थिति में कोष की उत्पत्ति नहीं होती है।

किसी भी संस्था में कई प्रकार की व्यावसायिक घटनाएँ कोष प्रवाह को कम करती है या बढ़ाती है। कुछ व्यावसायिक घटनाएँ कोष प्रवाह में कोई परिवर्तन नहीं लाती। मूलतः जो व्यावसायिक घटनाएँ कोष प्रवाह को बढ़ाती है वह कोष का स्रोत कहलाती है एवं वह घटनाएँ जो प्रवाह को कम करती हैं, वह कोषों का प्रयोग/उपयोग कहलाता है।

कोष प्रवाह विवरण का अर्थ -

कोष प्रवाह विवरण किसी व्यावसायिक संस्था के वित्तीय संचालन का प्रतिवेदन है। कोष प्रवाह विवरण दो अवधि के मध्य संस्था में कोषों का आना-जाना प्रदर्शित करता है। इससे इस बात की जानकारी मिलती है कि किसी संस्था में वित्त के साधन क्या हैं और वित्त को प्रयोग कैसे किया जाता है।

फाउल्क (Foulke) के अनुसार - "कोषों के साधनों एवं उपयोगों का विवरण दो तिथियों के मध्य किसी व्यावसायिक संस्था की वित्तीय स्थिति में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करने की एक तकनीक विधि है।"

स्मिथ एवं ब्राउन - (Smith & Brown) के शब्दों में "कोष प्रवाह विवरण सारांश में तैयार किया गया एक विवरण है जो विभिन्न तिथियों पर बनाये गए चिट्ठों के समयान्तर में वित्तीय दशाओं में हुए परिवर्तन का ज्ञान कराता है।"

किसी भी संस्था में कोष प्रवाह विवरण का महत्वपूर्ण उद्देश्य संस्था के वित्त साधन और वित्त के उपयोग की जानकारी प्रदान करना होता है। इस विवरण का सीधा तात्पर्य संस्था की कार्यशील पूंजी घटने या बढ़ने से होता है। संस्थापक संस्था की कार्यशील पूंजी का उपयोग ठीक तरह से कर रहे हैं या नहीं? इसकी जानकारी कोष प्रवाह विवरण से मिलती है।

4.4 कोष प्रवाह विवरण की विशेषताएँ (Characterstics)

कोष प्रवाह विवरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है :-

1. कोष प्रवाह विवरण संस्था के वित्त के साधन व उसकी उपयोगिता बताने में सहायता करता है।
2. यह दो तिथियों के मध्य हुए वित्तीय परिवर्तनों को बताता है।
3. यह प्रायः एक निश्चित अवधि के लिये बनाया जाता है।
4. इससे निर्धारित अवधि में उपलब्ध कोषों के साधनों एवं उपयोग का विश्लेषण कर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
5. कोष प्रवाह विवरण से वे जानकारी प्राप्त होती है, जो अन्य किसी लेखे जैसे-संस्था का चिट्ठा या लाभ-हानि खाते सें नहीं होती।

4.5 कोष प्रवाह विवरण का महत्व

1. कोष प्रवाह विवरण तरलता पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाता है कि किन साधनों से वित्त प्राप्त किया गया है और किन उद्देश्यों के लिए उनका प्रयोग किया गया है।
2. इस विवरण के आधार पर बैंक व वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण प्राप्त करने में सहायता मिलती है।
3. कोष प्रवाह विवरण से किसी संस्था की वित्तीय योजनाओं में पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके माध्यम से अतिरिक्त कोष की आवश्यकता का पता लगाया जा सकता है, साथ ही उसके साधन भी निर्धारित किये जा सकते हैं। इस विवरण की सहायता से दो वर्षों के चिट्ठों व लाभ-हानि खातों में सही तुलनात्मक अध्ययन संभव हो पाता है।

NMDC-129

4. कोष प्रभाव विवरण से मिलने वाली तरलता की जानकारी के आधार पर ठोस लाभांश नीति बनाई जा सकती है व समय-समय पर उचित परिवर्तन भी करे जा सकते हैं।

5. इस विवरण से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि कार्यशील पूंजी का प्रयोग सही हो रहा है या नहीं ?

4.6 कोष प्रवाह विवरण की सीमाएँ (Limitations)

1. कोष प्रवाह विवरण केवल भूतकालीन गतिविधियों का ही ब्यौरा देता है व इससे भावी कोष का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

2. कोष प्रवाह विवरण में केवल चिट्ठा व लाभ-हानि लेखा की सूचना को ही पुनः प्रदर्शित करता है। अतः मौलिक जानकारी का अभाव होता है।

3. इस विवरण में अचल संपत्ति को शामिल नहीं किया जाता है। इस दृष्टि से चिट्ठा व लाभ-हानि खाता ज्यादा परिष्कृत होता है।

4. यह विवरण एक निश्चित् अवधि में प्राप्त रोकड़ की जानकारी ही देता है। अतः ये विवरण सतत् परिवर्तन को प्रकट करने में असफल है।

5. यह विवरण रोकड़ की जानकारी नहीं देता, जो कि कार्यशील पूंजी की सूचना से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

6. कोष प्रवाह विवरण केवल अतिरिक्त सूचनाएं उपलब्ध कराता है। अतः यह संस्था के चिट्ठे का विकल्प नहीं है।

4.7 कोष प्रवाह विवरण और चिट्ठे में अंतर

सामान्यतः कोष प्रवाह विवरण व चिट्ठे मे निम्नलिखित अन्तर है-

क्र.	आधार	कोष प्रवाह विवरण	चिट्ठे
1.	विषय सामग्री (Subject Matter)	कोष प्रवाह विवरण संस्था की दो तिथियों के मध्य हुए कार्यशील पूंजी के अन्तर को दर्शाता है।	चिट्ठे में निश्चित तिथि पर वास्तविक और व्यक्तिगत लेखों का उल्लेख होता है।
2.	कृषि (Nature)	कोष प्रवाह विवरण गतिशील प्रकृति का होता है।	चिट्ठा स्थिर प्रकृति का होता है।
3.	उपयोगिता (Utility)	कोष प्रवाह आंतरिक प्रबंध से संबंधित निर्णय लेने के लिये होता है।	चिट्ठा बाह्य पक्षों के उपयोग के लिए होता है।

MPOC-129

4.	उद्देश्य (Object)	कोष प्रवाह विवरण संस्था की गतिशील पूंजी में आने वाले परिवर्तन को बतलाता है।	चिट्ठा एक निश्चित तिथि पर संस्था की आर्थिक स्थिति को अंकित करता है।
5.	प्रकाशन (Publication)	कोष प्रवाह विवरण का प्रकाशन अनिवार्य नहीं है।	चिट्ठा का प्रकाशन अनिवार्य होता है।
6.	अवधि (Period)	इसकी कोई निश्चित अवधि नहीं होती है।	यह एक निश्चित अवधि के लिये ही बनाया जाता है।

4.8 कोष प्रवाह विवरण और लाभ-हानि खाते में अंतर

सामान्यतः कोष प्रवाह विवरण व लाभ-हानि खाते में निम्नलिखित अन्तर है-

क्र.	आधार	कोष प्रवाह विवरण	लाभ-हानि खाता
1.	विषय सामग्री (Subject Matter)	कोष प्रवाह विवरण दो तिथियों के मध्य हुए कार्यशील पूंजी के अन्तर व कोष के स्रोत व उपयोगिता को अंकित करता है।	लाभ-हानि खाता व्यावसायिक क्रियाओं के शुद्ध परिणाम को दर्शाता है।
2.	प्रकृति (Nature)	कोष प्रवाह विवरण पूंजीगत व आयकत दोनों प्रकार के कोष का साधन और उपयोगिता दर्शाता है।	लाभ-हानि खाता एक अवधि की आय का उसी अवधि के आयगत खर्चों से मिलान करता है।
3.	उपयोगिता (Utility)	कोष प्रवाह संस्था की वित्तीय स्थिति, कोष के प्रयोग की प्रभावशीलता आदि की जानकारी देता है।	लाभ-हानि खाता केवल लाभार्जन की जानकारी देता है।
4.	उद्देश्य (Object)	कार्यशील पूंजी की वास्तविक स्थिति प्रकट करता है।	वास्तविक लाभ-हानि की स्थिति को प्रकट करना।
5.	प्रकाशन (Publication)	कोष प्रवाह का प्रकाशन अनिवार्य नहीं है।	लाभ -हानि खाते का प्रकाशन अनिवार्य है।
6.	अवधि (Period)	कोष प्रवाह विवरण की स्थिति निश्चित नहीं होती है।	यह एक निश्चित अवधि के लिये बनाया जाता है।

4.9 कोष प्रवाह विवरण तैयार करना

किसी भी संस्था का कोष प्रवाह विवरण को उस संस्था की तुलनात्मक चिट्ठों, प्राप्ति भुगतान खाता, लाभ-हानि खाता आदि की मदद से बनाया जा सकता है। मूलतः कोष प्रवाह विवरण तीन

चरणों में बनाया जाता है।

1. कार्यशील पूंजी में परिवर्तनों की अनुसूची तैयार करना (Preparation of statement of schedule of changes in working capital)
2. कोषों के स्रोत एवं उपयोग के विवरण (Statement of sources & uses of funds)
3. परिचालन से लाभ अथवा हानि (Fund from operattion)

कार्यशील पूंजी में परिवर्तनों की अनुसूची

कोष प्रवाह विवरण तैयार करते समय कार्यशील पूंजी में परिवर्तन को प्रदर्शित करना आवश्यक होता है। कार्यशील पूंजी में वृद्धि कोष का स्रोत कहलाती है। वरन् कार्यशील पूंजी में यह परिवर्तन दो अलग-अलग तिथियों पर निर्मित चिट्ठों में दिये गये चालू संपत्ति व चालू दायित्वों के आधार पर की जाती है। चिट्ठे की अन्य मदों एवं दी गई सूचनाओं को कार्यशील पूंजी के परिवर्तनों के अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

इसमें सर्वप्रथम चिट्ठों में अंकित चालू सम्पत्तियाँ एवं चालू दायित्वों को गत एवं चालू वर्ष के लिये अलग-अलग दर्शाया जाता है तथा उनका अलग-अलग योग कर लिया जाता है। तत्पश्चात् प्रत्येक चालू संपत्ति व चालू दायित्व में हुए परिवर्तन को वृद्धि या कमी के अधार पर कार्यशील पूंजी में परिवर्तन के खाते में दर्शायी जाती है।

निम्नलिखित नियमों के आधार पर कार्यशील पूंजी में अन्तर, परिवर्तन के खाते में दर्शाये जाते हैं-

1- चल संपत्तियों में वृद्धि कार्यशील पूंजी बढ़ा देती है।
2- चल संपत्तियों में कमी कार्यशील पूंजी में कमी लाती है।
3- चल दायित्वों में वृद्धि कार्यशील पूँजी में कमी लाती है।
4- चल दायित्वों में कमी कार्यशील पूंजी में वृद्धि लाती है।

कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची का प्रारूप निम्नलिखित है :-

Statement for Schedule of changes in working capital.

			कार्यशील पूंजी पर प्रभाव	
	गतवर्ष	चालू वर्ष	वृद्धि	कमी
Current Assets	–	–		
Cash	–	–		
Debrots	–	–		
Stock	–	–		
Current Liabilities	–	–		
Creditors	–	–		
Bills Payable	–	–		
कार्यशील पूंजी में शुद्ध वृद्धि या शुद्ध कमी				

Example 1 : Curmet assets & Current liabilities extracted from the comparative Balance Sheet of Raj Ltd. for 2008 & 2009

	2008	2009
	Rs.	Rs.
Cash in hand	4000	5000
Bill in Receivable	7000	9000
Book Debts	21000	26000
Stock	29000	36000
Investment in Govt. Securities	7000	4000
Prepaid expenses	1500	500
	69500	**80500**
Bill Payable	5000	4000
Creditors	17000	18000
Provision for tax	9000	6000
Reserve for D/D	3000	4000
Out Standing expenses	300	500
	34300	**32500**

Solution 1-

Schedule of Working Capital Charges

	31st March		Working Capital Charges	
	2009	2008	Increase	Decrease
Current Assets				
Cash in Hand	5000	4000	1000	–
Bill Receivable	9000	7000	2000	–
Book Debts	26000	21000	5000	–
Stock	36000	29000	7000	–
Investment in Govt. Securities	4000	7000	–	3000
Biepaid Expenses	500	1500	–	1000
	80500	**69500**		
Current Liabilities				
Bills Payable	4000	5000	1000	
Creditor's	18000	17000		1000
Provision for Tax	6000	9000	3000	
Reserve for D/D	4000	3000		1000
Outstanding Expenses	500	300		200
	32500	34300		
	48000	**35200**		
Increase in Working Capital				12,800
			19000	**19000**

कार्यशील पूंजी में परिवर्तनों की अनुसूची बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें - कार्यशील पूंजी में परिवर्तनों की अनुसूची बनाते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है-

1. लेखा बनाते समय केवल वे ही चल सम्पत्ति और चल दायित्व सम्मिलित करेंगे, जो चिट्ठे में प्रदर्शित किये गये हैं। अचल सम्पत्ति व अचल दायित्व अनुसूची में शामिल नहीं करना चाहिए।

2. ऐसे दीर्घकालिक ऋण जो देय हो चुके हैं वे एक वर्ष के भीतर जिनका भुगतान करना है वे चालू संपत्ति में शामिल किये जायेंगे। परन्तु ऐसे दीर्घकालिक ऋण भुगतान चल संपत्तियों से ही किया जाना चाहिये। यदि इसका भुगतान दीर्घकालीक दायित्वों से किया जाना तो उसे चालू दायित्वों की गणना में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

3. किसी भी व्यवसाय में निवेश अगर अल्पकालीन अथवा व्यापारिक हो, जिसे उद्यमी अपनी इच्छानुसार बेच सकता हो, ऐसे निवेश को चालू संपत्ति की गणना में सम्मिलित किया जाता है।

यदि प्रश्न में यह स्पष्ट किया गया हो कि विनियोग अल्पकालीन है या दीर्घकालीन, तो सूचना में चालू वर्ष में विनियोग के क्रय-विक्रय की राशि दी होने पर, उसे चालू संपत्ति में सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा सूचना के अभाव में गैर चालू संपत्ति मानना चाहिए।

4. करो के आयोजन को अगर चालू दायित्व माना गया है तो आयोजन की राशि को चालू दायित्व मानकर कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची शामिल किया जाता है। परन्तु यदि करों के आयोजन को गैर चालू दायित्व माना गया है तो आयोजन की राशि को कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची में शामिल नहीं किया जायेगा। यहाँ पर आयोजन की राशि को कोषों का स्रोत तथा भुगतान की गई राशि को कोषों का उपयोग की तरह कोष प्रवाह विवरण में प्रदर्शित करेंगे।

5. प्रस्तावित लाभांश में भी सामान्यतः दो विचारधाराऐं हैं। यदि प्रस्तावित लाभांश को चालू दायित्व माना गया है तो उसे कार्यशील पूंजी में सम्मिलित किया जायेगा एवं चालू वर्ष में किये गये लाभांश के भुगतान को कोष प्रवाह विवरण में सम्मिलित नहीं करेंगे। दूसरी विचारधारा के अनुसार अगर प्रस्तावित लाभांश को गैर चालू दायित्व माना गया है तो इसे कार्यशील पूंजी के परिवर्तन की अनुसूची में सम्मिलित नहीं करेंगे। यहाँ पर प्रस्तावित लाभांश को कोषों का स्रोत तथा किये गये भुगतान को कोषों के उपयोग मानकर कोष प्रवाह विवरण में सम्मिलित करेंगे।

4.10 कोषों के स्रोत एवं उपयोग का विवरण

कोषों के स्रोत एवं उपयोग का विवरण कोष प्रवाह विवरण का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसमें कार्यशील पूंजी में हुए शुद्ध परिवर्तन के साथ चिट्ठे में प्रदर्शित स्थायी संपत्तियों, दीर्घकालीन दायित्वों,

पूँजी एवं अन्य सूचनाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। अंश पूँजी एवं दीर्घकालीन ऋणों में वृद्धि कोषों का स्रोत कहलाती है एवं कमी कोषों का उपयोग कहलाती है। इसी प्रकार स्थायी संपत्तियों का क्रय एवं कार्यशील पूंजी में शुद्ध वृद्धि कोषों का स्रोत व संपत्तियों का विक्रय व कार्यशील पूँजी में शुद्ध कमी कोषों का उपयोग कहलाता है। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि अंशपूँजी ऋण एवं स्थायी संपत्तियाँ, चालू संपत्तियाँ, और चालू दायित्वों को भी प्रभावित करें। अगर अंशपूँजी, दीर्घकालिक ऋण व स्थायी संपत्तियों को प्रभावित करते हैं तो उन्हें हम इस विवरण में सम्मिलित नहीं करेंगे। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि चिट्ठे में दर्शाये मूल्यों को और दी गई अतिरिक्त सूचना के अनुसार ही गणना करके वृद्धि या कमी को निर्धारित करना चाहिए।

कोषों के साधन और उपयोग का विवरण (Statement of Sources and uses of Funds)

यह एक ऐसा विवरण है जिसमें कोष के स्रोत और उपयोगों को बताया जाता है। यह विवरण निम्नलिखित तीन प्रारूपों में बनाया जाता है -

(अ) खाता प्रारूप (Account from)

(ब) समाधान प्रारूप (Reconcilation Form) व

(स) प्रतिवेदन प्रारूप (Report Form)

(अ) खाता प्रारूप (Account from)- इसे T प्रारूप (T Form) भी कहते हैं। इसमें कोष के साधनों को बायीं ओर कोष के उपयोगों को दाहिनी ओर दिखाया जाता है। दोनों पक्षों में होने वाली अन्तर की राशि कार्यशील पूँजी में जमा होने वाले परिवर्तन की राशि के बराबर होती है। इसका नमूना निम्नलिखित है-

Funds Flow Statement (Account Form)

	Sources of Funds	Amount Rs.		Use of Funds	Amount Rs.
1.	Profit From Operations	....	1.	Losses in Operations	....
2.	Issue of Share Capital	....	2.	Redemption Share Capital	....
3.	Issue of Debentures	....	3.	Redemption of Debentures and bonds	....
4.	Receipts from Long Terms Loans	....	4.	Payment of Long Term Liabilities	....
5.	Sale of Fixed Assets	....	5	Purchase of Fixed Assets	....
6.	Non-Trading Receipts (Interest, Dividend etc.)	....	6.	Non-Trading Payments (Payment of Dividents, Taxes etc.)	....
7.	Net Decrease in Working Capital	....	7.	Net Increase in Working Capital	....

समाधान प्रारूप (Reconcilation Form)

यह प्रारूप बैंक समाधान विवरण के समान होता है। इसमें प्रारम्भिक शुद्ध कार्यशील पूंजी में कोष के साधनों को जोड़कर कोष के उपयोगों को घटा दिया जाता है। अवशेष राशि वर्ष के अन्त की शुद्ध कार्यशील पूंजी के बराबर होती है। इसका संक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार है-

	Amount Rs.
Net Working Capital (at the beginning)	....
Add: Sources of Funds	....
Less Uses of Funds	....
Net Working Capital (at the end)	....

प्रतिवेदन प्रारूप (Report Form) यह सर्वाधिक प्रचलित प्रारूप है। इसमें सर्वप्रथम कोष के विविध साधन को लिखकर जोड़ लिया जाता है। तत्पश्चात् कोष के विविध उपयोगों को लिख करके जोड़ लिया जाता है। कोष के साधन और उपयोगों का अन्तर ही शुद्ध कार्यशील पूंजी में वृद्धि या कमी की राशि होती है। प्रतिवेदन प्रारूप का नमूना निम्नांकित है।

Funds Flow Statement (Report Form)

Sources of Funds	**Amount (Rs.)**
1. Profit from Operations	....
2. Issue of Share Capital	....
3. Issues of Debentures	....
4. Receipts from long Term Loans	....
5. Sales of Fixed Assets	....
6. Trading Receipts	....
7. Net Decrease in Working Capital	....
Total	....

Use of Funds

1. Loss in Operations	....
2. Redemption of Preference Share Capital	....
3. Redemption of Denebtures and Bonds	....
4. Repayment of long Term loans	....

5.	Purchase of Fixed Assets	....
6.	Non - Trading Payments	....
7.	Net Increase in Working Capital	....
	Total	....

Example - 2

ABC Corporation लि. के 31 दिसम्बर, 2008 और 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के निम्नलिखित आर्थिक चिट्ठों से कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची एवं कोष के स्रोतों व उपयोगों को प्रदर्शित करने वाला विवरण तैयार कीजिए : From the following Balance Sheets of ABC Corporation Ltd. for the year ending 31st December 2008 and 2009, prepare schedule of changes in working capital and Statement showing sources and application of funds.

Liabilities	2008 Rs.	2009 Rs.	Assets	2008 Rs.	2009 Rs.
Share Capital	3,00,000	4,00,000	Plant & Machinery	30,000	40,000
Sundry Creditors	60,000	40,000	Land & Building	20,000	35,000
Bills Payable	30,000	10,000	Furniture & Fixture	10,000	5,000
Ourstanding Expenses	10,000	20,000	Stock	95,000	80,000
Profit & Loss Account	15,000	30,000	Debators	1,40,000	1,75,000
			Cash	1,20,000	1,65,000
	4,15,000	**5,00,000**		**4,15,000**	**5,00,000**

Solution

Schedule of Changes of Working Capital

Items	2008	2009	Working Capital Increase Rs.	Changes Decrease Rs.
A. Current Assets				
Cash	1,20,000	1,65,000	45,000	
Debtors	1,40,000	1,75,000	35,000	
Stock	95,000	80,000		15,000
Total (A)	**3,55,000**	**4,20,000**		
B. Current Liabilities				
Sundry Liabilities	60,000	40,000	20,000	
Bills Payable	30,000	10,000	20,000	
Outstanting Exp.	10,000	20,000		10,000
Total (B)	**1,00,000**	**70,000**		
Working Capital (A-B)	2,55,000	3,50,000		
Net Increase in Working Capital	95,000			
	3,50,000	**3,50,000**	**1,20,000**	**1,20,000**

NMDC-129

Statement of Sources and Application of Funds

(For the year ended 31st December 2009)

	Amount Rs.
Source of Funds	
Issue of Share Capital	1,00,000
Funds from Operations	15,000
Sale of Furniture & Fixtures	5,000
	1,20,000
Application of Funds	
Purchase of plant and machinery	10,000
Purchase of Land & Buildings	15,000
Net Increase in Working Capital	95,000
	1,20,000

कोषों के स्त्रोत एवं उपयोग विवरण तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बातें :

(1) स्थायी संपत्ति का क्रय-विक्रय :- कोष प्रवाह विवरण में स्थायी संपत्ति का क्रय स्थायी संपत्ति में वृद्धि व स्थायी संपत्ति का विक्रय स्थायी संपत्ति में कमी प्रदर्शित करता है। परन्तु स्थायी संपत्ति का क्रय ज्ञात करने के लिये उसकी लागत ज्ञात करना आवश्यक है। क्रय की राशि ज्ञात करने के लिए चालू वर्ष की लागत में से गत वर्ष की लागत को घटा देंगे अथवा शेष बची हुई राशि क्रय की गई संपत्ति की लागत होगी। इस बात का भी ध्यान रखना है कि गतवर्ष की लागत में से बेची गई या अपलिखित संपत्ति की लागत को घटा देंगे।

	Amount Rs.	Amount Rs.
Cost of fixed Assets in Current Year	–	–
Cost of fixed Assets in Previous Year	–	–
Less : Cost of Machine sold	–	–
Purchase of fixed Assets	–	–

Example 3

एक कंपनी की स्थायी संपत्तियों के अपलिखित मूल्यों का शेष 2007 व 2008 के अंत में क्रमशः 4,00,000 व 7,00,000 रुपये था। स्थायी संपत्तियों पर संचयी ह्रास 2007 व 2008 के लिये क्रमशः 2,00,000 व 3,00,000 रुपये था। एक मशीन, जिसकी लागत रुपये 50,000 थी, उसे 2008 में अपलिखित कर दिया गया। स्थायी संपत्ति का क्रय ज्ञात कीजिये।

Solution -2

	Amount Rs.	Amount Rs.
Cost of Machinery in 2008		10,00,000
Cost of Machine in 2007	6,00,000	
Less : Cost of Machinery Written off	50,000	–
Purchase of Machinery		4,50,000

Working Note :

प्रश्न में लागत की सूचना न होने पर सर्वप्रथम लागत करेंगे।

लागत = अपलिखित मूल्य + संचयी ह्रास

2007 की लागत = रूपये 4,00,000 + रूपये 2,00,000 = रुपये 6,00,000

2008 की लागत = रुपये 7,00,000 + रुपये 3,00,000 = रुपये 10,00,000

(2) **दीर्घकालीन विनियोग** की गणना भी कठिन स्थायी संपत्ति की तरह ही की जाती है। दीर्घकालीन विनियोग में वृद्धि कोषों का उपयोग व दीर्घकालीन विनियोग में कमी कोषों का साधन कहलाता है। स्थायी संपत्ति की तरह विनियोग में वृद्धि का क्रय व विक्रय माना जायेगा। विनियोग की गणना करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि विनियोग के अधिग्रहण से पूर्व की अवधि का लाभांश विनियोग खाते में क्रेडिट करेंगे। विनियोग की क्रय की गणना करने के लिए चालू वर्ष में से गत वर्ष के मूल्य को घटाकर उसमें अधिग्रहण से पूर्व लाभांश को जोड़ देना चाहिए।

	Amount Rs.	Amount Rs.
Current year Investment	–	–
Less : Previous year Investment	–	–
Add : Pre aquisition Divided	–	–
	–	–

उदाहरण - 4

अर्पित लि0 के चिट्ठे के दायित्व पक्ष से मिली सूचनानुसार कंपनी के पास वर्ष 2007 व 2008 में 6,00,000 रुपये व 4,50,000 रुपये के 5 प्रतिशत ऋण पत्र थे। ऋण पत्र शोधन पर 5000 रुपये का लाभ वर्ष 2008 में हुआ। कोष प्रवाह विवरण के लिये शोधन की राशि ज्ञात करें।

Particulars	Amount Rs.	Amount Rs.
5 % Debentures [2007]	6,00,000	
5% Debentures [2008]	4,50,000	1,50,000
Profit of redemption		5,000
Amount of Redemption of Debentures		1,45,000

NMDC-129

अंश पूंजी – दो तिथि के मध्य हुए अंश पूंजी को सामान्यतः कोष का साधन मानते है। क्योंकि साधारणतया यह परिवर्तन वृद्धि के रूप में ही होता है। अंश पूंजी में हुई वृद्धि को अंश निर्गमन के नाम से प्रदर्शित किया जाता है। ऋण पत्रों की तरह यहाँ भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि ऋण पत्रों को शोधन का स्थायी संपत्ति के क्रय के बदले में निगमित किये गये अंशों में हुई वृद्धि को कोष विवरण में साधन की तरह नहीं दर्शाएंगे। अगर अंशों का निर्गमन प्रीमियम पर हुआ है तो वृद्धि में प्रीमियम की राशि जोड़ देंगे और उसी तरह छूट की राशि वृद्धि की रकम से कम कर देंगे।

पूर्वाधिकार अंश पूंजी के शोधन के कारण अंश पूंजी के परिवर्तन में कमी आ सकती है। पूर्वाधिकार अंश पूंजी के शोधन में होने वाली कमी कोष का प्रयोग कहलाती है।

उदाहरण –5 मनोज लि0 की अंश पूंजी 2008 में 5,00,000 रुपये व 2007 में 25,00,000 रुपये थी। अभिलेखों से ज्ञात किया गया है कि कंपनी ने अन्य कंपनी की संपत्तियों को 6,00,000 रुपये में खरीदा जो पूर्णतया अंशों में देय थी। इस संपत्तियों में स्कंध 1,00,000 रुपये, मशीन, 1,83,600 रुपये, ख्याती 2,00,000 रुपये शामिल थे। अंशों के निर्गमन से कोष की राशि ज्ञात कीजिये।

Particulars	Amount Rs.	Amount Rs.
Share Capital [2008]	5,00,000	
Share Capital [2007]	25,00,000	
Increase Capital		25,00,000
Less : Share Capital issued for machinery & goodwill		4,83,600
Fund from issue of shares		20,16,400

(5) परिचालन से लाभ अथवा हानि – परिचालन से लाभ कोष का साधन कहलाता है व परिचालन से हानि कोष का प्रयोग कहलाता है।

परिचालन से लाभ अथवा हानि (Profit from operation) शुद्ध लाभ की गणना करते समय कुछ गैर नकदी खर्चों को डेबिट किया जाता है। परन्तु इन गैर नकदी खर्चों से कार्यशील पूंजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ठीक उसी तरह कुछ ऐसी आय अथवा हानियों को भी लाभ-हानि खाते में क्रेडिट किया जाता है, जो कार्यशील पूंजी पर कोई प्रभाव नहीं डालते। ऐसी मदों को गैर संचालन मदें कहते हैं। सामान्य शब्दों में हम परिचालन से हुए लाभ या हानि को ज्ञात करने के लिये शुद्ध लाभ में गैर नकदी खर्चों व हानियों को जोड़ने तथा आय व लाभ घटायेंगें।

Exp.-6

Net Pofit for current year		3,00,000
Add : Non Cash expenses & Losses Depreciation	1,00,000	
Preliminary expenses	13,500	

Discount on issues of shares	19,000	
Goodwill written off	17,500	
Less on logntерm Investment	10,000	1,60,000
		4,60,000
Less : Discount received		
Profit on sales of fixed Assets	5,000	
Appreciation of fixed Assets	1,500	6,500
Profit from operation		4,53,500

6. **गैर नकदी व हानि की गणना :-** जब ख्याती, ऋण पत्र/ अंशों के निर्गमन पर छूट, अभिगोपन, कमीशन अथवा प्रारंभिक व्यय आदि का चालू वर्ष के चिट्ठे में रकम गत वर्ष की रकम से कम होती है, तो यह माना जाता है कि इन मदों को लाभ-हानि खाते में अपलिखित कर दिया गया है। इसे गैर नकदी खर्च मानकर शुद्ध लाभ में जोड़ दिया जाता है।

7. **ह्रास की गणना -** सामान्य ह्रास की स्पष्ट सूचना प्रश्न में दी जाती है। परन्तु यदि प्रश्न में संचयी ह्रास की रकम दी है तो फिर चालू वर्ष तक के ह्रास में से गत वर्ष के ह्रास को घटायेंगे तथा उसमें से क्रय की गई स्थायी संपत्ति पर लगा ह्रास भी घटायेंगे। ज्ञात की गई रकम चालू वर्ष की ह्रास की रकम होगी।

Particulars	Amount Rs.	Amount Rs.
Total Depreciation upto current year	–	
Total Depreciation upto Previous year	–	
Less : Depreciation on fixed asset sold written off	–	
Depreciation for current year		

8. **लाभांश की गणना :-** किसी भी संस्था में चालू वर्ष में गत वर्ष का प्रस्तावित लाभांश व अंतिरिम लाभांश दिया जाता है। इस लाभांश को कोष का प्रयोग मानते हैं। गत वर्ष के चिट्ठे में दिये हुए प्रस्तावित लाभांश की रकम ही प्रस्तावित लाभांश मान ली जाती है।

4.10 सारांश

इकाई के इस भाग में हमने कोष प्रवाह विवरण को समझाने का प्रयत्न किया है। इस पाठ में कोषों के स्रोत व उपयोग की व्याख्या की गई है। इसमें कोष के मुख्य स्रोत जैसे संचालन, स्थायी संपत्ति का विक्रय, दीर्घकालीन ऋण, अंश पूंजी को समझाया गया है। साथ ही कोष के विभिन्न उपयोग जैसे स्थायी संपत्ति का क्रय, लाभांश का भुगतान, दीर्घकालीन ऋण का भुगतान आदि का भी विश्लेषण किया गया है। अंततः हमें ज्ञात हुआ कि विभिन्न लेखों की जानकारी द्वारा कोष प्रवाह

विवरण को निर्मित किया जाता है।

इस पाठ में कोष प्रवाह विवरण और रोकड़ प्रवाह विवरण के अन्तर को भी समझाया गया है। साथ ही कोष प्रवाह विवरण के महत्व, उसकी सीमाओं व उद्देश्यों का भी विश्लेषण किया गया है।

Self Assesment Question -

1. कोष प्रवाह विश्लेषण से क्या तात्पर्य है? कोष के मुख्य स्रोत व उपयोग क्या है?

   What is fund flow analysis ? What are major 'sources' and 'uses' of funds?

2. कार्यशील पूँजी में परिवर्तन के कौन-कौन से कारण हैं? इन परिवर्तनों का विवरण किस प्रकार दिखाया जा सकता है?

   What are the causes for changes in working capital ? How these changes can be shown in statement.

3. अजय कंपनी लिमिटेड का चिट्ठा निम्नलिखित है :-

   The following is the balance sheet of Ajay Ltd.

Liabilities	31.12.07	31.12.08	Assets	31.12.07	31.12.08
Share Caiptal	1,50,000	1,87,000	Furniture	1,50,000	1,42,500
Resume fund	37,000	45,000	Machinery	1,12,500	1,30,500
P B La/c	22875	22,950	Stock	75,000	55,000
Bank loan	52,800	–	Debtors	60,000	48,150
Creditors	1,12,500	1,01,400	Cash	375	6,480
Provision for tax	22,500	26,280			
	3,97,875	3,83,100		3,97,875	3,83,100

अतिरिक्त सूचना

1. वर्ष 2008 में 15000 रुपये का लाभांश दिया गया।
2. वर्ष के दौरान 18750 रुपये का आयकर प्रावधान किया गया।
3. वर्ष 2008 में मशीन पर ह्रास के लिये 10500 अपलिखित किये गए।

वर्ष के लिए कार्यशील पूंजी की अनुसूची तथा कोष प्रवाह विवरण बनाइये -

Additional Information

1. Dividend Rs. 15000 was paid in the year 2008
2. Income tax provision was made Rs. 18750 during the year.
3. Depreciation written off on machinery was Rs. 10500 for he year

NMDC-129

2008.

You are required to prepare a schedule of changes is working capital and funds flow statement for the year 2008. Ans : Increase in working capital Rs. 345575, Profit from operation Rs. 40575, Total of Statement 78075

4. "कोष प्रवाह विवरण प्रबन्ध को कम्पनी की वित्तीय स्थिति के प्रभावपूर्ण वर्णन में सहायता करता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए और कोष प्रवाह विवरण के निर्माण की विधि का विवेचन कीजिए।

"Fund flow statement helps the management to depict effectively the financial position of a company" Explain this Statement and discuss the procedure of construction of a funds flow statement.

5. कोष प्रवाह विवरण का अर्थ एवं मूल उद्देश्य बताइए। यह (अ) आर्थिक चिट्ठा, (ब) लाभ-हानि खाता से किस प्रकार भिन्न है?

"State the meaning and main objectives of funds flow statement. How does it differ from (a) Balance Sheet (b) Profit and loss Account.

6. "31 दिसम्बर, 2008 तथा 2009 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए एक कम्पनी को निम्न सूचनाओं के आधार पर कोष प्रवाह विवरण तथा कार्यशाली पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची तैयार कीजिए।

"On the basis of following information, for the year ending 31st December, 2008 and 2009 prepare Funds Flow statement and Schedule of working capital changes

Liabilities	2008 Rs.	2009 Rs.	Assets	2008 Rs.	2009 Rs.
Creditors	20,000	25,000	Cash	20,000	10,000
B/P	20,000	5,000	Marketable Securities	10,000	–
Other Current Liab.	10,000	15,000	Stock	60,000	1,00,000
6% Debentures	–	30,000	Debtors	30,000	40,000
Equity Share Capital	50,000	50,000	Gross Fixed Assets	1,00,000	1,40,000
Profit & Loss A/c	80,000	1,10,000			
Accumulated Depreciation				40,000	55,000
	2,20,000	2,90,000		2,20,000	2,90,000

Ans; Increase in Working capital Rs. 35,000=00

Total of funds flow Statement Rs. 75,000=00

इकाई 5 : रोकड़ प्रवाह का विवरण (Cash flow Statement)

इकाई रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 रोकड़ प्रवाह का अर्थ
5.3 रोकड़ प्रवाह विवरण के उद्देश्य एवं महत्व
5.4 रोकड़ प्रवाह विवरण की सीमाएँ
5.5 रोकड़ प्रवाह का वर्गीकरण
5.6 रोकड़ प्रवाह की गणना
5.7 सैद्धान्तिक प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- रोकड़ प्रवाह विवरण का अर्थ ज्ञात होगा।
- रोकड़ प्रवाह विवरण के उद्देश्य एवं महत्व की जानकारी होगी।
- रोकड़ प्रवाह विवरण की सीमाएँ ज्ञात होगी।
- रोकड़ प्रवाह के विभिन्न प्रकारों की जानकारी होगी।
- रोकड़ प्रवाह गणना की प्रक्रिया की जानकारी होगी।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

रोकड़ प्रवाह विवरण किसी संस्था में दो तिथियों के बीच हुए रोकड़ में परिवर्तन की जानकारी देता है। रोकड़ प्रवाह विवरण, रोकड़ अन्तर्वाह रोकड़ बहिर्वाह के कारणों का विश्लेषण करता है।

5.2 रोकड़ प्रवाह का अर्थ

रोकड़ प्रवाह विवरण में रोकड़ व रोकड़ तुल्य (Cash equivalent) की प्राप्ति व उसके प्रयोग की गणना की जाती है। किसी भी संस्था में रोकड़ प्रवाह विवरण किसी एक निश्चित अवधि के लिये चिट्ठे एवं लाभ-हानि खाते के आधार पर रोकड़ की प्राप्ति एवं उसका प्रयोग दर्शाता है। जिन व्यावसायिक गतिविधियों से रोकड़ की प्राप्ति एवं उसका प्रयोग दर्शाता है। जिन व्यावसायिक गतिविधियों से रोकड़ में वृद्धि होती है, उन्हें अन्तर्वाह (cash inflow) व जिन व्यावसायिक

गतिविधियों से रोकड़ में कमी आती है, उन्हें रोकड़ बहिर्वाह (cash outflow) कहते हैं। व्यावसायिक गतिविधियों जैसे मजदूरी, माल का भुगतान, संपत्ति का मूल्य, अंशधारियों को लाभांश का भुगतान, सरकार को कर का भुगतान आदि के लिये रोकड़ उपलब्ध होना अति आवश्यक है। रोकड़ के बिना संस्था का कुशल संचालन असंभव है।

सामान्य शब्दों में "रोकड़ विवरण रोकड़ की उपलब्धता के आधार पर संस्था की वित्तीय स्थिति में हुए परिवर्तन को प्रदर्शित करता है।"

भारतीय लेखांकन मानक-3 के अनुसार "रोकड़ प्रवाह का अर्थ रोक एवं रोक तुल्यों के अन्त प्रवाह तथा बर्हिगमन से है।

5.3 रोकड़ प्रवाह के उद्देश्य/महत्व

1. **संस्था में रोकड़ की उपलब्धता** - रोकड़ प्रवाह विवरण संस्था में रोकड़ का अन्तर्वाह व बहिर्वाह करता है। इस स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्था के पास चालू समय में रोकड़ की उपलब्धता संतोषजनक है या नहीं।

2. **तरलता की गणना** - चालू दायित्वों के भुगतान करने में संस्था सक्षम है या नहीं, इसकी जानकारी ज्ञात करने के लिए तरलता का मूल्यांकन किया जाता है। बैंक व दूसरे वित्तीय संस्था की तरलता का विश्लेषण करने के लिए कोष प्रवाह विवरण का उपयोग करते हैं।

3. **कुशल संचालन में सहायक** - किसी भी संस्था में कमी व्यासायिक गतिविधियाँ रोकड़ की उपलब्धता से प्रभावित होती है। अतः रोकड़ प्रवाह विवरण संस्था के प्रबंधकों को तरलता एवं शोधन क्षमता का ज्ञान कराता है।

4. **नीति निर्धारण** - रोकड़ प्रवाह विवरण में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर दीर्घकालीन ऋणों को चुकाने, स्थायी संपत्ति के विस्तार एवं लाभ घोषित करने संबंधी नीतियों के निर्धारण में सहायक होती है।

5.4 रोकड़ प्रवाह विवरण की सीमाएं (Limitations)

1. रोकड़ प्रवाह विवरण केवल रोकड़ का विवरण दर्शाता है, वहीं आय विवरण रोकड़ और गैर रोकड़ दोनों प्रकार की मदों का विश्लेषण करता है।

2. रोकड़ प्रवाह विवरण तरलता की पूरी स्थिति स्पष्ट नहीं करता है। यह विवरण केवल रोकड़ की प्राप्ति और भुगतान को प्रदर्शित करता है।

3. रोकड़ प्रवाह विवरण, कोष प्रवाह विवरण की तरह पूर्ण स्थिति का चित्रण नहीं कर पाता है।

रोकड़ प्रवाह विवरण व कोष प्रवाह विवरण में अन्तर (Difference between cashflow and funds flow statement)

आभार	रोकड़ प्रवाह विवरण	कोष प्रवाह विवरण
अर्थ	यह एक निश्चित अवधि में रोकड़ व रोकड़ तुल्य की प्राप्ति एवं उसका प्रयोग दर्शाता है।	यह एक निश्चित् अवधि में हुए कोषों के स्रोतों व उसके उपयोग का विश्लेषण करता है।
उपयोगिता	यह संस्था की तरलता का विश्लेषण करता है व अल्पकालीन निर्णय लेने में सहायक होता है।	यह कार्यशील पूंजी में परिवर्तन व कोष के स्रोत व उपयोग दर्शाता हैं व दीर्घकालीन निर्णय लेने में सहायक होता है।
आधार	रोकड़ प्रवाह विवरण में गणना का आधार रोकड़ व रोकड़ तुल्य होता है।	कोष प्रवाह विवरण में गणना का आधार कार्यशील पूंजी में परिवर्तन होता है।
प्रवाह	रोकड़ प्रवाह विवरण रोकड़ के प्रवाह पर केन्द्रित होता है।	कोष प्रवाह विवरण कोष के प्रवाह पर केन्द्रित होता है।
लेखांकन मानक	रोकड़ प्रवाह विवरण में भारतीय लेखांकन मानक-3 के दिशा निर्देशों का पालन आवश्यक होता है।	कोष प्रवाह विवरण में लेखांकन मानक-3 के निर्देश लागू होना आवश्यक नहीं है।

रोकड़ प्रवाह विवरण और लाभ-हानि खाते में अन्तर (Difference between Cash Flow Statement and Profit and Loss Account)

रोकड़ प्रवाह विवरण और लाभ-हानि खाते (आय विवरण) में निम्न अन्तर होता है:

आभार	रोकड़ प्रवाह विवरण	लाभ - हानि खाता
उद्देश्य	इसका उद्देश्य लेखांकन अवधि के रोकड़ आगमन और बहिर्गमन का पूर्ण जानकारी देना होता है।	इसका उद्देश्य संस्था के शुद्ध परिणाम को प्रदर्शित करना होता है।
लेखांकन का आधार	यह लेखांकन के रोकड़ आधार पर तैयार किया जाता है।	यह लेखांकन के उपार्जन आधार पर तैयार किया जाता है।
प्रकाशन	सामान्यतया इसका प्रकाशन नहीं कराया जाता है।	इसे प्रकाशित करना अनिवार्य होता है।

रोकड़ से साधन और उपयोग (Sources and Application of Cash)- रोकड़ प्रवाह विवरण में व्यवसाय में रोकड़ के आगमन एवं बहिर्गमन पर प्रकाश डाला जाता है।

(अ) रोकड़ के साधन (Source of Cash) - व्यवसाय में जिन साधनों से रोकड़ प्राप्त होती है और रोकड़ कोष में वृद्धि होती है, वे इस प्रकार है-

(1) संचालन से रोकड़ (Cash from Operations) - व्यवसाय के संचालन से रोकड़ का आगमन होता है। परन्तु व्यवहार में समस्त लेन-देन नकदी में ही नहीं किए जाते बल्कि

उधार भी होते हैं। अतः ऐसे उधार लेन-देन (जैसे उधार क्रय-विक्रय) लाभ-हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ व वास्तविक संचालन से रोकड़ में अन्तर कर देते हैं। यह हो सकता है कि लाभ-हानि खाता तो हानि स्पष्ट करें परन्तु संस्था में संचालन से रोकड़ की स्थिति है। अतः संचालन से रोकड़ की गणना करके उसे रोकड़ के साधन के रूप में दिखलाया जाना चाहिए।

(2) स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय (Sale of Fixed Assets) - किसी स्थायी सम्पत्ति व विनियोग के विक्रय से प्राप्त रोकड़ को रोकड़ के साधन के रूप में दिखाया जाता है।

(3) अंशों व ऋणपत्रों का नकदी के लिए निर्गमन (Issues of Shares and Debentures for Cash) - जब अंश पूंजी व ऋणपत्रों का निर्गमन नकदी के लिए किया जाता है तो प्राप्त वास्तविक धनराशि रोकड़ का स्रोत होती है।

(4) अन्य प्राप्तियाँ (Other Receipts) रोकड़ के कुछ अन्य स्रोत भी हो सकते हैं, जैसे - आयकर की वापसी, लाभांश की प्राप्ति, सरकार से अनुदान या सहायता, विनियोगों से प्राप्त नकद लाभांश या नकद ब्याज आदि।

(ब) रोकड़ के उपयोग (Applications of Cash) - इसके अन्तर्गत निम्न मदें आती हैं, जिनसे रोकड़ शेष में कमी आती है व रोकड़ का बहिर्गमन होता है-

(1) संचालन से नकद हानि (Cash loss from Operations) - जिस प्रकार व्यवसाय संचालन से रोकड़ की गणना की जाती है, उसी प्रकार व्यवसाय संचालन से रोकड़ हानि का परिकलन किया जा सकता है।

(2) स्थाई सम्पत्तियों का क्रय (Purchase of fixed assets)- स्थाई सम्पत्तियों व विनियोगों का नकद क्रय करने पर रोकड़ का बहिर्वाह होता है और इन्हें रोकड़ के प्रयोग में दिखलाया जायेगा।

(3) शोध अंशों अथवा ऋणपत्रों का शोधन (Redemption of Reedeemable shares or Debentures)- ऋण-पत्रों या अंशों के शोधन पर चुकाई गई वास्तविक धनराशि रोकड़ का उपयोग मानी जाती है।

(4) अन्य भुगतान (Other Payments) कुछ अन्य नकद भुगतान भी रोकड़ प्रवाह विवरण में दिखलाए जाते हैं, जैसे, लाभांश, आयकर, ब्याज, जुर्माना आदि का भुगतान आकस्मिक व्यय, प्रारम्भिक व्यय, ऋणों का भुगतान आदि।

रोकड़ प्रवाह विवरण के प्रारूप (Forms of Cash Flow Statement)-रोकड़ प्रवाह विवरण निम्न दो प्रारूपों में से किसी एक में तैयार किया जा सकता है :-

(1) **विवरण प्रारूप (Statement Form)** - यह प्रारूप रोकड़ के प्रारम्भिक शेष से शुरु होता है और रोकड़ के स्रोतों को इसमें जोड़ा जाता है। फिर रोकड़ के उपयोगों को घटाया जाता है। इस गणना से प्राप्त परिणाम रोकड़ व अन्तिम शेष प्रदर्शित करेगा। व्यवहार में प्रायः इसी प्रारूप का प्रयोग किया जाता है।

Specimen of Cash flow statement : Report Form

Items	Amount Rs.	Amount Rs.
Cash Balance in the begining		....
Add : Cash from operations	....	
Issue of shares & Debentures	....	
Sale of Fixed Assets	....	
Decrease in Current Assets	....	
Increase in current liabilities	....	
Divident Received	....	
Bank Overdraft	....	
		....
Less : Aplications of cash		
Cash lost in operations	....	
Redemption of Shares & Debentures	....	
Purchase of fixed Assets	....	
Increase in current assets	....	
Decrease in current liabilities	....	
Repayment of Bank loan	....	
Tax Payment	....	
Cash Balance at the end		....

(2) **खाता प्रारूप (Account Form)** इस प्रारूप में रोकड़ प्रवाह विवरण हेतु एक खाता बनाया जाता है। खाते के बायीं तरफ रोकड़ के स्रोत और दायीं तरफ रोकड़ के उपयोग प्रदर्शित किए जाते हैं। प्रारम्भिक रोकड़ शेष बायी तरफ शुरू में लिखा जाता है और अंतिम रोकड़ शेष दायीं तरफ अन्त में लिखा जाता है। इस प्रकार खाते के दोनों पक्षों का योग बराबर आता है।

Cash in flow	Amount Rs.	Cash outflow Rs	Amount
Opening Balance of Cash	....	Cash lost in Operations	....
Cash from Operations	....	Redemption of Shares &	....
Issues of Share & Debentures	....	Debentures Purchase of fixed	
Sale of Fixed Assets	....	Assets increase in current assets	....

Decrease in Current Assets	....	Decrease in Current Liabilities	....
Increase in Current Liabilities	....	Dividends paid	....
Dividends Received	....	Closing Cash Balance	....
	....		....

5.5 रोकड़ प्रवाह का वर्गीकरण (Classification of cashflow)

लेखांकन मानक-3 (AS-3) के अनुसार रोकड़ प्रवाह विवरण को निम्न तीन वर्गों में विभाजित करके दिखाना चाहिये-

1. परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash flow from operating activities)
2. विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash fow from Investment activities)
3. वित्तीय क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash flow from financing activities)

उपर्युक्त तीन प्रकार की क्रियाओं का विस्तृत विवरण निम्नानुसार है :-

5.6 परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash Flow From Operating activities)

किसी भी संस्था में उपक्रम की आगम उत्पन्न करने वाली क्रियाएँ परिचाल क्रियाएँ कहलाती हैं। इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैः-

1. माल के विक्रय से प्राप्त रोकड़
2. सेवाएँ प्रदान करने से प्राप्त रोकड़
3. ग्राहकों से प्राप्त रोकड़
4. देनदारों से प्राप्त रोकड़
5. अधिकार शुल्क, फीस, कमीशन आदि से नकद प्राप्ति
6. बीमा प्रीमियम, बीमा दावे आदि नकद प्राप्ति
7. आयकर का रोकड़ भुगतान की वापसी

परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना

परिचालन प्रक्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना लाभ-हानि खाते पर आधारित होती है। गणना करने के लिए लाभ-हानि खाते में उल्लिखित आगम और व्ययों में से गैर-रोकड़ आगमों और गैर-रोकड़ व्ययों को घटा देंगे। दो रीति के माध्यम से परिचालन क्रियाओं पर आधारित रोकड़ प्रवाह की गणना कर सकते हैं-

(अ) प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)

(ब) अप्रत्यक्ष रीति (Indirect Method)

(अ) प्रत्यक्ष रीति (Direct Method) - इस रीति के अनुसार परिचालन क्रियाओं से होने वाली आय व भुगतान के अन्तर के आधार पर रोकड़ प्रवाह की राशि ज्ञात की जाती है। परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह ज्ञात करने का प्रारूप निम्नलिखित है-

संचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (प्रत्यक्ष विधि)

Calculation for Net cash flows from operating activities (Direct Method)

नकद विक्रय (Cash Sales)		
देनदारों/ग्राहकों से नकद प्राप्त (Cash receipt from customers/Debtors)		
संचालन गतिविधियों से रोकड़ प्राप्ति (cash receipt from operational activities)		
Less :		
कर्मचारियों को नकद भुगतान (cash paid to emplyee)		
आपूर्तिकर्ता को नकद भुगतान (cash paid to supplies)		
अन्य रोक संचालन क्रियाएँ (cash operating activities)		
रोकड़ संचालन गतिविधियों से उत्पन्न रोकड़ (Cash generated from operation activities)		
आयकर (Income Tax)		
असाधारण आय से पूर्व रोकड़ प्रवाह (Cach flows before extraordinary Income)		
Add :		
असाधारण आय (extra ordinary Income)		
संचालन गतिविधियों से शुद्ध रोकड़ (Net cash from Operating activities)		

प्रश्न में लेनदार देनदार या कर्मचारियों के भुगतान की चुकाई गई राशि की सूचना न होने पर चुकाई गई लेखा बनाकर ज्ञात की जायेगी।

देनदारों से नकद प्राप्ति
(Cash Received from Debtors)

उधार विक्रय (Credit sales)		
Add :		
देनदारों /प्राप्य विपत्र का प्रारंभिक शेष (Opening Debtors)		

Less :		
देनदारों /प्राप्य विपत्र का अंतिम शेष (Closing Debtors)		
देनदारों से नकद प्राप्ति (Cash received from Debtors)		

लेनदारों आपूर्तिकर्ताओं को नकद भुगतान
(Cash paid to supplier)

उधार क्रय (Credit Purchase)		
Add :		
लेनदारों /देय विपत्र का प्रारंभिक शेष (Opening Debtors)		
Less :		
लेनदारों /देय विपत्र का अंतिम शेष (Closing Debtors)		
आपूर्तिकर्ताओं को नकद भुगतान (Cash paid to supplier)		

कर्मचारियों को नकद भुगतान
(Cash paid to Employees)

वास्तविक वेतन एवं मजदूरी (Wage salaries on actual basis)		
Add :		
प्रारंभ में अदत्त (Outstanding of beginning)		
अंत में पूर्वदत्त (Prepaid at the end)		
Less :		
अंत में अदत्त (Outstanding at the end)		
प्रारंभ में पूर्वदत्त (Prepaid at beginning)		
कर्मचारियों को नकद भुगतान (Cash paid to Employee)		

Example : 1

"निम्न वित्तीय स्थिति से एक रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार कीजिए : "From the following financial position prepare a cash flow statement.

Liabilities	2008 Rs.	2009 Rs.	Assets	2008 Rs.	2009 Rs.
Share Capital	50,000	80,000	Plant	50,000	80,000
P & L A/c	10,000	16,000	Buildings	8,000	12,000
General Reserve	5,000	7,000	Inventory	10,000	7,500

NMDC-129

Creditors	15,300	19,000	Debtors	15,000	16,000
Bill Payable	4,000	5,000	Cash	2,000	12,000
Out Standing Expenses	700	500			
	85,000	**1,27,500**		**85,000**	**1,27,500**

अतिरिक्त सूचनाएँ :

(अ) वर्ष 2009 में प्लाण्ट पर 5,000 रु. ह्रास लगाया गया है।

(ब) वर्ष 2009 में प्लाण्ट का एक भाग 800 रु0 में बेचा गया इसकी लागत 1,200 रु0 थी तथा इस पर ह्रास 700 रु0 लगाया गया था।

Additional Information

(a) Rs. 5,000 depreciation has been charged on plant during the year 2009.

(b) A piece of plant was sold for Rs. 800 during the year 2009. It costed Rs. 1200 and depreciation of Rs. 700 was charged on it.

Solution

Cash flow statement (for the year 2009)

Source	Amount Rs.	Assets	Amount Rs.
Opening Cash Balance	2,000	Purchase of Building	4,000
Cash from Operations	18,700	Purchase of Plant	35,500
Sale of Plant	800	Closing Cash Balance	12,000
Issue of Shares	30,000		
	51,500		**51,500**

Calculation of cash from Operation

	Rs.	Rs.
Profit during the year		6,000
Add : Transfer to General Reserve	2,000	
Depreciation	5,000	
Decrease in Stock	2,500	
Increase in Creditors	3,700	
Increase in Bills Payable	1,000	14,200
		20,200
Less : Profit on Sales of Plant	300	
Decrease in Outstanding Exp.	200	
Increase in Debtors	10,00	1,500
		18,700

उदाहरण 2

ABC लि0 के 31 मार्च 2008 और 2009 के आर्थिक चिट्ठे निम्न प्रकार है :

The Balance sheet of ABC Ltd. as on 31st March 2008 and 2009 are given below :

Assets	2008 Rs.	2009 Rs.
Building less depreciation	1,00,000	96,000
Plant less depreciation	18,000	17,000
Stock	1,000	200
Debdtors	3,000	2,000
Cash	5,000	8,000
	1,27,000	**1,23,200**
Liabilities :		
Share Capital	1,20,000	1,20,000
General Reserve	5,300	2,400
Creditors	1,700	800
	1,27,000	**1,23,200**

2009 में विक्रय 6,37,000 रु. था। कम्पनी द्वारा कोई लाभांश नहीं चुकाया गया है। भवन और प्लाण्ट के मूल्यों में परिवर्तन 2009 के लिए मूल्य-ह्रास के कारणों से है। 2009 में 2900 रु. परिचालन में हानियां थी। रोकड़ प्रवाह दिखाते हुए एक विवरण तैयार कीजिए।

Sales in 2009 were Rs. 6,37,000. No dividend has been paid by the company. the changes in building and Plant values are on account of depreciation charges for 2009. There were operating losses of Rs. 2900 for 2009. Prepare a statement showing cash flow.

Solution

Cash flow statement (for the year ended 31st March, 2009)

Source	**Amount Rs.**	**Applications**	**Amount Rs.**
Opening Cash Balance	5,000	Payment to creditors	900
Cash from Operations	2,900	Closing cash balance	8,000
Collection from Debtors	1,000		
	8,900		**8,900**

Working notes

	Rs.	Rs.
Net Profit for the year		(–) 2900
Add : Depreciation on Building	4,000	
Depreciation on plant	1,000	5,000
Operating Profit		2,100
Add: Decrease in Current Assets Stock		800
Cash from Operations		2,900

उदाहरण : 3

निम्नलिखित सूचनाओं से प्रत्यक्ष रीति का प्रयोग करते हुए परिचालन क्रियाओं से रोकड़ बहाव की गणना कीजिए-

From the following information calculate cash flow from operating activities applying direct method.

Trading & P & L account for the year ended 31 March, 2008

Particulars	Rs	Particulars	Rs
To Cost of goods sold	1,50,000	By Sales	2,00,000
To Gross Profit	50,000		
	2,00,000		**2,00,000**
To Salaries	15,000	By Gross Profit	50,000
" Insurance	5,000		
" Depreciation	12,000		
" Net Profit	18,000		
	50,000		**50,000**

अतिरिक्त सूचनाएँ (Additional Informations)

	01.04.2007	01.04.2008
अतिरिक्त सूचनाएं (Debtors)	18000	25000
प्राप्त बिल (Bills Receivable)	7000	4000
लेनदार (Creditors)	8000	6000
स्टॉक (Stock)	20000	25000
अदत्त वेतन (Outstanding Salaries)	2000	8000
पूर्वदत्त बीमा प्रीमियम (Prepaid Insurance Premium)	1000	1000

Solution - 1

Calculation of cash flow from operating Activities -

Particulars	Rs......	Rs.........
Total Sales		2,00,000
Add : Opening balance of Debrors & Bill Rec.		25,000
Less : Closing balance of Debtors & Bills Rec.		29,000
Cash received from customers cash in flow : (a)		1,96,000
Cash paid to supplies and employees :		
Cost of Goods sold	1,50,000	
Add : Opening stock	25000	
	175000	
Less : Opening Stock	20,000	
Total Purchases	155000	
Add : Opening balance of creditors	8000	
	163000	
Less : Closing balance of credidors	6000	
Cash paid to supplier (i)	1,57,000	
Add : Salaries (15000+2000-8000) (ii)	9000	
Add : Insurance Premium (1000+5000-1000) (iii)	5000	
Cash out flow : (b) = (i) + (ii) + (iii)		1,71,000
Net Cash flow from operating activities (a)-(b)		25000

अप्रत्यक्ष रीति (Indirect Method)

इस रीति में करों से पूर्व शुद्ध लाभ को आधार बनाकर परिचालन क्रियाओं से शुद्ध प्रवाह की गणना की जाती है। अप्रत्यक्ष रीति में शुद्ध लाभ में गैर-रोकड़ (Non Cash) एवं गैर-परिचालन (Non Operating) क्रियाओं को समायोजित किया जाता है।

लाभ-हानि में डेबिट गैर-रोकड़ मदों और गैर परिचालन मदों जैसे ह्रास, ख्याति का अपलेखन, कोषों का हस्तांतरण, स्थायी संपत्तियों की बिक्री पर हानि, विनियोग पर हानि, प्रारंभिक व्यय का अपलेखन आदि को शुद्ध लाभ में जोड़ा जाता है। लाभ-हानि खाते के क्रेडिट में लिखी गैर-रोकड़ तथा गैर-परिचालन मदों जैसे विनियोग पर लाभांश, विनियोग के क्रय पर लाभ या स्थायी संपत्ति

NMDC-129

की बिक्री पर लाभ को शुद्ध लाभ में से घटाया जाता है। इसके अतिरिक्त चालू संपत्तियों में कमी व चालू दायित्वों में वृद्धि को शुद्ध लाभ में जोड़ा जाता है अथवा चालू संपत्तियों में वृद्धि व चालू दायित्वों में कमी को शुद्ध लाभ में से घटाया जाता है।

अप्रत्यक्ष. रीति के आधार पर परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना का प्रारूप निम्नलिखित है -

संचालन गतिविधियों से रोक प्रवाह (अप्रत्यक्ष विधि)

(Cash Flows from operating Activities [Indirect Method])

Particulars	Rs......	Rs.........
Net Profit before tax	–	–
Add : Non cash & Non Operating charges	–	
Depreciation	–	
Goodwill written off	–	
Preliminary Expenses written off	–	
Discount on issue of share/debentures	–	
Loos on sale of fixed assets	–	
Transfer to reserve	–	–
Less : Non cash & Non operating charges	–	
Profit on sale of fixed assets/Investment	–	
Interest received	–	
Dividend received	–	–
Profit before working capital charges		–
Add : Decrease in current Assets		
Increase in current liabilities		
Less : Increase in current Assets		
Decrease in current liabilities		
Cash generated from operating activities		
Less : Income Tax paid		
Extra ordinary items		
Net cash flow from operating activities		

उदाहरण : 4

निम्नलिखित सूचना से अप्रत्यक्ष विधि द्वारा संचालन गतिविधियों से उत्पन्न रोक प्रवाह की गणना कीजिए-

Compute the cash flow operating activities by indirect approach from the following information.

31 मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष की शुद्ध आय Net Income for the year ending 31st March	4,50,000
वार्षिक ह्रास (Annual Depreciation)	1,50,000
देनदारों में वृद्धि (Increase in Debtors)	35,000
लेनदारों में वृद्धि (Increase in Creditors)	50,000
फर्नीचर विक्रय पर लाभ जिसे लाभ-हानि खाते में हस्तां. किया गया [Profit on sale of furniture which was transferred to P&L a/c]	52,000

Solution

Cash flow from operating Activities (Indirect Method)

(For the year ending 31 st March........)

Particulars	Rs.	Rs.
Net Profit		4,50,000
Add : Depreciation		1,50,000
		6,00,000
Less : Profit on sale of furniture		52,000
Cash from operation (Before working Capital) Decrease in working capital		**5,48,000**
Add : Increase in sundry creditors		50,000
Increase in working capital		5,98,000
Increase in sundry debtors		35,000
Cash : flow from operating activities		**5,63,000**

विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह -

(Cash flow from Investing Activities)

विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना करते समय इसमें स्थायी संपत्तियों एवं प्रतिभूतियों में विनियोग के क्रय एवं विक्रय से यह ज्ञात किया जाता है कि इन विनियोजन क्रियाओं में रोकड़ का कितना उपयोग हुआ है व कितना रोकड़ उत्पन्न हुआ है।

विनियोगात्मक गतिविधियों के रोकड़ प्रवाह की गणना का प्रारूप निम्नलिखित हैविनियोगात्मक

गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह

(Cash flows from investing Activities)

स्थायी संपत्तियों के विक्रय से प्राप्तियाँ -

Proceeds from sale of fixed assets

Add : प्राप्त ब्याज (Interest received) -

प्राप्त लाभांश (Dividend Received) -

Less : स्थायी संपत्तियों का क्रय (Purchase of fixed assets) -

विनियोगात्मक गतिविधियों से शुद्ध रोकड़ -

Net cash from Investing activities -

वित्तीय गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह (cash flows from financing activities)

वित्तीय गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह की गणना करने के लिए समता अंश पूंजी, ऋण पत्र बॉण्ड्स तथा अन्य ऋणों से रोकड़ प्रवाह गणना करने का प्रारूप निम्नलिखित है

वित्तीय गतिविधियों से रोकड़ प्रवा

(Cash flows from financing Activities)

अंश पूंजी के निर्गमन से प्राप्ति -

(Proceeds from issue of share capital)

दीर्घकालीन ऋणों से प्राप्ति (Proceeds from long term borrowing) -

Less : दीर्घकालीन ऋणों का पुनर्भुगतान (Repayment of long term borrwoing)

लाभांश का भुगतान - (Dividend paid) -

वित्तीय गतिविधियों में शुद्ध रोकड़ -

Net cash from financing activities

रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करना

रोकड़ प्रवाह विवरण का प्रारूप

(format of cash flow statement)

[AS 3 Direct Method]

Particulars	**Rs.**	**Rs.**
Cash flow from operating activities	-	
Add : Cash receipt from customers	-	
Less : Cash paid to supplies & employee	-	

Less : Taxex paid	-	
Add : Other receipt	-	
Net cash from operating activities	-	
Cash flow from financing activities	-	
Less : Purchase of fixed assets	-	
Add : sale of fixed assets	-	-
Add : Interest received	-	-
Add : Dividend received	-	
Net cash flow from Investing activities	-	
Cash flows from financing activities	-	
Add : Issue of Shares		-
Add : Long term borrowing		
Less : Repayment of loans		
Interest Paid		
Less : Dividend paid		
Net cash from financing activities		
Net Increase in cash & cash equivalent		
Cash & cash equivalent at begining		
Cash & cash equivalent at end		

5.7 सारांश

इस इकाई मे संस्थाओं द्वारा बनाए जाने वाले रोकड़ प्रवाह विवरण का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इस पाठ में रोकड़ प्रवाह विवरण का महत्व और सीमाओं का भी विस्तृत उल्लेख किया गया है। साथ ही रोकड़ प्रवाह विवरण व कोष प्रवाह विवरण में अन्तर भी समझाया गया है। अंततः भारतीय लेखांकन मानक-3 के अनुसार रोकड़ विनियोगात्मक गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह व वित्तीय गतिविधियों से रोकड़ प्रवाह की गणना की विधि की व्याख्या की गई है।

5.8 Self assessment questions

1. रोकड़ प्रवाह विवरण से क्या तात्पर्य है। यह कोष प्रवाह विवरण से किस प्रकार भिन्न है? इसका महत्व समझाइए।

   What do you mean by cash flow statement? How does if different from funds flow statement ? Explain its importance.

2. परिचालन प्रक्रियाओं से रोकड़ प्रवाह निर्धारित करने की प्रत्यक्ष रीति का वर्णन कीजिए।

NMDC-129

NMDC-129

खण्ड

3

सीमान्त लागत लेखांकन

इकाई-1	5
सीमान्त लागत विधि की अवधारणा	
इकाई-2	19
सीमान्त लागत लेखांकन बनाम प्रत्यक्ष लागत लेखांकन- लागत मात्रा लाभ विश्लेषण : सम-विच्छेद विश्लेषण : मान्यताएँ तथा सम-विच्छेद विश्लेषण के व्यावहारिक उपयोग	
इकाई-3	39
निर्णयन के लिए सीमान्त लागत लेखांकन : प्रबन्धकीय निर्णय	
इकाई-4	60
लेखांकन योजना तथा उत्तरदायित्व केन्द्र-लागत केन्द्र, लाभ केन्द्र तथा विनियोग केन्द्र	
इकाई-5	72
हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण में समस्याएँ	
इकाई-6	78
उत्तरदायित्व केन्द्रों के उद्देश्य तथा निर्धारण तत्व	

NMDC-129

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिर्बा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 ओमशंकर गुप्ता	एसोशिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, जी0 डी0 बिन्नानी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक - कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज-2023

मुद्रक - के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

खण्ड-3 (सीमान्त लागत लेखांकन)

किसी भी वस्तु के उत्पादन में मुख्य रूप से दो प्रकार की लागतें होती हैं। प्रथम स्थायी लागत तथा द्वितीय परिवर्तनशील लागत। प्रथमक अर्थात स्थायी लागत से आशय ऐसी लागत से है जो उत्पादन की मात्रा (इकाइयों)के बढ़ने व घटने के साथ बढ़ती व घटती नहीं है, जैसे भवन का किराया, प्रबन्धक तथा कार्यालय कर्मचारियों का वेतन इत्यादि। द्वितीय अर्थात परिवर्तनशील लागत से आशय ऐसी लागत से है जो उत्पादन की मात्रा अर्थात इकाई के बढ़ने के साथ बढ़ती है तथा इकाई के घटने के साथ घटती है। जैसे सामग्री, श्रम व प्रत्यक्ष व्यय। सीमान्त लागत में केवल परिवर्तनशील लागत ही सम्मिलित की जाती है जो उत्पादन कम होने के कारण कम होती है तथा उत्पादन बढ़ने के साथ बढ़ती है। सीमान्त लागत की गणना करते समय व्ययों पर ध्यान नहीं दिया जाता है क्योंकि स्थायी व्ययों का उत्पादन की मात्रा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। सीमान्त लागत को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे - प्रत्यक्ष लागत, परिवर्तनशील लागत, भेदात्मक लागत एवं वृद्धि लागत इत्यादि।

NMDC-129

NMDC-129

इकाई - 1 सीमान्त लागत विधि की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा-

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सीमान्त लागत विधि की परिभाषा

1.2.1 सीमान्त लागत विधि की मौलिक विशेषताएँ

1.2.2 सीमान्त लागत विधि की मान्यताएँ

1.2.3 सीमान्त लागत विधि के लाभ

1.2.4 सीमान्त लागत विधि के दोष या सीमाएँ

1.3 सीमान्त लागत की गणना

1.4 सीमान्त लागत का समीकरण

1.5 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

1.5.1 कुल लागत विधि

1.5.2 युगपत समीकरण विधि

1.5.3 उच्च व निम्न बिन्दु

1.5.4 न्यूनतम वर्ग रीति

1.5.5 सीमान्त लागत विधि के अन्तर्गत लाभ-निर्धारण

1.6 सारांश

1.7 सम्बन्धित प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 : उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

सीमान्त लागत विधि स्पष्ट कर सकेंगें,

- सीमान्त लागत की विशेषताओं, लाभ-दोषों पर प्रकाश डाल सकेंगे
- सीमान्त लागत की विभिन्न विधियों का विश्लेषण कर सकेंगें, तथा
- सीमान्त लागत विधि के अन्तर्गत लाभ का निर्धारण कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

किसी विशेष दिये गये समय में उत्पादित की जाने वाली अन्तिम इकाई को सीमान्त इकाई तथा इस इकाई की लागत को सीमान्त लागत कहते है। दूसरे शब्दों में सीमान्त लागत एक ऐसी लागत होती है जो वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ निर्मित करने पर ही उत्पन्न होती हैं। यदि अतिरिक्त इकाइयों का उत्पादन नहीं किया जाय, तो सीमान्त लागत भी उत्पन्न नहीं होगी अर्थात किसी वस्तु के उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि करने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है, वह सीमान्त लागत कहलाती है।

सीमान्त लागत को परिवर्तनशील अथवा प्रत्यक्ष लागत भी कहते हैं क्योंकि अन्तिम इकाई की लागत पर स्थिर व्ययों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि परिवर्तनशील व्ययों में ही आनुपातिक वृद्धि होती है। जैसे किसी विशेष समय में 1000 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है, तत्पश्चात 1001 इकाइयों का उत्पादन किया जाता हो तो 1001वीं इकाई की लागत को सीमान्त लागत कहेंगें।

1.2 सीमान्त लागत विधि की परिभाषा

डी. जोसेफ के अनुसार, ''सीमान्त लागत वर्तमान उत्पादन स्तर से एक इकाई अधिक के उत्पादन के कारण कुल लागत में हुए परिवर्तन को निर्धारित करने की तकनीक हैं।''

आई.सी.डब्ल्यू.ए., लन्दन के अनुसार, '' उत्पादन की किसी दी हुई मात्रा में एक इकाई की वृद्धि अथवा कमी करने से सम्पूर्ण लागत में जो परिवर्तन होता है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं।''

सीमान्त लागत के अन्तर्गत प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय एवं समस्त परिवर्तनशील उपरिव्ययों को सम्मिलित किया जाता है। (सीमान्त लागत में स्थायी लागतों को सम्मिलित नहीं किया जाता है)।

1.2.1 सीमान्त लागत विधि की मौलिक विशेषताएँ

(Basic Characteristics of Marginal Costing)-

अ) लागत विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण की तकनीक - सीमान्त लागत विधि प्रक्रिया लागत या ठेका लागत विधि की तरह लागत निर्धारण करने की कोई पृथक एवं स्वतंत्र व्यवस्था नहीं

है, वरन् लागत विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण की ऐसी तकनीक है जो प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायता करती है। **ब) व्ययों का स्थिर एवं परिवर्तनशील में विभाजन -** सभी व्ययों उत्पादन व्यय, प्रशासनिक व्यय तथा बिक्री एवं वितरण व्यय को स्थिर एवं परिवर्तनशील में अलग-अलग विभाजित किया जाता है। अर्द्ध स्थिर व्ययों में भी स्थिर तथा परिवर्तनशील तत्वों को अलग किया जाता है।

स) उत्पादन लागत एवं आवधिक लागत - स्थिर लागत को आवधिक लागत माना जाता है और उसे सम्बन्धित अवधि के लाभ-हानि खाते में दर्शाया जाता है, जबकि परिवर्तनशील अर्थात सीमान्त लागत को उत्पाद लागत माना जाता है।

द) स्टॉक का मूल्यांकन - तैयार एवं अर्द्ध निर्मित माल के स्टॉक का मूल्यांकन सीमान्त लागत के आधार पर किया जाता है।

य) मूल्यों का निर्धारण - मूल्यों का निर्धारण सीमान्त लागत एवं अंशदान या दत्तांश के आधार पर किया जाता है।

र) लाभ की गणना - सीमान्त लागत विधि में लाभ की गणना एक विशेष ढंग से की जाती है। कुल विक्रय अगम में से सीमान्त लागत को घटाकर अंशदान या दत्तांश ज्ञात करते हैं और फिर अंशदान में से स्थिर व्ययों को घटाकर शुद्ध लाभ ज्ञात करते हैं।

ल) लागतों की वसूली - केवल परिवर्तनशील लागतों को ही उत्पाद की लागत में जोड़ा जाता है। स्थिर लागतों को अंशदान में से वसूल किया जाता है।

व) सम-विच्छेद विश्लेषण - सम विच्छेद विश्लेषण या लागत मात्रा लाभ विश्लेषण सीमान्त लागत विधि का एक अभिन्न अंग है।

1.2.2 सीमान्त लागत विधि की मान्यताएँ

(Assumptions of Marginal Costing) -

सीमान्त लागत विधि निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है -

अ) कारखाना (निर्माणी), प्रशासन और विक्रय एवं वितरण व्ययों इन सभी को स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में विभाजित किया जा सकता है।

ब) प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत, उत्पादन के सभी स्तरों पर स्थिर रहती है अर्थात कुल परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के अनुपात में परिवर्तित होती है।

स) परिचालन क्रिया के सभी स्तरों पर प्रति इकाई विक्रय मूल्य स्थिर रहता है।

द) उत्पादन के सभी स्तरों पर कुल स्थिर लागत अपरिवर्तित रहती है।

य) विद्यमान स्तर से अधिक उत्पादन किए जाने पर केवल परिवर्तनशील लागतें ही अतिरिक्त लागत के रूप में आती हैं।

1.2.3 सीमान्त लागत की विधि के लाभ

(Advantages of Marginal Costing) -

अ) **सरलता** - यह विधि लागत लेखांकन की प्रक्रिया को सरल और समझने योग्य बना देती है। वास्तव में इस विधि को समझना और अपनाना बहुत ही सरल है। लागतों को परिवर्तनशील तथा स्थिर में बांटकर तैयार किया गया आय विवरण प्रबन्ध के लिए सरलता से समझने योग्य होता है।

ब) **अन्तिम स्टॉक का उचित मूल्यांकन** - सीमान्त लागत विधि में अन्तिम स्टॉक का मूल्यांकन सीमान्त लागत के आधार पर होता है। यह इस दृष्टि से उचित एवं तार्किक माना जाता है कि एक अवधि की स्थिर लागत को स्टॉक के मूल्यांकन के रूप में अगली अवधि के लिए नहीं ले जाते ।

स) **लाभ नियोजन में सहायक** - यह विधि लाभ नियोजन में और विशेषकर अल्पकालीन अवधि में सहायक होती है। अल्पकाल में लाभ में कमी या वृद्धि विक्रय मूल्य तथा परिवर्तनशील लागत में परिवर्तनों के कारण होती है, क्योंकि अल्पकाल में स्थिर लागतों में परिवर्तन नहीं होता। अतः विक्रय मात्रा, मूल्य और परिवर्तनशील लागत में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके वांछित लाभ अर्जित करने की योजना बनाई जा सकती है। लाभ नियोजन के लिए विभिन्न संचालनात्मक परिस्थितियों में लागत व्यवहार की जानकारी भी आवश्यक होती है। सीमान्त लागत विधि में स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों का अन्तर करते हुए लागत व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तथा अंशदान के आधार पर लागत लाभ मात्रा सम्बन्धों के माध्यम से लाभ नियोजन में पर्याप्त सहायता प्राप्त की जाती है।

द) **अर्थपूर्ण प्रबन्धकीय रिपोर्टिंग** - यह विधि अर्थपूर्ण प्रबन्धकीय रिपोर्टिंग का ठोस आधार प्रदान करती है। इस विधि में रिपोर्टिंग उत्पादन पर आधारित न होकर विक्रय पर आधारित होती है। जिससे स्टॉक में परिवर्तन कार्यकुशलता की तुलना को प्रभावित नहीं करता। इसके साथ ही स्थिर लागत को अवधि लागत माने जाने के कारण इसका शुद्ध लाभ पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

य) **लाभदायकता मूल्यांकन** - लाभदायकता मूल्यांकन में यह विधि यन्त्र के रूप में सेवा करती है। यदि विभिन्न उत्पादों, विभागों, विक्रय क्षेत्रों या माध्यमों की लाभदायकता का तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो यह विधि काफी उपयोगी सिद्ध होती है।

र) **प्रमाप और बजटरी लागत में उपयोगी** - यह विधि प्रमाप और बजटरी लागत को अपनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में भी उपयोगी होती है।

ल) **स्थिर उपरिव्ययों के लेखों में सुविधा** - सीमान्त लागत विधि में स्थिर उपरिव्ययों की वसूली दर तथा उनके अति अथवा अल्प अधिशोषण की गणना करने की आवश्यकता नहीं रहती,

NODC-129

क्योंकि स्थिर व्ययों को अंशदान में से घटाया जाता है।

व) लागत नियन्त्रण में योगदान - सीमान्त लागत विधि में लागत नियन्त्रण को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है । प्रत्येक वस्तु की लाभदायकता का अध्ययन करके तथा सम विच्छेद बिन्दु की गणना करके वस्तु की लागत पर नियन्त्रण रखना सम्भव होता है। इसके साथ ही स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के आधार पर लोचदार बजट बनाकर न्यूनतम लागत तथा अधिकतम लाभ का बिन्दु निर्धारित किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि यह विधि उत्पादन लागत के रूप में केवल परिवर्तनशील लागत को ही मान्यता देती है और इन लागतों के लिए दायित्व निर्धारित करना सरल रहता है, जिससे लागत नियन्त्रण में योगदान मिलता है।

श) प्रबन्धकीय निर्णयन में सहायक - सीमान्त लागत विधि की सबसे महत्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि यह प्रबन्धकीय निर्णयन में महत्वपूर्ण यन्त्र के रूप में कार्य करती है। सीमान्त लागत विधि के आधार पर किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय निर्णय इस प्रकार हैं - 1. बनाओ या खरीदो, 2. उपयुक्त उत्पाद मिश्रण तथा विक्रय मिश्रण का निर्धारण, 3. अतिरिक्त क्षमता का उपयोग, 4. विभिन्न विभागों एवं उत्पादों की लाभदायकता की तुलना करके विस्तार या बन्द करने का निर्णय, 5. विशिष्ट मूल्य पर आदेश स्वीकार करना, 6. अनुकूलतम मूल्य, न्यूनतम मूल्य, राशिपतन, मूल्य इत्यादि का निर्धारण।

1.2.4 सीमान्त लागत विधि के दोष या सीमाएँ

(Disadvantages or Limitations of Marginal Costing) -

यद्यपि सीमान्त लागत विधि प्रबन्धकीय निर्णयन के लिए एक उपयोगी तकनीक है, तथापि इसकी निम्नलिखित दोष या सीमाएं भी हैं -

अ) लागतों के विभाजन में कठिनाइयाँ - सीमान्त लागत विधि इस मान्यता पर आधारित है कि लागतों को स्थिर तथा परिवर्तनशील में बांटा जा सकता हैं इस सम्बन्ध में निम्न सीमाएं हैं - (1) व्यवहार में अधिकांश व्यय उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर न तो पूर्णतः परिवर्तनशील होते हैं और न ही पूर्णतः स्थिर । (2) अर्द्ध परिवर्तनशील व्ययों में स्थिर और परिवर्तनशील तत्व को अलग करना एक कठिन कार्य हैं (3) यदि स्थिर और परिवर्तनशील लागत के वर्गीकरण में त्रुटि हो जाती है तो सीमान्त लागत विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष अशुद्ध हो जाते हैं।

ब) समय तत्व की अवहेलना - सीमान्त लागत में समय तत्व पर ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि इसकी गणना में स्थिर व्यय को छोड़ दिया जाता है। व्यवहार में ऐसा हो सकता है कि दो वस्तुओं की सीमान्त लागत समान हो लेकिन उनमें लगने वाले समय में भिन्नता हो।

स) तकनीकी विकास के साथ स्थिर व्ययों की भूमिका - वर्तमान समय में उत्पादन तकनीकों के विकास तथा कीमती मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन एवं उत्पादन लागत में स्थिर

व्ययों की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो गयी है। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत तकनीक का महत्व सीमित हो जाता है।

द) **स्टॉक के मूल्यांकन की समस्या** - इस विधि में अर्द्ध निर्मित माल एवं तैयार माल के अन्तिम स्टॉक का मूल्यांकन सीमान्त लागत पर किया जाता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यदि (1) आग इत्यादि से स्टॉक नष्ट हो जाए तो बीमा कम्पनियों से उचित मुआवजा मिलने में कठिनाई रहती है तथा (2) स्टॉक के मूल्यांकन में स्थिर व्यय का भाग न जोड़े जाने पर चिट्ठा फर्म की स्थिति का सच्चा एवं उचित चित्र प्रस्तुत नहीं कर पाता।

य) **सभी व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं** - यह विधि सभी व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं है। उदाहरण के लिए ठेका या जहाज निर्माण जैसे कार्यों में इस विधि को अपनाने पर प्रत्येक वर्ष हानि आएगी और अन्तिम वर्ष में लाभ काफी बढ़ जाएगा। इसी प्रकार ऐसी उपक्रमों में भी उपयुक्त नहीं है, जिसमें लागत धन (Cost Plus) के आधार पर विक्रय मूल्य निर्धारित किये जाते हैं जब तक कि लाभ का मार्जिन बहुत अधिक न हो।

र) **लागत नियंत्रण की अन्य अच्छी तकनीकों की उपलब्धता** - लागत नियंत्रण के लिए प्रमाप लागत, बजटरी नियंत्रण, इत्यादि अन्य अच्छी तकनीकें उपलब्ध हैं। वास्तव में सीमान्त लागत विधि में कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के ऐसे प्रमाप नहीं होते जिस प्रकार प्रमाप लागत एवं बजटरी नियन्त्रण में स्थापित किए जाते हैं।

ल) **मूल्य निर्धारण का अनुपयुक्त आधार** - अल्पकाल में किसी तदर्थ निर्णय के लिए सीमान्त लागत मूल्य निर्धारण का सुविधाजनक आधार बन सकता है लेकिन दीर्घकाल में ऐसी कोई विधि मूल्य निर्धारण का उचित आधार नहीं बन सकती जिसमें स्थिर लागतों को छोड़ दिया जाए। इसके साथ ही केवल अंशदान बढ़ने के आधार पर ही कम मूल्य स्वीकार करना हानिकारक हो सकता है क्योंकि उससे सामान्य विक्रय मूल्य में कमी करने की समस्या भी आ सकती है।

स्पष्ट है कि सीमान्त लागत विधि की अनेक व्यावहारिक समस्याएं हैं लेकिन इस तकनीक के विवेकपूर्ण प्रयोग से इन सीमाओं को दूर किया जा सकता है। तथा इसे प्रबन्धकीय निर्णयन में सहायता के लिए एक लाभकारी उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा सकता हैं ।

1.3 सीमान्त लागत की गणना

सीमान्त लागत = प्रत्यक्ष सामग्री + प्रत्यक्ष मजदूरी + अन्य प्रत्यक्ष व्यय + परिवर्तनशील निर्माण व्यय + परिवर्तनशील विक्रय व वितरण व्यय। (चूंकि सामान्य प्रशासनिक व्यय पूर्ण रूप से स्थिर होता है अतः इसे सीमान्त लागत में सम्मिलित नहीं किया जाता हैं)।

1.4 सीमान्त लागत का समीकरण (Marginal Cost Equation)

TC = FC + VX

जहाँ TC= कुल लागत (Total cost)

FC= स्थिर लागत (Fixed cost)

V = प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत (Variable cost per unit)

X = उत्पादन (इकाइयों में) (Production (in units)

सीमान्त लागत की गणना करने अर्थात स्थायी लागत एवं परिवर्तनशील लागत को अलग अलग करने की अनेक रीतियाँ हैं जिनमें से मुख्य रीतियाँ निम्न हैं -

1.5 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (Clarification by Example)

1.5.1 कुला लागत विधि (Total Cost Method) -

उदाहरण 1

मान लिया किसी कारखाने में कुल उत्पादन 500 इकाई का किया जाता है। स्थिर लागत 15000 रू0 तथा प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत (व्यय) 10 रू0 हो तो

TC	=	FC + VX
	=	Rs. 15000 + (Rs. 10 x 500)
	=	Rs. 15000 + Rs. 5000 = Rs. 20,000

उपरोक्त उदाहरण में कुल स्थिर व्यय 15000 रू. एवं परिवर्तनशील व्यय 5000 रू. है अर्थात प्रति इकाई स्थिर लागत 15000 ÷ 500 = 30 रू. अर्थात प्रति इकाई कुल लागत 30 + 10 = 40 रू. होगी। यदि उत्पादन की मात्रा 500 ईकाई से बढ़ाकर 1000 इकाई कर दें तो कुल लागत निम्नलिखित होगी।

TC = FC + VX

= Rs. 15000 + (Rs. 10 x 1000) = Rs. 25000

उत्पादन की इकाई 1000 किये जाने पर कुल लागत प्रति इकाई 25000 ÷1000 = 25 रू. होगी। यहाँ प्रति इकाई स्थिर लागत 15000 ÷ 1000= 15 रूपया होगी जबकि प्रति

NMDC-129

इकाई सीमान्त लागत 10000 ÷ 1000= 10 रू. ही होगी। इस प्रकार 1000 इकाई के उत्पादन पर कुल उत्पादन लागत प्रति इकाई (Fixed Exps. Rs. 15 + variable exps Rs. 10 = Rs. 25) रू. 25 होगी । दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ेगा प्रति इकाई कुल लागत कम होती चली जाएगी।

अब यदि उत्पादन बढ़कर 2000 इकाई हो जाय तो

TC = FX + VX

= Rs. 15000 + (Rs. 10 x 2000) = Rs. 35000

कुल लागत प्रति इकाई 35000 ÷ 2000 = रू. 17.50 होगी

स्थिर लागत प्रति इकाई 15000÷ 2000 = रू0 7.50 होगी

परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई 20000 ÷ 2000 = रू. 10.00 होगी ।

पुनः सिद्ध हो गया कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ेगा प्रति इकाई कुल लागत कम होती चली जाएगी क्योंकि कुल स्थायी लागत स्थिर रहती है, केवल कुल परिवर्तनशील लागत ही बढ़ती है।

1.5.2 युगपत समीकरण विधि (Simultaneous Equation Method) -

इस विधि में सीमान्त लागत + स्थिर लागत = कुल लागत (Marginal cost + Fixed cost = total cost) के रूप में समीकरण बना लिये जाते हैं और फिर युगपत समीकरण (Simultaneous Equation) के रूप में उन्हें हल कर लिया जाता है इस विधि को निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

उदाहरण - 2

दो अवधियों में कुल लागत क्रमशः 15000 इकाइयों व 20000 इकाइयों के लिए 40000 रू. व 50000 रू. है। सीमान्त लागत प्रति इकाई कितनी है और कितनी स्थिर लागत है? (In two periods, total costs amount to Rs. 40000 and Rs. 50000 against production of 15000 units and 20000 units respectively. How much is marginal cost per unit and how much is fixed cost?

हल - सीमान्त लागत + स्थिर लागत = कुल लागत

(Marginal cost + Fixed cost = total cost)

यदि प्रति इकाई सीमान्त लागत को V तथा कुल स्थिर लागत को F मान लिया जाए तो -

15000V + F = Rs. 40000 .... (i)

20000V + F = Rs. 50000 .... (ii)

दोनों समीकरण को हल करने पर अर्थात समीकरण (II) मे से समीकरण (I) घटाने पर -

20000 V + F = Rs. 50000

15000 V + F = Rs. 40000

5000 V = Rs. 10000

V = Rs. 10000/5000 = Rs. 2

V का मूल्य समीकरण (i) में रखने पर

15000 V + F = Rs 40000

अथवा 15000 x Rs. 2 + F = Rs. 40000

अथवा Rs. 30000 + F = Rs. 40000

अथवा F = Rs. (40000 - 30000)

= Rs. 10,000

इस प्रकार सीमान्त लागत प्रति इकाई = रू. 2

स्थायी लागत = रू. 10000

उदाहरण-3

एक निर्माता 1,00,000 इकाइयां 5 रू. प्रति इकाई लागत पर बनाता है । बाद में 1,50,000 इकाइयां 4.80 रू. प्रति इकाई लागत पर निर्मित करता है जबकि स्थिर लागत में 10 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है । प्रति इकाई सीमान्त लागत तथा मूल स्थायी लागत ज्ञात कीजिए।

A Manufacturer produces 1,00,000 units of at a cost of Rs. 5 per unit. Later on, he produces, 1,50,000 units at a cost of Rs. 4.80 per unit, when the fixed cost increases by 10%. Find out marginal cost per unit and original fixed cost.

हल

यदि सीमान्त लागत प्रति इकाई को V तथा मूल स्थायी लागत को F मान लिया जाये तो पहली अवधि में,

Total cost = 1,00,000 x Rs.5 = Rs. 5,00,000 होगी तथा दूसरी अवधि में

Total cost =1,50,000 x Rs.4.80 = Rs. 7,20,000 होगी।

अतएव, 1,00,000 V+F = Rs. 5,00,000 ....(i)

तथा 1,50,000 V + 1.1F = Rs. 7,20,000 ....(ii)

समीकरण (i) को 1.1 से गुणा करने पर तथा समीकरण (ii) में से घटाने पर -

150000 V + 1.1F = Rs. 7,20,000 .... (ii)

1,10,000 V + 1.1F = Rs. 5,50,000 ....(i) x 1.1

40000 V = Rs. 1,70,000

V = Rs. 170000/40000 = Rs. 4.25

NMDC-129

समीकरण न. (i) मे V का मान रखने पर

1,00,000 x Rs.4.25 + F = Rs. 5,00,000

अथवा F = Rs. 5,00,000 - Rs. 4,25,000

= Rs. 75,000

अतः मूल स्थिर लागत (Original Fixed cost) = Rs. 75,000 है,

तथा प्रति इकाई सीमान्त लागत (Marginal Cost per unit) = Rs.4.25 है।

उदाहरण -4

1000 इकाइयों की उत्पादन लागत नीचे दी गई है -

The cost of production of 1000 units is given below:

सामग्री (Materials) Rs. 20,000

श्रम (Labour) Rs. 10,000

अप्रत्यक्ष (Overheads) Rs. 20,000 (60% fixed)

कुल तथा प्रति इकाई सीमान्त लागत ज्ञात कीजिए तथा TC=VQ+F समीकरण की जांच कीजिए।

Find out marginal cost in total and unit and test the equation.

TC = VQ + F

हल -

सीमान्त लागत विवरण (Statement of Marginal Cost)

Particulars	Total (Rs)	Per Unit (Rs)
Materials	20,000	20
Labour	10,000	10
Overhead Variable (40%)	8000	8

Test of Equation

TC = VQ + F

= Rs. 38 x 1000 + 60% of Rs. 20000

= Rs. 38000 + Rs. 12000 = Rs. 50,000

(प्रश्न में Total cost = Materials + labour + overheads दिया गया है)

अतएव, कुल लागत = Rs. 20,000 + Rs. 10,000 + Rs.20,000 = Rs.50,000

1.5.3 उच्च व निम्न बिन्दु विधि (High & Low Points Method) -

इस विधि में उत्पादन के दो स्तरों उच्च व निम्न बिन्दुओं पर उत्पादन की मात्रा की तुलना कुल लागत से की जाती है तथा इन दो स्तरों पर कुल लागत में अन्तर को मात्रा के अन्तर से विभाजित करके प्रति इकाई परिवर्तनशील या सीमान्त लागत ज्ञात कर ली जाती है।

उदाहरण - 5

एक कम्पनी में विभिन्न माहों के उत्पादन लागत अभिलेखों से निम्न आकड़े लिये गये हैं :

Following Data have been extracted from the cost of production records for different months of a company:

	अधिकतम (Maximum)	न्यूनतम (Minimum)
उत्पादन की मात्रा (Volume of production)	10,000 Units	50,000 Units
कुल लागत (Total cost)	Rs.25,000	Rs.15,000

कुल स्थिर लागत तथा प्रति इकाई सीमान्त लागत ज्ञात कीजिए।

Find out total fixed cost and per unit marginal cost.

हल

$$Variable\,cost\,(per\ unit) = \frac{\text{कुल लागत में अन्तर}\ (Difference\,in\,total\,cost)}{\text{उत्पादन में अन्तर}\ (Difference\,in\,Output)}$$

$$= \frac{Rs(25000-15000)}{10000-5000} = \frac{Rs.10000}{5000} = Rs.2\ per\,unit$$

कुल स्थिर लागत (total fixed cost) = Total cost - Total variable cost

= Rs. 25000 - (10000xRs.2)

= Rs. 25,000 - Rs. 20,000

= Rs. 5000

1.5.4 न्यूनतम वर्ग रीति (Method of Least Squares) :-

यह एक सांख्यिकीय रीति है, जिसमें विभिन्न अवलोकनों के लिए सर्वोपयुक्त रेखा (Line of best fit) के आधार पर स्थिर एवं परिवर्तनशील व्ययों की गणना की जाती है। इस रीति में y=a+bx के आधार पर समीकरण बनाया जाता है जिसमें Y= कुल लागत (Total cost), a= स्थिर लागत (Fixed cost), b= सीमान्त लागत (Marginal cost), x = उत्पादन-मात्रा (Output) होता है। इसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार है -

अ) सर्वप्रथम उत्पादन (x) और कुल लागत (y) का माध्य ($\overline{X}$ तथा $\overline{Y}$) ज्ञात करते हैं।

ब) इन माध्यों से उत्पादन के विचलन (x) तथा कुल लागत के विचलन (y) ज्ञात किये जाते हैं।

स) इसके बाद उत्पादन के विचलनों के वर्ग (x^2) तथा x और y के गुणनफल अर्थात xy की गणना की जाती है।

द) $\Sigma xy / \Sigma x^2$ के द्वारा 'b' का मान अर्थात प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत की गणना की जाती है।

य) अन्त में औसत कुल लागत (y) में से औसत उत्पादन की परिवर्तनशील (सीमान्त) लागत घटाकर कुल स्थिर लागत ज्ञात कर लेते हैं।

इस प्रक्रिया को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण - 6

निम्न सूचनाओं के आधार पर न्यूनतम वर्ग रीति द्वारा स्थिर लागत तथा प्रति इकाई सीमान्त लागत की गणना कीजिए-

Calculate fixed cost and per unit marginal cost on the basis of following information by using the method of least squares:

माह	उत्पादन (Output)	कुल लागत (Total Cost)
(Months)	Units	Rs.
January	2000	3000
February	1700	2700
March	2200	3200
April	1900	2900
May	1800	2800
June	2400	3400

हल-

Months	Output (X)	Total Cost (Y)	X from 2000	Y from 3000	X^2	Xy
January	2000	3000	0	0	0	0
February	1700	2700	-300	-300	90000	90000
March	2200	3200	200	200	40000	40000
April	1900	2900	-100	-100	10000	10000
May	1800	2800	-200	-200	40000	40000
June	2400	3400	400	400	160000	160000
N = 6, ΣX	= 12,000	18000	0	0	340000	340000

NMDC-329

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{12000}{6} = 2000; \overline{Y} = \frac{\Sigma Y}{N} = \frac{18000}{6} = 3000$$

$$b = \frac{\Sigma X}{\Sigma X^2} = \frac{3,40,000}{3,40,000} = \text{Re.1 } per\ unit$$

Fixed cost = (Average Total cost - Average Output) x Marginal Cost per unit

$= \overline{Y} - \overline{X} \times b$

= (3,000 - 2,000) X Re. 1 = Rs. 1,000

Thus, fixed cost = Rs. 1000

Marginal cost = Re. 1 per unit

1.6 सारांश

वस्तु के उत्पादन के मात्रा में एक इकाई की वृद्धि या कमी किये जाने पर कुल लागत में जो परिवर्तन हुआ है उसी को सीमान्त लागत कहते हैं। सामान्यतया किसी व्यावसायिक संस्था में वस्तु के उत्पादन में केवल एक इकाई से परिवर्तन नहीं किया जाता है बल्कि वस्तु के उत्पादन में अनेक इकाईयों से परिवर्तन किया जाता है। अतः इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि कुल लागत में वर्तमान स्तर से नये स्तर तक की वृद्धि सीमान्त लागत कहलाती है।वास्तव में उत्पादन स्तर में परिवर्तन से केवल परिवर्तनशील लागतें ही प्रभावित होती हैं अर्थात सीमान्त लागत का अर्थ कुल परिवर्तनशील लागत से होता है। सीमान्त लागत में स्थायी लागत को सम्मिलित नहीं किया जाता है। सीमान्त लागत के अन्तर्गत प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय एवं समस्त परिवर्तनशील व्ययों को सम्मिलित किया जाता है।

1.7 सम्बन्धित प्रश्न

अ) सीमान्त लागत की परिभाषा दीजिए।

ब) सीमान्त लागत के लाभ-दोष समझाइये।

स) सीमान्त लागत विधि के अन्तर्गत लाभ निर्धारण कैसे किया जाता है।

द) कल्पित उदाहरण द्वारा समीकरण विधि को समझाइये।

य) न्यूनतम वर्ग विधि उदाहरण द्वारा समझाइये।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अ) गुप्ता एस. पी. : प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन साहित्य भवन पब्लिकेशन : आगरा

2009

ब) मेहता, बी.के. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि.आगरा - 2009

स) गुप्ता, के. एल. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा-2007

द) अग्रवाल एम. डी. तथा अग्रवाल एन. पी. : वित्तीय प्रबन्ध, रमेश बुक डिपो, जयपुर,1992

य) अग्रवाल एम. आर. : प्रबन्धकीय लेखांकन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा 1993

र) Garg A.K. : Management Accounting, Swati Prakashan, Buland Shahar, 2008.

ल) Arora, M.N. : Cost & Management Accounting, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2008.

व) Gupta R.K. : Cost Accounting, Navman Prakashan, Aligarh.

श) Agrawal M.L., Cost Accounting, Sahitya Bhawan Publication, 2004.

ष) Pandey I.M., Financial Management, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1992.

स) Verma G.D. : Sharma R.K., Gupta Shashi K. : Accounting for Management Decisions, New Delhi, 2003.

इकाई - 2 लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण : सम विच्छेद विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा-

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.1.1 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

2.2 लागत मात्रा-लाभ विश्लेषण अथवा सम-विच्छेद विश्लेषण की परिभाषा।

2.2.1 लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण का महत्व या उद्देश्य

2.2.2 सम विच्छेद विश्लेषण की सीमाएं

2.3 सम-विच्छेद विश्लेषण की मान्यताएं

2.4 सम-विच्छेद विश्लेषण के व्यावहारिक उपयोग

2.4.1 सम विच्छेद बिन्दु की गणना इकाई में ।

2.4.2 सम विच्छेद बिन्दु की गणना रूपये में।

2.4.3 सम विच्छेद की गणना लाभ-मात्रा अनुपात द्वारा

2.4.4 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

2.4.5 चार्ट द्वारा स्पष्टीकरण

2.4.6 सम विच्छेद विश्लेषण व अंशदान

2.4.7 सम विच्छेद विश्लेषण व सुरक्षा सीमा

2.4.8 रोकड़ या नकद सम-विच्छेद बिन्दु

2.4.9 मिश्रित या संयुक्त सम-विच्छेद बिन्दु

2.5 सारांश

2.6 सम्बन्धित प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- सीमान्त लागत विधि व प्रत्यक्ष लागत विधि को स्पष्ट कर सकेंगे,
- लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण अथवा सम-विच्छेद विश्लेषण कर सकेंगे,
- सम-विच्छेद विश्लेषण की मान्यताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे, तथा
- सम-विच्छेद विश्लेषण के व्यावहारिक उपयोग को उल्लिखित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सीमान्त लागत विधि बनाम लागत विधि -

सीमान्त लागत विधि (Marginal Costing), का आशय 'परिवर्तनशील लागत विधि' (Variable Costing), 'प्रत्यक्ष लागत विधि' (Direct Costing), 'विभेदात्मक लागत विधि' (Differential Costing), अथवा वृद्धिमान लागत विधि' (Incremental Costing) से भी लिया जाता है। यद्यपि ये पद सभी सन्दर्भों में ठीक-ठीक एक समान नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ प्रत्यक्ष लागत विधि पद का प्रयोग उपयुक्त नहीं होता है क्योंकि सीमान्त लागत विधि में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागत विधि पर बल न प्रदान कर परिवर्तनशील और स्थिर लागतों पर अधिक बल प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त, समस्त प्रत्यक्ष लागतें परिवर्तनशील लागत नहीं होती हैं क्योंकि इनमें कुछ स्वभावतः स्थिर प्रकृति की होती है। अतएव सीमान्त लागत विधि के स्थान पर प्रत्यक्ष लागत विधि पद का प्रयोग करना अनुपयुक्त होता है किन्तु इस तथ्य के बाद भी, दोनों ही लागत विश्लेषण और लागत प्रस्तुतीकरण की तकनीकें है और इन दोनों ही तकनीकों का प्रबन्धतंत्र द्वारा निर्णय लेने और नीति निरूपण में प्रयोग किया जाता है।

सीमान्त लागत विधि के अन्तर्गत लाभ की गणना करने के लिए (कुल) लागत को स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में विभाजित कर दिया जाता है। तत्पश्चात विक्रय मूल्य में से सीमान्त लागत या परिवर्तनशील लागत को घटा दिया जाता है। इस प्रकार शेष धनराशि को अंशदान कहते हैं, जिसमें से स्थिर लागत को घटा कर लाभ की मात्रा ज्ञात की जाती है।

प्रत्यक्ष लागत विधि में कच्ची सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम तथा अन्य प्रत्यक्ष व्ययों का योग मूल लागत कहलाता है। इसमें कारखाना व्ययों को जोड़कर कारखाना लागत ज्ञात करते हैं। तत्पश्चात कार्यालय एवं प्रशासनिक व्ययों को जोड़कर उत्पादन की लागत ज्ञात की जाती है। पुनः उत्पादन की लागत में बिक्री व विवरण व्ययों को जोड़कर बिक्री की जाने वाले वस्तु की लागत ज्ञात की जाती है। जिसमें लाभ की मात्रा जोड़ने से विक्रय मूल्य (Selling Price) प्राप्त होता है। इस प्रकार सीमान्त लागत

विधि व प्रत्यक्ष लागत विधि में सूचनाओं को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

2.1.1 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण -

उदाहरण - 1

किसी वस्तु की 100 इकाइयाँ उत्पादित करने की लागत निम्नलिखित हैं -

The Cost of Producing 100 units of a product is as follows:

	Rs
प्रत्यक्ष सामग्री (Direct Materials)	12,000.00
प्रत्यक्ष मजदूरी (Direct Wages)	6,000.00
कारखाना व्यय (Factory expenses)	9,000.00
प्रशासन व्यय (Administration Expenses)	6,000.00
बिक्री व वितरण व्यय (Selling & Distribution Expenses)	3,000.00
विक्रय (sale)	45,000.00

कारखाना व्यय का 50 प्रतिशत एवं ब्रिकी व वितरण व्यय का 25 प्रतिशत परिवर्तनशील व्यय है। आप लागत व लाभ का विवरण निम्नलिखित के द्वारा बनायें -

(1) प्रत्यक्ष लागत विधि (2) सीमान्त लागत विधि

50% of factory expenses and 25% of selling and distribution expenses are variable. You are required to make statement of cost and profit by:

(i) Direct Costing Method (ii) Marginal Costing Method.

हल

(i) Statement of Cost and Profit by Direct Costing Method.

	Amount (Rs.)
Direct Material	12,000.00
Direct Wages	6,000.00
Prime Cost :	18,000.00
Factory Expenses	9,000.00
Factory Cost :	27,000.00
Administration Expenses	6,000.00
Cost of Production	33,000.00

NMDC-129

Selling & Distribution Expenses		3,000.00
Cost of Goods sold		36,000.00
Profit		9,000.00
Sales		**45,000.00**

(ii) Marginal Costing Method:

		Amount Rs.
Sales		45,000.00
Less: Marginal Cost/Variable Cost		
Direct Materials	12,000.00	
Direct wages	6,000.00	
Variable Factory Exps. (50%)	4,500.00	
Variable Selling & Distribution,		
Expenses (25%)	750.00	23,250.00
Contribution		21,750.00
Less: Fixed Cost		
Fixed Factory Exps. (50%)	4,500.00	
Fixed Administration Exps.	6,000.00	
Fixed Selling & Distribution		
Exps (75%)	2,250.00	12,750.00
Profit		**9,000.00**

2.2 लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण अथवा सम-विच्छेद विश्लेषण

सम विच्छेद बिन्दु किसी व्यावसायिक फर्म के उत्पादन का वह स्तर है जिस पर फर्म की कुल विक्रय राशि तथा कुल लागत दोनों समान होते हैं। अतः इस बिन्दु पर फर्म को न लाभ होता है और न हानि।

चार्ल्स टी. हार्न ग्रेन के अनुसार "सम विच्छेद बिन्दु विक्रय मात्रा का वह बिन्दु है जिस पर कुल आगत और कुल व्यय बराबर हों, इसे शून्य लाभ एवं शून्य हानि का बिन्दु भी कहते हैं।"

केलर एवं फरेश के अनुसार, "किसी कम्पनी अथवा कम्पनी की किसी इकाई का सम विच्छेद बिन्दु विक्रय आय का वह स्तर है जो इसकी स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों के योग के बराबर होता है।"

यदि सम विच्छेद बिन्दु से अधिक बिक्री होती है तो फर्म लाभ की स्थिति में होती है और यदि

फर्म की बिक्री सम विच्छेद बिन्दु से कम होती है तो वह हानि की स्थिति में रहती है।

2.2.1 लागत मात्रा-लाभ विश्लेषण का महत्व या उद्देश्य

(Importance or Objectives of Cost-Volume-Profit Analysis)

लागत -मात्रा-लाभ विश्लेषण प्रबन्धकीय निर्णयन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है तथा प्रबन्धकीय नियोजन और नियन्त्रण की प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसके महत्व या उद्देश्यों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अ) **लोचदार बजट में सहायक** - यह विश्लेषण लोचदार बजट बनाने में सहायता करता है, अर्थात यह सूचना प्रदान करता है कि उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर बिक्री की राशि और लागत की प्रवृत्ति क्या होगी।

ब) **सम-विच्छेद बिन्दु का निर्धारण** - लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सम विच्छेद बिन्दु को ज्ञात करना है, अर्थात उत्पादन मात्रा का वह बिन्दु ज्ञात करना है जिस पर न लाभ हो और न हानि।

स) **लाभ नियोजन** - यह विश्लेषण लाभ नियोजन में भी उपयोगी है, क्योंकि इसके आधार पर जहाँ एक ओर उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर लाभ की गणना कर सकते हैं वहीं दूसरी ओर वांछित लाभ के लिए बिक्री या उत्पादन की मात्रा का निर्धारण भी कर सकते हैं।

द) **विकल्पों के मध्य निर्णय** - यह विश्लेषण प्रबन्ध के समक्ष विभिन्न वैकल्पिक प्रस्तावों के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहायता करता है, जैसे :

1. कौन सा उत्पाद अधिक लाभप्रद है और कौन सा कम?

2. क्या संस्था को एक निश्चित मूल्य पर अतिरिक्त वस्तुओं की पूर्ति का प्रस्ताव स्वीकार करना चाहिए अथवा नहीं?

3. उत्पादन या विक्रय मिश्रण की अनुकूलतम स्थिति क्या है जिससे लाभ अधिकतम हो?

4. यदि उत्पादन क्षमता सीमाएं हैं तो किस उत्पाद को बनाया जाए और किसको खरीदा जाय? इत्यादि।

य) **नियन्त्रण के लिए निष्पादन मूल्यांकन** - यह विश्लेषण प्रबन्धकीय नियन्त्रण की दृष्टि से निष्पादन मूल्यांकन में भी सहायता करता है। वास्तविक लागतों और अर्जित लाभों के आधार पर यह विश्लेषण हो पाता है कि लाभ पर प्रभाव डालने में उत्पादन की मात्रा और अन्य घटकों की क्या स्थिति रही?

र) **मूल्य निर्धारण में सहायता** - इस विश्लेषण के आधार पर उत्पाद के मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है क्योंकि मूल्य घटाने या बढ़ाने से उत्पादन की मात्रा, लागत

और लाभ पर पड़ने वाले प्रभावों को समझा जा सकता है।

ल) **उपरिव्ययों का आवण्टन** - यह विश्लेषण उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर उपरिव्ययों के आवण्टन में भी सहायता करता है, क्योंकि पहले से निर्धारित उपरिव्यय उत्पादन की एक निश्चित मात्रा से सम्बन्धित होती है।

व) **लागतों में परिवर्तन के प्रभाव का विश्लेषण** - व्यवहार में स्थिर लागत, सामग्री के मूल्य, मजदूरी की दरें, उपरिव्ययों इत्यादि में परिवर्तन होते रहते हैं। लागत-मात्रा-लाभ विश्लेषण में इन परिवर्तनों के प्रभाव की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

संक्षेप में किसी भी व्यवसाय में लाभ नियोजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विश्लेषण लागत मात्रा लाभ विश्लेषण है।

2.2.2 सम-विच्छेद विश्लेषण की सीमाएं

(Limitation of Break-even Analysis)-

सम विच्छेद विश्लेषण अनेक मान्यताओं पर आधारित है, लेकिन व्यवहार में अनेक मान्यताओं के पूर्णतः सत्य न होने के कारण इस विश्लेषण की उपयोगिता सीमित हो जाती है । सम विच्छेद विश्लेषण की मुख्य सीमाएं निम्न प्रकार हैं -

अ) **स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में विभाजन** - सभी लागतों को स्थिर और परिवर्तनशील लागतों में विभाजित करना कठिन होता है। वास्तविकता यह है कि व्यावहारिक जीवन में न तो कोई लागत पूर्णतः स्थायी होती है और न ही पूर्णतः परिवर्तनशील।

ब) **उत्पादन लागत पर अन्य अवधि के प्रभाव** - किसी अवधि विशेष की लागतें पूर्णतः उसी अवधि के उत्पादन से निर्धारित नहीं होतीं। उस पर अनेक घटकों, जैसे मशीन की क्षमता, श्रम और मशीनों की कुशलता, लागत नियन्त्रण की प्रभावशीलता तथा प्रबन्धकीय नीतियों इत्यादि का प्रभाव भी पड़ता है। वास्तव में यह सभी कारक दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रहते जबकि सम-विच्छेद विश्लेषण में उत्पादन की मात्रा के अतिरिक्त अन्य सभी कारक स्थिर मान लिए जाते हैं।

स) **लागत का रेखीय व्यवहार होने की सीमा** - यह माना जाता है कि स्थिर लागत पूर्णतः स्थिर रहती है और परिवर्तनशील लागत पूर्णतः आनुपातिक रहती है। लेकिन व्यवहार में शत-प्रतिशत ऐसा नहीं होता।

द) **अधिकतम और अनुकूलतम उत्पादन** - यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि अधिकतम लाभ के लिए अधिकतम उत्पादन होना चाहिए, लेकिन व्यवहार में अनुकूलतम उत्पादन का निर्णय आवश्यक होता है न कि अधिकतम उत्पादन का।

य) **उत्पादन और विक्रय की बराबरी आवश्यक नहीं** - यह आवश्यक नहीं है कि जितना

उत्पादन किया जाए उसकी पूर्ण बिक्री हो जाय। व्यावहारिकता में तैयार माल का स्टॉक बनाए रखना होता हैं ।

र) **विक्रय मिश्रण में परिवर्तन** - यह आवश्यक नहीं है कि विक्रय मिश्रण का अनुपात समान बना रहे। बाजार में वस्तुओं की मांग में परिवर्तन होने पर विक्रय मिश्रण के अनुपात में परिवर्तन आ सकता है।

ल) **विनियोजित पूंजी की उपेक्षा** - सम-विच्छेद विश्लेषण में सामान्यतः विनियोजित पूंजी पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जबकि यह प्रबन्धकीय निर्णयन का एक महत्वपूर्ण घटक है।

व) **स्थैतिक स्वरूप** - सम-विच्छेद विश्लेषण का स्वरूप स्थैतिक है। अतः लागत और आगम की परिवर्तित दशाओं में यह कम उपयोगी रह जाता है।

श) **अल्पकालीन उपयोग** - सम-विच्छेद विश्लेषण जिन विभिन्न मान्यताओं पर आधारित है वे अल्पकाल में कुछ सीमा तक सही हो सकती हैं, लेकिन दीर्घकाल में सही होना सम्भव नहीं है। अतः यह विश्लेषण दीर्घकालीन उपयोग की दृष्टि से प्रभावशाली तकनीक नहीं है।

ष) **पूर्ण प्रतियोगिता न होने की सीमा** - यह विश्लेषण पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, क्योंकि इसमें यह मान लिया जाता है कि फर्म एक ही मूल्य पर किसी भी मात्रा में अपने उत्पादन का विक्रय कर सकती है, परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता।

स्पष्ट है कि सम-विच्छेद विश्लेषण की अपनी कुछ सीमाएं हैं लेकिन इससे इस तकनीक का महत्व कम नहीं होता। विश्लेषण की सीमाएं केवल इस बात पर जोर देती हैं कि इसका प्रयोग आवश्यक सावधानी के साथ करना चाहिए और समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार विश्लेषण के परिणामों को भी समायोजित कर लेना चाहिए।

2.3 सम-विच्छेद विश्लेषण की मान्यताएँ

सम-विच्छेद विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है ।

अ) **स्थिर और परिवर्तनशील लागतें** - सम-विच्छेद विश्लेषण की आधारभूत मान्यता यह है कि लागत के सभी तत्वों को दो वर्गों में अर्थात स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत में विभाजित किया जा सकता है।

ब) **परिवर्तनशील लागत की आनुपातिकता** - यह माना जाता है कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत स्थिर रहती है अर्थात यह लागत उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर आनुपातिक रूप से परिवर्तित होती हैं

स) **स्थिर लागत की निश्चितता** - शून्य उत्पादन से लेकर उत्पादन क्षमता तक किसी भी मात्रा

NMDC-129

में उत्पादन करने पर स्थिर लागत की कुल राशि निश्चित और अपरिवर्तित रहती है।

द) **विक्रय मूल्य की स्थिरता** - विक्रय के सभी स्तरों पर प्रति इकाई विक्रय मूल्य एक समान रहता है अर्थात वस्तु की पूर्ति के घटने या बढ़ने पर बाजार में विक्रय मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता।

य) **लागतों का रेखीय व्यवहार** - लागतों का व्यवहार रेखीय होता है अर्थात लागत समंकों को रेखाचित्र पर प्रदर्शित करने पर एक सीधी रेखा बनती है।

र) **तकनीकी स्थिरता** - यह माना जाता है कि जिस अवधि के लिए सम-विच्छेद विश्लेषण किया जा रहा है उस अवधि में उत्पादन पद्धति, मशीनों की कुशलता या तकनीकी पद्धतियों में अन्तर नहीं होगा।

ल) **स्कन्ध की महत्वहीन भूमिका** - उत्पादन और विक्रय लगभग बराबर माने जाते हैं अर्थात जो भी उत्पादन होता है वह साथ-साथ बिकता जाता है और तैयार माल के स्टॉक की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती।

व) **सामान्य मूल्य स्तर में स्थिरता** - लागत के विभिन्न तत्वों जैसे - सामग्री, मजदूरी और अन्य व्ययों के सम्बन्ध में यह मान लिया जाता है कि निश्चित अवधि में उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

श) **उत्पाद मिश्रण की स्थिरता** - उपक्रम में केवल एक ही वस्तु का उत्पादन और विक्रय होता है। यदि एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन और विक्रय होता है तो विक्रय मिश्रण का अनुपात निश्चित और स्थिर रहता है।

ष) **मात्रा और लागत का सम्बन्ध** - सम-विच्छेद विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि उत्पादन की मात्रा ही ऐसा घटक है जो लागत को प्रभावित करता है।

2.4 सम-विच्छेद विश्लेषण के व्यावहारिक उपयोग

चूँकि सम-विच्छेद बिन्दु पर कुल बिक्री, कुल लागत के बराबर होती है। जिसके फलस्वरूप न लाभ होता है और न हानि होती है । अतः इसे समीकरण के रूप में निम्न प्रकार दिखाया जा सकता है।

Sale = Variable Costs (परिवर्तन लागत) + Fixed costs (स्थिर लागतें)

$$S = VC + FC$$

2.4.1 सम-विच्छेद बिन्दु Break Even Point or BEP की गणना इकाई में निम्न सूत्र द्वारा की जाती है -

$$\text{B.E.P. in units} = \frac{FC}{SP - VC}$$

उदाहरण - 2

निम्नलिखित से सम-विच्छेद बिन्दु इकाई में ज्ञात करें।

Selling price (SP) = Rs. 20 per unit

Variable cost (VC) = Rs. 12 per unit

Fixed Cost (FC) = Rs. 20,000

हल - $$\text{B.E.P.} = \frac{FC}{SP-VC}$$

$$= \frac{20{,}000}{20-12}$$

$$= \frac{20{,}000}{8} = 2500 \text{ Units}$$

(2500 units में यदि SP Rs.20 per unit का गुणा करेंगे तो BEP in Rs.में आजाएगी 2,500 x 20 = Rs. 50,000.00 होगी)

हम अपने उत्तर की जाँच भी कर सकते हैं -

(2500units का उत्पादन करते हैं तो SP होगा 2500 x 20 = Rs. 50,000.00

Variable cost होगा 2500 x 12 = Rs. 30,000.00

Fixed Cost होगा Rs. 20,000.00

अर्थात SP = VC + FC, अर्थात Rs. 50,000 = Rs.30,000 + Rs. 20000

2.4.2 सम-विच्छेद बिन्दु की गणना रूपये में

प्रथम सूत्र - सम-विच्छेद की गणना रूपये में निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है।

$$\text{BEP (in Rs.)} = \frac{FC}{1 - VC/SP}$$

द्वितीय सूत्र -

BEP (in Rs.) =

Contribution per unit = SP per per Unit - VC per unit

उपरोक्त दोनों में से किसी भी सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

NMDC-129

उदाहरण- 3

निम्नलिखित सूचना के आधार पर BEP रू. में ज्ञात करें।

Selling Price (SP) = Rs. 20 p.u.

Variable cost (VC) = Rs. 12 p.u.

Fixed Cost (FC) = Rs. 25,000

Unit produced = 10,000 units

हल

Formula 1: BEP (Rs) $= \frac{FC}{1-VC/SP} = \frac{25,000}{1-12/20} = \frac{25,000}{8/20}$

$= \frac{25000\times 20}{8} = Rs.62,500$

Formula-II : BEP (Rs.) $\frac{FC\times SP}{Contribution\ per\ unit} = \frac{25,000\times 20}{8} = Rs.62,500$

यदि BEP in units ज्ञात करनी हो तो रू. 62,500 में SP=Rs.20 का भाग दे कर प्रत्यक्ष तरीके से ज्ञात की जा सकती है।

2.4.3 सम-विच्छेद बिन्दु की गणना लाभ मात्रा अनुपात (Profit-Volume Ratio) द्वारा :

लाभ-मात्रा अनुपात (Profit Volume Ratio) को संक्षेप में P/V Ratio भी कहते हैं। इसे अंशदान उपान्त अनुपात Contribution Margin Ratio भी कहते है। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता हैं ।

P/V Ratio = C/SP x 100 where C = Total Contribution (SP-VC)

SP = Total sales price

अ) लाभ मात्रा अनुपात की सहायता से सम-विच्छेद बिन्दु की भी गणना की जा सकती है इसके लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

BEP in Rs. $= \frac{FC}{P/V\ Ratio}$

ब) $P/V\ Ratio = \frac{SP-VC}{SP}\times 100$

स) जब दो अवधि की बिक्री व लाभ की सूचना दी हुई हो

$$P/V\ Ratio = \frac{Change\ in\ Profit\,(Rs.)}{Change\ in\ Sales\,(Rs.)} \times 100$$

द) $$P/V\ Ratio = \frac{Profit}{Margin\ of\ Safety} \times 100$$

य) $$P/V\ Ratio = \frac{FC}{BEP\ in\ Rs.}$$

र) $$P/V\ Ratio = 100 - \frac{VC}{SP} \times 100$$

ल) लाभ की गणना = (SP x P/V Ratio) - FC

SP = Selling Price

व) इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक विक्रय मात्रा निर्धारित करना

$$Desired\ Profit\,(Rs.) = \frac{FC + P}{P/V\ Ratio} \qquad P = Profit$$

श) Margin of Safety = Actual Sales - Sales at BEP

ष) Margin of Safety Ratio = $\frac{Margin\ of\ Safety \times 100}{SP}$

2.4.4 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

उदाहरण -4

S. Ltd. एक वस्तु का निर्माण करती है। सम्बन्धित दो वर्षों के आंकड़े निम्नांकित हैं -

	2009	2010
Sales	60,000	72,000
Fixed Costs	18,000	24,000
Variable costs	30,000	40,000

संचालक मण्डल अंशदान P/V Ratio, BEP, सुरक्षा और उनके प्रतिशत की जानकारी चाहता है। $\frac{C}{SP} \times 100$

हल-

Contribution = SP - VC

वर्ष 2009; Rs. 60,000 - Rs. 30,000 = Rs. 30,000

वर्ष 2010; Rs. 72,000 - Rs. 40,000 = Rs. 32,000

P/V Ratio =

वर्ष 2009; $\frac{30,000}{60,000}\times100 = 50\%$

वर्ष 2010; $\frac{32,000}{72,000}\times100 = 44.44\%$

BEP (in Rs.) $= \frac{FC}{P/V\ Ratio}$

वर्ष 2009; $= \frac{18,000}{50}\times100 = Rs.\ 36,000$

वर्ष 2010; $\frac{24,000}{44.44\%} = \frac{24000\times100}{44.44} = Rs.54005.40$

Margin of Safety = Actual Sales - Sales at BEP

वर्ष 2009; Rs. 60,000 - Rs. 36,000 = Rs. 24,000

वर्ष 2010; Rs. 72,000 - Rs. 54005.40 = Rs. 17,994.60

Margin of Safety Ratio = $\frac{Margin\ of\ Safety\times100}{Actual\ Sales}$

वर्ष 2009; $\frac{24000}{60000}\times100 = 40\%$

वर्ष 2010; $\frac{17,994}{72,000}\times100=25\%$

2.4.5 सम-विच्छेद चार्ट लागत, मात्रा एवं लाभ के सम्बन्धों को प्रदर्शित करता हुआ एक बिन्दुरेखीय प्रदर्शन है।

उदाहरण -5

From the following information ascertain the BEP (in Rs.) and verify your answer graphically.

	Amount (Rs.)
Sales	5,00,000
Variable Cost	2,00,000
Fixed Cost	1,50,000

हल- BEP (Rs.) = $\frac{FC\times S}{S-V}$

$$= \frac{1,50,000\times5,00,000}{3,00,000} = Rs.2,50,000$$

सम-विच्छेद चार्ट की कल्पनाएँ

(Assumptions Underlying Breakeven Charts)

सम विच्छेद चार्ट बनाते समय कुछ कल्पनाएँ कर ली जाती है, जो निम्नलिखित हैं-

अ) सभी व्ययों को स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत में पृथक किया जा सकता है।

ब) क्रिया के सभी स्तरों पर स्थित लागतें अपरिवर्तित ही रहती हैं।

स) उत्पादन की मात्रा में परिवर्तनों के अनुपात में परिवर्तनशील लागत प्रत्यय रूप से घटती बढ़ती है।

द) उत्पादन क्रिया के सभी स्तरों पर प्रति इकाई विक्रय मूल्य अपरिवर्तित रहता है।

य) कोई प्रारम्भिक या अन्तिम स्कन्ध नहीं होता है।

र) परिचालन कार्यकुशलता (Operating efficiency) में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

ल) उत्पाद मिश्रण अपरिवर्तित रहता है अथवा केवल एक उत्पाद होता है।

व) उत्पाद या उत्पादन की मात्रा ही केवल एक तत्व (घटक) है जो लागत को प्रभावित करता है।

सम-विच्छेद के लाभ या उपयोग (Advantages or Uses of Break-even)

सम-विच्छेद बिन्दु की संगणना करने अथवा लागत, मात्रा और लाभ के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रस्तुतीकरण की सम-विच्छेद चार्ट रीति के निम्नलिखित लाभ होते हैं ।

अ) सम-विच्छेद चार्ट सूचना को सरल ढंग से प्रस्तुत करता है और यह साधारण व्यक्ति के लिए भी स्पष्ट रूप से बोधगम्य होता है। समस्या सम्बन्धी सम्पूर्ण विचार एक दृष्टि में प्रस्तुत किया जा सकता है।

ब) सम-विच्छेद चार्ट प्रबन्धकीय निर्णय लेने में प्रबन्ध के लिए बहुत लाभदायक होता है क्योंकि यह चार्ट उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर लागत, मात्रा और लाभ के सम्बन्ध का अध्ययन प्रस्तुत करता है। स्थिर लागतों और परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तनों का उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर पड़ने वाला प्रभाव एवं विक्रय मूल्य में परिवर्तनों का लाभ पर प्रभाव सम-विच्छेद चार्ट की सहायता से स्पष्ट रूप से दिग्दर्शित किये जा सकते हैं।

स) सम-विच्छेद चार्ट विभिन्न दशाओं में विभिन्न उत्पादों की लाभदायकता (Profitability) की जानकारी करने तथा उसका विश्लेषण करने में सहायता पहुँचाते हैं।

द) पूर्वानुमान (लागत और लाभ) करने, नियोजन करने और विकास की जानकारी करने में सम-विच्छेद चार्ट अत्यन्त उपयोगी होता है।

य) सम-विच्छेद चार्ट लागत नियन्त्रण हेतु एक प्रबन्धकीय उपकरण है क्योंकि यह एक उत्पाद की कुल लागत में स्थिर लागत के सापेक्षिक महत्व को प्रदर्शित करता है।

र) सम-विच्छेद बिन्दु का निर्धारण करने के अतिरिक्त सम-विच्छेद चार्ट की सहायता से उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर लाभ का भी निर्धारण किया जा सकता है।

ल) व्यवसाय की तुलनात्मक प्लाण्ट कार्य कुशलता का भी अध्ययन सम-विच्छेद चार्ट की सहायता से किया जा सकता है।

सम-विच्छेद चार्ट की सीमाएँ (Limitations of Break-even charts)

सम-विच्छेद चार्ट के अनेक लाभ होते हुए भी इसकी निम्नलिखित सीमाएं होती हैं -

अ) एक सम-विच्छेद चार्ट अनेक मान्यताओं पर आधारित होता है, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। ये ऐसी मान्यताएं हैं जो सभी परिस्थितियों में सही नहीं हो सकतीं। उदाहरण के लिए, स्थिर लागत एक निश्चित उत्पादन क्रिया स्तर के उपरान्त स्थिर नहीं रहती हे। परिवर्तनशील लागतों में सदैव उत्पादन की मात्रा में परिवर्तनों के प्रत्यक्ष अनुपात में परिवर्तन नहीं होते हैं क्योंकि ऐसा उत्पादन के ह्रासित और वृद्धिमान नियमों (Law of diminishing and increasing returns) के कारण होता है। इसी प्रकार प्रतिस्पर्धा और सामान्य मूल्यस्तर में परिवर्तनों के कारण विक्रय मूल्य उत्पादन के सभी स्तरों पर एक समान नहीं रहता है।

ब) एक सम विच्छेद चार्ट सीमित सूचना उपलब्ध करता है अतएव स्थिर लागत, परिवर्तनशील लागतों और विक्रय मूल्यों में हुए परिवर्तनों का लाभदायकता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने के लिए एक सेअधिक सम-विच्छेद चार्टों की रचना करनी होती है। इन स्थितियों में इन्हें समझना अपेक्षतया अधिक जटिल, उलझनपूर्ण और कठिन हो जाता है।

स) सम-विच्छेद चार्ट केवल लागत मात्रा लाभ सम्बन्ध को प्रस्तुत करते हैं किन्तु इसमें पूंजी विनियोजन की राशि, विपणन की समस्याओं एवं सरकारी नीतियों, आदि जैसे अन्य महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता हैं

द) एक सम-विच्छेद चार्ट प्रबन्धकीय निर्णयन के उपकरण के रूप में प्रबन्ध तन्त्र को समस्या के लिए कार्यवाही या सुधार हेतु कोई सुझाव नहीं देता है।

य) बहुधा एक सम-विच्छेद चार्ट विचारणीय समस्या का केवल स्थैतिक चित्र (Static View) प्रस्तुत करता है।

2.4.6 सम-विच्छेद विश्लेषण व अंशदान (Break-even Analysis & Contribution):

बिक्री तथा बिक्री की सीमान्त लागत अथवा परिवर्तनशील लागत के बीच अन्तर अंशदान

(Contribution) कहलाता है। इसे विक्रय मूल्य का प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत पर आधिक्य (excess of selling price over variable cost per unit) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अंशदान को अंशदान सीमान्त या उपान्त (Contribution Margin) अथवा सकल सीमान्त (Gross Margin) के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील लागत पर बिक्री का आधिक्य वह राशि होती है जो स्थिर व्ययों और लाभ में योगदान करती हैं।

यदि किसी उत्पाद का विक्रय मूल्य 20 रूपया प्रति इकाई है और परिवर्तनशील लागत 15 रूपया प्रति इकाई है तो अंशदान 20 - 15 = 5 रू. प्रति इकाई होगा। मान लीजिए कुल स्थिर व्यय 50,000 रू. है तथा बेची गयी कुल इकाइयाँ 8,000 हैं तो कुल अंशदान 8,000 x 5 रू. = 40,000 रू. हुआ जो स्थिर व्ययों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नही हैं और इस स्थिति में 10,000 रू. की हानि (50,000 - 40,000) है, यदि उत्पादन 10,000 इकाइयाँ हो तब (10,000 x रू. 5) = 50,000 रू.का अंशदान स्थिर व्यय (50,000) के बराबर होगा और ऐसी स्थिति मे लाभ की कोई राशि नहीं बचेगी। लाभ तभी होगा जब अंशदान की राशि स्थिर लागत से अधिक हो । अतएव 10,000 इकाइयों के बाद उत्पाद की कोई भी अतिरिक्त इकाई लाभ प्रदान करेंगी। जैसे 15,000 इकाइयों के उत्पादन स्तर पर कुल अंशदान 15,000 x रू. 5 = 75,000 रू. होगा जबकि स्थिर लागतें पूर्ववत 50,000 रू. ही रहेंगी। इस प्रकार उत्पादन के इस स्तर पर 25,000 रू. का लाभ होगा।

अंशदान को इस प्रकार भी अभिव्यक्त किया जा सकता है -

अंशदान = बिक्री - परिवर्तनशील (सीमान्त) लागत

(Contribution = Sales - Variable (Marginal) Cost)

अथवा, अंशदान (प्रति इकाई) = विक्रय मूल्य - परिवर्तनशील (सीमान्त) लागत (प्रति इकाई)

(Contribution (per unit) = Selling price - Variable (Marginal) Cost per unit)

अथवा, अंशदान = स्थिर लागत + लाभ (-हानि)

(Contribution = Fixed Cost + Profit (-Loss))

अंशदान के लाभ (Advantages of Contribution)

अंशदान की अवधारणा प्रबन्धकीय निर्णय लेने में प्रबन्ध के लिए एक महत्वपूर्ण सहायक है। अंशदान सीमान्त की अवधारणा से होने वाले कुछ लाभों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है।

अ) यह प्रबन्ध को विक्रय मूल्य निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है।

ब) यह सम-विच्छेद बिन्दु के निर्धारण में सहायता पहुँचाता है।

स) यह लाभ अधिकतम करने हेतु उपयुक्त उत्पाद-मिश्रण का चुनाव करने में सहायता प्रदान करता है।

द) यह उत्पादन की विभिन्न वैकल्पिक रीतियों में से किसी एक को अपनाने के लिए निर्णय करने में सहायक होता है। जिस उत्पादन विधि का परिसीमन घटक (Limiting Factor) के परिप्रेक्ष्य में उच्चतम अंशदान होता है, उसे ही अपनाया जाता है।

य) यह प्रबन्ध के निर्णय करने में सहायता प्रदान करता है कि किसी उत्पाद या अवयव (Component) की खरीद की जाये अथवा उसका स्वयं निर्माण किया जाये।

र) यह बाजार में एक नयी वस्तु को प्रवेश दिलाने अर्थात प्रस्तुत करने सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायक होता है।

2.4.7 सुरक्षा सीमा (Margin of Safety)

सम-विच्छेद बिक्री से वास्तविक या बजटेड बिक्री का आधिक्य सुरक्षा सीमान्त कहलाता है। यह वास्तविक बिक्री तथा सम विच्छेद बिक्री का अन्तर होता है। यह उस राशि को इंगित करता है जिससे हानि होने के पूर्व तक बिक्री आगम गिर सकता है। सम-विच्छेद बिन्दु पर न तो कोई लाभ होता है और न कोई हानि, अतः सम-विच्छेद स्तर से अधिक बिक्री सुरक्षा सीमान्त का प्रतीक होती है। क्योंकि यह अतिरिक्त बिक्री कुछ लाभ अवश्य प्रदान करती है।। इस प्रकार,

सुरक्षा सीमा = कुल बिक्री - सम-विच्छेद बिन्दु पर बिक्री

Margin of Safety = Total Sales-Sales at Break-even Point.

माना वर्तमान वास्तविक बिक्री 5,00,000 रू. है और सम विच्छेद बिक्री 4,00,000 रू. है तो सुरक्षा सीमान्त 5,00,000-4,00,000 = 1,00,000 रू. होगा।

सुरक्षा सीमान्त को प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि एक कम्पनी अनुमानित बिक्री के 60 प्रतिशत पर सम विच्छेद स्तर पर होती है तो इसका सुरक्षा सीमान्त (100-60) 40 प्रतिशत होगा। पूर्वोक्त उदाहरण में सुरक्षा सीमान्त की प्रतिशत में निम्न प्रकार गणना की जा सकती है।

$$=\frac{1,00,000}{5,00,000}\times 100=20\%$$

प्रतिशत के रूप में ज्ञात किये गये सुरक्षा सीमान्त को सुरक्षा सीमान्त अनुपात कहते हैं। जिसकी गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है :

$$Margin\ of\ Safety\ Ratio=\frac{M.S.}{Sales}\times 100$$

$$= \frac{Actual\ Sales - Sales\ at\ B.E.P.}{Actual\ Sales} \times 100$$

सुरक्षा सीमान्त की गणना निम्नांकित सूत्र की सहायता से भी की जा सकती है -

$$Margin\ of\ safety = \frac{Profit}{P/V\ Ratio}$$

सम-विच्छेद स्तर से अतिरिक्त बिक्री की मात्रा सुरक्षा सीमान्त होती है और इस बिन्दु से ऊपर जितनी बिक्री होगी व लाभ प्रदान करेगी, अतः लाभ की गणना इस प्रकार की जा सकती है-

Profit = Margin of Safety x P/V Ratio

or M.S. = $\frac{Profit}{P/V\ Ratio}$

सुरक्षा सीमान्त का आकार व्यवसाय की शक्ति का सूचक होता है। अधिक सुरक्षा सीमान्त इस बात का प्रतीक होता है कि व्यवसाय की सुदृढ़ स्थिति है और यदि बिक्री में पर्याप्त गिरावट होती है तब भी संस्था को कुछ न कुछ लाभ होगा। दूसरी ओर कम सुरक्षा सीमान्त यह संकेत करता है कि व्यवसाय अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में है और बिक्री में थोड़ी सी गिरावट से भी व्यवसाय के लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और संस्था को हानि भी हो सकती है।

सुरक्षा सीमान्त में निम्नलिखित उपायों द्वारा सुधार लाया जा सकता है -

अ) उत्पादन स्तर को बढ़ाकर (By increasing the level of production)

ब) विक्रय मूल्य में वृद्धि द्वारा (By increasing the selling price)

स) स्थिर लागत को घटाकर (By reducing the fixed cost)

द) परिवर्तनशील लागत को घटाकर (By reducing the variable cost)

य) अलाभप्रद उत्पादों को लाभप्रद उत्पादों से प्रतिस्थापित करके (By substituting unprofitable products with profitable products)

र) विक्रय-मिश्रण में परिवर्तन अथवा अलाभप्रद उत्पादन को बन्द कर अंशदान में वृद्धि द्वारा (By increasing contribution by changing the sales-mix or by dropping unprofitable products)

2.4.8 रोकड़ या नकद सम-विच्छेद बिन्दु (Cash Break-even Point)

वर्तमान प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यावसायिक जगत में नयी औद्योगिक इकाइयों को अपनी स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में सम-विच्छेद बिन्दु को प्राप्त करना कठिन हो सकता है। अतएव नकद सम-विच्छेद बिन्दु की अवधारणा का उद्भव हुआ है। नकद सम-विच्छेद बिन्दु की व्याख्या बिक्री मात्रा के उस बिन्दु के रूप में की जा सकती है जिस पर कुल आगम कुल नकद के बराबर हो। (The cash

NMDC-129

break-even point may be fefined as that point of sales volume at which total revenue is equal to total cash cost.)

इस बिन्दु पर नकद अंशदान (Cash Contribution) (जिसकी गणना ह्रास आदि के परिवर्तनशील भाग के लिए समायोजन करने के पश्चात की जाती है) रोकड़ स्थिर लागत (cash fixed cost) अर्थात ह्रास (Depreciation) व आस्थगित व्ययों (Deferred Expenditure) को छोड़कर स्थिर लागत के बराबर होता है।। यह बिन्दु प्रबन्धतन्त्र को उस क्रियाशीलता स्तर का निर्धारण करने हेतु समर्थ बनाता है जिसके नीचे फर्म की तरलता (liquidity) प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो जायेगी। अतएव रोकड़ सम-विच्छेद बिन्दु की निम्न प्रकार गणना की जा सकती है-

$$\text{नकद सम-विच्छेद बिन्दु (इकाइयों में)} = \frac{\text{नकद स्थिर लागत}}{\text{नकद अंशदान (प्रति इकाई)}}$$

$$\text{Cash Break-Even Point (in units)} = \frac{Cash\ Fixed\ Cost}{Cash\ Contribution\ (per\ unit)}$$

उदाहरण-6

निम्नलिखित सूचना से रोकड़ सम-विच्छेद बिन्दु की गणना कीजिए-

From the following information, calculate cash break-even point:

Selling Price per unit	Rs. 40
Variable Cost per unit	Rs. 30
Depreciation included in variable cost per unit	Rs. 5
Fixed Cost	Rs. 1,00,000
Depreciation included in fixed cost	Rs. 25,000

हल-

Cash Fixed Cost = Rs. 1,00,000-25,000 = Rs. 75,000

Cash contribution per unit = Rs. 40- (30-5) = Rs. 15

$$\text{Cash Break-even point (in units)} = \frac{Cash\ Fixed\ Cost}{Cash\ Contribution\ per\ unit}$$

$$= \frac{75{,}000}{15}$$

Cash Break Even Point = 5,000 units

(in sales value) = Rs.(5,000 x 40)= Rs. 2,00,000

2.4.9 मिश्रित या संयुक्त सम-विच्छेद बिन्दु

(Composite Break-Even Point)

हम कई उत्पादों का निर्माण करने वाली फर्म के लिए मिश्रित या संयुक्त सम-विच्छेद बिन्दु

की गणना निम्न प्रकार कर सकते हैं-

$$\text{Composite Break-Even Point} = \frac{\textit{Total Fixed Cost}}{\textit{Composite P / V Ratio}}$$

$$\text{and Composite P/V Ratio} = \frac{\textit{Total Contribution}}{\textit{Total Sales}} \times 100$$

उदाहरण -7

तीन उत्पादों का निर्माण करने वाली एक कम्पनी की निम्नलिखित सूचना से आपको (अ) मिश्रित लाभ/ मात्रा अनुपात एवं (ब) मिश्रित बिन्दु की गणना करनी है। From the following information of a company producing three products, you are required to compute (a) Composite P'V Ratio, and (b) Composite Break-Even Point:

Product	Sales Revenue	Variable Cost
X	Rs. 20,000	Rs. 10,000
Y	40,000	14,000
Z	60,000	36,000

Fixed Cost : Rs. 50,000

हल

Product	Sales Revenue (Rs)	Variable Cost (Rs)	Contribution (S-V)Rs.	P/V Ratio (C/Sx100)
X	20,000	10,000	10,000	50%
Y	40,000	14,000	26,000	65%
Z	60,000	36,000	24,000	40%

(a) Composite P/V Ratio $= \frac{\textit{Total Contribution}}{\textit{Total Sales}} \times 100$

$= \frac{60{,}000}{1{,}20{,}000} \times 100$

= 50%

(b) Composite Break Even Point $= \frac{\textit{Total Fixed Costs}}{\textit{Composite P / V Ratio}} \times 100$

(In sales value)

$= \frac{50{,}000}{50\%}$

= Rs. 1,00,000

2.5 सारांश

उत्पादन सीमा स्तर बिन्दु एक व्यवसाय की बिक्री की मात्रा के सम्बन्ध में आगम व लागत

का अध्ययन करता है और उत्पादन क्रिया के विभिन्न स्तर पर सम्भावित लाभ को निर्धारित करता है । अर्थशास्त्र का यह एक मुख्य सिद्धान्त है कि एक निर्माता उस समय तक अपनी वस्तु का उत्पादन व विक्रय करता रहता है जब तक प्राप्त विक्रय राशि कम से कम स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत के योग के बराबर न हो जाए। प्रबन्ध लेखापालक इसी तथ्य को सम-विच्छेद बिन्दु के रूप में मानता है।

2.6 सम्बन्धित प्रश्न

अ) सीमान्त लागत विधि व प्रत्यक्ष लागत विधि को समझाइये।

ब) सम-विच्छेद विश्लेषण को चार्ट द्वारा समझाइये।

स) सम-विच्छेद विश्लेषण की मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।

द) सम-विच्छेद विश्लेषण के व्यावहारिक उपयोग उदाहरण देकर समझाइये।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

a) गुप्ता एस.पी. : 'प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा 2009

b) मेहता, बी.के. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. आगरा - 2009

c) गुप्ता के. एल. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा : 2007

d) अग्रवाल, एम. डी., अग्रवाल एन. पी. : वित्तीय प्रबन्ध रमेश बुक डिपो, जयपुर 1992

e) अग्रवाल एम.आर. : प्रबन्धकीय लेखांकन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1993

f) Garg A.K. : Management Accounting Swati Prakashan, Bulandshahr, 2008.

g) Arora M.N. : Cost & Management Accounting Himalaya Publishing House, Mumbai, 2008

h) Gupta, R.K. : Cost Accounting Navman Prakashan, Aligarh.

i) Agrawal, M.L., Cost Accounting Sahitya Bhawan Publications, 2004.

j) Pandey, I.M. Financial Management Vikas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi. 1992.

k) Verma G.D., Sharma R.K. Gupta Shashi K.:Accounting for Management Decision New Delhi, 2003.

इकाई - 3 सीमान्त लागत पद्धति का प्रबन्धकीय निर्णयन हेतु प्रयोग

इकाई की रूपरेखा-

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 निर्णयन के प्रमुख क्षेत्र

3.2.1 बनाओ या खरीदो निर्णय (Make or Buy Decision)

3.2.2 उत्पाद-मिश्रण में परिवर्तन (Change in Product-Mix)

3.3 मूल्य निर्णयन

3.3.1 सामान्य मूल्य

3.3.2 न्यूनतम मूल्य

3.3.3 अवसाद मूल्य

3.3.4 विशिष्ट मूल्य

3.3.5 मूल्य परिवर्तन का प्रभाव

3.4 क्या मूल्य निर्धारण सीमान्त लागत से कम हो सकते हैं?

3.5 नये बाजार की खोज

3.6 बन्द करने का निर्णय

3.6.1 पूरे व्यापार को बन्द करना

3.6.2 किसी विशेष विभाग या क्रिया को बन्द करना

3.7 सारांश

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस सन्दर्भ का अध्ययन करने के बाद आप -

- बनाओ या खरीदो निर्णय का विश्लेषण कर सकेंगे,
- उत्पादन मिश्रण में परिवर्तन सम्बन्धी निर्णयों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों पर प्रकाश डाल सकेंगे, तथा
- नये बाजार की खोज सम्बन्धी निर्णयों का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

सीमान्त लागत पद्धति प्रबन्धकीय निर्णय लेने की एक तकनीक है जो निर्णय लेने की प्रक्रिया में केवल परिवर्तनशील लागतों को अधिक महत्व प्रदान करती हैं। निर्णय के वे क्षेत्र जहाँ स्थिर लागत में कोई परिवर्तन नहीं होता है सीमान्त विश्लेषण तकनीक को अधिक महत्व देते हैं। इसके द्वारा उत्पादन, विपणन, मूल्य निर्धारण तथा अन्य विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं।

3.2 निर्णयन के प्रमुख क्षेत्र

निर्णयन के प्रमुख स्रोत उत्पादन, विपणन , मूल्य निर्धारण तथा अन्य विविध क्षेत्र हैं।

3.2.1 बनाओ या खरीदो निर्णय

किसी भी वस्तु का उत्पादन (बनाना) लाभदायक है या उसी वस्तु को बाजार से खरीदना लाभदायक होगा। इससे सम्बन्धित निर्णय भी सीमान्त लागत पद्धति द्वारा ही लिये जाते हैं। उपर्युक्त दो विकल्पों में से उत्पादक किस विकल्प का चयन करें, यह निर्णय बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। उन निर्माताओं के लिए तो बहुत ही महत्वपूर्ण होता है जो संयोजन (assembling) द्वारा वस्तु को तैयार करते हैं। जैसे एक कार निर्माता यह निर्णय ले कि उसे कार की गद्दी का निर्माण करना लाभदायक रहेगा या बाजार से बनी बनायी गद्दी खरीदना लाभदायक होगा।

बनाओ या खरीदो निर्णय की प्रकृति निम्न में से किसी एक रूप में हो सकती है।

अ) पहले से बनाये जा रहे हिस्से के सम्बन्ध में बाजार से क्रय करने का निर्णय -

यदि सीमान्त लागत बाहर से खरीद मूल्य से कम है तो उस वस्तु को बनाना लाभदायक रहेगा और जब बाहर से (बाजार से) खरीदने का मूल्य सीमान्त लागत से कम हो तो बाजार से खरीदना लाभदायक होगा। परन्तु ऐसा निर्णय लेते समय अवसर लागत (उत्पादन सुविधा के वैकल्पिक प्रयोग से उत्पन्न लाभ) को भी ध्यान में रखना चाहिए। अवसर लागत का आशय यह है कि जो मशीन या संसाधन अब खाली हो जाएगा उसे किराये पर उठाया जा सकेगा, उससे भी आय प्राप्त होगी।

ब) बाजार से खरीदे जा रहे हिस्से (वस्तु)को स्वयं बनाने का निर्णय - समस्त व्ययों जैसे कच्चा माल, श्रम, सुपरवीजन लागत, पूंजी विनियोग पर ब्याज, मशीन पर ह्रास, कारखाना भवन का किराया, जो नये वस्तु को बनाने पर होगा, यदि ये कुल लागतें बाजार मूल्य से कम हैं तो बनाना (उत्पादन करना) लाभप्रद होगा।

कुछ गैर लागत कारकों (Non Cost Factors) को भी ध्यान रखना चाहिए जैसे -

क) बनाने व खरीदने की दशा में गुण (Quality) समान होना चाहिए।

ख) बाजार से "आपूर्ति की नियमितता बनी रहे" पर भी विचार करना चाहिए।

ग) यदि मांग बढ़ने की प्रवृत्ति हो तो बनाना ही मितव्ययी हो सकता है।

घ) आपूर्तिकर्ता की वित्तीय स्थिति, नियमित आपूर्ति, उसकी साख व उत्पादन सुविधा को भी ध्यान रखना चाहिए।

उदाहरण - 1

एक रेडियो निर्माता को पता चलता है कि XX-09 अवयव को बनाने की लागत 6.25 रू. प्रति इकाई है, जबकि वही बाजार में 5.75 रू. प्रति इकाई पर उपलब्ध है। सतत् पूर्ति भी पूर्णतः आश्वासित है। लागत का विश्लेषण निम्न प्रकार है -

	(Per unit)
Materials	2.75
Labour	1.75
Other variable exps.	0.50
Depreciation & other fixed costs	1.25
	6.25

अ) आप बनायेंगे या खरीदेंगे?

ब) यदि आपूर्तिकर्ता 4.85 रू. प्रति की दर से अवयव को प्रस्तावित करे हो आपका निर्णय क्या होगा।

हल (अ)

Marginal Cost of 'Making'	Rs.
Materials	2.75
Labour	1.75
Variable exps.	0.50
	5.00

NMDC-129

Cost of Buying	<u>5.75</u>

इस प्रकार खरीदना लाभप्रद नहीं होगा क्योंकि क्रय मूल्य सीमान्त लागत से अधिक है, अतः अवयव को बनाना ही चाहिए।

(ब)

	Rs.
Marginal cost of 'Making'	5.00
Cost of Buying	<u>4.85</u>
Saving when bought	<u>0.15</u>

इस स्थिति में अवयव को बनाना लाभप्रद नहीं होगा क्योंकि सीमान्त लागत क्रय मूल्य से अधिक है । अतः खरीदने का निर्णय ही लाभप्रद होगा।

3.2.2 उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन (Change in Product Mix)

(1) नये उत्पाद या विभाग को प्रारम्भ करना - नये उत्पाद को प्रारम्भ करने की समस्या में तीन प्रकार के निर्णय लेने पड़ते हैं। (अ) क्या पुरानी वस्तुओं में से एक को बन्द करके नयी वस्तु उत्पादित की जाये? (ब) क्या विद्यमान वस्तुओं में एक और नयी वस्तु जोड़ दी जाये? (स) यदि नयी वस्तु शुरू करनी ही है तो उसकी डिजाइन या मॉडल या आकार क्या होगा?

उक्त समस्या के सम्बन्ध में निर्णय केवल अंशदान के आधार पर ही नहीं लेना चाहिए। वरन अन्य सम्बन्धित कारकों को भी ध्यान में रखना चाहिए। नयी वस्तु के सभी मॉडल के सम्बन्ध में सीमान्त लागत ज्ञात करनी चाहिए। यह भी सम्भव है कि अतिरिक्त प्लाण्ट व मशीन की रूप में कुछ अतिरिक्त विनियोग करना पड़े, जिसके कारण स्थिर व्यय में वृद्धि की सम्भावना बने । यदि ऐसा होता है तो सीमान्त लागत के साथ अतिरिक्त स्थिर व्यय को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(2) अनुकूलतम उत्पाद-मिश्रण का चुनाव या निर्धारण - जब कोई संस्था एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करती है तो एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु विभिन्न वस्तुओं के बीच मिश्रण अनुपात क्या हो? जिस मिश्रण अनुपात पर लाभ अधिकतम होता है उसे अनुकूलतम उत्पाद मिश्रण कहते हैं। इस समस्या का निदान भी सीमान्त अंशदान विश्लेषण के माध्यम से किया जा सकता है। जिस उत्पाद मिश्रण पर अंशदान अधिकतम हो, उसे ही अनुकूलतम मानते हैं।

उदाहरण - 2

एबीसी कम्पनी लि. द्वारा निर्मित उत्पाद एक्स के सम्बन्ध में निम्न समंक उपलब्ध हैं।

	रू0 (Rs)
बिक्री (Sales)	50,000
प्रत्यक्ष सामग्री (Direct Labour)	20,000
परिवर्तनशील उपरिव्यय (Variable Overheads)	10,000
स्थिर उपरिव्यय (Fixed overheads)	5,000

कम्पनी एक नया उत्पाद जेड को लाने का प्रस्ताव करती है जिसके कारण बिक्री 10,000 रू. से बढ़ जायेगी। स्थिर लागत में कोई वृद्धि नहीं होगी और उत्पाद जेड की परिवर्तनशील लागत है - सामग्री 4,800 रू. श्रम 2,200 रू. उपरिव्यय 1,400 रूपया । राय दीजिए कि उत्पाद जेड लाभदायक होगा या नहीं।

हल - **Statement of Profit if Z is introduced**

(Marginal Costing Approach)

Particulars	Product X Rs.	Product Z Rs.	Total Rs.
Direct Materials	20,000	4,800	24,800
Direct Labour	10,000	2,200	12,200
Variable Overheads	5,000	1,400	6,400
Marginal costs	35,000	8,400	43,400
Sales	50,000	10,000	60,000
Contribution	15,000	1,600	16,600
Less: Total Fixed costs			10,000
Net Profit			6,600

निष्कर्ष - स्पष्ट है कि Z उत्पाद का उत्पादन लाभदायक होगा, क्योंकि इससे कुल लाभ में (Z के अंशदान) 1,600 रू. की वृद्धि होगी।

3.3 मूल्य निर्णयन

सामान्यतः समझा जाता है कि दीर्घकाल में किसी वस्तु का मूल्य इतना होना चाहिए कि कुल लागत (स्थायी लागत + सीमान्त लागत) और वांछित लाभ की पूर्ति हो सके। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत विधि की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रह जाती । इसके साथ ही एक प्रतियोगी बाजार में मूल्य किसी एक फर्म द्वारा निर्धारित न होकर बाजार की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। स्पष्ट है कि मूल्य निर्धारण में सीमान्त लागत की भूमिका तभी है जब हम अल्प अवधि व एकाधिकारी की बात करते हैं । दूसरे शब्दों में केवल अल्पकाल में एकाधिकारी की दशा में वस्तु के मूल्य निर्धारण में सीमान्त

लागत विधि का लाभदायकता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अल्पकाल में मूल्य नीति के निम्न प्रकार हो सकते हैं -

3.3.1 सामान्य मूल्य (Normal Price)

यद्यपि सामान्य मूल्य दीर्घकालीन प्रकृति का होता है, लेकिन मूल्य निर्धारण में सीमान्त लागत विधि का योगदान स्पष्ट करने की दृष्टि से सामान्य मूल्य को निम्न समीकरण के रूप में रखा जा सकता है।

Sales Price = Marginal Costs + Contribution

Or = Marginal Cost + (Fixed Cost + Profit)

उदाहरण - 3

शिवा लि. ने तीन उत्पाद एम, एन , पी शुरू किये हैं। निम्न विवरण उपलब्ध हैं :

Shiva Ltd. has introduced three products M, N, P The following details are available:

	M	N	P
Units per Machine hour	100	50	25
Material cost per 100 units (Rs)	8	12	25
Labour cost per machine hour (Rs)	4	4	4

यह भी सूचित किया गया है कि मशीन सभी वस्तुओं को आपसी हेर-फेर से उत्पादित कर सकती है। । 2010 का बजट दर्शाता है।

It is also informed that the same machine can interchangeably manufacture all products. Budget for the year 2010 shows:

1. कुल मशीन घण्टे (Total Machine Hours)	50,000
2. स्थायी उपरिव्यय (Fixed Overheads)	2,00,000
3. सम्भावित लाभ (Profit expected)	1,00,000

प्रत्येक वस्तु के प्रति इकाई विक्रय मूल्य की गणना कीजिए।

हल

प्रश्नानुसार मशीन में तीनों में से किसी एक से उत्पादन संभव है। अतः 50,000 घंटों में निर्मित इकाईयाँ होंगी :

Machine M; 50,000 X 100 = 50,00,000 Units

Machine N; 50,000 X 50 = 25,00,000 units

Machine P; 50,000 X 25 = 12,50,000 units

Statement of Marginal Costs and Selling Price

Particulars	Machine M		Machine N		Machine P	
	Total Rs	per 100 Rs	Total Rs	per 100 Rs.	Total Rs	per 100 Rs
Materials	400000	8.00	300000	12.00	250000	20.00
Labour	200000	4.00	200000	8.00	200000	16.00
Marginal cost(A)	600000	12.00	500000	20.00	450000	36.00
Fixed Costs	200000		200000		200000	
Profit	100000		100000		100000	
Contribution(B)	300000	6.00	300000	12.00	300000	24.00
Sales (Total A+B)	900000	18.00	800000	32.00	750000	60.00

3.3.2 न्यूनतम मूल्य (Minimum Price)

इस कभी-कभी टेण्डर मूल्य (Tender Price) या उद्धरण मूल्य भी कहा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि सामान्य मूल्य से न केवल कुल लागत की वसूली हो जाती है बल्कि कुछ लाभ भी प्राप्त होता है। परन्तु जब तीव्र प्रतियोगिता हो या मूल्य कटौती युद्ध स्तर पर हो या जब नये उत्पाद को प्रथम बार बाजार में लाना हो, तो सामान्य मूल्य एक लाभदायक प्रस्ताव नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति में निर्माता के समक्ष यह समस्या होती है कि न्यूनतम मूल्य क्या निर्धारित किया जाय। स्पष्ट है कि निर्माता लाभ कमाने की स्थिति में नहीं है लेकिन वह हानि भी नहीं उठाना चाहता है। इस प्रकार वह ऐसा मूल्य निर्धारित करेगा जो ठीक कुल लागत के बराबर हो। इसे ही न्यूनतम मूल्य कहते हैं अर्थात

Minimum Price = VC + FC

यदि लागत का कोई अवयव / तत्व असम्बद्ध लगे, तो उसे न्यूनतम मूल्य निर्धारित करते समय ध्यान में नहीं रखना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि केन्द्रीय सरकार निर्यात प्रोत्साहन के उद्देश्य से एक वस्तु को उत्पादन शुल्क से मुक्त कर देती है या निर्माता उस वस्तु को अपने ही प्रबन्ध के अन्तर्गत आने वाली किसी अन्य संस्था को बेचता है तो उत्पादन शुल्क व विक्रय उपरिव्यय असम्बद्ध लागतें होंगी और मूल्य निर्धारण में उन्हें ध्यान में नहीं रखा जायेगा।

इसी प्रकार कभी-कभी निर्माता की उत्पादन लागतों में वृद्धि हो जाती है और वह मूल्य में वृद्धि करने की स्थिति में नहीं होता है। ऐसी स्थिति में अन्य प्रतियोगियों की भाँति लाभ कमाने की इच्छा

NMDC-129

रखते हुए भी वह एक न्यूनतम मूल्य निर्धारित करना चाहता है, ताकि वस्तु का विक्रय भी हो जाय और इच्छित लाभ भी मिल जाय।

उदाहरण - 4

श्री रामप्रसाद लाइटर्स बनाते हैं। वह अपनी वस्तु को 20 रू. प्रति पर बेचते है और प्रत्येक लाइटर पर 5 रू. लाभ कमाते है।उन्होंने अपनी मशीनी क्षमता का 50 प्रतिशत (50,000 लाइटर्स) पर कार्य किया है। प्रत्येक लाइटर की लागत निम्न है :-

Sri Ram Prasad manufacturers lighters. He sells his product at Rs. 20 each and makes profit of Rs. 5 on each lighter. He worked 50% of his machinery capacity at 50,000 lighters. The cost of each lighter is as under:

	Rs.
Direct Material	6
Wages	2
Works Overhead	5 (50% fixed)
Selling Expenses	2 (25% variable)

अगले वर्ष के लिए उनका अनुमान है कि लागतें निम्न रूप में बढ़ेगी :

His anticipation for the next year is that the costs will go up as under:

Fixed charges	10%
Direct Laobur	20%
Material	5%

विक्रय मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अगले वर्ष में 20,000 लाइटर्स के अतिरिक्त आर्डर प्राप्त हैं। सबसे कम मूल्य क्या हो जिसे वह उदधृत कर सकें ताकि वह वही लाभ कमा सकें जो चालू वर्ष का है?

There will not be any change in selling price. There is an additional order for 20,000 lighters in the next year. What is the lowest rate he can quote so that he can earn the same profit as the current year?

हल

Statement of Current Year's Profit

Particulars	Amount (Rs)
a) Sales of 50,000 lighter @ Rs. 20 each	10,00,000
Marginal costs:	
Material @ Rs. 6	3,00,000

Labour @ Rs. 2		1,00,000
Works Overhead @ 2.50		1,25,000
Selling Expenses @ 0.50		25,000
b)		5,50,000
c) = (a)-(b)	Contribution	4,50,000
d) Less fixed costs		2,00,000
e) = (c) - (d) Profit		2,50,000

नोट- Fixed cost की गणना : Rs.

Works overhead @ 2.50 for 50,000 lighters 1,25,000

Selling expenses @ 1.50 for 50,000 lighters 75,000

2,00,000

Changes in various elements of costs:

(i) Materials 6 + 5% of 6 = Rs. 6.30

(ii) Labour 2 + 20% of 2 = Rs. 2.40

No change in variable works and selling overheads.

(iii) Fixed overhead

Works overhead		2.50
Selling expenses		1.50
	=	4.00
Add: Increase 10%		0.40
	=	4.40

Total contribution expected for the next year: Rs.

Fixed costs @ 4.40 for 50,000 units		2,20,000
Profit (same as for current year)		2,50,000
	=	4,70,000

Statement of Marginal Costs

(for Present and Additional Order)

Particulars	**Present (50,000 units) Rs.**	**Additional (20,000 units) Rs.**
Materials @ Rs. 6.30	3,15,000	1,26,000
Labour @ Rs. 2.40	11,20,000	48,000
Variable works overhead @ Rs 2.50	1,25,000	50,000

Variable selling exp. Rs. 0.50	25,000	10,000
Marginal cost	5,85,000	2,34,000

	Rs.
Total Contribution expected	4,70,000
Less: Contribution on 50,000 lighters	
(10,00,000 - 5,85,000)	4,15,000
Contribution required on 20,000 lighters	55,000
Sales of 20,000 units	
Marginal Costs	2,34,000
Contribution required	55,000
	2,89,000

Lowest rate = 2,89,000/20,000 = Rs. 14.45 per lighter

3.3.3 अवसाद मूल्य (Depression Price)

कुछ विशेष परिस्थितियों में कुल लागत से कम मूल्य पर भी मूल्य निर्धारित किया जा सकता है। ऐसी एक स्थिति तीव्र प्रतियोगिता का सामना करने की स्थिति है। प्रति इकाई कुल लागत कम से कम निर्धारित प्रतियोगी मूल्य पर बेचकर विक्रय बढ़ाना कभी-कभी लाभ में सुधार ला सकता है। बशर्ते पर्याप्त मात्रा में अप्रयुक्त क्षमता उपलब्ध हो। परन्तु ऐसा मूल्य इतना अवश्य होना चाहिए कि सभी परिवर्तनशील लागत को पूरा करने के बाद कुछ अंशदान भी प्रदान करें। इसी प्रकार अवसाद काल में मांग में कमी के कारण वस्तु को सामान्य मूल्य या न्यूनतम मूल्य पर बेचाना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में भी लाभ में सुधार (कम से कम हानि को न्यूनतम बनाने के अर्थ में) ऐसा मूल्य निर्धारित करके लाया जा सकता है जो सम्पूर्ण परिवर्तनशील लागत एवं स्थिर उपरिव्यय के थोड़े अंश के बराबर हो।

अवसादकाल में एक समस्या यह भी उत्पन्न हो जाती है कि मूल्यों में निरन्तर गिरावट आने के कारण कारखाने को बन्द करने को मजबूर होना पड़े। अतः यह ज्ञात करने की आवश्यकता भी पड़ सकती है कि किस मूल्य पर उत्पादन को बन्द कर देना लाभदायक होगा।

उदाहरण - 5

आशीष उद्योग लि. कठिन समय से गुजर रही है। इसकी प्रति इकाई उत्पादन लागत 10 रू. है जबकि विक्रय मूल्य 9 रू. प्रति इकाई है। कम्पनी वर्तमान में 10,000 इकाइयों का निर्माण एवं विक्रय कर रही है। जबकि इसकी उत्पादन क्षमता 40,000 इकाईयां प्रतिवर्ष हैं ।

इसका वर्तमान लागत ढांचा निम्न प्रकार है - स्थिर लागतें 30,000 रू., प्रत्यक्ष सामग्री 30,000 रू. प्रत्यक्ष श्रम 20,000 रू. एवं परिवर्तनशील लागतें 20,000 रू. हैं।

कम्पनी के पास 10,000 अतिरिक्त इकाइयां 8 रू. प्रति इकाई की दर पर बेचने का विकल्प है। क्या विकल्प स्वीकार करना चाहिए?

Ashish Industries Ltd. is passing though difficult time. The cost of production of company is Rs. 10 per unit, while selling price is Rs. 9 per unit. Still company is in a position to sell only 10,000 units per annum. Production capacity of the company is 40,000 units.

The present cost structure is : Fixed overheads Rs. 30,000 ;

Direct material Rs. 30,000; Direct Labour Rs. 20,000 and Variable overheads Rs. 20,000.

Company gets an offer to supply 10,000 additional units @ Rs. 8 per unit. Should the offer be accepted?

हल

Statement of Marginal Cost and Profit

Particulars	10,000 units	Additional 10,000 units	Total 20,000 units
	Rs	Rs	Rs
Sales @ Rs.9 & @ Rs.8/unit	90,000	80,000	1,70,000
Marginal Cost:			
Direct Material	30,000	30,000	60,000
Direct Labour	20,000	20,000	40,000
Variable overheads	20,000	20,000	40,000
	70,000	70,000	1,40,000
Contribution	20,000	10,000	30,000
Fixed cost	30,000	-	30,000
Profit	-10,000	+10,000	Nil

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्तमान स्थिति में कम्पनी को 10,000 रू. की हानि हो रही है यदि 10,000 अतिरिक्त इकाइयों का आदेश स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे प्राप्त 10,000 रू. के अंशदान से हानि की पूर्ति हो जाएगी तथा कम्पनी कुल मिलाकर न लाभ, न हानि की स्थिति में आ जाएगी। अतः विकल्प को स्वीकार कर लेना चाहिए, लेकिन इस पहलू पर विचार कर लेना चाहिए कि ऐसा करने से 9 रू. प्रति इकाई वर्तमान मूल्य पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

3.3.4 विशिष्ट मूल्य अर्थात विशेष मूल्य पर विशिष्ट आर्डर या निर्यात प्रस्ताव को स्वीकार करना: (Special Price or Aceptance of Special Order of Export or Order at Special Price):

कभी-कभी मूल्य निर्णयन में यह समस्या भी आती है कि विद्यमान मूल्य कम से कम पर या विद्यमान लागत से कम पर प्राप्त एक विशिष्ट आदेश या प्रस्ताव स्वीकार किया जाए या नहीं। सामान्यतः ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार किया जा सकता है। यदि विशिष्ट आर्डर या निर्यात प्रस्ताव से अंशदान में वृद्धि हो रही हो, क्योंकि ऐसे अतिरिक्त उत्पादन के कारण सामान्यतः स्थायी लागत में वृद्धि नहीं होती । अतः अंशदान में वृद्धि लाभ में वृद्धि करती है और इसके साथ ही निम्न लाभ भी प्राप्त होते हैं। (1) उत्पादन क्षमता का अधिकाधिक प्रयोग (2) स्थानीय या विदेशी नए बाजार में प्रवेश (3) नए ग्राहकों या विशिष्ट श्रेणी के ग्राहकों को आकर्षित करना। (4) माल के बाजार का विस्तार इत्यादि । यह ध्यान रखने योग्य है कि यदि विदेशी बाजार को हथियाने के लिए विदेशों में वस्तुओं को कुल लागत से कम मूल्य पर बेचा जाता है तो इसे राशिपातन कहते हैं लेकिन इस स्थिति में भी यह ध्यान रखना चाहिए कि वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत + निर्यात के विशिष्ट व्ययों के बराबर अवश्य हो जाए।

कुल मिलाकर यदि विशिष्ट मूल्य पर आदेश से अंशदान और लाभ में वृद्धि हो रही हो तो इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि मूल्य सीमान्त लागत के बराबर हों तो नए बाजार या निर्यात बाजार में प्रवेश के लाभ को ध्यान में रखकर आदेश को स्वीकार करने पर विचार किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि ऐसा निर्णय निम्न मान्यताओं पर आधारित होता है।

अ) विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति से सामान्य कीमत स्तर प्रभावित नहीं होगा।

ब) विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति से विद्यमान बाजार में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

स) घरेलू मूल्य अप्रभावित रहेगा।

द) विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति से थोक व्यापारियों फुटकर व्यापारियों तथा ग्राहकों में कोई असन्तोष नहीं पैदा होगा।

यदि उत्पादन का कोई साधन सीमित या मुख्य कारक है और नया आदेश स्वीकार करने से वर्तमान उत्पादन के लिए उपलब्ध सीमित साधन में कमी हो सकती है तो, आदेश को स्वीकार करने पर होने वाले लाभ की तुलना सीमित साधन पर त्याग होने वाले अंशदान से करनी चाहिए। यदि लाभ त्याग से अधिक है तो आदेश को स्वीकार करना चाहिए अन्यथा नहीं।

उदाहरण - 6

राजहंस लि. एक एकल उत्पाद बनाते हैं ओर 30 रू. प्रति इकाई पर बेचते है तथा उत्पाद

के लिए मांग ऊँची है। उत्पाद की परिवर्तनशील लागत 16 रू. निम्नवत् है :-

Rajhans Ltd. Makes a single product and sells the same for Rs. 30 per unit and there is great demand of the product. The variable cost of the product is Rs. 16 as detailed below:

	Rs.
Direct Material	8
Direct Labour (2 hrs)	4
Variable overhead	4
	16

वर्तमान में श्रम शक्ति पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रही है और अतिरिक्त समय उपलब्ध नहीं हो सकता है। श्री बी.बी. लाल एक ग्राहक, कम्पनी के पास एक निवेदन के साथ आते हैं कि 8,000 रू. पर एक विशेष आदेश का निर्माण कम्पनी द्वारा किया जाय। आदेश की लागत 3,000 रू. कच्चे माल के रूप में और 600 घण्टे श्रम के रूप में होगी। परिवर्तनशील उपरिव्यय 2 रू. प्रति घण्टा होगा। क्या आदेश को स्वीकार करना चाहिए?

The labour force is currently working at full capacity and no extra time can be made available. Mr. B.B. Lal, a customer, has approached the company with a request for manufacture of a special order at Rs. 8,000. The cost of the order would be Rs. 3,000 for Direct Material and 600 hours (labour) will be required and variable overhead per hour shall be Rs. 2 . Should the order be accepted?

Solution -

Contribution per unit = Rs. 30 - Rs.16 = Rs. 14

Contribution per labour unit = 14 ÷ 2 = Rs. 7

Statement of Profit on Special Order

		Amount (Rs)
Sales		8,000
Less: Variable cost :		
Direct materials	3000	
Direct labour (600x2)	1200	
variable overhead	1200	5400
Contribution on order		2600

NMDC-129

Contribution foregone (7x600)	4200
Net Loss	1600

निर्णय - विशेष आदेश को स्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि 600 घण्टों पर त्याग उस पर होने वाले लाभ से अधिक है।

3.3.5 मूल्य परिवर्तन का प्रभाव (Effect of price changes)

बाजार स्थिति का लाभ उठाने के लिए मूल्य परिवर्तन के निर्णय पर विचार किया जा सकता है। मूल्य परिवर्तन में मूल्य वृद्धि एवं मूल्य में कमी दोनों ही शमिल होते हैं। मांग की लोच की मात्रा के आधार पर मूल्य परिवर्तन से बेची गई मात्रा में भी परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। अतः मूल्य परिवर्तन से वस्तु की मांग पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान में रखकर लाभ की तुलना की जाती है। और मूल्य परिवर्तन के उस विकल्प को स्वीकार किया जाता है, जिस पर लाभ अधिकतम हो।

उदाहरण - 7

एक कारखाने की स्थापित क्षमता 30,000 इकाइयाँ हैं परन्तु वर्तमान में यह क्षमता के 2/3 स्तर पर ही कार्य कर रही है। उत्पादन की सीमान्त लागत 30 रू.प्रति इकाई व स्थिर व्यय 2,00,000 रू. है। विक्रय प्रबन्धक का प्रस्ताव है कि विक्रय मूल्य में वृद्धि कर दी जाय। मूल्य में प्रस्तावित व बेची गयी मात्रा पर प्रभाव नीचे दर्शाया गया है-

The installed capacity of a factory is 30,000 units; however, it is operating at present 2/3 of its capacity. Marginal cost of production is Rs. 30 per unit with fixed charges of Rs. 2,00,000. Sales Manager has come forward with a proposal to increase the price. The proposed changes in price alongwith its impact on quantity sold are enumerated below:

Price Rise	Expected units to be sold
Rs. 45	20,000
Rs. 50	18,000
Rs. 55	14,000

लागत लेखा विभाग से यह पता चलता है कि यदि उत्पादन 25,000 इकाइयों से ऊपर या 15,000 इकाइयों से कम हो जाता है तो सीमान्त लागत 31 रू. होने की सम्भावना है। सुझाव दीजिए कि कौन सी मूल्य वृद्धि चुनना चाहिए।

It is also gathered from the costing Dept. that if production is pushed beyond 25,000 units or below 15,000 units marginal cost is

likely to be Rs. 31. Suggest which price rise should be chosen.

हल

Statement of Profit for various Price-rise

Particulars	Selling Price Rs.45	Selling price Rs.50	Selling price Rs.55
Units	20,000	18,000	14,000
	Rs.	Rs.	Rs.
Sales	9,00,000	9,00,000	7,70,000
Less: Marginal costs	6,00,000	5,40,000	4,34,000
Contribution	3,00,000	3,60,000	3,36,000
Less: Fixed costs	2,00,000	2,00,000	2,00,000
Profit	1,00,000	1,60,000	1,36,000

सुझाव - उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 50 रू. के मूल्य पर लाभ की राशि सर्वाधिक (1,60,000) रू. है। अतः 50 रू. के विकल्प का चयन किया जाना चाहिए। यद्यपि ऐसा करने पर अप्रयुक्त क्षमता (Idle Capacity) में वृद्धि हो जाएगी।

3.4 क्या मूल्य निर्धारण सीमान्त लागत से कम हो सकता है?

सामान्यतः सीमान्त लागत से कम पर मूल्य निर्धारण नहीं किया जाता, लेकिन निम्न परिस्थितियों में अल्पकाल के लिए सीमान्त लागत से कम मूल्य भी निर्धारण किया जा सकता है।

1) बाजार में नए उत्पाद को उतारना,

2) किसी विशिष्ट उत्पाद को अधिक से अधिक लोकप्रिय बनाना।

3) विदेशी बाजार में प्रवेश करना।

4) बाजार से प्रतियोगी फर्मों को समाप्त करना,

5) आधिक्य स्टॉक का निबटारा करना,

6) श्रमिकों की सेवामुक्ति को टालना,

7) पुराने ग्राहकों को बनाए रखना, जिससे भविष्य में आदेशों को प्राप्त करके हानि को रोका जा सके।

8) नाशवान प्रकृति के उत्पादों का निबटारा करना,

9) संयन्त्र की अप्रयुक्त क्षमता का प्रयोग करना,

10) संयन्त्र एवं मशीनरी को चलाने रखने की स्थिति बनाए रखना।

3.5 नए बाजार की खोज

विक्रय सम्वर्द्धन योजनाओं का उद्देश्य नए बाजारों की खोज करना तथा उनमें प्रवेश करना भी होता है। इसके लिए कई विकल्प हो सकते है। (अ) नए विक्रय क्षेत्र में नवीन शाखा या डिपो खोलना (ब) स्थानीय वितरकों की नियुक्ति करके नए विक्रय क्षेत्र हासिल करना (स) निर्यात की दृष्टि से नए बाजारों में माल की आपूर्ति करना। नए बाजार की खोज में विज्ञापन एवं विक्रय संगठन की दृष्टि से कुछ अतिरिक्त व्यय करने पड़ सकते है। इनको शामिल करते हुए सीमान्त लागत विश्लेषण के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है।

उदाहरण - 8

अ. लि. अपनी वस्तुओं में एक को बेचने हेतु आगरा में एक विक्रय शाखा कार्यालय खोलने की इच्छा कर रही है। शाखा स्तर पर ही आदेश लिये जायेंगे और क्रियान्वित होंगे। इसी प्रकार बिल की तैयारी व वसूली भी शाखा कार्यालय द्वारा ही की जायेगी। सभी माल मुख्य कार्यालय से भेजा जाएगा।

A Ltd. is wishing to open a Branch Sales Office at Agra to sell one of the products in line. Orders will be taken and processed at branch. Likewise billing and collection will also be handled by the branch office. All goods will be sent from Head office.

परन्तु शाखा की लाभदायकता के विषय में प्रश्न चिन्ह लग गया है। लाभदायकता के प्रश्न की जांच के लिए निम्न समंक एकत्र किये गये हैं-

1) शाखा द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की लागत 150 रू. प्रति इकाई है।

2) विक्रय मूल्य 250 रू. प्रति इकाई है।

3) शाखा में दो विक्रय व्यक्ति नियुक्त किये जायेंगे जिन्हें प्रत्येक को 7,000 रू. प्रति वर्ष वेतन तथा बिक्री का 10 प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

4) शाखा की सम्भावित बिक्री का अनुमान कम से कम 550 इकाई व अधिकतम 800 इकाई है।

5) विक्रय व्यक्तियों के वेतन के अलावा, शाखा संचालन की वार्षिक लागत का अनुमान निम्न है :

	रू.
किराया (Rent)	3,000
प्रकाश तथा रोशनी (Heat & Light)	1,500
कार्यालय वेतन (Office Salaries)	15,000
विज्ञापन (Advertising)	4,000

एक रिपोर्ट तैयार कीजिए जो निर्णय लेने में सहायक हों।

हल

शाखा को चलाने व वस्तु बेचने में होने वाले खर्चों को प्रकृति के आधार पर निम्न प्रकार बाँटा जा सकता है-

Variable Cost per unit:	**Rs.**
Cost of Product	150
Commission to Salesman (10% of Rs. 250)	25
	= **175**

Fixed Cost:	**Rs.**
Salesmen's Salaries	14,000
Rent	3,000
Heat and light	1,500
Office salaries	15,000
Advertising	4,000
	= **37,500**

Statement of Expected Profit

Particulars	**Low 550 units** Rs.	**High 800 units** Rs.
Sales @ 250 per unit	1,37,500	2,00,000
Less: Marginal Costs @ 175/unit	96,250	1,40,000
= Contribution	41,250	60,000
Less: Fixed costs	37,500	37,500
= Profit	3,750	22,500

निष्कर्ष - उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि शाखा खोलना लाभदायक रहेगा और यह लाभ 3750

NMDC-129

रू. से लेकर 22500 रू. तक हो सकता है।

3.6 बन्द करने का निर्णय

बन्द करने के निर्णय में दो प्रकार के निर्णय होते हैं -

(अ) पूरे व्यापार को बन्द करना (ब) किसी विशेष विभाग या क्रिया को बन्द करना

3.6.1 पूरे व्यापार को बन्द करना -

कभी-कभी व्यापारिक गतिरोध के कारण किसी व्यावसायिक संस्था को पर्याप्त मात्रा में लेन -देन नहीं प्राप्त हो पाता है। ऐसी स्थिति में प्रबन्ध को निर्णय लेना पड़ता है कि उस विशिष्ट व्यापारिक क्रिया को बन्द कर दिया जाय अथवा नहीं। इस प्रकार की क्रियाबन्दी दो रूपों में हो सकती है - अल्पकाल या थोड़े समय के लिए बन्दी या स्थायी रूप से बन्दी।

थोड़े समय के लिए बन्दी का उद्देश्य व्यापारिक गतिरोध समाप्त होने तक व्यापारिक क्रियाओं को न करना होता है। स्पष्ट है कि ऐसा निर्णय करते समय मुख्य प्रश्न यह है क्रियाओं को कब बन्द किया जाय। अन्य शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि व्यापारिक गतिरोध की अवधि में व्यापारिक क्रियाओं को कब तक चालू रखा जाय। सीमान्त लागत विधि द्वारा इस प्रश्न का उत्तर सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है। अगर उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से स्थायी व्यय को पूरा करने के लिए अंशदान प्राप्त हो तो उत्पादन चालू रखना चाहिए अर्थात वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत से अधिक है तो हानियों की मात्रा को उत्पादन चालू रखकर कम किया जा सकता है।

परन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि अंशदान की मात्रा निम्न दो तथ्यों के अन्तर से अधिक होः

(अ) सामान्य क्रिया पर होने वाले स्थिर व्यय।

(ब) कार्यबन्दी पर होने वाले स्थिर व्यय।

कार्यबन्दी द्वारा स्थिर व्ययों की मात्रा को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, लिपिक, विक्रेता, प्रबन्धक इत्यादि के वेतन को कम किया जा सकता है। वास्तव में बन्दी की स्थिति जितनी ही लम्बी होगी उतनी ही स्थिर व्यय बचत की अधिक सम्भावना होगी परन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि निर्णय लेते समय यह भी देखना चाहिए कि सामान्य रूप में किए गये स्थिर व्यय और बन्दी के समय स्थिर व्यय के अन्तर से अंशदान की मात्रा अधिक है या नहीं । अगर अंशदान अधिक नहीं है तो कार्य बन्द कर देना चाहिए।

जहाँ तक उस उत्पादन स्तर का प्रश्न है जिस पर प्लाण्ट को बन्द कर देना आवश्यक होता है या मौसमी कारखानों की दशा में कच्चे माल की उस मात्रा का सम्बन्ध है। जिससे कम मात्रा पर प्लाण्ट चालू करना कठिन होता है उसकी गणना निम्न सूत्र के द्वारा की जा सकती है।

Shut down point = Net Escapable Fixed Cost/Contribution per unit

= Net Escapable Fixed Cost/P/V Ratio

= Avoidable Expenses/Contribution per unit of Raw Materials

3.6.2 किसी विशेष विभाग या क्रिया को बन्द करना

जब किसी व्यावसायिक संस्था के पास उपलब्ध साधन सीमित होते हैं तो उनका अधिकतम लाभप्रद प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक होता है कि विभिन्न उत्पादित वस्तुओं या उत्पादन विभागों में से ऐसी वस्तु या ऐसे विभाग को बन्द कर दे, जो कुल लाभ में सबसे कम अंशदान देता हो। इस सम्बन्ध में लिया जाने वाला निर्ण प्रत्येक विभाग या वस्तु द्वारा प्रदत्त अंशदान के तुलनात्मक अध्ययन पर निर्भर करता है। इसके लिए विभिन्न सम्भावित विकल्पों हेतु सीमान्त लागत व लाभ का विवरण बनाया जाता है। इस विवरण को बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

1) यदि एक वस्तु को बन्द कर दिया जाय, तो कुछ सीमा तक क्षमता अप्रयुक्त हो जायेगी जिसका आगे प्रयोग नहीं भी हो सकता है या शेष वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना भी हो सकता है।

2) यदि उत्पादन साधन में से कोई मुख्य तत्व है तो तत्व साधन के प्रति इकाई पर अंशदान या दत्तांश की गणना करनी चाहिए, जिसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग कर सकते है।

Contribution per unit of Key Factor

= Contribution/Units of key factor

वस्तु या विभाग को बन्द करने के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय निम्न मार्गदर्शक सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. जब तक किसी वस्तु पर धनात्मक दत्तांश उपलब्ध हो, उसे चालू ही रखना चाहिए।

2. जिस वस्तु पर दत्तांश सबसे अधिक हो, उसे उत्पादन प्रोग्राम में उच्च प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए।

3. यदि किसी एक वस्तु को बन्द करना ही हो, तो उसे बन्द करना चाहिए, जिसके बन्द होने से लाभ अधिकतम हो जाय।

4. यदि उत्पादन का कोई साधन मुख्य कारक के रूप में है, तो उस वस्तु को बन्द करना चाहिए जिस पर मुख्य कारक साधन की प्रति इकाई दत्तांश न्यूनतम हो।

5. स्थिर व्यय सम्बन्धी सूचना का विश्लेषण करके पता लगाना चाहिए कि स्थिर व्यय का कितना अंश वस्तु से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं है। ऐसे अंश को ही शुद्ध लाभ निकालने में दत्तांश में से घटाया जायेगा।

उदाहरण - 9

प्रतिभा लि. का प्रबन्ध जो अभी सामान्य क्षमता के 50 प्रतिशत स्तर पर कार्यरत है, उम्मीद करता है कि बिक्री की मात्रा वर्तमान 5,000 प्रति इकाई प्रति माह से नीचे गिर जायेगी। मासिक बिक्री के लिए आय विवरण निम्न स्थिति को दर्शाता है:

	Rs.
Sales (5,000 units @ Rs.3 per unit)	15,000
Less: Variable costs	10,000
= Contribution	5,000
Less: Fixed Costs	5,000
Profit	Nil

यह प्रस्तावित है कि कम्पनी उत्पादन को निरस्त कर दे जब तक बाजार की दशाएं अच्छी नहीं हो जाती हैं। सामान्य प्रबन्धक का अनुमान है कि 2,000 रू. का न्यूनतम स्थिर लागत हर हालत में आवश्यक होगा। प्रबन्धक को सुझाव दीजिये कि बिक्री के किस स्तर पर उत्पादन निरस्त करने का विचार करे, यदि विक्रय मूल्य गिरकर 2.80 रू. प्रति इकाई हो जाता है।

हल

Present Contribution = S - VC

= Rs. 15,000 - Rs. 10,000

= Rs. 5,000

Contribution per unit = Rs. 3 - Rs. 2 = Re. 1

Net Escapable Fixed Cost = Rs. 5,000 - Rs. 2,000

= Rs. 3,000

Shut-down point (in units) = 3000/1 = 3000 units

When the selling price is reduced to Rs. 2.80 :

Contribution per unit = 2.80 - 2 = 0.80

Shut-down point (in units) = 3,000/0.80 = 3,750 units

सुझाव - इस प्रकार वर्तमान विक्रय मूल्य पर उस समय प्लाण्ट को बन्द करना चाहिए जब बिक्री 6000 रू. (3,000 इकाइयों) से नीचे आ जाय। जब विक्रय मूल्य में कमी लायी जाये तो बिक्री 10,500 रू. से (3,750 इकाइयों से)नीचे आने पर प्लाण्ट को बन्द करना चाहिए।

3.7 सारांश

किसी भी व्यवसाय की स्थापना काल से लेकर इसके संचालन व विकास के क्रम में प्रबन्धकों

के सामने अनेक निर्णयों में से सर्वोत्तम विकल्पों के चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है। सीमान्त लागत पद्धति के माध्यम से सर्वोत्तम विकल्पों का चुनाव किया जा सकता है।

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

1. बनाओ या खरीदो निर्णय उदाहरण द्वारा समझाइये।
2. उत्पादन मिश्रण में परिवर्तन सम्बन्धी निर्णयों को स्पष्ट कीजिए।
3. मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों पर प्रकाश डालिए।
4. सीमान्त लागत की सहायता से कौन-कौन से महत्वपूर्ण निर्णय लिये जा सकते हैं, संक्षेप में समझाइये।

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

a) गुप्ता एस.पी. : 'प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा 2009

b) मेहता, बी.के. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. आगरा - 2009

c) गुप्ता के. एल. : 'प्रबन्धकीय लेखाविधि' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा : 2007

d) अग्रवाल, एम. डी., अग्रवाल एन. पी. : वित्तीय प्रबन्ध रमेश बुक डिपो, जयपुर 1992

e) अग्रवाल एम.आर. : प्रबन्धकीय लेखांकन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1993

f) Garg A.K. : Management Accounting Swati Prakashan, Bulandshahbr, 2008.

g) Arora M.N. : Cost & Management Accounting Himalaya Publishing House, Mumbai, 2008

h) Gupta, R.K. : Cost Accounting Navman Prakashan, Aligarh.

i) Agrawal, M.L., Cost Accounting Sahitya Bhawan Publications, 2004.

j) Pandey, I.M. Financial Management Vikas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi. 1992.

k) Verma G.D., Sharma R.K. Gupta Shashi K.:Accounting for Management Decision New Delhi, 2003.

इकाई - 4 लेखांकन योजना तथा उत्तरदायित्व लेखांकन

इकाई की रूपरेखा-

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उत्तरदायित्व लेखांकन

4.2.1 परिभाषा

4.2.2 विशेषताएँ

4.2.3 महत्व

4.2.4 कमियाँ

4.2.5 उत्तरदायित्व लेखांकन में निहित कदम

4.2.6 प्रभावपूर्ण उत्तरदायित्व लेखांकन की आधारभूत आवश्यकताएँ

4.2.7 संगठन ढाँचा एवं उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली में सम्बन्ध

4.2.8 उत्तरदायित्व लेखांकन व नियन्त्रणीय लागतें

4.2.9 उत्तरदायित्व लेखांकन का मानवीय पहलू

4.3 उत्तरदायित्व केन्द्र

4.3.1 व्यय केन्द्र

4.3.2 लाभ केन्द्र

4.3.3 विनियोग केन्द्र

4.4 लागत केन्द्र एवं उत्तरदायित्व केन्द्र में अन्तर

4.5 सारांश

4.6 सम्बन्धित प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

अ) उत्तरदायित्व लेखांकन के आशय व परिभाषा को स्पष्ट कर सकेंगे,

ब) उत्तरदायित्व लेखांकन की विशेषताओं व महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे,

स) उत्तरदायित्व लेखांकन की सीमाओं को उल्लिखित कर सकेंगे,

द) उत्तरदायित्व केन्द्रों का विवरण दे सकेंगे, तथा

य) लागत केन्द्र व उत्तरदायित्व केन्द्र के अन्तर का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

उत्तरदायित्व लेखांकन लागत नियन्त्रण की एक विशिष्ट पद्धति है। इसके अन्तर्गत संस्था में कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जाता है। यदि कार्य का निष्पादन पूर्व निर्धारित प्रमाप के अनुसार नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में उन व्यक्तियों को उत्तरदायी ठहराया जाता है जिन्हें कार्यभार सौंपा गया था। उत्तरदायित्व लेखांकन में व्यक्तियों पर बल दिया जाता है, पद्धति पर नहीं। उदाहरण के लिए यदि **अ** किसी विभाग का प्रबन्धक है और वह विभाग का लागत बजट तैयार करता है तो बजट को नियन्त्रण में रखने के लिए **अ** को ही उत्तरदायी ठहराया जायेगा। यदि वास्तविक लागत बजटेड लागत से अधिक हो जाती हैं तो ऐसा होने के कारणों की वह छानबीन करेगा तथा सुधारात्मक कदम उठायेगा। संक्षेप में उस विभाग के लिए **अ** व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जायेगा।

4.2 उत्तरदायित्व लेखांकन

उत्तरदायित्व लेखांकन पद्धति के अन्तर्गत सम्पूर्ण संगठन इकाई को अनेक उत्तरदायित्व केन्द्रों में विभाजित कर दिया जाता है। इन केन्द्रों को उत्तरदायित्व इकाई भी कहते हैं । प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिए व्यक्ति विशेष को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है।

4.2.1 परिभाषा

विलियम एल. फरेरा के अनुसार, 'उत्तरदायित्व लेखांकन का सार उत्तरदायित्व के क्षेत्रों के अनुसार लागतों व आगमों का संकलन है जिसमें प्रमाणित लागतों व बजटों के अन्तरों को उनके लिए उत्तरदायी व्यक्ति या समूह के साथ पहचाना जा सके।''

रॉबर्ट एन. एन्थोनी के अनुसार, ''उत्तरदायित्व लेखांकन प्रबन्धकीय लेखांकन का वह रूप है जो नियोजित व वास्तविक दोनों प्रकार की लेखांकन सूचना को उत्तरदायित्व केन्द्रों के आधार पर संग्रहीत व प्रतिवेदित करता है।''

निषकर्षतः कुल मिलाकर उत्तरदायित्व लेखांकन एक ऐसी व्यवस्था है जो संगठन में विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों को मानकर चलती है और प्रत्येक केन्द्र की योजना और कार्यों को आगम और

NMDC-129

लागत के रूप में दर्शाती है जिससे उस केन्द्र के विशिष्ट उत्तरदायित्व के निष्पादन को मापा जा सके। यह उल्लेखनीय है कि उत्तरदायित्व लेखांकन को **लाभदायकता लेखांकन** अथवा **क्रियाशीलता लेखांकन** भी कहते हैं।

4.2.2 विशेषताएँ

अ) उत्तरदायित्व लेखांकन के अन्तर्गत संगठन चार्ट तैयार किया जाता है जिसमें प्रत्येक अधिकारी का कार्यक्षेत्र निर्धारित रहता है ताकि आवश्यकतानुसार उनके उत्तरदायित्व को ठहरया जा सके।

ब) इस लेखांकन के अन्तर्गत सम्पूर्ण लागतों का वर्गीकरण उत्तरदायित्व केन्द्रों के आधार पर किया जाता है।

स) प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र पर केवल वे ही लागतें संग्रहीत की जाती हैं जिन पर उत्तरदायित्व केन्द्र के अधिकारियों का नियन्त्रण होता है।

द) इसके अन्तर्गत उत्तरदायित्व केन्द्र के अधिकारी वास्तविक लागतों की तुलना बजटेड लागत से करते हैं अन्त में सफलता/असफलता का स्पष्टीकरण देते हुए प्रतिवेदन तैयार कर उच्च प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

य) इसमें उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना की जाती है ये केन्द्र तीन प्रकार के हो सकते हैं - व्यय केन्द्र, लाभ केन्द्र एवं विनियोग केन्द्र।

र) प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिये व्यय, लाभ एवं विनियोग के लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते हैं।

4.2.3 उत्तरदायित्व लेखांकन का महत्व

उत्तरदायित्व लेखांकन के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं :

अ) उत्तरदायित्व का निर्धारण -

उत्तरदायित्व लेखांकन में संगठन के प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व निश्चित हो जाता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों और कार्यों को पहले से जानता है तथा किसी भी कार्य के निष्पादन की सफलता अथवा असफलता के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण सफलता से हो सकता है।

ब) निष्पादन में सुधार -

प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं उत्तरदायित्व का निर्धारण एक अभिप्रेरणात्मक घटक के रूप में कार्य करता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होता है कि यदि उनके निष्पादन में कमियाँ रह जायेगी

तो उसकी सूचना अन्य अधिकारियों तक पहुँच जायेगी तथा उससे स्पष्टीकरण माँगा जायेगा।

स) लागत नियोजन में सहायक -

उत्तरदायित्व लेखांकन में लागत एवं आगम के सम्बन्ध में पूर्ण सूचनाएं एकत्र की जाती हैं और यह सूचनाएं भविष्य में लागत और आगम का नियोजन करने, प्रमापों को निर्धारित करने तथा बजट तैयार करने में सहायता करती है।

द) अन्तरण एवं नियन्त्रण -

इस व्यवस्था में प्रबन्ध अधिकारों का उचित अन्तरण करके भी समुचित नियन्त्रण बनाए रखा जाता है। अधिकार अन्तरण के साथ उत्तरदायित्वों के भी निर्धारित हो जाने से संचालन कार्य सुगमता से चलता है और यदि कहीं कोई कमी आती है तो उच्च प्रबन्ध को सूचना मिलती रहती है।

य) निर्णयन में सहायक -

उत्तरदायित्व लेखांकन प्रबन्धकीय निर्णयन में काफी सहायक होता है, क्योंकि निर्णयन के लिए आगम, लागत, लाभ एवं विचरण के विभिन्न समंक उपलब्ध हो जाते हैं।

र) लागत नियन्त्रण -

उत्तरदायित्व लेखांकन लागत नियन्त्रण पर विशेष जोर देता है। इससे यह व्यवस्थापकों को लागत नियन्त्रण के लिये अभिप्रेरित करती रहती है।

ल) सफलता का मूल्यांकन -

उत्तरदायित्व लेखांकन के आधार पर प्रबन्धकों की सफलता या असफलता का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है, जिसके आधार पर उनके स्थानान्तरण, पदोन्नति, प्रशिक्षण इत्यादि का निर्णय लेना आसान होता है।

4.2.4 उत्तरदायित्व लेखांकन की कमियाँ

यह सही है कि उत्तरदायित्व लेखांकन लागत नियोजन एवं नियन्त्रण का महत्वपूर्ण उपकरण है, लेकिन व्यवहार में इसकी निम्न सीमाएं भी हैं।

अ) लागतों के वर्गीकरण की समस्या -

उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रभावशीलता के लिए लागतों को नियन्त्रणीय और अनियन्त्रणीय वर्गों में बाँटना होता है। इस दृष्टि से यह विवाद उठ जाता है कि किन लागतों को नियन्त्रीणीय माना जाए और किन लागतों को अनियन्त्रणीय ।

ब) प्रतिवेदन में देरी -

यदि उत्तरदायित्व प्रतिवेदन की तैयारी और उसका संदेश प्रेषित करने में देरी होती है तो

NMDC-129

उत्तरदायित्व लेखांकन की प्रभावशीलता कम हो सकती है।

स) अन्तर्विभागीय टकराव -

उत्तरदायित्व लेखांकन में प्रत्येक विभाग का प्रबन्धक कार्य निष्पादन पर विशेष ध्यान देता है और इससे विभिन्न विभागों में आपसी प्रतियोगिता एवं टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

अन्त में यह भी ध्यान रखना होगा कि उत्तरदायित्व लेखांकन को अपनाने से ही लागत नियन्त्रण सुनिश्चित नहीं हो जाता है। यह तो लागत नियन्त्रण और नियोजन की विभिन्न व्यवस्थाओं में से एक व्यवस्था है।

4.2.5 उत्तरदायित्व लेखांकन में निहित कदम

उत्तरदायित्व लेखांकन नियन्त्रण युक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। उत्तरदायित्व लेखांकन का मुख्य उद्देश्य संस्था के लक्ष्य को प्राप्त करने में प्रबन्ध को सहायता करना होता है। उत्तरदायित्व लेखांकन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्न कदम उठाये जाते हैं -

अ) सर्वप्रथम संगठन को विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक उत्तरदायित्व के लिए एक प्रबन्धक की नियुक्ति की जाती है जो कि विभाग के कार्य निष्पादन के लिए उत्तरदायी होता है।

ब) प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। लक्ष्य के निर्धारण में केन्द्र के प्रबन्धक से भी परामर्श लिया जाता है ताकि वे अपने विभाग के सम्बन्ध में सही सूचना उपलब्ध करा सकें।

स) उत्तरदायित्व केन्द्रों की निष्पादन क्षमता के सम्बन्ध में उच्च प्रबन्ध को सूचना प्रेषित की जाती है साथ ही वास्तविक निष्पादन की तुलना लक्ष्य से की जाती है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर सुधारात्मक कदम उठाये जा सकें।

द) यदि वास्तविक निष्पादन लक्ष्य से कम होता है तो इसकी सूचना उच्च प्रबन्ध को दी जाती है, उत्तरदायी व्यक्तियों का नाम भी संलग्न कर दिया जाता है।

य) समय पर आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाये जाते हैं ताकि भविष्य में कार्य प्रभावित न हो। उच्च प्रबन्ध का निर्देश सम्बन्धित उत्तरदायित्व केन्द्र को प्रेषित कर दिया जाता है, जिससे प्रारम्भिक स्तर में ही सुधारात्मक कदम उठाये जा सकें।

4.2.6 प्रभावपूर्ण उत्तरदायित्व लेखांकन की आधारभूत आवश्यकताएँ

एक प्रभावपूर्ण उत्तरदायित्व लेखांकन की आधारभूत आवश्यकताएं अथवा शर्तें निम्नलिखित हैं-

अ) सुदृढ़ संगठनात्मक संरचना

उत्तरदायित्व लेखांकन की सफलता के लिये सुदृढ़ संगठनात्मक संरचना का होना अति आवश्यक है जिसके लिए कुछ खास शर्तों का पूरा होना अपेक्षित है, जैसे - प्रत्येक प्रशासक का स्पष्ट एवं ठोस उत्तरदायित्व का निर्धारण किया जाना चाहिए। वह अपने कर्तव्यों का निष्पादन प्रभावपूर्ण ढंग से कर सके, इसके लिए कार्य निष्पादन का पूर्ण अधिकार भी दिया जाना चाहिए।

ब) उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना

उत्तरदायित्व लेखांकन मुख्य रूप से उत्तरदायित्व केन्द्रों व विभागों पर बल देता है। एक छोटी संस्था का प्रबन्ध एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक छोटे समूह से किया जा सकता है किन्तु बड़ी संस्थाओं का प्रबन्ध इस रूप में सम्भव नहीं होता है। इसके प्रभावपूर्ण प्रबन्ध के लिए इसे विभिन्न उपभागों अथवा केन्द्रों में विभाजित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक विभाग के उत्तरदायित्व भी निर्धारित कर दिये जाते हैं जिससे प्रत्येक विभाग का प्रबन्धक अपने विभाग का कार्य संचालन सुचारू रूप से कर सके। उत्तरदायित्व केन्द्र बड़ी इकाई के रूप में, जैसे - उत्पादन विभाग तथा छोटी इकाई के रूप में, जैसे - रोकड़ व लेखा विभाग हो सकता है। इससे लागत नियन्त्रण में काफी मदद मिलती है।

स) यथार्थ बजट

उत्तरदायित्व लेखांकन की सफलता के लिए श्रम, व्यय एवं लक्ष्य के सम्बन्ध में बनाये गो विभिन्न बजट यथार्थ होने चाहिए, अत्यधिक आशावादी नहीं । बजट आँकड़ों की तुलना वास्तविक निष्पादन से की जाती है। तथा विचरण की स्थिति में उनमें सुधार लाने का हर सम्भव प्रयास किया जाता है।

द) सूचना तथा निष्पादन प्रतिवेदन का सतत प्रवाह

उत्तरदायित्व लेखांकन विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों से लागत एवं आगम के सम्बन्ध में आवश्यक आँकड़ों का संग्रहण करता है। अतः आवश्यक है कि आवश्यक सूचनाएँ सतत् ढंग से संग्रहीत की जाये तथा विभिन्न स्तर के प्रबन्धकों को प्रेषित कर दी जाये। एक नियन्त्रण विधि को प्रभावपूर्ण होने के लिए ऐसा होना चाहिए जिससे विचरण की जानकारी शीघ्र हो सके, साथ ही उसमें आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाये जा सकें। विचरण की जानकारी तभी सम्भव है जब निष्पादन सम्बन्धी सूचना दी जाय। निष्पादन प्रतिवेदन को उत्तरदायित्व प्रतिवेदन भी कहा जाता है। प्रत्येक केन्द्र के अलग-अलग प्रतिवेदन यदि तैयार हों तो शीर्षत्व करने के साथ ही विचरणों का विस्तृत ब्यौरा भी सम्मिलित होना चाहिए। नियन्त्रणीय विचरणों का प्रतिवेदन में अलग से प्रदर्शन होना चाहिए। प्रतिवेदन संक्षिप्त, स्पष्ट एवं सरल होना चाहिए। निष्पादन प्रतिवेदन का प्रारूप निम्न ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

PERFORMANCE EVALUATION REPORT

Department Particulars	Month		
	Actual (Rs)	Budgeted (Rs)	Variance (Rs)
Controllable Costs:			
Direct Materials	√√	√√	√√
Direct Labour	√√	√√	√√
Direct Expenses	√√	√√	√√
Total :	√√	√√	√√
Uncontrollable Costs:			
Depreciation	√√	√√	√√
Rent	√√	√√	√√
Insurance	√√	√√	√√
TOTAL	√√	√√	√√

य) सहभागी प्रबन्ध

उत्तरदायित्व लेखांकन अधिक प्रभावपूर्ण हो सकता है यदि प्रबन्ध के सहभागी प्रारूप को अपनाया जाये। ऐसी परिस्थिति में बजट का निर्माण सहयोगियों की सहमति को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इससे श्रमिकों में अभिप्रेरणा की भावना जागृत होती है तथा उनसे पूर्ण सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है।

र) अपवर्जन अथवा अपवाद द्वारा प्रबन्ध

उत्तरदायित्व लेखांकन को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के उद्देश्य से अपवर्जन द्वारा प्रबन्ध प्रणाली का अनुसरण किया जाना चाहिए। इस प्रणाली के अन्तर्गत महत्वपूर्ण विचरणों पर विशेष रूप से प्रबन्ध को ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, दैनिक कार्यकलापों पर नहीं। इससे प्रबन्ध के समक्ष नियोजन हेतु पर्याप्त समय होगा, न कि नियन्त्रण कार्य हेतु।

ल) उच्च प्रबन्ध का सहयोग

उच्च प्रबन्ध के सहयोग के अभाव में उत्तरदायित्व लेखांकन की कल्पना सम्भव नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि उच्च प्रबन्ध इस सम्बन्ध में रूचि लें तथा विभागीय प्रबन्धकों को प्रोत्साहित करके जिससे कर्मचारी व अन्य पक्षों को तथा स्वयं संस्था को वांछित परिणाम प्राप्त हो सकें। इसके लिए विभागीय प्रबन्धकों को बजट निर्माण के कार्य में प्रारम्भ से ही संलग्न होना चाहिए क्योंकि ये वे व्यक्ति है। जिनकी दक्षता पर उत्तरदायित्व लेखांकन की सफलता निर्भर करती है।

श) प्रेरणा -

किसी संस्था के उद्देश्य एवं लक्ष्यों को लोगों के सहयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः विभागीय प्रबन्धकों को प्रेरणा स्वरूप बोनस आदि प्रदान किये जाने चाहिए, ताकि वे अपने कार्यों का निष्पादन प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकें। इसके लिए अधीनस्थ कर्मचारियों की आवश्यकताओं एवं उनके हितों पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए। कर्मचारियों के विश्वास को जीत कर ही उनसे अधिक कार्य करवाया जा सकता है।

ष) सभी स्तर से सहयोग -

उत्तरदायित्व लेखांकन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि संस्था के प्रत्येक कोने से सहयोग प्राप्त हो। इसके लिए संस्था में स्वस्थ वातावरण व्याप्त होना चाहिए। सामान्यतः कुछ पक्षों द्वारा नियन्त्रण विधियों का विरोध किया जाता है, अतः उन्हें इनके लाभों से अवगत कराया जाना चाहिए।

4.2.7 संगठन ढाँचा एवं उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली

एक सफल उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली की स्थापना करने की एक पूर्व शर्त है कि अधिकार उत्तरदायित्व सम्बन्धी स्पष्ट रेखा वाला एक सुदृढ़ ढाँचा हो। इसके अतिरिक्त, उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली इस प्रकार परिकल्पित करनी चाहिए कि यह संस्था के संगठन ढाँचा के लिए भी उपयुक्त हो। इसका आधार संगठन का विद्यमान अधिकार उत्तरदायित्व सम्बन्ध होना चाहिए। वास्तव में, उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली संगठन ढाँचा के समरूप होना चाहिए और इसे किसी कार्य हेतु उत्तरदायी प्रत्येक व्यक्ति के वास्तविक परिणामों का मूल्यांकन करने हेतु वित्तीय सूचना उपलब्ध करनी चाहिए।

निम्नलिखित चार्ट संगठन ढाँचा एवं उत्तरदायित्व केन्द्रों के आपसी सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है :-

Organisational Structure — **Responsibility Centres**

Chief Executive
Or the General Manager → Investment-centre

↓ ↓ ↓

Divisional Manager(1) Divisional Manager(2) Divisional Manager(3) → Profit Centres

↓

↓ Marketing Manager ↓ Production Manager → Cost and Revenue Centres

↓ ↓ ↓ ↓ ↓

Purchase Sales Main Assembly Maintenance → Cost and

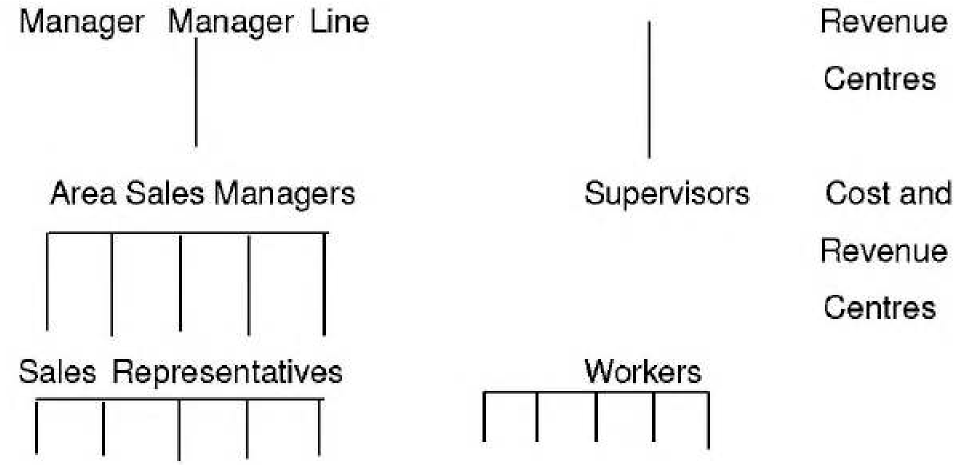

4.2.8 उत्तरदायित्व लेखांकन व नियन्त्रणीय लागतें

उत्तरदायित्व केन्द्रों की पहचान करने एवं अधिकार उत्तरदायित्व सम्बन्धों की स्थापना करने के उपरान्त उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली में व्यक्तियों के लिए लागत व आगम निर्दिष्ट करना निहित होता है। केवल उन्हीं लागतों और आगमों को, जिन पर एक व्यक्ति का निश्चित नियन्त्रण हो सकता है उस व्यक्ति के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है। उत्तरदायित्व लेखांकन में प्रभावोत्पादकता होती हैं क्योंकि इसमें नियन्त्रणीय एवं अनियन्त्रणीय लागतों में भेद किया जा सकता है। परम्परागत लेखांकन प्रणाली, जिसमें लागतों का कार्य के अनुसार जैसे निर्माणी लागत या विक्रय व वितरण लागत, आदि अथवा उत्पादों के अनुसार वर्गीकृत एवं संकलित किया जाता है, उसकी उपेक्षा उत्तरदायित्व लेखांकन में नियन्त्रणीयता के अनुसार लागतों का वर्गीकरण व एकत्रीकरण किया जाता है। **नियन्त्रणीय लागत** वे लागतें होती हैं जिन्हें किसी एक विशिष्ट व्यक्ति अथवा उपक्रम के प्रबन्ध के स्तर द्वारा नियन्त्रित या प्रभावित नहीं किया जा सकता है, **अनियन्त्रणीय लागतें** कहलाती हैं । नियन्त्रणीय एवं अनियन्त्रणीय लागतों में अन्तर केवल एक विशिष्ट व्यक्ति या प्रबन्ध के स्तर के सन्दर्भ में होता है। लागतों को निर्दिष्ट करने के सम्बन्ध में अमेरिकन एकाउण्टिंग एसोसिएशन की समिति द्वारा सुझाये गये निम्नलिखित दिशा-निर्देशों का अनुसरण किया जा सकता है -

अ) यदि किसी व्यक्ति के पास सेवाओं की प्राप्ति और उपयोग दोनों का अधिकार हो तो उसे उक्त सेवाओं की लागत से प्रभारित किया जाना चाहिए।

ब) यदि कोई व्यक्ति स्वयं अपने कार्य के द्वारा लागत की राशि को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित कर सकता है तो उसे ऐसी लागतों से प्रभारित किया जाना चाहिए।

स) यदि एक व्यक्ति स्वयं अपने प्रत्यक्ष क्रिया द्वारा लागत की राशि को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित नहीं कर सकता है तो उसे उन लागतों से प्रभारित किया जाना चाहिए जिसके लिए प्रबन्ध-तन्त्र उसे उत्तरदायी बनाने हेतु इच्छुक हो, जिससे कि वह उन लोगों को प्रभावित कर सके जो उत्तरदायी हैं।

4.2.9 उत्तरदायित्व लेखांकन का मानवीय पहलू

"उत्तरदायित्व लेखांकन का उद्देश्य किसी पर दोष नहीं मढ़ना है। इसके स्थान पर यह निष्पादन का मूल्यांकन करता है और प्रति सम्भरण या प्रति पुष्टि या उत्तर उपलब्ध करता है ताकि

भावी परिचालनों में सुधार लाया जा सके।" व्यक्तियों के माध्यम से लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है और इसलिए उत्तरदायित्व लेखांकन को लोगों को अभिप्रेरित करना चाहिए। इसका सकारात्मक अर्थ में प्रयोग किया जाना चाहिए। इसे अधीनस्थों को दण्डित करने की युक्ति के रूप में नहीं लेना चाहिए। वस्तुतः इसे लोगों को अपने कार्य निष्पादन में सुधार लाने के लिए सहायता करनी चाहिए। अधीनस्थ कभी-कभी नियन्त्रण को नापसन्द करते हैं क्योंकि वे इसे एक बोझ या तनाव के रूप में देखते हैं। सर्वश्रेष्ठ उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली कर्मचारियों को नियन्त्रण के सकारात्मक पक्ष से आलोकित करती है। अतः उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए मानवीय पहलू पर भी अवश्य दृष्टि डालनी चाहिए और इसके लिए अधीनस्थों की आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिए, पारस्परिक हितों को विकसित करना चाहिए, नियन्त्रण उपायों के विषय में जानकारी देना तथा आवश्यकताओं के अनुरूप समायोजन करना चाहिए।

4.3 उत्तरदायित्व केन्द्र

4.3.1 व्यय केन्द्र

यदि किसी उत्तरदायित्व केन्द्र पर केवल किये गये व्ययों का ही मापन किया जाए और अर्जित लाभ या उत्पादन का मापन न हो तो ऐसे केन्द्र को व्यय केन्द्र कहते हैं। उदाहरण के लिए लेखांकन विभाग के योगदान को मौद्रिक रूप से नहीं मापा जा सकता है। अतः ऐसे केन्द्र को व्यय केन्द्र कहते हैं। व्यय केन्द्रों पर उत्तरदायित्व लेखांकन की दृष्टि से उचित कार्य कुशलता के आधार पर व्ययों का निर्धारण किया जाता है।

4.3.2 लाभ केन्द्र

इन केन्द्रों को अंशदान उपान्त केन्द्र भी कहते हैं। जब किसी उत्तरदायित्व केन्द्र द्वारा किये जाने वाले कार्यों से प्राप्त होने वाले आगम तथा उस पर होने वाले व्यय दोनों की ही गणना की जाती है तो उसे लाभ केन्द्र कहते हैं। यहाँ आगम उत्पादन का मौद्रिक मूल्य होता हैं और व्यय प्रयुक्त साधनों का मौद्रिक माप होता है। आगम तथा व्यय का अन्तर लाभ कहलाता है। इस प्रकार लाभ केन्द्र के मुख्य समंक आगम और व्यय है। यह उल्लेखनीय है कि ऐसे केन्द्र के उत्पत्ति मूल्य को ही आगम मान लिया जाता है, चाहे आगम प्राप्त या अर्जित हुए हों या नहीं। लाभ अर्जित करने का उद्देश्य न रखने वाली संस्थाओं की दशाओं में लाभ केन्द्र की अवधारणा के स्थान पर वित्तीय निष्पादन केन्द्र की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है।

4.3.3 विनियोग केन्द्र

विनियोग केन्द्र की अवधारणा एक नवीन अवधारणा है। जिस उत्तरदायित्व केन्द्र के निष्पादन का माप केवल लाभ के आधार पर ही नहीं किया जाता वरन् उस केन्द्र द्वारा किये गये विनियोगों को ध्यान में रखा जाता है तो उसे विनियोग केन्द्र कहते हैं। कुछ उत्तरदायित्व केन्द्र ऐसे होते हैं, जिनके अधिकारी केन्द्र पर होने वाले आगमों और व्ययों के साथ उन सम्पत्तियों अथवा विनियोगों के लिए भी उत्तरदायी होते हैं जिन्हें उन केन्द्रों पर प्रयोग किया जाता है। इस धारणा के अन्तर्गत उत्तरदायी अधिकारी अपने केन्द्र के विनियोग पर उचित प्रत्याय के लिए भी उत्तरदायी होता

NMRC-129

है।

4.4 लागत केन्द्र एवं उत्तरदायित्व केन्द्र में अन्तर

लागत केन्द्र किसी संस्था में उत्पादित वस्तुओं अथवा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की लागत की गणना से सम्बन्धित होता है। इस केन्द्र की दशा में अधिक महत्व उन कार्यों, प्रक्रियाओं ओर वस्तुओं पर दिया जाता है जिनकी लागत निर्धारित की जाती है । दूसरी ओर उत्तरदायित्व केन्द्रों का सम्बन्ध उत्पादन से न होकर उत्पादन की प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करने वाले व्यक्तियों या प्रबन्धकों से होता है और प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के उत्तरदायी प्रभारी को यह उत्तरदायित्व दिया जाता है कि वह नियन्त्रणीय लागतों की पहचान करें और उन पर नियन्त्रण करें।

संक्षेप में लागत केन्द्र में उत्पादन और उसकी प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाता है जबकि उत्तरदायित्व केन्द्र में उन लागतों पर नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की भूमिका पर ध्यान दिया जाता है।

4.5 सारांश

उत्तरदायित्व लेखांकन से न केवल इस बात की जानकारी होती है कि संस्था में क्या हो रहा है बल्कि इस बात की भी जानकारी हो जाती है कि उसके लिए कौन सा व्यक्ति उत्तरदायी है। उत्तरदायित्व लेखांकन में व्यक्तियों पर बल दिया जाता है पद्धति पर नहीं।

4.6 सम्बन्धित प्रश्न

अ) उत्तरदायित्व लेखांकन के आशय व परिभाषा पर प्रकाश डालिए।

ब) उत्तरदायित्व लेखांकन का महत्व समझाइये।

स) उत्तरदायित्व केन्द्र की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

द) विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व केन्द्रों को समझाइये।

य) लागत केन्द्र व उत्तरदायित्व केन्द्र में अन्तर करिए।

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

मेहता बी0 के0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लि0, आगरा, 2010

गुप्ता के0 एल0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2010

वर्मा जी0 डी0 : प्रबन्धकीय निर्णय में लेखांकन, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली 2003

शर्मा आर0 के0

गुप्ता शशि के0

गुप्ता एस0 पी0 : 'प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन,' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

अग्रवाल एम0 डी0 : वित्तीय प्रबन्ध रमेश बुक डिपो, जयपुर 1992

अग्रवाल एन0 पी0

अग्रवाल एम0 आर0: प्रबन्धीय लेखांकन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1993

Garg A.K. : Management Accounting Swati Prakashan, Buland shahar, 2008.

Arora, M.N. : Cost & Management Accounting Himalaya Publishing House, Mumbai 2008.

इकाई - 5 हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण की समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा-

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 हस्तान्तरण मूल्य विधियाँ

- 5.2.1 लागत मूल्य
- 5.2.2 सामान्य लाभ सहित लागत
- 5.2.3 वृद्धिशील लागत
- 5.2.4 लागत का आनुपातिक सहभागी लाभ
- 5.2.5 बाजार मूल्य
- 5.2.6 प्रमाप मूल्य
- 5.2.7 सहमत मूल्य
- 5.2.8 द्वैत या द्विमार्गी मूल्य

5.3 हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण विधि का चुनाव

5.4 सारांश

5.5 सम्बन्धित प्रश्न

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

अ) हस्तांतरण मूल्य निर्धारण में होने वाली समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे,

ब) हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण विधि के चुनाव पर प्रकाश डाल सकेंगे,

स) हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण विधि के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाल सकेंगे,तथा

द) हस्तान्तरण मूल्य विधियों का विवरण दे सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

"कम्पनी के अन्तर्गत लाभ केन्द्र से अन्य उत्तरदायित्व केन्द्रों को प्रदत्त वस्तुओं अथवा सेवाओं के मूल्य का माप करने के लिए प्रयुक्त मूल्य को हस्तान्तरण मूल्य कहते हैं।" ("A transfer price is a price used to measure the price goods or services furnished by a profit centre to other responsibility centres within a company") यदि कम्पनी के विभिन्न लाभ केन्द्र वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय करते हैं तो हस्तान्तरण मूल्य निर्धारित किये बिना कम्पनी के अन्तर्गत लाभ केन्द्रों के माध्यम से प्रबन्धकीय निष्पादन का मूल्यांकन करना असम्भव है। ऐसी स्थितियों में मौद्रिक मूल्यों (monetary values) का जिन्हें हस्तान्तरण मूल्य कहते हैं, निर्धारण करना आवश्यक होता है। जिस पर हस्तांतरण किया जाना चाहिए ताकि लागत व आगम को उचित ढंग से निर्दिष्ट किया जा सके । हस्तान्तरण मूल्य का प्रभाव यह होता है कि हस्तान्तरण करने वाले संभाग / केन्द्र (transferring division/centre) के लिए यह आगम का स्रोत (source of revenue) होगा, जबकि उस संभाग / केन्द्र के लिए जिसे हस्तान्तरण किया जा रहा है, यह लागत का तत्व (element of cost) होगा। इस प्रकार उत्तरदायित्व लेखांकन का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने के लिए उचित हस्तान्तरण मूल्य का निर्धारण करना आवश्यक होता है।

5.2 हस्तांतरण मूल्य विधियाँ

हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण की समस्या को दूर करने के लिये विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया, ये विधियाँ (अ) लागत, (ब) बाजार मूल्य पर आधारित होती है। अतः कम्पनी हस्तान्तरण मूल्य की महत्वपूर्ण विधियाँ या उनके प्रकार निम्नलिखित हैं :

5.2.1 लागत मूल्य

इस विधि के अनुसार, हस्तान्तरण करने वाले उपविभाग की प्रति इकाई उत्पादन लागत के आधार पर कम्पनी के एक उपविभाग (Segment) से दूसरे उपविभाग को वस्तुओं और सेवाओं का हस्तान्तरण किया जाता है। यह लागत या तो उत्पादन की वास्तविक लागत अथवा उत्पादन की प्रमाप लागत हो सकती है। हस्तान्तरण मूल्यन की इस विधि का लाभ यह है कि यह परिचालन की दृष्टि से अति सरल और सुविधाजनक विधि है। किन्तु इससे इस अर्थ में विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों के लाभ के आँकड़े विकृत हो जाते हैं कि हस्तान्तरण करने वाले केन्द्र के लाभ का न्यून मूल्यांकन (under estimation) होता है एवं जिस केन्द्र को हस्तान्तरण किया जा रहा है, उनके लाभ का अधि-मूल्यांकन (over estimation) हो जाता है। वस्तुतः हस्तान्तरण मूल्यांकन की यह विधि लाभ विश्लेषण के लिए अनुपयुक्त होती है।

5.2.2 सामान्य लाभ सहित लागत

साधारण लागत मूल्य विधि की कमियों को दूर करने की दृष्टि से अनेक कम्पनियाँ हस्तान्तरण

NMDC-129

मूल्य का निर्धारण करने के लिए लागत में लाभ का एक उपान्त (Margin of Profit) जैसे लागत का 15 प्रतिशत जोड़ देती है। इस प्रकार इस विधि में क्रय करने वाले संभाग (Division) पर हस्तान्तरण करने वाले विभाग की वास्तविक प्रति इकाई उत्पादन लागत में लाभ का एक निश्चित राशि जोड़कर प्रभार डाला जाता है। इस विधि का भी गुण इसकी सरलता तथा सुगमता है किन्तु यह विधि भी लाभ केन्द्र विश्लेषण के लिए एक उपयुक्त विधि नहीं होती है क्योंकि किसी एक विभाग की लागत के साथ-साथ उसकी अकार्य क्षमता भी अन्य विभाग को हस्तान्तरित हो जाती है।

5.2.3 वृद्धिशील लागत (Incremental cost)

कतिपय कम्पनियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली हस्तान्तरण मूल्यांकन की एक अन्य विधि हस्तान्तरण करने वाले विभाग की वृद्धिशील लागत है। वृद्धिशील लागत की गणना दो ढंग से की जा सकती है जो परिस्थिति विशेष पर निर्भर करती है। यदि उसी एक ही कम्पनी के अन्तर्गत सम्पूर्ण उत्पादन का एक विभाग से दूसरे विभाग को हस्तान्तरण किया जाता है तो हस्तान्तरण करने वाले केन्द्र की कुल परिवर्तनशील लागत में स्थायी लागत, यदि कोई हो जिसे उक्त केन्द्र पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभारित किया जाता हो, के योग को वृद्धिशील लागत कहते हैं। इस प्रकार से संगणित वृद्धिशील लागत भी लागत मूल्य विधि के ही दोषों से ग्रस्त होती है। दूसरा दृष्टिकोण उस स्थिति में प्रयोग किया जा सकता है जब वस्तुएँ एवं सेवाएँ बाह्य ग्राहकों को बेची जा रही हों और साथ में इनका उसी कम्पनी के अन्तर्गत भी हस्तान्तरण किया जाता हो। ऐसी स्थिति में वृद्धिशील लागत आगम की हानि (loss of revenue) के रूप में, जिसे हस्तान्तरण करने वाला विभाग बाह्य ग्राहकों से चार्ज करता है अवसर लागत (Opportunity cost) हो सकती है। यह दूसरा दृष्टिकोण बाजार मूल्य (Market Price) आधार के समान है और लाभ केन्द्र विश्लेषण के लिए अधिक उपयोगी है।

5.2.4 लागत का आनुपातिक सहभागी लाभ (Shared Profit Relative to the cost)

इस विधि के अनुसार कम्पनी के भीतर हस्तान्तरण (intra-company transfers) के लिए कोई मूल्य प्रभारित नही किया जाता है। इसकी अपेक्षा, कम्पनी के कुल बिक्री आगम (Total sales revenue) मे से विभिन्न विभागों की लागतों के योग को घटाकर सम्पूर्ण कम्पनी का लाभ ज्ञात किया जाता है और तत्पश्चात प्रत्येक केन्द्र के लागत के आधार के अनुपात में इस लाभ में विभिन्न लाभ केन्द्रों की सहभागिता तय की जाती है। यथा,

Share of profit of a Particular Profit Centre

$$= \text{Profit of the company} \times \frac{\textit{Cost of Particular profit Centre}}{\textit{Total Cost}}$$

इस प्रकार इस विधि के अन्तर्गत प्रत्येक विभाग की लागत के अनुसार लाभ में सहभागिता तय की जाती है। इस विधि का दोष यह है कि अकार्यक्षमता का मूल्यांकन नहीं हो पाता है। इसीलिए

यह लाभ केन्द्र विश्लेषण की एक उपयुक्त विधि नहीं है।

5.2.5 बाजार मूल्य (Market Price)

इस विधि में कम्पनी के भीतर हस्तान्तरण के लिए चार्ज किये जाने वाले मूल्यों का निर्धारण बाजार मूल्य पर न कि लागत आधार पर किया जाता है। बाजार मूल्य की संगणना करने के तीन ढंग हैं। प्रथम, यदि सक्रिय बाजार हो जो उसी कम्पनी के विभिन्न विभागों में वस्तुओं और सेवाओं के हस्तान्तरण का मूल्यांकन करने के लिए प्रचलित बाजार मूल्य लिया जा सकता है जो छूट तथा अन्य बिक्री व्ययों के समायोजन के बाद का हो सकता है। इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि यह दोनों विभागों के लाभदायकता हित की सुरक्षा करता है,क्योंकि क्रेता विभाग से वही चार्ज किया जाता है जिसका यह विभाग बाहरी लोगों को भुगतान करता,और हस्तान्तरण करने वाला विभाग वही कीमत प्राप्त करता है जो किसी भी स्थिति में बाहरी लोगों से प्राप्त किया होता। इसके अतिरिक्त बिक्री व वितरण लागत तथा अशोध्य ऋण की लागत कम कर दी जाती है और हस्तान्तरण करने वाला विभाग एक सुनिश्चित बाजार प्राप्त करता है, जबकि क्रेता विभाग नियमित और समय से सुपुर्दगी के लिए आश्वस्त रहता हैं, दूसरे, जहाँ सक्रिय बाजार का अस्तित्व नहीं होता है अथवा बाजार मूल्य उपलब्ध नहीं होता है सामान्य लाभ सहित लागत (Cost Plus a normal profit) को एक युक्ति संगत बाजार मूल्य के रूप में माना जा सकता है। परन्तु तब एक विभाग की कार्यक्षमता दूसरे विभाग को हस्तान्तरित हो जायेगी। तीसरे, कम्पनी बाजार से बोली या नीलामी (bids) आमन्त्रित कर सकती है जिससे कि बाजार मूल्य का निर्धारण किया जा सके। न्यूनतम बोली को हस्तान्तरण हेतु बाजार मूल्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। फिर भी, गलत बोली (false bid) या बिल्कुल किसी बोली के अभाव के कारण समस्या उत्पन्न हो सकती है।

5.2.6 प्रमाप मूल्य (Standard Price)

हस्तान्तरण मूल्य पूर्व निर्धारित प्रमाप मूल्य आधार पर भी निश्चित किया जाता है। प्रमाप मूल्य उत्पादन की लागत और प्रचलित बाजार दशाओं के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। इस प्रकार कुशल विभागों की तुलना में वांछित कुशलता से कम स्तर पर कार्य करने वाला विभाग कम लाभ प्रदर्शित करेगा । हालाँकि विभिन्न विभागों को स्वीकार्य प्रमाप मूल्य तय करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

5.2.7 सहमत मूल्य (Negotiated Price)

कम्पनी के भीतर (Intra Company) हस्तान्तरण मूल्य क्रय करने वाले तथा हस्तान्तरण करने वाले विभागों के बीच बातचीत या सहमति के आधार पर भी निर्धारित किया जा सकता है। बातचीत के उपरान्त ज्ञात किया गया मूल्य पारस्परिक सहमत मूल्य (Mutually agreed price) होता है। ऐसी मूल्यन विधि विभागों के साथ-साथ सम्पूर्ण कम्पनी के लिए भी लाभप्रद होती है। इस विधि का केवल तभी प्रयोग किया जा सकता है जब क्रय करने वाले और हस्तान्तरण करने वाले

दोनों विभागों के समक्ष वैकल्पिक चयन के अवसर उपलब्ध हों।

5.2.8 द्वैत या द्वि-मार्गीय मूल्य (Dual or Two-way Price):

इस विधि के अनुसार, हस्तान्तरण करने वाले विभाग के लिये एक कीमत स्वीकृत होती है जबकि क्रय करने वाले विभागों से एक भिन्न मूल्य चार्ज किया जाता है। यह विधि लाभ केन्द्रों के श्रेष्ठ मूल्यांकन या आँकलन को सम्भव बनाती है और हस्तान्तरण मूल्यों के कारण उनके मध्य विवाद उत्पन्न होने से बचाव करती है। तथापि, विभिन्न विभागों (divisions) का कुल लाभ समग्र कम्पनी के वास्तविक लाभ से भिन्न होगा। किन्तु, यह कम्पनी के समक्ष कोई समस्या खड़ी नहीं करती है क्योंकि हस्तान्तरण मूल्य केवल निष्पादन मूल्यांकन (Performance evaluation) के आन्तरिक प्रयोजनों के लिए होता है।

5.3 हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण विधि का चुनाव

हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण की कौन सी विधि का चुनाव किया जाय, प्रत्येक विधि के अपने अपने गुण एवं दोष होते हैं। यह निर्धारण किसी निश्चित परिस्थिति पर निर्भर करता है जो अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए-

अ) मूल्य निर्धारण विधि हस्तान्तरित वस्तु एवं सेवाओं के मूल्य के आनुपातिक होनी चाहिए।

ब) मूल्य निर्धारण विधि ऐसी होनी चाहिए जो संस्था के लक्ष्य के प्रति अधिक अंशदान दे सके।

स) मूल्य निर्धारण सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए जो साधनों के प्रयोग का वास्तविक माप प्रस्तुत कर सके।

द) हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण निष्पक्षता के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए।

य) मूल्य सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए जो संस्था तथा केन्द्र के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके।

5.4 सारांश

विभिन्न हस्तान्तरण मूल्यन विधियों का अध्ययन प्रकट करता है कि ऐसी कोई विशिष्ट विधि नहीं है जो समस्त स्थितियों के लिए सर्वश्रेष्ठ कहला सके। किसी विधि विशेष का चयन विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो एक स्थिति से दूसरी स्थिति में भिन्न हो सकती है, तथापि, हस्तान्तरण मूल्य का निर्धारण करते समय निम्नलिखित सामान्य नियमों या कसौटियों को मस्तिष्क में रखना चाहिए।

अ) हस्तान्तरण मूल्य वस्तुपरक ढंग से निर्धारण योग्य होना चाहिए।

ब) हस्तान्तरण मूल्य को आदान-प्रदान की जाने वाली वस्तुओं/सेवाओं के समानुपातिक

हस्तान्तरण करने वाले विभाग की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए एवं क्रय करने वाले विभाग से वसूलना चाहिए।

स) इसे विभाग के लक्ष्यों और संगठन के लक्ष्यों के बीच सर्वांगसमता या एकरूपता का योगदान करना चाहिए।

द) इसे लाभ केन्द्र मूल्यांकन की व्यवस्था करनी चाहिए एवं

य) इसे संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अधिकतम प्रयास करना चाहिए।

5.5 सम्बन्धित प्रश्न

अ) हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

ब) हस्तान्तरण मूल्य विधियों का उल्लेख कीजिये।

स) हस्तान्तरण मूल्य निर्धारण विधि के चुनाव करते समय किन-किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

द) लागत मूल्य विधि क्या है?

य) बाजार मूल्य विधि क्या है?

5.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

मेहता बी0 के0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लि0, आगरा, 2010

गुप्ता के0 एल0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2010

वर्मा जी0 डी0 : प्रबन्धकीय निर्णय में लेखांकन, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली 2003

शर्मा आर0 के0

गुप्ता शशि के0

गुप्ता एस0 पी0 : 'प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन,' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

अग्रवाल एम0 डी0 : वित्तीय प्रबन्ध रमेश बुक डिपो, जयपुर 1992

अग्रवाल एन0 पी0

Garg A.K. : Management Accounting Swati Prakashan, Buland shahar, 2008.

Arora, M.N. : Cost & Management Accounting Himalaya Publishing House, Mumbai 2008.

इकाई - 6 उत्तरदायित्व केन्द्रों के उद्देश्य व निर्धारक तत्व

इकाई की रूपरेखा-

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उत्तरदायित्व केन्द्र

6.2.1 उत्तरदायित्व केन्द्रों के उद्देश्य

6.2.2 उत्तरदायित्व केन्द्रों के निर्धारक तत्व

6.3 उत्तरदायित्व केन्द्र के प्रकार

6.3.1 लागत या व्यय केन्द्र

6.3.2 लाभ केन्द्र

6.3.3 विनियोग केन्द्र

6.4 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

6.5 सारांश

6.6 सम्बन्धित प्रश्न

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

अ) उत्तरदायित्व केन्द्रों के प्रकार का विश्लेषण कर सकेंगे,

ब) उत्तरदायित्व केन्द्रों के उद्देश्य व निर्धारक तत्वो पर प्रकाश डाल सकेंगे,

स) लागत या व्यय केन्द्र का विवरण दे सकेंगे,

द) लाभ केन्द्र का विवरण दे सकेंगे, तथा

य) विनियोग केन्द्र का विवरण दे सकेंगे।

6.1 उत्तरदायित्व केन्द्र

उत्तरदायित्व लेखांकन उत्तरदायित्व केन्द्रों के आदान एवं उत्पाद के बारे में नियोजित और वास्तविक लेखांकन सूचना का संग्रह करता है और उनका प्रतिवेदन देता है। (Responsibility

accounting collects and reports planned and actual accounting information about the inputs and outputs of responsibility centres). इस प्रकार इसके अन्तर्गत उत्तरदायित्व केन्द्रों की स्थापना की जाती है जो किसी अधिशासी या प्रमुख के अधीन होता है और वही कार्य विशेष के सफल सम्पादन के लिए उत्तरदायी होता है। उत्तरदायित्व केन्द्र एक इंजन के समान होता है जिसके आदान अर्थात निवेश होते है जो सामग्री की भौतिक मात्रा विभिन्न प्रकार के श्रम के घण्टे, और विभिन्न सेवाएँ हो सकती है। यह प्रायः इन संसाधनों से कार्य सम्पादन करता है, कार्यशील पूँजी और सम्पत्तियों की भी आवश्यकता पड़ती है। इस कार्य के फलस्वरूप, यह उत्पाद उत्पादित करता है जिनका या तो माल के रूप में यदि वे मूर्त या स्पृश्य हैं, अथवा सेवाओं के रूप में यदि, वे अमूर्त या अस्पृश्य है, वर्गीकरण किया जाता है। ये माल या सेवाएं या तो कम्पनी में ही अन्य उत्तरदायित्व केन्द्रों को भेजी जाती हैं अथवा ये बाह्य जगत में ग्राहकों के पास चली जाती है।

6.2 उत्तरदायित्व केन्द्र

डीकिन एवं मेहर (Deakin and Maher) के शब्दों में,"उत्तरदायित्व केन्द्र किसी संगठन की एक प्रबन्धक को सौंपी गई एक विशिष्ट इकाई होती है, जिसे इसके परिचालों व संसाधनों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है।" ("A responsibility centre is a specific unit of an organisation assigned to a manager who is held responsible for its operations and resources").

6.2.1 उत्तरदायित्व केन्द्रों के उद्देश्य

उत्तरदायित्व केन्द्र एक संगठन में अधिकार के क्षेत्र (sphere of authority) अथवा निर्णय बिन्दुओं (decision points) का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रभावी नियन्त्रण के लिए एक बड़े फर्म को प्रायः अर्थपूर्ण उपविभागों (segments), विभागों (departments) या सम्भागों (division) में विभाजित किया जाता है। संगठन की इन उप इकाइयों या सम्भागों को उत्तरदायित्व केन्द्र कहते हैं।

6.2.2 उत्तरदायित्व केन्द्रों के निर्धारक तत्व

उत्तरदायित्व लेखांकन का आदानों (Input) और उत्पादों (Outputs) के माप हेतु प्रयोग किया जाता है। उपयोग में लाये गये संसाधनों को आदान या निवेश (Inputs) कहते हैं। ये आदान (Inputs) सामग्री की मात्रा और श्रम के घण्टों के रूप में होते हैं, ये इकाइयाँ विजातीय होती हैं। अतएव इन्हें मौद्रिक मूल्यों में अभिव्यक्त किया जाता है। विभिन्न आदानों के योग को 'लागत' (cost) कहते हैं। उत्पाद (Outputs) या तो उत्पादित की गयी वस्तु या माल (goods) अथवा अर्पित की गयी सेवाओं (Services) के रूप में हो सकते हैं। जब ये उत्पाद संगठन के बाहर के लिए होते हैं तो उत्पाद का मौद्रिक मूल्य में माप करना आसान होता है किन्तु ये उत्पाद संगठन के अन्य

NMDC-128

विभागों या केन्द्रों में प्रयोग के लिये किये जाते हैं तो इन उत्पादों को मौद्रिक मूल्य की वस्तुपरक माप करनी चाहिए। उत्पाद के योग को आगम (Revenue) कहते हैं। इस प्रकार उत्तरदायित्व लेखांकन का प्रयोग लागतों और आगमों की माप के लिए किया जाता है।

6.3 उत्तरदायित्व केन्द्र के प्रकार

वित्तीय निष्पादन के मूल्यांकन और नियन्त्रण के उद्देश्य से उत्तरदायित्व केन्द्रों को सामान्यतया तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है :

1. लागत या व्यय केन्द्र (Cost or Expenses Centres),
2. लाभ केन्द्र (Profit Centres) एवं
3. निवेश या विनियोग केन्द्र (Investment Centres)

6.3.1 लागत या व्यय केन्द्र (Cost or Expenses Centre)

"लागत केन्द्र वे उपविभाग होते हैं जिनमें खर्च की गयी लागतों के लिए प्रबन्धक उत्तरदायी होते हैं एवं उनका कोई आगम उत्तरदायित्व नहीं होता है।" (Cost Centres are segments in which the managers are responsible for costs incurred and have no revenue responsibility") उत्तरदायित्व लेखांकन का आदान (inputs) और उत्पाद (outputs) दोनों के माप के लिए प्रयोग किया जाता है। फिर भी, जब हम एक उत्तरदायित्व केन्द्र पर केवल होने वाले व्ययों का ही मापन करते हैं तो उसे व्यय या लागत केन्द्र के नाम से जाना जाता है।

कम्पनी के लेखांकन विभाग के योगदान का मौद्रिक मूल्य में मापन नहीं किया जा सकता है, इसलिए हम इसे व्यय केन्द्र के नाम से पुकारते हैं। सामान्यतया, एक कम्पनी में उत्पादन एवं सेवा विभाग होते हैं। उत्पादन विभाग के उत्पादों का मौद्रिक मूल्य में मापन किया जा सकता है जबकि सेवा विभाग पर केवल व्यय किये जाते हैं और उनके उत्पाद का मापन नहीं होता है। कुछ सेवा विभागों के उत्पाद का न तो मापन करना उपयुक्त होता है और न ही आवश्यक। इसलिए ऐसे केन्द्र व्यय या लागत केन्द्र कहलाते हैं।

लागत केन्द्र के निष्पादन का किसी दिये हुए उत्पाद का उत्पादन करने में प्रयुक्त आदानों (Inputs) की मात्रा में माप किया जा सकता है। वास्तविक आदान और पूर्व निर्धारित बजटेड आदान के बीच तुलना विचरण (Variance) का निर्धारण करने के लिए की जाती है, जो लागत केन्द्र की कार्य कुशलता का द्योतक होता है।

6.3.2 लाभ केन्द्र (Profit Centre)

उत्तरदायित्व केन्द्रों में आदान (Inputs) अर्थात निकासी दोनों ही हो सकते हैं। आदानों को लागत और उत्पादों को आगम माना जाता है । अर्जित आगम तथा उत्पाद में की गयी लागत का

अन्तर लाभ होता है । इस प्रकार जब एक उत्तरदायित्व केन्द्र द्वारा उत्पाद से आगम का सृजन किया जाता है तो वह लाभ केन्द्र कहलाता है । इस केन्द्र का उत्पाद या तो ग्राहकों के लिए अथवा उसी संगठन के अन्य केन्द्रों के उपयोग हेतु उत्पादित किया जाता है। जब उत्पाद बाहरी लोगों के लिए होता है तब उसके आगम का ग्राहकों से लिए जाने वाले मूल्य के आधार पर मापन किया जाता है। किन्तु यदि उत्पाद संगठन के ही अन्य उत्तरदायित्व केन्द्र के लिए है तो इसके बारे में प्रबन्ध यह निर्णय लेता है कि सम्बद्ध केन्द्र को लाभ केन्द्र माना जाय अथवा नहीं। उदाहरण के लिए एक व्यवसाय में उत्पादन की कई प्रक्रियाएँ हो सकती है और एक प्रक्रिया का उत्पाद अगली प्रक्रिया को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। यदि एक प्रक्रिया से दूसरी प्रक्रिया में उत्पाद का यह हस्तान्तरण केवल लागत पर किया जाता है तो ये सभी प्रक्रियाएं लाभ केन्द्र नहीं कहला सकती हैं। इसके विपरीत, यदि प्रबन्ध लाभ पर (अथवा उस मूल्य पर जिस पर उत्पाद बाजार में उपलब्ध है) एक प्रक्रिया से अन्य प्रक्रिया में उत्पाद का हस्तान्तरण करने का निर्णय करता है तो उसे लाभ केन्द्र कहेंगें लाभ पर आन्तरिक हस्तान्तरण से कम्पनी की सम्पत्तियों में कोई वृद्धि नहीं होती है जबकि बाहरी लोगों के हाथ उत्पाद की बिक्री रोकड़, देनदार, प्राप्य विपत्र, आदि के रूप में कम्पनी की सम्पत्तियों में वृद्धि होती है। लाभ केन्द्र के आय विवरण (income statement) का नियन्त्रण युक्ति (control device) की तरह उपयोग किया जाता है। उत्तरदायित्व केन्द्र का लाभ उस केन्द्र के प्रबन्धक के निष्पादन का मूल्यांकन करना सम्भव बनाता है।

6.3.3 विनियोग केन्द्र (Investment Centre)

''विनियोग या निवेश केन्द्र वह अस्तित्व उपविभाग है जिसमें एक प्रबन्धक न केवल आगमों और व्ययों का बल्कि निवेश का भी नियन्त्रण कर सकता है।'' ("An investment centre is an entity segment in which a manager can control not only revenues and costs but also investment.")

एक उत्तरदायित्व केन्द्र के प्रबन्धक को उसके केन्द्र में प्रयुक्त सम्पत्तियों के उचित उपयोग के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसके केन्द्र में सम्पत्तियों में नियोजित रकम पर एक उचित प्रत्याय (fair return) अर्जित करेगा। किन्तु, सम्पत्तियों के रूप में इस विनियोजन का मापन करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किसी उत्तरदायित्व केन्द्र विशेष में सम्पत्तियों के रूप में नियोजित रकम का निर्धारण करना एक जटिल कार्य है। साथ ही साथ, यह भी हो सकता है कि कुछ सम्पत्तियों का उपयोग एक उत्तरदायित्व केन्द्र में कियाय जा रहा हो परन्तु उन सम्पत्तियों का वास्तविक अधिकार किसी अन्य विभाग के पास हो। इसी प्रकार, कुछ सम्पत्तियों का उपयोग दो या दो से अधिक उत्तरदायित्व केन्द्रों द्वारा किया जाता है तो विभिन्न केन्द्रों पर सम्पत्तियों की राशि का अनुभाजन करना कठिन हो जाता है। अतः विनियोग केन्द्रों का प्रयोग उन बड़े उत्तरदायित्व केन्द्रों के लिए सुविधाजनक होता है जहाँ पर उस केन्द्र का सम्पत्तियों पर एकमात्र व पृथक अधिकार होता है।

6.4 उदाहरण एवं स्पष्टीकरण

6.4.1 उदाहरण - 1

एक कारखाना के एक्स विभाग के लागत लेखापाल द्वारा तैयार किया गया नियन्त्रण प्रतिवेदन (रिपोर्ट) निम्न प्रकार है -

The following is a Control Report prepared by a Cost Accountant of Department X in a factory:

Overhead directly assigned to Department X :	Rs.	Rs.
Indirect Materials (based on actual requisitions)	1000	
Indirect Labour (job tickets)	900	
Overtime charges	100	
Depreciation on equipments	500	2500
Allocated Factory overhead (30% of factory space)		4300
Allocated overhead of Repair shop (62% of repairs in repair shop done for Department X)		1200
Allocated office and Administration Overhead (on an agreed basis)		500
Total Departmental Expenses		13000

विभाग एक्स को एक उत्तरदायित्व केन्द्र मानते हुए प्रतिवेदन संशोधित कीजिए।

Revise the report treating Department X as a responsibility centre.

Solution:

Revised Control Report of Departments X

	Rs.	Rs.
Fully Controllable Costs:		
Indirect Materials	1000	
Indirect Labour	900	
Overtime charges	100	2000
Partially Controllable Costs:		
Allocated Overhead of Repair Shop		1,200
Total Cost		3,200

कार्य टिप्पणी (Working Notes) - चूँकि विभाग एक्स का उपकरणों का ह्रास लागत, आवंटित कारखाना उपरिव्यय (कारखाना स्थान का 38 प्रतिशत) तथा प्रशासन उपरिव्यय (सहमत आधार के अनुसार) पर कोई नियन्त्रण नहीं है, अतएव विभाग एक्स का संशोधित नियन्त्रण प्रतिवेदन तैयार करते समय इन लागतों को छोड़ दिया गया है। वस्तुतः इन लागतों का सामान्य प्रबन्ध नीति के आधार पर आवंटन किया गया है क्योंकि विभाग एक्स का इन लागतों पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है।

6.4.2 उदाहरण -2

जिम्मेदार वर्क्स लिमिटेड के कारखाने में तीन उत्पादन विभाग : मशीन शाप (कार्यशाला), फैब्रिकेशन एवं असेम्बली हैं जो शाप सुपरिण्टेन्डेन्ट (कार्यशाला अधीक्षक) के उत्तरदायित्व हैं। सामग्री प्रबन्धक, नियोजन अधीक्षक एवं अनुरक्षण एवं अनुरक्षण इन्जीनियर के साथ शाप अधीक्षक कारखाना के वर्क्स प्रबन्धक को रिपोर्ट देता है। कार्यालय प्रशासन, बिक्री एवं प्रचार विक्रय प्रबन्धक के अधीन कार्यरत है, जो वर्क्स प्रबन्धक के साथ मिलकर कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक को रिपोर्ट देता है। एक माह के निष्पादन से सम्बन्धित निम्नांकित आँकड़े कम्पनी की पुस्तकों से लिये गये हैं।

	Budget (Rs)	Variance from budget (Rs)
Sales Commission	800	50A
Raw Materials and Components		
Machine shop	900	20A
Publicity Expenses	1,100	100A
Printing & Stationery	3,200	200F
Travelling Expenses	4,000	200A
Wages-		
Machine shop	800	10F
Fabrication	600	20A
Assembly	720	10A
Material-		
Assembly	760	40A
Fabrication	460	10A
Utilities -		
Machine shop	320	10A
Assembly	470	60F
Fabrication	560	30F

Maintenance	400	20A
Stores	210	40F
Planning	180	20A
Shop Superintendent's Office:		
Salaries & expenses	1,100	22F
Depreciation - Factory	3,880	40A
Works Manager's Office :		
Salaries & Administration	3,810	40A
General Office Salaries & Administration	4,270	30F
Managing Director's Office:		
Salary & Administration	2,800	20F

(A=Adverse, F=Favourable)

अ) मशीन शॉप, फैब्रीकेशन एवं असेम्बली को लागत केन्द्र मानते हुए निम्नलिखित अतिरिक्त सूचनाओं की सहायता से प्रत्येक केन्द्र के लिए लागत पत्र तैयार कीजिए।

Treating the machine shop, fabrication and assembly as cost centres, prepare cost sheets for each centre with the help of the following additional information:

शॉप अधीक्षक मशीन शॉप, फैब्रीकेशन एवं असेम्बली में 4:3:4 के अनुपात में अपना समय लगाता है। अन्य उपरिव्ययों का प्रत्येक लागत केन्द्र के प्रत्यक्ष श्रम के आधार पर संविलयन किया जाता है ।

The shop superintendent devotes his time amongst machine shop, fabrication and assembly in the ratio 4:3:4. Other factory overheads are absorbed on the basis of direct labour in each cost centre.

कार्यालय प्रशासन, विक्रय व वितरण उपरिव्यय का इन लागत केन्द्रों द्वारा समान रूप से वहन किया जाता है।

Office, administration, selling and distribution overheads are borne equally by the cost centres.

ब) मशीन शॉप, फैब्रीकेशन एवं असेम्बली को उत्तरदायित्व केन्द्र मानते हुए कार्यशाला अधीक्षक के लिए एक उत्तरदायित्व लेखांकन रिपोर्ट तैयार कीजिए।

Treating the machine shop, fabrication and assembly as responsibility centres, prepare a responsibility accounting report for the shop superintendent.

Cost sheet for machine shop

Fabrication and Assembly Cost Centres

Elements of cost	Machine Shop		Fabrication		Assembly	
	Budget (Rs)	Actual (Rs)	Budget (Rs)	Actual (Rs)	Budget (Rs)	Actual (Rs)
Raw Material & Components	900	920	460	470	760	800
Wages	800	790	600	620	720	730
Utilities	320	330	560	530	470	410
Prime Cost	2,020	2,040	1,620	1,620	1,950	1,940
Add: Factory overheads:						
Shop Superintendent's Office						
Salaries and expenses						
(Apportoned in the ratio of						
4:3:4)	400	392	300	294	400	392
Other factory overheads	3,200	3,160	2,400	2,480	2,880	2,920
(See working note 1)						
factory cost	5,620	5,592	4,320	4,394	5,230	5,252
Add: Selling and Adm.						
overheads						
(See workng note 2)	5,390	5,443	5,390	5,443	5,390	5,443
Total Cost	11,010	11,035	9,710	9,837	10,620	10,696

Working notes:

1. Determination and Apportioning of Factory Overheads (other than shop superintendent's office salaries and expenses)

	Budget (Rs)	Actual (Rs)
Maintenance Cost	400	420
Stores Cost	210	170
Planning cost	180	200
Works Manager's office -		

NMDC-129

Salaries and Administration	3,810	3,850
Depreciation - factory	3,880	3,920
Total Factory overhead	8,480	8,560
Factory overhead other than shop supdt. office-salaries and Exp. Dividend in the Ratio of Direct Labour, i.e., 800 :600:720, thus		
Machine shop Centre	3,200	3,160
Fabrication Centre	2,400	2,480
Assembly	2,880	2,920

2. Determination and apportioning of Selling and Administration Overhead.

	Budget (Rs)	Actual (Rs)
Sales Commission	800	850
Publicity Expenses	1,100	1,200
Printing and Stationary	3,200	3,000
Travelling Expenses	4,000	4,200
General Office Salaries and Admn.Exp.	4,270	4,300
Managing Director's Office salary and Administration Exp.	2,800	2,780
Total selling & Administration overhead	16,170	16,330
Apportionment:Dividend equally among the three cost centres (1:1)	5,390	5,443

ब) **Responsibility Accounting Report for the shop Superintendent**

	Budget (Rs)	Actual (Rs)	Variance (Rs)
a) Machine shop Centre:			
Raw Material & Components	900	920	20(A)

Wages	800	790	10(F)
Utilities	320	330	10(A)
Total (a)	2,020	2,040	20(A)
b) Fabrication Centre:			
Raw Material & Components	460	470	10(A)
Wages	600	620	20(A)
Utilities	560	530	30(F)
Total (b)	1,620	1,620	Nil
c) Assembly Centre:			
Raw Material & Components:	760	800	40(A)
Wages	720	730	10(A)
Utilities	470	410	60(F)
Total (c)	1,950	1,940	10(F)
Total for the three Centres (a+b+c)	**5,590**	**5,600**	**10(A)**

6.5 सारांश

किसी छोटी संस्था का प्रबन्ध एक व्यक्ति या व्यक्तियों के छोटे समूह द्वारा किया जा सकता है किन्तु बड़ी संस्थाओं के सम्बन्ध में ऐसा सम्भव नहीं है। अतः बड़ी संस्थाओं को कई इकाइयों (केन्द्रों) में बाँट दिया जाता है तथा प्रत्येक इकाई (केन्द्र) का उत्तरदायित्व किसी विशेष व्यक्ति के हाथ में सौंप दिया जाता है। लागत को नियन्त्रित करने के लिए व्यक्ति विशेष को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है।

6.6 सम्बन्धित प्रश्न

अ) उत्तरदायित्व केन्द्रों के प्रकार की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

ब) उत्तरदायित्व केन्द्र के उद्देश्य व निर्धारक तत्व समझाइये।

स) लागत केन्द्र क्या है?

द) लाभ केन्द्र क्या है?

य) विनियोग केन्द्र क्या है?

NMDC-129

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

मेहता बी0 के0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लि0, आगरा, 2010

गुप्ता के0 एल0 : प्रबन्धकीय लेखाविधि, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2010

वर्मा जी0 डी0 : प्रबन्धकीय निर्णय में लेखांकन, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली 2003

शर्मा आर0 के0

गुप्ता शशि के0

गुप्ता एस0 पी0 : 'प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु लेखांकन,' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

अग्रवाल एम0 डी0 : वित्तीय प्रबन्ध, रमेश बुक डिपो, जयपुर 1992

अग्रवाल एन0 पी0

अग्रवाल एम0 आर0: प्रबन्धीय लेखांकन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1993

Garg A.K. : Management Accounting Swati Prakashan, Buland shahar, 2008.

Arora, M.N. : Cost & Management Accounting Himalaya Publishing House, Mumbai 2008.

खण्ड

4

बज़ट एवं बज़टीय नियन्त्रण

इकाई-1 5

बजटिंग - प्रकृति एवं सिद्धान्त

इकाई-2 19

बजट का वर्गीकरण

इकाई-3 38

बजटीय नियन्त्रण

इकाई-4 55

पूँजी बजटिंग

इकाई-5 95

शून्य आधार बजटिंग

इकाई-6 104

निष्पादन बजटिंग

NMDC-129

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव — कुलपति - अध्यक्ष

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

श्री एम0 एल0 कनौजिया — कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव — निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी — निदेशक, मोनिर्बा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

प्रो0 जगदीश प्रकाश — पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक - कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज-2023

मुद्रक - के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

खण्ड-4 (परिचय)

इस खण्ड में बजट एवं बजटीय नियन्त्रण पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम इकाई में बजटिंग के प्रकृति व सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है, द्वितीय इकाई में बजटों का वर्गीकरण किया गया है। तृतीय इकाई में बजटीय - नियन्त्रण को समझाया गया है। चतुर्थ इकाई में पूँजी बजटिंग, पंचम इकाई में शून्य आधार बजटिंग एवं अन्तिम इकाई में निष्पादन बजटिंग पर प्रकाश डाला गया है।

NMDC-129

इकाई - 1 बजटिंग - प्रकृति एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा-

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 बजटिंग की परिभाषा

1.3 बजटिंग की प्रकृति

1.4 बजटिंग के उद्देश्य

1.5 बजटिंग के सिद्धान्त

1.6 प्रभावशाली बजटिंग के आवश्यक तत्व

1.7 बजट निर्माण की प्रक्रिया

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- बजटिंग का अर्थ ज्ञात होगा,
- बजटिंग के प्रकृति की जानकारी होगी,
- बजटिंग के उद्देश्य एवं सिद्धान्त ज्ञात होंगे,
- प्रभावशाली बजटिंग के आवश्यक तत्वों की जानकारी मिलेगी,
- बजट के निर्माण की प्रक्रिया ज्ञात होगी।

1.1 प्रस्तावना

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि लागत कम से कम हो ताकि लाभ अधिकतर हो सके तथा सभी उत्पादन, वितरण आदि प्रबन्धकीय कार्य प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न हो सके। इसके लिये यह आवश्यक

है कि सभी कार्य के सम्पादन से पूर्व उचित पूर्वानुमान लगा कर प्रभावकारी नियोजन किया जाय तथा साथ ही नियंत्रण की उचित प्रक्रिया को सुचारू ढंग से अपनाया जाय। प्रबन्धकों को इसके लिए भूत, वर्तमान तथा भावी व्यापारिक क्रियाओं एवं उनके परिणामों के बीच परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। यह कार्य बजटिंग के मध्यम से आज सुगम है। कम्प्यूटर के प्रयोग से भी इस में अधिक गति एवं प्रभावशीलता संभव हो सकी है। उन्हें इस पर उचित विचार करना होगा कि उत्पादन के विभिन्न कार्यकलापों पर कितना धन व्यय किया जाय, आवश्यक कार्य कितनी अवधि में समाप्त किया जाये,तथा विक्रय की क्या पद्धति अपनाई जाय और उसे कैसे प्रभावी बनाया जाय आदि, तथ्यों के विषय में पहले से ही विचार करके एक निश्चित योजना तैयार करनी चाहिए। योजनाओं को परिमाणात्मक तथा मौद्रिक स्वरूप देना बजटिंग है और आज इसकी उपादेयता बढ़ती जा रही है। बजट तैयार करने की प्रक्रिया ही बजटिंग हैं ।

1.2 बजटिंग की परिभाषा

भविष्य के लिये अपनाई जाने वाली योजनाओं को औपचारिक ढग से बजटों को तैयार करने के लिए एक क्रमबद्ध तरीके की आवश्यकता पड़ती है। बजट तैयार करने की यह विधि ही बजटिंग कहलाती है। यह एक प्रबन्धकीय क्रिया है। जिसमें बजट की तैयारी के साथ-साथ बजट का नियन्त्रण भी सम्मिलित होता है।

बजट की परिभाषाएँ

सरल शब्दों में, बजट भविष्य की घटनाओं एवं परिणामों का पूर्वानुमान है। इसमें भविष्य की क्रय, विक्रय, आय आदि की योजनायें स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त रहती है। समस्त क्रियाकलापों का पूर्व निर्धारण हो जाता है। ये योजनाएं एक निश्चित अवधि के लिए बनायी जाती हैं और इनका लिखित प्रस्तुतीकरण होता है। बजट की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :-

बारटीजल के अनुसार, ''किसी व्यावसायिक संस्था की उच्चतम कार्य कुशलता स्तर पर निर्धारित संचालन क्रियाओं की अधिकृत योजना से सम्बन्धित विस्तृत पूर्वानुमान को बजट कहते हैं।'' इसमें पूर्वानुमानों को उच्चतम स्तर पर रखने पर जोर दिया गया है। बजट गैर-व्यावसायिक संस्थाओं के लिये भी बनाये जा सकते हैं।

आई0 सी0 एम0 ए0 लन्दन के अनुसार, ''बजट समय की निश्चित अवधि के पूर्व तैयार किया गया व दिये हुये उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उस अवधि में पालन की जाने वाली नीति का एक वित्तीय तथा / अथवा मात्रात्मक विवरण है'' यह परिभाषा सर्वमान्य व स्वीकृत परिभाषा है। इस परिभाषा में निम्न बातों पर विशेष जोर दिया गया है :-

1. बजट एक वित्तीय विवरण है परन्तु इसमें रूपये-पैसे के अतिरिक्त सामग्री, माल की मात्रा, संख्या आदि का विस्तृत ब्यौरा रहता है :-

NMRC-129

2. बजट प्रायः एक अवधि के लिये बनाया जाता है।

3. यह अवधि पहले से निश्चित रहती है और बजट का निर्माण इस अवधि से पूर्व ही किया जाता है।

4. व्यवसाय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये बजट का निर्माण आवश्यक है।

हैरी एल0 बिली के अनुसार, "बजट निर्मित उत्पाद है। वे भावी संचालन क्रियाओं व अनुमानिक परिणामों के औपचारिक कार्यक्रम होते हैं। बजट दूरदर्शिता व नियोजन के परिणाम होते हैं।"

जे. पी. ब्लोकर के अनुसार, "बजट उत्पादन के विभिन्न साधनों के प्रस्तावित संयोग की वह विस्तृत सूची है जिसे प्रबन्धकों द्वारा आने वाली अवधि के लिये अत्यन्त लाभकारी समझा जाता है।

केलर एवं फेरारा के अनुसार, "बजट पूर्व निर्धारित मान्यताओं पर आधारित उद्देश्यों की उपलब्धि के लिये सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की एक योजना है।" इस परिभाषा के अनुसार, बजट निश्चित उद्देश्यों के आधार पर बनाई गई एक सुनिश्चित योजना होती है। बजट अनुमानों को ही मान्यताओं की संज्ञा इस परिभाषा में दी गयी है। ये अनुमान पिछले अनुभव के आधार पर वर्तमान में संदर्भ में होते हैं।

ग्लेन ए. वेल्श के शब्दों में, "व्यावसायिक बजट एक निश्चित भावी अवधि के लिये व्यवसाय के समस्त क्रियाकलापों से सम्बद्ध योजना होती है। यह सम्पूर्ण उद्योग अथवा उसे प्रत्येक विभाग के लिये उच्चस्तरीय प्रबन्ध के द्वारा निर्धारित नीतियों, योजनाओं, उद्देश्यों और लक्ष्यों को औपचारिक रूप हैं। इस परिभाषा में यह बात स्पष्ट रूप से बतायी गई है कि बजट भावी व्यावसायिक क्रियाओं का पूर्वानुमान होता है। यह व्यवसाय की समस्त क्रियाओं की व्यापक एवं संभावित योजना होती है। इससे प्रबन्ध की नीतियों का ज्ञान होता है। बजट योजनाओं तथा उद्देश्यों को औपचारिक ढंग से प्रस्तुत करने का एक माध्यम है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यावसायिक बजट की निम्नलिखित प्रमुख विशेषतायें ज्ञात होती हैं।

1. व्यावसायिक बजट एक निश्चित अवधि के लिए तैयार किया जाता है।

2. इसका निर्माण उस अवधि के आरम्भ होने से पूर्व हो जाता है।

3. व्यावसायिक बजट अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अवधि का होता है। अल्पकालीन अवधि एक सप्ताह से तीन माह के बीच प्रायः होती है, जबकि दीर्घकालीन अवधि एक वर्ष से तीन वर्ष तक की होती है।

4. यह निर्धारित नीति को क्रियान्वित करने के लिए तैयार किया जाता है।

5. यह एक वित्तीय अथवा परिमाणात्मक विवरण है जिसमें सामग्री, श्रम, उपरिव्यय आदि की भी भौतिक एवं परिमाणात्मक व्याख्या रहती है।

6. बजट भविष्य के परिणामों एवं घटनाओं का एक पूर्वानुमान है।

7. बजट भूत, वर्तमान एवं भविष्य को श्रृंखलाबद्ध करने हेतु व्यवसाय की नीतियों व कार्यकलापों को लिखित रूप में प्रस्तुत करने की तकनीक है। व्याववसायिक बजट निर्धारित नीति पालन हेतु भावी निश्चित अवधि के लिए बनाया गया एक वित्तीय परिमाणात्मक विवरण है जिसमें भूत, वर्तमान भविष्य को श्रृंखलाबद्ध करने हेतु सामग्री, श्रम एवं उपरिव्यय का पूर्वानुमान भी सम्मिलित किया जाता है।

बजटिंग की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :

जे0बेट्टी के अनुसार, "बजट तैयार करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को बजटिंग कहते हैं। बजटिंग भविष्यकाल की एक किस्म है जिसमें भविष्य की समस्याओं को लेन-देनों के वास्तव में घटित होने से पूर्व ही कागज पर लिख लिया जाता है।"

रायलैण्ड एवं विलियम्स के शब्दों में, "बजट तैयार करने की क्रिया को बजटिंग कहते हैं।"

1.3 बजटिंग की प्रकृति

बजटिंग की प्रकृति की व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की जा सकती है।

(अ) व्यावसायिक बजटिंग एक साधन है जिसके आधार पर प्रबन्धकीय कार्यों का प्रभावपूर्ण निष्पादन किया जा सकता है। बजटिंग नियोजन, नियंत्रण, समन्वय व निर्देशन को निष्पादन एवं उपादेय बनाने का साधन है।

(ब) व्यावसायिक बजटिंग एक उपकरण है जो प्रबन्धक द्वारा भावी क्रियाओं के सम्बन्ध में योजना बनाने के लिये प्रयोग किया जाता है । इससे समन्वय व नियन्त्रण का कार्य भी आसान हो जाता है।

(स) व्यावसायिक बजट एक ऐसी लिखित योजना है जिसमें भविष्य की एक निश्चित अवधि के सम्बन्ध में व्यवसाय संचालन के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। विक्रय, उत्पादन, सम्पत्तियों का क्रय, कार्यशील पूँजी, श्रम और विविध व्ययों का विवेचनात्मक विवरण बजट से प्राप्त होता है।

(द) व्यावसायिक बजट एक प्रकार का विशिष्ट प्रारूप है जो प्रबन्ध के क्रियाकलापों को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत करके प्रबन्धकीय कार्यकुशलता में वृद्धि करता है।

(य) व्यावसायिक बजट, संस्थान के उच्चस्तरीय प्रबन्धक द्वारा भविष्य में अपनायी गई नीति,

उद्देश्य, योजना और कार्य कलापों का औपचारिक कथन है। बजटिंग के बिना भविष्य की सारी बातें अनौपचारिक व अव्यावहारिक हो जाती हैं।

(र) व्यावसायिक बजटिंग, विवेकीकरण की एक विधि है जिसके आधार पर संस्थान के व्यावसायिक जीवन के सम्बन्ध में नियंत्रण की प्रक्रिया पूरी की जाती है।

1.4 व्यावसायिक बजटिंग के उद्देश्य

व्यवसाय में प्रयोग होने वाले बजटों का मुख्य उद्देश्य प्रबंधकीय कार्यकलापों के निष्पादन में सहायता पहुँचाना है। मुख्य प्रबंधकीय क्रियाओं नियोजन, संगठन संवहन, निर्देशन, समन्वय व नियन्त्रण में सहायता पहुँचाना ही बजटिंग का प्रमुख कार्य है। व्यावसायिक बजटिंग के उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

(अ) भविष्य के लिए नियोजन- व्यावसायिक बजटिंग का मुख्य उद्देश्य विधिवत् नियोजन करना तथा संस्था के कार्य -कलापों को समय-समय पर नियोजित करने में मदद देना है। वैसे नियोजन का कार्य बिना बजट के तैयार किए हुए भी सम्पन्न किया जा सकता है किन्तु उस दशा में नियोजन का कार्य संक्षिप्त रूप में होगा। नियोजन के प्रति गम्भीर व सामयिक ध्यान देने के लिए बजट का निर्माण कर लेना चाहिए। बजट के निर्माण से संस्थान के अधिकारियों का दृष्टिकोण संकुचित न होकर व्यापक हो जाता है। एक निश्चित अवधि में उत्पादित माल की मात्रा के सम्बन्ध में सही अनुमान बजटों के द्वारा ही ज्ञात हो पाते हैं। इच्छित उत्पादन के लिए वित्त, सामग्री, श्रम, कार्यशील पूंजी और स्थायी सम्पत्तियों की आवश्यकता की जानकारी भी बजटों की सहायता से ही होती है।

(ब) समन्वय स्थापित करना - व्यावसायिक बजटिंग का दूसरा उद्देश्य संस्था के विभिन्न विभागों और प्रक्रियाओं में समन्वय स्थापित करना है। उचित समन्वय के बिना संस्था अपने उद्देश्यों व लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकती। इसके लिए विक्रय, उत्पादन, क्रय और वित्त जैसे महत्वपूर्ण व अन्तर्विरोधी कार्यों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। यह सम्भव है कि किसी व्यावसायिक संस्थान का एक विशेष विभाग अपनी आवश्यकता के अनुसार निर्णय ले चाहे ये निर्णय अन्य विभागों की स्थिति को विपरीत रूप से क्यों न प्रभावित करते हों। बिना समन्वय के ऐसी व्यावसायिक संस्था अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकती है। इस सम्बन्ध में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि संस्था की संवहन प्रणाली व्यवस्थित हो और बजट का निर्माण आपसी सहयोग व सदभावना के वातावरण में हो।

(स) संवहन प्रदान करना - व्यावसायिक बजटिंग संस्था के भविष्य के बारे में बहुत सी सूचनाएं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का एक ढंग है। ये सूचनायें संस्था के उद्देश्य, लक्ष्य, कार्यकलापों व साधनों के सन्दर्भ में होती है और इसकी जानकारी संस्था में सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को देना बजट के क्रियान्वयन व आपसी सहयोग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बजट चूँकि इच्छित परिचालन

NMDC-129

क्रियाओं की लिखित रूपरेखा है, इसलिये इसका संवहन आसानी से हो जाता है।

(द) संगठन करना - व्यावसायिक बजटिंग न केवल कार्यों व क्रियाकलापों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करती है बल्कि इसके द्वारा मानवीय संसाध्य व भौतिक संसाधनों का उपयुक्त व्यवस्था भी करती है।विभिन्न प्रबन्धकों में सहयोग व समन्वय की भावना का विकास होता है। संगठन के विभिन्न स्तरों पर अधिकारों एवं दायित्वों का प्रत्यायोजन के द्वारा समन्वित रूप में प्रबन्धकीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। अकुशल प्रबंधकों का संस्था में कोई स्थान नहीं रह पाता है।

(य) निर्देश करना - व्यावसायिक बजटिंग निर्देशन का एक साधन है। संस्था के कार्यकलापों का विस्तृत ब्यौरा विभिन्न बजटों में होता है। कार्य कौन करेगा, कार्य किस प्रकार से सम्पन्न होगा, बजटों के द्वारा ही कार्य पूरा करने की अवधि क्या होगी, यह सारी बातें बजट से मालूम होती है और कार्य करने वाला आवश्यक निर्देश प्राप्त कर लेता है। चूँकि ये निर्देश लिखित होते हैं इसलिये कार्य करने वाला व्यावसायिक निर्देशों का पालन न करने पर उत्तरदायी भी ठहराया जा सकता है।

(र) नियंत्रण करना - जब नियंत्रण की क्रिया का सम्बन्ध बजट से स्थापित किया जाता है तो इसे बजटरी नियंत्रण कहते हैं। बजटरी नियंत्रण प्रणाली के अर्न्तगत बजटों को तैयार करने के पश्चात् वास्तविक परिणामों को लेखीकृत कर लिया जाता है। वास्तविक परिणामों व बजटेड लक्ष्यों की तुलना कर अन्तर व अन्तर के कारणों की जानकारी प्राप्त की जाती है। इस अन्तरण के कारणों की सहायता से सुधारात्मक कार्यवाही सम्बन्धी नीतियाँ तैयार की जाती हैं और बाद में उनका क्रियान्वयन भी किया जाता है।

1.5 बजटिंग के सिद्धान्त

बजटों के निर्माण में कुछ सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है। यह सिद्धान्त विशेष रूप से प्रबंधकीय नियंत्रण प्रविधि बजटिंग के संदर्भ में है। प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :

(1) प्रबन्ध द्वारा प्रवर्तित बजट को प्रबन्ध का औजार मानना चाहिए। प्रबन्ध अपने कार्यों को अच्छी तरह से पूरा करने के लिए इसका प्रयोग करता है। यह केवल लेखांकन प्राविधि नहीं है। यह प्रबन्ध का अस्त्र भी है। जिसका प्रयोग प्रबन्धीय समस्याओं के निवारण हेतु किया जाता है।

(2) उत्तरदायित्व केन्द्रों का निश्चयन - उत्तरदायित्व केन्द्रों का निर्धारण एक प्रभावशाली बजटिंग के द्वारा होना आवश्यक है। उत्तरदायित्व केन्द्र व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में होते हैं। इससे कार्यों का प्रभावपूर्ण निष्पादन सम्भव है। ऐसी लागतें जिनका नियंत्रण सम्भव है, प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिए अलग-अलग दिखानी चाहिए।

(3) बजट अवधि - बजट तैयार करते समय अवधि की प्रासंगिकता पर बल देना चाहिए। बजट अवधि न तो लम्बी होनी चाहिए और न ही बहुत छोटी। बजट की अवधि विभिन्न क्रियाकलापों की आवश्यकता व प्रभावपूर्ण प्रबन्ध कार्यकुशलता को ध्यान में रखते हुए निश्चित करना चाहिए।

सामान्यतया, बजट एक वर्ष के लिए बनाए जाते हैं और उनका पुनः उपविभाजन छमाही, तिमाही, मासिक, साप्ताहिक व दैनिक लक्ष्यों में होता है। व्यवसाय के दीर्घकालीन कार्यों के लिए लम्बी अवधि के बजट भी तैयार किये जाते हैं।

(4) **समुचित प्राप्य लक्ष्य** - बजट के निर्माण में लक्ष्यों के निर्धारण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि लक्ष्य बहुत ऊँचे हैं तो उन्हें प्राप्त करना बहुत मुश्किल हो जाता है। बजट के लक्ष्य बहुत निम्न स्तर पर होने से कार्यक्षमता में गिरावट आ जाती है। ये समुचित प्राप्य लक्ष्य अल्प अवधियों के सन्दर्भ में विभक्त होने चाहिए।

(5) **उत्तरदायी निरीक्षकों का सहयोग** - वे व्यक्ति जो बजट का क्रियान्वयन करेंगे, बजट के लक्ष्यों के निर्धारण में उनका सक्रिय सहयोग होना चाहिए। बिना उनके सहयोग के बजट के लक्ष्यों के प्रति उनकी अरूचि व तटस्थता होगी जिससे सारी बजट व्यवस्था असफल हो जाएगी। यदि स्वीकृति पर्यवेक्षकों की ओर से होगी तो बजट व्यवस्था के सफल होने की सम्भावना ज्यादा होगी।

(6) **बजट प्रक्रिया की सतत् शिक्षा** - बजट प्रक्रिया की शिक्षा का पर्यवेक्षकों की कार्यक्षमता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उत्तरदायी अधिकारियों को बजट प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इस हेतु उनके लिए सतत् शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। एक शिक्षित पर्यवेक्षक बजट के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसमें लिखित स्मारिकायें व पुस्तिकाओं के अतिरिक्त सभायें भी विशेष भूमिका अदा करती हैं।

(7) **महत्वपूर्ण अपवाद** - इस सिद्धान्त से यह बात इंगित होती है कि महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर ही प्रबन्धकों को ध्यान देना चाहिए। वास्तविक परिणामों और बजटेड लक्ष्यों के अन्तर यदि ज्यादा महत्व के न हों, तो प्रबन्ध को उस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(8) **एकरूपता** - व्यावसायिक बजट के निर्माण के आँकड़े चूँकि लेखांकन से प्राप्त होते हैं इसलिए लेखाविधि एवं बजट की शब्दावली में सामान्यतया एकरूपता का होना आवश्यक है। यदि प्रत्यक्ष सामग्री का लेखांकन करते समय व्यापारिक छूट की राशि क्रय मूल्य से नहीं घटाई जाती है और सम्बन्धित व्ययों को सामग्री की लागत में नहीं जोड़ा जाता तो बजट के निर्माण में भी सामग्री की इसी परिभाषा को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(9) **बजटिंग बजट** - लागत एवं लाभ में समन्वय- बजटिंग प्रणाली की लागत इससे प्राप्त लाभ से ज्यादा नहीं होना चाहिए। बजटिंग प्रणाली की लागत यदि उसके लाभों से ज्यादा है तो ऐसी मूल्यांकन प्रणाली की व्यावसयिक संस्था के लिए उपादेयता नहीं होती है। यदि बजट व्यवस्था में परिवर्तन करना हो तो उस दशा में भी इस बात को ध्यान में रखना चाहिए।

(10) **लाइन एवं स्टाफ कार्यों में अन्तर** - व्यवसाय में बजट तैयार करने की प्रक्रिया को स्टाफ क्रिया माना जाता है। प्रबन्धकों द्वारा निर्णय लेने का कार्य लाइन कार्य होता है जिसकी सहायता

NMDC-12A

के लिए बजट का प्रयोग किया जाता है। बजट के निर्माण का कार्य प्रबन्ध कार्य नहीं होता है।

(11) बजट अनुमानों का पुनर्निरीक्षण - उच्च स्तर के प्रबन्ध को व्यावसायिक बजट निर्माण प्रक्रिया में विशेष रूचि दिखलानी चाहिए। इस हेतु उन्हें बजट अनुमानों का पुनर्निरीक्षण करना चाहिए। इससे संस्था के निम्न स्तर पर कार्यरत कर्मचारियों में यह विश्वास बन जाता है कि उच्च प्रबन्ध का बजटिंग में पूर्ण विश्वास है।

(12) अन्तिम अनुमोदन - व्यावसायिक बजटों का अन्तिम अनुमोदन स्पष्ट होना चाहिए। यदि यह अनुमोदन मौन है तो कार्यकारी प्रबन्ध व कर्मचारियों में भ्रान्ति के फैलने की ज्यादा सम्भावना होगी। अनुमोदन करने की विधि का पालन करते हुए स्वीकृत बजट को संगठन के सभी स्तर पर संवहित करना चाहिए।

1.6 प्रभावशाली व्यावसायिक बजटिंग के आवश्यक तत्व

बजटिंग के सिद्धान्त को ध्यान में रखने और उनके परिपालन से एक प्रभावशाली व्यावसायिक बजटिंग प्रणाली तैयार होती है। बजट का निर्माण व्यावसायिक संस्थाओं के लिए आवश्यक होते हुए भी इस का तैयार करना आसान नहीं है। किसी व्यावसायिक संस्था में प्रभावशाली बजट तैयार करते समय निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

(1) स्पष्टतया परिभाषित नीतियाँ एवं उद्देश्य - व्यावसायिक नीतियों और उद्देश्यों के आधार पर बजट का निर्माण होता है। अतः, नीतियाँ व उद्दश्यों को स्पष्ट एवं पूर्व निश्चित होने चाहिए। संस्थान के प्रत्येक विभाग या प्रत्येक अनुमान के मुख्याधिकारी को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि इन नीतियों या उद्देश्यों का प्रत्येक विभाग या अनुभागों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि इस सम्बन्ध में वे कोई सुझाव देते हैं तो उनको भी शामिल कर लेना चाहिए। जिससे व्यवसाय की नीतियों एवं उद्देश्य स्पष्टतया परिभाषित होजायें। इनकी स्पष्ट व्याख्या बजट का प्रभावपूर्ण निर्माण व क्रियान्वयन की आधारशिला है।

(2) अधिकार एवं उत्तरदायित्व का स्पष्ट निर्धारण - एक पूर्णतया संगठित व्यवस्था बजट निर्माण व उसके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। सम्बन्धित अधिकारियों के अधिकारों एवं दायित्वों का पूर्ण निश्चयन हो जाना चाहिए। एक विभाग या अनुभाग के प्रमुख अधिकारी को कौन-कौन से कार्य करने हैं इस कार्य का पूरा करने के लिए कौन-कौन से अधिकार होने चाहिए और कार्य निष्पादन में प्रभावपूर्ण या उपादेयता न होने पर विभागीय अधिकारियों के क्या-क्या दायित्व होंगे, इसकी स्पष्ट व्याख्या एक प्रभावपूर्ण बजट प्रणाली में होना आवश्यक है। कुशल व सुव्यवस्थित संगठन बजट निर्माण में ही सहायक नहीं होता वरन् उसके समन्वय एवं संचालन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। स्पष्ट अधिकारों एवं दायित्वों के अभाव में प्रबन्धकों को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता

है। या वे ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराये जायेंगे जिसके लिए वे उत्तरदायी हो ही नहीं सकते हैं।

(3) उच्चस्तरीय प्रबन्ध का समर्थन - यदि किसी बजट प्रणाली को प्रभावपूर्ण रूप से सफल बनाना है तो उसे उच्चस्तरीय प्रबन्ध का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिये। बजट में उच्चस्तरीय प्रबन्ध की रूचि व विश्वास से कर्मचारियों में आत्मविश्वास जागृत होता है। बजट प्रणाली के क्रियान्वयन में आवश्यक निर्देश यदि उच्च प्रबन्ध से न प्राप्त हों तो अधीनस्थ कर्मचारी ही बजट प्रणाली का विरोध कर सकते हैं।

(4) सुदृढ़ पूर्वानुमान - व्यावसायिक पूर्वानुमान किसी भी बजट की आधारशिला होते हैं। इसी के आधार पर विभिन्न बजट तैयार किये जाते हैं। व्यावसायिक संस्थाओं को कच्चा माल, स्टोर्स आदि का क्रय व कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करने के पूर्व अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के भावी बाजार का पूर्वानुमान लगाना पड़ता है। सुदृढ़ पूर्वानुमान के लिए अन्दाज ज्यादा उपादेय नहीं हो सकते है। इस हेतु वैज्ञानिक सांख्यिकीय विधियों का उपयोग होना चाहिए। एक व्यावसायिक बजट तैयार करते समय उत्पादन, खर्चें विक्रय आदि हेतु सुदृढ़ एवं तर्कपूर्ण पूर्वानुमान की आवश्यकता पड़ती है। बिक्री का अनुमान लगाने के लिए संस्था की बिक्री के गत इतिहास का विश्लेषण तथा बाजार स्थिति के विश्लेषण (उद्योग में कम्पनी की स्थिति, अन्य संस्थाओं द्वारा निर्मित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा, मौसमी चक्र, व्यापारिक चक्र आदि) को ध्यान में रखना पड़ता है।

(5) बजट की अवधि - यह मुख्यतया, व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है।व्यावसायिक बजट की अवधि निश्चित करने में वित्तीय व उत्पादन क्रियाओं के साथ-साथ मौसमी परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिए। दीर्घकालीन लक्ष्यों को निश्चित करने के लिए लम्बी अवधि के बजट तथा निष्पादन व नियंत्रण कार्य के लिए अल्पकालीन व्यावसायिक बजट का निर्माण उपयोगी है।

(6) पूर्ण लेखांकन पद्धति – बजट तैयार करते समय व्यावसायिक संस्था की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में समुचित आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए संस्थान में एक लेखा पद्धति होनी चाहिए जो न केवल पूर्ण हो बल्कि पूर्णतया नियोजित हो। दूषित और अवैज्ञानिक लेखा पद्धति की दशा में श्रेष्ठ बजट बनाना सम्भव नहीं हो सकता है। उसका सफल संचालन लेखे उत्तरदायित्व केन्द्रों के आधार पर तैयार किए जाने चाहिए।

(7) लोचशीलता - यदि व्यावसायिक बजट में लोचशीलता नहीं है तो व्यवसाय की बदलती परिस्थितियों में इनके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की तुलना वास्तविक परिणामों से नहीं की जा सकती एवं नियंत्रण के दृष्टिकोण से विचरण संदर्भ के परे हो जाते हैं। इससे, प्रबन्धकों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों में उत्साह कम हो जाता है और उनका कार्य यंत्रवत् होने से उनमें निर्णय स्वतंत्रता एवं पहल करने की भावना समाप्त हो जाती है। मांग में उच्चावचन, कच्चे माल की उपलब्धता की स्थिति में परिवर्तन,

NMDC-129

सरकारी नीति एवं श्रम समस्यायें बजटीय लक्ष्यों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

(8) बजट के उपयोग व उसकी सीमाओं की जानकारी - जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि बजट प्रबन्ध नहीं करता है। वरन् प्रबन्ध के लिए एक उपकरण मात्र है। इस हेतु प्रबन्ध एवं उसके अधीनस्थ कर्मचारियों को बजट की उपादेयता व उसकी सीमाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उपकरण का उपयोग इस प्रकार से प्रबन्ध को करना चाहिए जिससे कि संस्था को लाभ हो। अकुशल प्रबन्ध अज्ञानता व असावधानी के कारण संस्था को नुकसान भी पहुँच सकता है।

(9) बजट समिती की स्थापना - छोटी संस्थाओं में, प्रायः बजट बनाने का कार्य संस्था के लेखापालक को सौंपा जाता है जो उच्च प्रबन्ध एवं विभागीय प्रबन्धकों से सलाह-मशविरा करके व्यावसायिक बजट का निर्माण कर लेता है। बड़ी संस्थाओं में, जहाँ नियोजन, समन्वय व नियंत्रण का कार्य दुरूह हो जाता है, यह कार्य लेखापालक द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न नहीं हो पाता। इस हेतु व्यावसायिक बजट समिति की स्थापना की जाती है। इससे संस्थान के सभी महत्वपूर्ण अधिकारियों का सहयोग बजट प्रणाली की व्यवस्था करना में लिया जा सकता है। इस समिति में जहाँ प्रत्येक विभागाध्यक्ष सदस्य होने के कारण बजट प्रणाली के कार्यान्वयन में सहयोग देता है वहीं बजट विशेषज्ञों की राय से बजट ज्यादा उपयोगी व वैज्ञानिक हो जाता है। इस समिति के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

(क) पूर्वानुमानों, विभागीय बजटों एवं सामयिक प्रतिवेदनों को प्राप्त करना एवं उनका अनुमोदन करना।

(ख) बजट के विचलनों के विशेष अध्ययन से विचरण के कारणों व संशोधनों पर अपने सुझाव देना।

(ग) बजटिंग प्रणाली को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करना।

विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय एवं सम्पर्क के अतिरिक्त बजट व्यवस्था के सामान्य प्रशासन के लिए बजट समिति के सदस्यों में से एक कुशल एवं अनुभवी व्यावसायिक को बजट प्रशासन का कार्यभार सौंपा जाता है जिसे **बजट अधिकारी** कहते हैं। इसके कार्यों का विवरण निम्नलिखित है:

(क) बजट के लिये आवश्यक निर्देशों को तैयार करना।

(ख) प्रत्येक विभाग को विभागीय बजट तैयार करने के लिए आवश्यक आँकड़े प्रदान करना।

(ग) बजट समिति के सामने पेश करने के लिए विभिन्न विभागों के बजट के आधार पर मास्टर बजट तैयार करना।

(घ) व्यावसायिक बजट समिति की सभाओं को बुलाना, संचालित करना एवं विभिन्न बजटों को अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करना।

NMDC-129

(ङ) व्यावसायिक बजट के लक्ष्यों की प्राप्ति की वस्तु-स्थिति पर एक निष्पादन प्रतिवेदन तैयार करना।

(च) आवश्यकतानुसार, व्यावसायिक बजट में संशोधन की सिफारिश करना।

(छ) आवश्यकता पड़ने पर बजटों को संशोधन के लिए सम्बन्धित विभागों के पास पुनः भेजना।

(10) **लागत एवं सांख्यिकीय सूचनाओं की उपलब्धि** - सुदृढ़ बजट पूर्वानुमानों के लिए पर्याप्त सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। ये सूचनायें पूर्वानुमाना और व्यावसायिक नीति- निर्धारण के आधार का कार्य करती है। एक प्रभावकारी बजट प्रणाली के लिए लागत लेखों का सही एवं शुद्ध होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, बजट के लिए विक्रय, विज्ञापन, विक्रय-व्यय, मूल्य,उत्पादन लक्ष्य एवं अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में आँकड़ों की उपलब्धि उपरिहार्य है। बिना उपयुक्त एवं शुद्ध आँकड़ों के पूर्वानुमानों पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं किया जा सकता हैं ।

1.7 बजट निर्माण की प्रक्रिया

भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लिए बजट बनाने की विधि अलग-अलग होती है। ये बजट संस्थानों के आर्थिक साधन, आवश्यकताओं व प्रकृति के अनुसार विभिन्न तरीकों से तैयार किये जाते हैं। यहाँ इनके निर्माण की सामान्य रूपरेखा दी गयी है। बजट निर्माण की प्रक्रिया, सामान्यतया, निम्नलिखित हैं :

(1) **प्रमुख नीतियों का निर्माण** - बजटों को तैयार करने के लिए नीतियों की आवश्यकता होती है। ये नीतियाँ विक्रय, उत्पादन, पूँजी खर्च, रोकड़, स्कंध, क्रय व श्रम के सम्बन्ध में होती है। इनका निर्धारण प्रबन्ध करता है। बजट समिति द्वारा इस कार्य को सम्पन्न नहीं किया जाता है। इन नीतियों के आधार पर ही अगले वर्ष के लक्ष्य एवं उनको प्राप्त करने के साधनों पर विचार किया जाता है। निम्न-स्तरीय व मध्यस्तरीय प्रबन्ध के बजटों के निर्माण में ये नीतियाँ आधार स्तम्भ का कार्य करती हैं।

(2) **प्रारम्भिक कार्य** - बजटों के निर्माण हेतु पर्याप्त लेखांकन की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे बजटों के लिये आवश्यक समंक प्राप्त हो सकें। बजट प्रक्रिया के निर्माण, क्रियान्वयन व नियंत्रण हेतु एक लिखित नियमावली ज्यादा प्रभावकारी व उपादेय होती है। इसलिए संस्था के अधिकारी बजट नियमावली को तैयार करके सम्बन्धित नियमों, विधियों व प्रक्रियाओं को लिपिबद्ध कर लेते हैं। बजट के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए विभिन्न बजट केन्द्रों की स्थापना की जाती है। इस हेतु, एक उपयुक्त संगठन चार्ट का भी निर्माण कर लेना चाहिए। इससे प्रत्येक सदस्य संगठन में अपनी स्थिति को दूसरे सदस्यों को आसानी से बता सकता है। संगठन चार्ट प्रबन्ध के प्रत्येक सदस्य के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को परिभाषित करता है। बजट प्रक्रिया के सन्दर्भ में एक संगठन चार्ट इस प्रकार का हो सकता है :

- प्रमुख अधिकारी
  - बजट अधिकारी
    - **क्रय** प्रबन्धक — क्रय बजट
    - **विक्रय** प्रबन्धक — विक्रय बिक्री एवं वितरण व्यय सम्बन्धी बजट
    - **उत्पादन** प्रबन्धक — सामग्री, उत्पादन और प्लाण्ट उपयोग बजट
    - **कार्मिक** प्रबन्धक — श्रम बजट
    - **विकास** प्रबन्धक — शोध एवं विकास बजट
    - **वित्तीय** प्रबन्धक — उत्पादन लागत बजट, प्रशासन लागत बजट, पूंजी व्यय बजट, वित्तीय बजट, मास्टर बजट

बजट अधिकारी बजट के प्रशासन का कार्य करता है। जबकि इस सम्बन्ध में निर्माण व नियंत्रण का कार्य बजट समिति करती है।

3. **पूर्वानुमानों की तैयारी -** इन बजटों के निर्माण के लिए आवश्यक पूर्वानुमानों की आवश्यकता पड़ती है। प्रमुख पूर्वानुमानों में विक्रय, उत्पादन, रहतिया, लागत, नगद धन, क्रय और पूंजीगत व्यय शामिल हैं। लागत पूर्वानुमानों में उत्पादन लागत, विक्रय व वितरण व्यय लागत, प्रशासन लागत व अनुसंधान और विकास लागत के अनुमानों की आवश्यकता पड़ती है। इनके बारे में अनुमान विभागाध्यक्षों द्वारा लेखापालक से प्राप्त विगत वर्षों के आँकड़ों एवं बजट अवधि के दौरान व्यवसाय और बाजार की दशाओं में होने वाले सम्भावित परिवर्तनों को ध्यान में रखकर लगाये जाते हैं। पूर्वानुमानों की तैयारी के लिये अनेक विधियाँ प्रयोग में आती है। इन विधियों में अधिकारी वर्ग, कर्मचारियों और फोरमैन की राय को ध्यान में रखा जाता है। पूर्वानुमान में, बाजार शोध व अन्य सांख्यकीय विधियाँ भी प्रयोग में लायी जाती हैं। व्यवहार में, बजट अनुमानों को तैयार करने के लिए किसी एक विधि का प्रयोग नहीं किया जाता है। अपितु एक से अधिक विधियाँ सम्मिलित रूप में प्रयोग की जाती हैं।

4. **समन्वय एवं पुनर्विचार** - अनुभाग अधिकारी अपने अनुमानों को विभागाध्यक्ष के माध्यम से बजट अधिकारी के पास भेज देता है और बजट अधिकारी इन्हें बजट समिति के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। बजट समिति विभिन्न वैकल्पिक योजनाओं का चुनाव करती है। जिससे संस्था की लाभोपार्जन क्षमता बढ़े। अगर कोई कारक ऐसा है जो लक्ष्यों को मुख्य कारक के सन्दर्भ में नियोजित व व्यवस्थित

NMDC-129

किया जाता तो योजनाओं को चुन लेने के बाद उनमें सामंजस्य स्थापित किया जाता है और यदि इस प्रक्रिया में कोई बाधा या व्यवधान आता हो तो उसे दूर करने के उपयोग पर विचार विमर्श किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर, बजट अधिकारी को सारी बजट व्यवस्था पर पुनर्विचार करना पड़ता है।

5. **बजटों का निर्माण** - विभिन्न पूर्वानुमानों के समन्वय एवं पुनर्विचार के पश्चात, बजट अधिकारी का व्यावसायिक बजटों के निर्माण का कार्य करना पड़ता है। इस हेतु उसे सबसे पहले क्रियाशीलता का स्तर निश्चित करना पड़ता है। यह स्तर मुख्यतया, तीन तत्वों से प्रभावित होता है।

(अ) गत वर्षों के परिणाम पर

(ब) सर्वोच्च संभाव्य कुशलता स्तर पर

(स) वर्तमान परिस्थितियों में कार्यकुशलता बढ़ाने की सीमा पर

क्रियाशीलता स्तर के निश्चयन के पश्चात, बजट अवधि का निश्चयन होता है। बजट अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों के ही तैयार किये जा सकते है। लम्बी अवधि के बजटों का उपविभाजन अल्पावधियों में किया जाता है। मुख्य कारक को ध्यान में रखते हुए बजट अधिकारी को विभिन्न स्वीकृति पूर्वानुमानों को लिखित रूप में प्रस्तुत करना होता है जिससे बजटों की रूपरेखा सामने आ जाती है। विभिन्न क्रियात्मक बजटों के तैयार करने के पश्चात, एक मास्टर बजट का भी निर्माण किया जाता है।

6. **अन्तिम अनुमोदन** - सारे बजटों को तैयार कर लेने के बाद उनका अन्तिम अनुमोदन संचालक मण्डल से प्राप्त करना जरूरी होता है। बिना नीति निर्धारकों के अनुमोदन के बजट व्यवस्था का क्रियान्वयन सम्भव नहीं है। अन्तिम अनुमोदन हेतु संचालक मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत विभिन्न लक्ष्यों को आवश्यक समायोजन व परिवर्तन द्वारा अन्तिम अनुमोदन के पूर्व संशोधित किया जा सकता है।

7. **क्रियान्वयन** - संचालक मण्डल द्वारा अन्तिम रूप से अनुमोदित हो जाने के बाद, यह बजट संस्था की कार्य योजना बन जाती है और बजट अधिकारी बजटों की प्रतियाँ प्रत्येक विभाग को क्रियान्वयन के लिए भेज देता है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष या अनुभाग अधिकारी को बजट में निर्धारित अवधि के दौरान बजट के पूर्वानुमानों को पूरा करने के लिए कार्य करने व व्यय करने का अधिकार बजट में निर्धारित सीमा तक प्राप्त हो जाता है।

1.8 सारांश

व्यावसायिक योजनाओं को परिमाणात्मक तथा मौद्रिक स्वरूप प्रदान करना ही बजटिंग है।वास्तव में बजट तैयार करने की प्रक्रिया बजटिंग कहलाती है। जबकि बजट भविष्य की घटनाओं एवं परिणामों का पूर्वानुमान है, सफल बजट तैयार करने के लिए सुदृढ़ एवं सुसंगत पूर्वानुमान अत्यन्त आवश्यक है। बजटिंग का उद्देश्य प्रबंधकीय क्रियाओं के सुचारू निष्पादन में आवश्यक सहायता

NMDC-129

प्रदान करना है। बजट तैयार करते समय कुछ प्रमुख सिद्धान्तों को ध्यान में रखना भी आवश्यक है। बजट की सफलता के साथ कार्यान्वियन के लिए यह आवश्यक है कि इसके लिए उच्चस्तरीय प्रबन्धकों का पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हो।

1.9 शब्दावली

बजट - योजना का परिमाणात्मक तथा मौद्रिक स्वरूप बजट है।

बजटिंग - बजट तैयार करने की प्रक्रिया बजटिंग कहलाती है।

बजटिंग सिद्धान्त - बजट तैयार करने के सम्बन्ध में अपनाये जाने वाले सिद्धान्त बजटिंग सिद्धान्त हैं।

बजट समिति - बजट अधिकारी अपने सहयोग के लिये विभिन्न स्तर से लोगों को चयन करने बजट समिति बनाता है। यह समिति ही बजट का स्वरूप तैयार करती है।

बजट नियमावली - बजट के सम्बन्ध में आवश्यक नियमों विधियों एवं प्रक्रियाओं की लिखित रूपरेखा बजट नियमावली कहलाती है।

बजट केन्द्र - बजट के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के लिए संगठन के प्रमुख बिन्दुओं का चयन कर के बजट केन्द्र बनाये जाते हैं जो उस के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

1.10 बोध प्रश्न

1. व्यावसायिक बजट तथा बजटिंग की परिभाषा दीजिये तथा उनके प्रमुख लक्षण समझाइये।
2. व्यावसायिक बजटिंग की प्रकृति का निरूपण कीजिए तथा इसके प्रमुख उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
3. बजटिंग के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इन्हें अपनाना क्यों आवश्यक है? बजटिंग के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. आप एक प्रबन्धक के रूप में, व्यावसायिक बजटिंग को प्रभावशाली बनाने के लिए किन तत्वों पर विशेष ध्यान देंगे?
5. "बजट तैयार करने के लिए उचित ढंग से पूर्वानुमान लगाना अत्यन्त आवश्यक है"। इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा बजट तैयार करने की प्रक्रिया समझाइये।

इकाई - 2 बजट का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा-

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 वर्गीकरण के आधार

2.3 विक्रय बजट का निर्माण

2.4 उत्पादन बजट का निर्माण

2.5 रोकड़ बजट का निर्माण

2.6 रोकड़ बजट की तैयारी

2.7 रोकड़ बजटिंग से लाभ

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- बजट के वर्गीकरण के आधार ज्ञात होंगे,
- समय आधार पर बजट कितने प्रकार के होंगे,
- कार्य आधार पर बजट कौन-कौन से होंगे,
- लोचशीलता आधार पर बजट का वर्गीकरण ज्ञात होगा,
- विक्रय बजट के निर्माण की प्रक्रिया ज्ञात होगी।
- उत्पादन बजट के निर्माण की विधि ज्ञात होगी।
- रोकड़ बजट के विषय में जानकारी होगी।

2.1 प्रस्तावना

व्यासायिक बजट का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है किन्तु विक्रय बजट किसी भी व्यवसाय के लिए एक प्रमुख बजट होता है तथा इसी के आधार पर अन्य बजट भी तैयार किये जा सकते हैं। उत्पादन बजट बिक्री के अनुमान के अनुसार तैयार किया जाता है। उत्पादन प्रबन्धक सभी आवश्यक तथ्यों को ध्यान में रखकर वांछित उत्पादन के लिए बजट तैयार कराता है। वह, एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत, उत्पादन की जानेवाली मात्रा का अनुमान लगा कर उत्पादन

बजट तैयार कराता है। रोकड़ बजट एक महत्वपूर्ण बजट है जिसे प्रायः सभी व्यावसायिक संस्थायें तैयार कराती है। जिससे आवश्यक रोकड़ का अनुमान लगाया जा सके। इसके लिए एक निश्चित अवधि में अनुमानित भुगतान तथा प्राप्तियों के आधार पर रोकड़ का अनुमान लगाया जाता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि न तो रोकड़ आवश्यकता से अधिक हो और न ही कम। दोनों ही स्थितियां संस्था के लिए उचित नहीं हैं।

2.2 वर्गीकरण के आधार

व्यावसायिक संस्था के आकार, उत्पादन क्षमता, आवश्यकता तथा कार्यविधियों के अनुसार बजट का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। सामान्यतया इसके वर्गीकरण के निम्नलिखित तीन प्रमुख आधार को अपनाया जाता है-

(अ) समय आधार,

(ब) कार्य आधार, तथा

(स) लोचशीलता आधार

इसे निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से समझा जा सकता है :

बजटों के वर्गीकरण का आधार

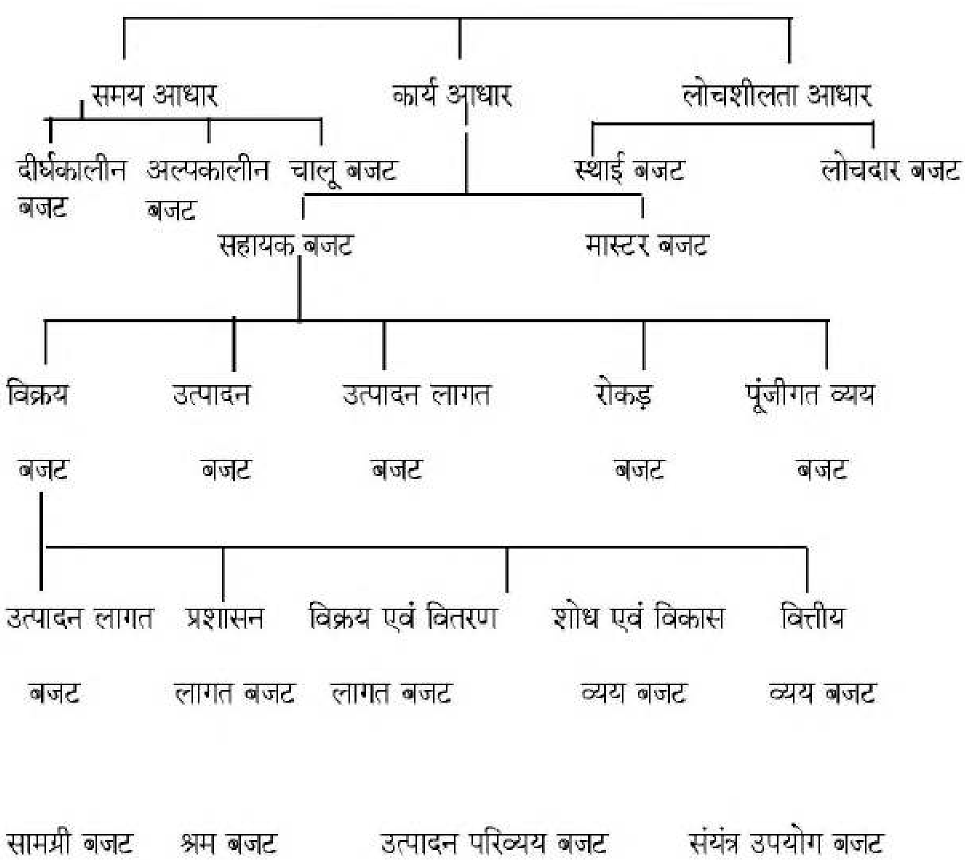

उपर्युक्त चार्ट की सहायता से बजटों के वर्गीकरण तथा उनके आधार की जानकारी मिलती

है। समय के आधार पर इन्हें दीर्घकालीन, अल्पकालीन तथा चालू बजट में बाँटा जा सकता है। उसी प्रकार से कार्य आधार पर, इन्हें सहायक तथा मास्टर बजट में विभाजित किया जा सकता है। सहायक बजट के अन्तर्गत ही सभी प्रकार के बजट तैयार किये जाते हैं, जैसा कि उपर्युक्त चार्ट से स्पष्ट है। लोचशीलता के आधार पर इन्हें स्थाई तथा लोचदार बजट के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के बजटों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

(अ) समय आधार बजट - इस आधार पर बजट को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) दीर्घकालीन बजट - ये बजट संस्था के दीर्घकालीन लक्ष्यों व योजनाओं से सम्बन्धित होते हैं। इनमें संस्था के स्थायी विनियोग अर्थात भूमि, भवन, मशीनरी, संयंत्र फर्नीचर व मोटर कार आदि के बजट आते हैं। इन बजटों की अवधि , सामान्यतया, 3 वर्षों से लेकर 20 वर्षों तक होती है। दीर्घकालीन बजट, अल्पकालीन बजटों के निर्माण में आधार नियोजन की भूमिका निभाते हैं। इन बजटों में, मुख्यतया, विभिन्न पूंजी व्ययों की धनराशि को दिखाया जाता है। समय अन्तराल लम्बा होने के कारण ऐसे बजटों को बाद में अल्पकालीन व चालू बजटों में परिवर्तित कर दिया जाता है।

(2) अल्पकालीन बजट - ये बजट दीर्घकालीन बजटों को आधार मानकर तैयार किये जाते हैं। ये, प्रायः, एक वित्तीय अवधि के लिये बनाए जाते हैं इसलिए इन्हें वित्तीय बजट के नाम से भी जाना जाता है। व्यवसाय के संचालन सम्बन्धी क्रियाओं के लिए दीर्घकालीन अनुमान ज्यादा उपादेय नहीं होते हैं। ये बजट ज्यादा विस्तृत रूप में तैयार किये जाते हैं और इनमें मात्रा एवं धनराशि दोनों को ही दिखाया जाता है।

(3) चालू बजट - यह वर्गीकरण नया है। ये बजट ही अल्प अवधि के होते हैं और बजट के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये बजट अल्पकालीन बजटों की सहायता से तैयार किए जाते हैं और अल्पकालीन बजटों के अनुमानों को छोटी छोटी अवधियों में बाँटकर प्रभावपूर्ण नियंत्रण की प्रक्रिया में सहयोग देते है।। इन बजटों की अवधि एक माह, एक पखवाड़ा या एक सप्ताह तक होती है।कुछ संस्थानों में लक्ष्य दैनिक आधार पर भी निश्चित किये जा सकते हैं।

(ब) कार्य-आधार बजट - संस्थान की सभी क्रियाएं यद्यपि एक दूसरे से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित होती है। लेकिन फिर भी प्रभावपूर्ण कियान्वयन नियंत्रण हेतु बजटों का निर्माण विभिन्न कार्यों के आधार पर भी हो सकता है। कार्य के आधार पर बजट को निम्नलिखित दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(1) सहायक बजट - संस्था की प्रत्येक क्रिया के बजट अनुमान अलग-अलग तैयार किये जाते हैं। इन बजटों का निर्माण बजट अधिकारी द्वारा किया जाता है और उनका क्रियान्वयन सम्बन्धित विभागाध्यक्ष द्वारा होता है। इन बजटों को, क्रियान्वयन बजट व सहायक बजट के नाम से भी जाना

जाता है। इनमें बिक्री बजट, उत्पादन बजट, उत्पादन लागत बजट एवं उनका उपवर्गीकरण, रोकड़ बजट और पूंजीगत व्यय बजट शामिल हैं।

(2) मास्टर बजट - इस बजट का प्रयोग उच्च अधिकारियों द्वारा होता है। मास्टर बजट में बजट अवधि की पूरी योजना संक्षिप्त रूप में चित्रित रहती है। इसकी सहायता से विभिन्न प्रबन्धकीय क्षेत्रों में समन्वय लाया जा सकता है। इसको बजटेड लाभ-हानि खाता और आर्थिक चिट्ठे के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(स) लोचशीलता आधार बजट - इस आधार पर बजटों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) स्थायी बजट - ऐसे बजटों में निर्धारित लक्ष्य ठोस रूप में निश्चित किये जाते हैं। बजट अवधि के दौरान व्यावसायिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाता है। इस बजट का निर्माण प्रायः उन्ही स्थानों पर होता है जहाँ विक्रय और लागत के पूर्वानुमानों में पूर्ण शुद्धता व निश्चितता पायी जाती है।

(2) लोचदार बजट - इस बजट में उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न बजटीय उत्पादन लागत निश्चित किए जाते हैं। इस उद्देश्य हेतु विभिन्न लागतों को तीन वर्गों में बाँटा जाता है - अर्द्ध परिवर्तनशील लागत, स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत। इसमें वास्तविक उत्पादन जिस उत्पादन स्तर पर होता है उसी स्तर को बजटेड लक्ष्यों से तुलना करके उपयोगी निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

2.3 विक्रय बजट का निर्माण

विक्रय बजट संस्था का सबसे महत्वपूर्ण बजट होता है। सामान्यतया, अन्य बजट, जैसे लागत बजट, उत्पादन बजट, रोकड़ बजट आदि का निर्माण, विक्रय बजट के आधार पर ही किया जाता है । इस बजट के माध्यम से यह अनुमान लगाया जाता है कि विभिन्न क्षेत्रों में या बाजारों में, अनुमानतः कितनी बिक्री होगी। साथ ही, उसके मूल्य का भी अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार, विक्रय की मात्रा तथा मूल्य दोनों का अनुमान, बजट से ज्ञात किया जाता है। बिक्री के अनुमान के आधार पर ही अन्य क्रियाओं की योजना व बजट तैयार किया जाता है।

सामान्यतया, इस बजट की तैयारी व अन्तिम रूप विक्रय प्रबन्धक द्वारा ही किया जाता है। परन्तु वह अपने अन्य सहयोगियों से भी, इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी व सहायता लेता है। इस कार्य में वह बजट अधिकारी, लेखापालक, विक्रय से सम्बन्धित कर्मचारी, बाजार अनुसंधानकर्ता अधिकारी आदि का सहयोग लेता है।

उचित विक्रय बजट को तैयार करते समय, विक्रय प्रबन्धक को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

(अ) विगत कुछ वर्षों के बिक्री की मात्रा, गत वर्ष में की गई बिक्री तथा अगले वर्ष में होने वाली

संभावित बिक्री का अनुमान लगाना चाहिए।

(ब) मौसमी उच्चावचन, व्यापार चक्र, विज्ञापन, मूल्य नीति, रहन-सहन की आदत, फैशन में परिवर्तन की संभावनाएं और अन्य विक्रय संवर्द्धन सुविधाएँ।

(स) उपलब्ध संयंत्र क्षमता और उसमें विस्तार की सम्भावनाएं।

(द) विक्रय मूल्य, वितरण लागत एवं कुल लाभ का अनुमान।

(य) सामग्री, श्रम व अन्य भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि।

(र) ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने वाले एजेन्टों के प्रतिवेदन ।

(ल) सांख्यिकीय विभाग के कर्मचारियों द्वारा बाजार सर्वेक्षण एवं बाजार की स्थिति के बारे में जानकारी।

(व) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक दशायें, जनता की क्रयशक्ति, उद्योग के सम्बन्ध में सरकारी नियमन एवं नियंत्रण की स्थिति और बाजार में प्रतिस्पर्धा की स्थिति।

विक्रय पूर्वानुमान की विधियाँ

विक्रय बजट तैयार करने से पहले विक्रय के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाना आवश्यक होता है। प्रचलन मे, पूर्वानुमान की अनेक विधियाँ है। इनमें से किसी एक का चुनाव, आवश्यकतानुसार, करना चाहिए। पूर्वानुमान की प्रचलित विधियाँ निम्नलिखित हैं :

(अ) विगत सांख्यिकीय के आधार पर प्रक्षेपण - इसमें पिछले वर्ष के आँकड़ों के आधार पर बिक्री की मात्रा व मूल्य का अनुमान लगाया जाता है। इसमें यह मान लिया जाता है कि पिछले अवधि की प्रवृत्तियाँ भी वर्तमान में जारी रहेंगी। यदि परिस्थितियों में परिवर्तन की सम्भावना है तो उनको पूर्वानुमान लगाते समय ध्यान में रखा जाता है। यह पद्धति उन उद्योगों व उत्पादों की दशा में प्रयुक्त होती हैं जिनकी माँग लगभग स्थिर हो जैसे सीमेन्ट, स्टील, अखबारी कागज आदि।

(ब) विक्रयकर्ताओं द्वारा समंक संकलन - इसमें विक्रयकर्ताओं द्वारा समंक एकत्रित किये जाते हैं और उन समंकों के विश्लेषण द्वारा बिक्री के अनुमान प्राप्त किये जाते है। ये ग्राहकों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहते हैं। इसलिए इनके द्वारा संकलित समंक ज्यादा विश्वसनीय होते हैं।

(स) विशेष सर्वेक्षण - प्रायः, संस्थान के शोध व विकास विभाग इस प्रकार का सर्वेक्षण कराते हैं जिससे संस्थान के बिक्री के बारे में कुछ अनुमान प्राप्त कर सकें। इस विधि में उपभोक्ताओं की रूचि, प्राथमिकताओं आदि के बारे में जानकारी मिलती है । नये उत्पादन के लिए ऐसे सर्वेक्षण ज्यादा लाभकारी होते हैं और इनसे बहुत मूल्यवान सूचनाएं प्राप्त होती हैं।

पूर्वानुमान की विधियों में से उपयुक्त विधि का चुनाव वस्तु की प्रकृति, वितरण पद्धति, व्यवसाय का आकार, प्रतिस्पर्धा की मात्रा आदि द्वारा बहुत ज्यादा प्रभावित होता है।

NMDC-129

विक्रय बजट तैयार करने की प्रविधि

इस बजट को तैयार करने की प्रविधि, संक्षेप में, निम्नलिखित है :

(1) निम्न स्तर पर विक्रेता प्रत्येक वस्तु की बिक्री से सम्बन्धित आँकड़े एक खानेदार विवरण पत्र में देते हैं। इसमें पिछले वर्ष के आँकड़ों के साथ साथ कुछ अन्य प्रवृत्तियों का भी जिक्र इन विक्रेताओं द्वारा होता है। एक स्तम्भ बजट अनुमानों के लिए रहता है जिसको विक्रेता बाद में भरता है।

(2) शाखा प्रबन्धक अपनी शाखा के विभिन्न विक्रेताओं से प्राप्त अनुमानों की जाँच करता है और अपने अनुभव के आधार पर अनुमानों में आवश्यक परिवर्तन करता है। कभी-कभी प्रबन्धक अपना अनुमान अलग से तैयार कर क्षेत्रीय प्रबन्धक के पास भेज देता है और क्षेत्रीय प्रबन्धक अपने अनुमान शाखा प्रबन्धक और विक्रेता के अनुमानों के साथ बजट अधिकारी के पास भेज देते हैं।

(3) बजट अधिकारी इन तीनों के अनुमानों का संकलन व एकीकरण करने के बाद उनका मिलान करता है। अगर इनमें महत्वपूर्ण अन्तर हो तो उसमें समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। इस कार्य में विक्रय प्रबन्धक भी अपना सहयोग देता है।

(4) विक्रय प्रबन्धक बजट अवधि की सम्भावित बिक्री का एक सारांश तैयार करता है जो उत्पादनुसार और क्षेत्रानुसार दोनों होती हैं।

(5) इसके बाद बजट अधिकारी, लेखा अधिकारी व विक्रय प्रबन्धकों के सहयोग से प्रमापित मूल्यों का निर्धारण होता है।

(6) विक्रय सारांश में प्रदर्शित अनुमानों को प्रमापित मूल्य से गुणा करके विक्रय राशि ज्ञात कर ली जाती है। यदि किसी संस्था में एक से अधिक वस्तुओं का विक्रय होता है तो एक उपयुक्त मिश्रण निश्चित कर लिया जाता है और उसके आधार पर जहाँ सबसे ज्यादा लाभ हो उसको बजट समिति के सम्मुख स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(7) बाद में संचालन मण्डल द्वारा अन्तिम स्वीकृति प्राप्त करके इसका क्रियान्वयन कर लिया जाता है।

विक्रय बजट का निर्माण निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है :

उदाहरण - 1

अ ब कं. लि. दो वस्तुयें 'अ' तथा 'ब' निर्माण करती हैं। देश के विभिन्न भागों में कम्पनी के बिक्री अनुभाग के तीन विभाग हैं। 31 मार्च 2009 के लिये निम्नलिखित विवरणों की सहायता से विक्रय बजट तैयार कीजिए।

सभी विभागों का विक्रय मूल्य क्रमशः 5 रू. तथा 3 रू. है। यह अनुमान है कि बिक्री वृद्धि करने पर 'ब' की बिक्री X विभाग में 1,75,000 इकाइयों से बढ़ जायेगी। यह भी आशा है कि

अधिक उत्पादन तथा व्यापक विज्ञापन से Z विभाग में 'ब' की बिक्री 50,000 इकाइयों से बढ़ जायेगी। Y विभाग की अनुमानित बिक्री-लक्ष्य संतोषजनक नहीं हैं। अतः उसके दोनों वस्तुओं के अनुमान 20 प्रतिशत अधिक कर दिये गये। दोनों उत्पादों के उत्पादन गतवर्ष इस प्रकार थे 'अ' उत्पाद - X विभाग 3,00,000, Y विभाग 5,62,500 तथा Z विभाग 1,80,000 है। 'ब' उत्पाद - X विभाग 4,00,000, Y विभाग 6,00,000 तथा Z विभाग 20,000।

उदाहरण -1 का हल -

Sales Budget

Department	Product A (Selling Price Rs.5)		Product B (Selling Price Rs. 3)		Total
	Qnty. (No.)	Amt (Rs)	Qnty.No.	Amt(Rs)	Amt.(Rs)
X	3,00,000	15,00,000	5,75,000	17,25,000	32,25,000
Y	6,75,000	33,75,000	7,20,000	21,60,000	55,35,000
Z	1,80,000	9,00,000	70,000	2,10,000	11,10,000
Total	11,55,000	57,75,000	13,65,000	40,95,000	98,70,000

2.4 उत्पादन बजट का निर्माण

किसी भी संस्था के लिए उत्पादन बजट तैयार करना आवश्यक होता है। उत्पादन बजट, विक्रय बजट के आधार पर ही तैयार किया जाता है। विक्रय बजट वास्तव में, माल की माँग अनुमान प्रस्तुत करता है, जब कि उत्पादन बजट उस माँग की पूर्ति हेतु आवश्यक अनुमानित मात्रा व राशि बताता है। उत्पादन बजट तैयार करने के लिए संस्था की विभिन्न स्थितियों की जानकारी प्राप्त की जाती है। जैसे, उपलब्ध सीमित साधन, आवश्यक सामग्री, श्रम व संयंत्र की क्षमता, उपलब्ध स्थान तथा शक्ति आदि। उत्पादन प्रबंधक, इस बजट के माध्यम से आवश्यक साधनों की जुटाने का प्रयास करता है। इस प्रकार से वह विक्रय बजट के अनुमानों के अनुसार इसे समायोजित करने का प्रयास करता है। उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के मात्रा की गणना निम्नलिखित सूत्र की सहायता से की जाती है।

उत्पादन मात्रा - अनुमानित विक्रय मात्रा + इच्छित अन्तिम रहतिया - प्रारंभिक रहतिया

इस बजट को तैयार करने का प्रमुख उद्देश्य बजट अवधि के अन्तर्गत उत्पादित की जाने वाली माल की मात्रा का अनुमान लगाना है। यह बजट संख्यात्मक अथवा वित्तीय इकाइयों अथवा दोनों में व्यक्त

NMDG-129

किया जा सकता है। इस बजट के निर्माण से निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती हैं :

(1) उत्पादन की योजना बनाना।

(2) विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम तैयार करना।

(3) रोकड़ का पूर्वानुमान लगाना।

(4) विभिन्न लागत बजटों के निर्माण हेतु आधारभूत सूचनाएं प्रदान करना।

उत्पादन बजट तैयार करते समय बजट अधिकारी को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

(1) उत्पादन कार्य को उपयुक्त ढंग से सम्पन्न करने के लिए आवश्यक भौतिक सुविधाओं जैसे प्लांट क्षमता, सामग्री, श्रम तथा वित्तीय साधनों की उपलब्धि पर विचार करना।

(2) उत्पादन की मात्रा का निश्चयन विक्रय के अनुरूप करना।

(3) उत्पादन क्रिया को सम्पन्न करने में यदि किसी साधन जैसे सामग्री, श्रम, संयंत्र आदि की कमी होने की सम्भावना है तो उत्पादन मात्रा निर्धारित करते समय इस बात पर विचार करना।

(4) उत्पादन कार्य के दौरान होने वाले सामान्य क्षयों व असामान्य हानियों के पूर्वानुमानों पर विचार करना।

(5) रहतिया नीतियों का निश्चयन एवं रहतिये का मूल्यांकन करना।

उदाहरण - 2

निम्नलिखित विवरणों की सहायता से भारत कम्पनी लि. का उत्पादन बजट तैयार कीजिए-

उत्पादन की मात्रा (इकाइयों में)

	अ	**ब**	**स**
प्रारंभिक रहतिया	16,000	18,000	24,000
वांछित बिक्री	1,20,000	1,00,000	1,60,000
अंतिम रहतिया	20,000	16,000	28,000
उत्पादन में सामान्य अंश	5 प्रतिशत	2 प्रतिशत	4 प्रतिशत

उदाहरण - 2 का हल,

भारत कम्पनी लि. (उत्पादन बजट)

Particulars	Production in Units			
	A	B	C	Total
(a) Sales requirement	1,20,000	1,00,000	1,60,000	3,80,000
(b) Add: Estimated closing stock	20,000	16,000	28,000	64,000
(a) + (b)	1,40,000	1,16,000	1,88,000	4,44,000
(c) Less: opening stock	16,000	18,000	24,000	58,000
(a +b) -(c)	1,24,000	98,000	1,64,000	3,86,000
(d) Add:loss in Prod.	6,200	1,960	6,560	14,720
Budgeted production	1,17,800	96,040	1,57,440	3,71,280

2.5 रोकड़ बजट का निर्माण

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में, रोकड़ की महत्ता अत्यधिक है। बिना आवश्यक रोकड़ के व्यवसाय-संचालन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। रोकड़ की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए। रोकड़ न तो कम होना चाहिए न ही अधिक। इसीलिए रोकड़ सम्बन्धी आवश्यकताओं का यथासंभव सही- सही अनुमान लगाना प्रबंधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रोकड़ का नियोजन तो करना ही चाहिए परन्तु इसके साथ रोकड़ बजटिंग भी आवश्यक है। रोकड़ बजटिंग एक तकनीक है जिसके माध्यम से अनुमानित प्राप्तियों व भुगतान की मात्रा का पूर्वानुमान लगा कर यह बजट तैयार किया जाता है। पहले हम अनुमानित व्ययों के लिए रोकड़ की आवश्यक मात्रा का पूर्वानुमान लगाते हैं। तदोपरान्त रोकड़ के साधनों के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं जिससे भावी रोकड़ का पूर्वानुमान लगाया जा सके। वास्तव में रोकड़ बजट एक ऐसा लिखित मात्रात्मक विवरण है जो संस्था की भावी रोकड़ की स्थिति को दर्शाता है।

जेम्स वैन हार्न - के शब्दों में, "एक रोकड़ बजट किसी निश्चित भावी-अवधि के लिये रोकड़ भुगतान का पुर्वानुमान है।"

किसी रोकड़ बजट में निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :

(1) रोकड़ बजट एक लिखित एवं विस्तृत विवरण होता है।

(2) यह बजट किसी निश्चित भावी अवधि के लिये बनाया जाता है। यह अवधि, सामान्यतया एक वर्ष होती है, परन्तु आवश्यकतानुसार इसे मासिक, त्रैमासिक या अर्द्धवार्षिक के लिए भी तैयार किया जा सकता है।

(3) रोकड़ बजट के दो प्रमुख भाग होते हैं - प्रथम, रोकड़ प्राप्तियों का पूर्वानुमान और दूसरा रोकड़ भुगतानों का पूर्वानुमान ।

(4) इस बजट से यह भी ज्ञात हो जाता है कि समय-समय पर रोकड़ की स्थिति क्या होगी?

रोकड़ बजटिंग के उद्देश्य -

रोकड़ बजट तैयार करने की प्रक्रिया के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं -

(1) संस्था की भावी रोकड़ प्राप्तियों व रोकड़ भुगतानों का अनुमान लगाना।

(2) बजट अवधि की विभिन्न उप-अवधियों में रोकड़ की बचत अथवा घाटे का अनुमान लगाना।

(3) संस्था की रोकड़ स्थिति पर नियंत्रण करना।

(4) बजट अवधि के विभिन्न उप-अवधियों के लिए वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाना।

(5) संस्था में पड़ी रहने वाली अनावश्यक रोकड़ राशि का समुचित उपयोग करना।

(6) संस्था की रोकड़ एवं कार्यशील पूंजी में प्रभावकारी समन्वय की स्थापना करना।

(7) उपयुक्त वित्तीय साधनों का वित्तीय आवश्यकताओं के आधार पर चुनाव करना।

(8) रोकड़ स्थिति को प्रभावित करने वाले घटकों की जानकारी प्राप्त करना।

रोकड़ बजट और वित्तीय बजट में अन्तर

रोकड़ बजट और वित्तीय बजट में निम्नलिखित आधारभूत अन्तर हैं :

(1) रोकड़ बजट में भविष्य में होने वाली रोकड़ प्राप्तियों व भुगतान का विस्तृत ब्यौरा रहता है जबकि वित्तीय बजट में केवल रोकड़ शेषों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाया जाता है।

(2) रोकड़ बजट वित्तीय बजट का एक अंग होता है जबकि वित्तीय बजट रोकड़ बजट का अंग नहीं हो सकता।

(3) रोकड़ की प्राप्ति व भुगतान के स्रोतों की जानकारी रोकड़ बजट से प्राप्त होती है जबकि वित्तीय बजट में रोकड़ की कमी को पूरा करने या आधिक्य का लाभदायक विनियोग करने की योजना का विवरण रहता है।

(4) रोकड़ बजट अपेक्षाकृत अल्पकाल के नियोजन व नियंत्रण के लिए उपयोगी होता है जबकि वित्तीय बजट संस्था की अपेक्षाकृत दीर्घकालीन योजनाओं के सम्बन्ध में तैयार किया जाता है।

रोकड़ बजट के प्रकार

रोकड़ बजट को अवधि के अनुसार दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(1) दीर्घकालीन रोकड़ बजट - दीर्घकालीन रोकड़ बजट एक वर्ष से लम्बी अवधि का होता है। वास्तव में, ये अनुमान प्रायः कोषों के साधन व उपयोगों के रूप में रहते हैं। सामान्यतया, दीर्घकालीन बजट में 5 वर्षो या उससे ज्यादा अवधि के अनुमान ही सम्मिलित किए जाते हैं। जहाँ संस्थान की परिचालन क्रिया उद्योग की सामान्य दशाओं से बहुत ज्यादा प्रभावित होती है वहाँ दीर्घकालीन रोकड़ बजट अपेक्षाकृत कम अवधि के तैयार किए जाते हैं। दीर्घकालीन पूर्वानुमानों में गलती की सम्भावनाओं को कम करने के लिए उनका एक निश्चित समय अन्तराल पर पुनर्विचार व संशोधन करते रहना चाहिए। यह बजट अधिक विस्तार से तैयार नहीं किया जाता है। इसमें रोकड़ स्थिति पर दीर्घकालीन योजनाओं जैसे स्थायी सम्पत्तियों का क्रय, नये उत्पाद का विकास, अनुसंधान विकास व्यय आदि के प्रभावों का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस बजट की सहायता से, भविष्य की आन्तरिक साधनों प्राप्त होने वाली कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाया जा सकता है।

(2) अल्पकालीन रोकड़ बजट - रोकड़ बजट का वास्तविक स्वरूप अल्पकालीन रोकड़ बजट से ही प्राप्त होता है। इसमें रोकड़ को प्रभावित करने वाले प्रत्येक मद का विस्तृत अनुमान प्राप्त किया जाता है। सभी रोकड़ प्राप्तियाँ और रोकड़ भुगतान रोकड़ बजट में स्पष्ट रूप से दिखाए जाते हैं । गैर-नगद व्ययों को रोकड़ बजट में बिल्कुल भी नहीं दिखाया जाता है। आय या व्यय का पूंजीगत या आयगत होना या इनका दूसरी अवधि के सम्बन्ध में होना रोकड़ बजट में दिखलाने के सन्दर्भ में निरर्थक हैं । ये अल्पकालीन रोकड़ बजट प्रायः निम्नलिखित में से किसी एक रूप में तैयार किये जाते हैं।

(अ) मासिक रोकड़ बजट - रोकड़ के आवागमनों का सबसे विस्तृत चित्र इसी बजट से प्राप्त होता है। एक विशेष माह की विभिन्न तिथियों के लिए रोकड़ की प्राप्ति व रोकड़ भुगतान के पूर्वानुमान का अभिलेखन इस बजट में होता है। प्रत्येक माह के अन्त में रोकड़ शेष ज्ञात कर लिया जाता है। मासिक रोकड़ बजट नियंत्रण हेतु सबसे अधिक उपयोगी होता है।

(ब) त्रैमासिक रोकड़ बजट - इसमें रोकड़ प्राप्ति व भुगतान के पूर्वानुमान तीन माह के लिए लगाये जाते हैं और उन्हें मासिक आधार पर इस बजट में प्रस्तुत किया जाता है। एक संस्थान में एक वर्ष में ऐसे बजटों की संख्या लगभग चार होती है। यह बजट वार्षिक रोकड़ बजट का सहायक होता है। मासिक बजट के आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन इस बजट की सहायता से सम्भव है।

(स) वार्षिक रोकड़ बजट - यह वर्ष की रोकड़ स्थिति का संक्षेप में चित्र प्रस्तुत करता है। जब एक संस्था संचालन बजट, अनुमानित लाभालाभ बजट व पूंजी खर्च बजट तैयार कर लेती है तो उन बजटों में प्रस्तुत की गयी मदों के सम्बन्ध में किये जाने वाले व्ययों के लिए रोकड़ की आवश्यकता पड़ती है। इस हेतु लगाये गये पूर्वानुमान वार्षिक रोकड़ बजट में दिखलाये जाते हैं। इसमें भी प्रायः रोकड़ स्थिति का प्रस्तुतीकरण प्रत्येक मास के सन्दर्भ में होता है । इस बजट में माह के कुछ दिनों और घंटों का विस्तृत ब्योरा सम्मिलित नहीं किया जाता है।

NMDC-129

2.6 रोकड़ बजट की तैयारी

रोकड़ बजट की तैयारी, सामान्यतया, वित्तीय प्रबन्धक करता है। इस सम्बन्ध में उसे निम्नलिखित कदम उठाने चाहिएः

(1) बजट अवधि को सामान्य बजट अवधि के सन्दर्भ में निर्धारित करना।

(2) बजट को तैयार करने के लिए विभिन्न विभागीय प्रबन्धकों से परामर्श लेना।

(3) विभिन्न प्राप्तियों एवं भुगतानों के सम्बन्ध में पूर्वानुमानों को संकलित करना।

(4) पूर्वानुमानों में परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करना।

(5) रोकड़ की कमी या अतिरिक्त रोकड़ के लिए उपयुक्त व्यवस्था का अनुमान लगाना।

(6) बजट को तैयार करके अन्तिम अनुमोदन के लिए संचालक मण्डल के समक्ष प्रस्तुत करना।

(7) रोकड़ बजट के अनुमानों की तुलना वास्तविक समंकों से करके नियंत्रण के लिए आवश्यक नीति निर्धारित करना।

उदाहरण - 3:

निम्नलिखित सूचना के आधार पर ऐपल जूस कम्पनी की दिसम्बर 2009 की रोकड़ आवश्याकताओं का अनुमान लगाइये।

विक्रय	**रू.**
अगस्त	75,000
सितम्बर	60,000
अक्टूबर से दिसम्बर 2009	80,000 प्रतिमाह

(अ) प्रायः आधी (1/2) बिक्री नगद होती है। उधार बिक्री का 80 प्रतिशत अगले माह में और शेष एक माह बाद वसूल होता है।

(ब) 5 प्रतिशत नकद छूट प्राप्त करने के लिए सेब सदैव नगद खरीदे जाते हैं। अन्तिम तिमाही (अक्टूबर-दिसम्बर) का क्रय बजट 4,000 टोकरियाँ प्रतिमाह 10 रू. प्रति टोकरी की दर से है।

(स) अन्तिम तिमाही में मजदूरी और वेतन का बजट 15,000 रूपये प्रति माह है।

(द) एक तिमाही के उत्पादन व अन्य आय - व्यय का बजट इस प्रकार है :-

नकद व्यय (निर्माणी 13,500 रू) , हाल 18,000 रू. विक्रय व्यय 9,000 रू. प्रशासनिक व्यय (केवल अक्टूबर व नवम्बर में) 5,000 प्रतिमाह।

Cash Budget

For three months ending 31st December, 2009

	Controlling period		
Particulars	October Rs.	November Rs.	December Rs.
Receipts:			
Opening balance	-	6,000	18,500
Cash Sales (one half of sales)	40,000	40,000	40,000
Cash Collected from debtors	31,500	38,000	40,000
A: Total	**71,500**	**84,000**	**98,500**
Payments:			
Cash purchases less discount	38,000	38,000	38,000
Wages and salaries	15,000	15,000	15,000
Manufacturing expenses	4,500	4,500	4,500
Selling expenses	3,000	3,000	3,000
Administrative expenses	5,000	5,000	-
B: Total	**65,500**	**65,500**	**60,500**
(A-B) : Closing balance	**6,000**	**18,500**	**38,000**

दिसम्बर के लिए रोकड़ की आवश्यकता 60,500 रू. होगी।

नोट - 1. ह्रास गैर नगद व्यय है।

2. अक्टूबर 2009 में, आरम्भिक रोकड़ शेष नहीं दिया गया है।

उदाहरण - 4

मई 2009 में श्री अनन्त को 10,000 रूपये दिल्ली लाटरी से मिले और उसने बी.एच.ई.एल. के लिए विशिष्ट उपकरणों के निर्माण का व्यवसाय आरम्भ किया। उसी माह में उसने अपने ससुर के 1,00,000 रू. के भेट और बैंक के 40,00,000 रू. के ऋण से 5,00,000 रू. की मशीनरी खरीदी। ऋण लेनेके माह से तिमाही आधार पर बकाया राशि के लिए 9प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करना है। 20,000 रू. प्रत्येक अर्द्धवर्ष के लिए मूलधन के रूप में भुगतान करना है। उसने 1 जून 2009 से निर्माण कार्य आरम्भ किया और उसका उत्पादन और सुपुर्दगी विवरण इस प्रकार है :-

30.6.2009	1,000 इकाइयाँ
31.7.2009	1,500 इकाइयाँ
31.8.2009	2,000 इकाइयाँ
30.9.2009	2,500 इकाइयाँ
31.10.2009	3,000 इकाइयाँ और उसके बाद

3,000 इकाइयाँ प्रत्येक माह

उसे बी.एच.ई.एल. से 10 रू. प्रति इकाई प्राप्त होता है। उसकी परिवर्तनशील लागत 6 रू. प्रति इकाई है। 1,000 रू. प्रति माह की सीमा तक उसके स्थायी व्यय हैं। अपने निर्वाह के लिए 1,000 रू. प्रति माह वह निकालना चाहता है। उसके बिलों की पूर्ति के तिथि के 30दिन के अन्दर निपटारा हो जाता है। उसकी परिवर्तनशील लागत प्रत्येक माह में वास्तविक भुगतान द्वारा पूरी होती है। स्थायी व्यय और आहरण अगले माह की पहली तारीख को देय होते हैं। वह 2,000रू. के न्यूनतम रोकड़ शेष को रखने की इच्छा करता है और अधिकतम 10,000 रू. है।

आपको मई 2009 से जनवरी 2010 तक के नौ महीनों में प्रत्येक के लिए रोकड़ के लिए रोकड़ बजट तैयार करना है। एक अल्पकालीन अधिविकर्ष बैंक द्वारा न्यूनतम और अधिकतम रोकड़ शेष आवश्यकताओं के अनुरूप प्राप्त होने की मान्यता है। अधिविकर्ष पर ब्याज को ध्यान में नहीं रखना है।

Cash Budget for the period May 2009 to January 2010

Particulars	May Rs.	June Rs.	July Rs.	Aug. Rs.	Sep. Rs.	Oct. Rs	Nov. Rs	Dec. Rs.	Jan. Rs.
Opening Balance		10000	4000	5000	2000	2000	5000	2000	2000
Receipts:	10000								
Lottery receipts									
Gift from father-	400000								
in-law	100000								
Loan from Bank	400000								
Supply bills									
collected			10000	15000	20000	25000	30000	30000	30000
Overdraft from									
Bank				7000			16000		
A: Total	510000	10000	14000	27000	22000	27000	16000	32000	32000
Payments:									
Machineries	500000								
Interest on loan				9000			9000		
Loan repayment							20000		
(investment)									
Variable cost		6000	9000	12000	15000	18000	18000	18000	18000
Drawing and									
fixed costs				2000	2000	2000	2000	2000	2000
Bank overdraft									
repayment				2000	3000	2000		10000	6000
Closing Balance	10000	4000	5000	2000	2000	5000	2000	2000	6000
B : Total	510000	10000	14000	27000	22000	27000	51000	32000	32000

1- Required to maintain a minimum balance of Rs, 2,000

2- Repayments since the balance cannot be less than Rs. 2000.

Note: 1- It is assumed that in respect of May, there were no fixed expenses and drawings.

2- Fixed expenses of Rs 1000 are taken into account.

2.7 रोकड़ बजटिंग से लाभ

रोकड़ बजटिंग के लाभ

व्यवसायिक संस्थाओं के सफलतापूर्वक संचालन के लिए जितना रोकड़ का महत्व होता है उतना ही रोकड़ बजट का महत्व पूरी बजट व्यवस्था के सन्दर्भ में होता है। इसकी सहायता से प्रबन्ध रोकड़ अन्तर्वाहों तथा रोकड़ बहिर्वाहों में समन्वय स्थापित करता है और संस्थान के पास उपलब्ध रोकड़ साधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करता है। रोकड़ बजट से सामान्यतया निम्नलिखित लाभ हैं:

(1) **रोकड़ की भावी आवश्यकताओं का अनुमान** - संस्थान को भविष्य में कितने रोकड़ की आवश्यकता होती है। इसका ज्ञान बजट की सहायता से आसानी से हो जाता है। इस बजट में रोकड़ प्राप्ति और रोकड़ भुगतानों का ब्यौरा रहता है और इन दोनों के आधार पर भविष्य के लिए अतिरिक्त रोकड़ आवश्यकताओं की जानकारी मिल जाती है।

(2) **रोकड़ स्थिति पर नियंत्रण** - रोकड़ प्राप्ति और रोकड़ भुगतानों का विस्तृत ब्यौरा रोकड़ बजटों में प्रदर्शित किया जाता है। इन अनुमानित आयों व भुगतानों की तुलना वास्तविक आयों व भुगतानों से करके विचरणों को ज्ञात कर लिया जाता है। इस बजट से अन्तर के कारणों का पता लगाकर रोकड़ स्थिति पर प्रभावकारी नियंत्रण व्यवस्था को लागू किया जाता है।

(3) **रोकड़ स्थिति को प्रवाहित करने वाले घटकों का ज्ञान** - रोकड़ प्राप्तियों व भुगतानों में उच्चावचन कब और क्यों होते हैं, इस बात की जानकारी भी रोकड़ बजट की सहायता से प्राप्त हो जाती है। व्यवसाय की मौसमी आवश्यकताएं, असाधारण प्राप्तियाँ, स्थायी सम्पत्तियों का क्रय विक्रय, उगाही में धीमापन आदि का प्रभाव रोकड़ स्थिति पर किस प्रकार पड़ा है, यह बात रोकड़ बजट द्वारा आसानी से मालूम हो जाती हैं।

(4) **ऋण सम्बन्धी निर्णय के लिए ठोस आधार प्रदान करना** - रोकड़ बजट द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि संस्था के पास रोकड़ की अधिकता है या कमी। इसकी सहायता से ऋण लेने की आवश्यकता का निश्चयन भी हो जाता है। ऋण का समय, ऋण की अवधि व ऋण के विमोचन के समय की उपयुक्त जानकारी इस बजट के द्वारा होती है। ऋण किस स्रोत से लिया जाय, इसका भी ज्ञान रोकड़ बजट से हो जाता है। यदि रोकड़ की अपर्याप्तता बहुत थोड़े समय के लिए है तो बैंकों से अल्पकालीन ऋण प्राप्त किया जा सकता है। यदि संस्था की रोकड़ अपर्याप्तता काफी समय तक बनी रहेगी तो इसके लिए अंशों व ऋण पत्रों का निर्गमन उपयुक्त होगा।

NMDC-129

(5) ऋण प्राप्ति में सहायक - रोकड़ बजट का अध्ययन करके ऋण देने वाली संस्थायें भी संस्था की ऋण आवश्यकताअें, उनकी अवधि, विमोचन, की सम्भावना इत्यादि के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। इसके बाद वित्तीय संस्थाएं सुगमता से ऋण दे देती हैं।

(6) समन्वय में सहायक - रोकड़ बजट द्वारा रोकड़ का कार्यशील पूँजी, बिक्री, विनियोग व ऋण से समन्वय स्थापित किया जा सकता है। रोकड़ प्राप्तियों और रोकड़ भुगतानों में समन्वय स्थापित कर रोकड़ की कमी या आधिक्य की समस्या को सुलझाया जा सकता है।

(7) वित्तीय तरलता का आधार - पर्याप्त मात्रा में रोकड़ के न रखने से परिचालन चक्र ठीक प्रकार से पूरा नहीं हो पाता है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादन व आय के घटने की सम्भावना बढ़ जाती है। रोकड़ बजट की सहायता से प्रत्येक समय पर्याप्त रोकड़ शेष रखा जाता है जिससे संस्था की वित्तीय तरलता पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

(8) सुदृढ़ लाभांश नीति - इस बजट की सहायता से लाभांश के भुगतान का उपयुक्त समय निश्चित किया जा सकता है। जैसा कि सर्वविदित है कि केवल पर्याप्त लाभों की विद्यमानता ही लाभांश वितरण के लिए आवश्यक नहीं है, वरन उसके लिए पर्याप्त रोकड़ की उपलब्धि भी अति आवश्यक है। अतः रोकड़ बजट संस्था को सुदृढ़ लाभांश नीति अपनाने में संस्था के प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करता है।

(9) रोकड़ साधनों का अधिकतम सदुपयोग - रोकड़ बजट से इस बात की जानकारी प्राप्त हो जाती है कि किन-किन महीनों में रोकड़ की मात्रा आवश्यकता से अधिक उपलब्ध होगी। इस तरलता स्थिति की लागत को कम करने के लिए आधिक्य राशि का लाभदायक विनियोजन करना चाहिए। रोकड़ ज्यादा होने पर लेनदारों का भुगतान करके नकद छूट का लाभ भी उठाया जा सकता है।

2.8 सारांश

व्यावसायिक बजट निर्धारित नीति के पालन हेतु भावी निश्चित अवधि के लिये बनाया गया एक वित्तीय तथा मात्रात्मक विवरण है। इसमें भावी क्रय, विक्रय आय, व्यय आदि के सम्बन्ध में योजनायें अभिव्यक्त रहती हैं। व्यावसायिक बजटिंग एक साधन है जिसके आधार पर प्रबंधकीय क्रियाओं का प्रभावपूर्ण निष्पादन संभव है। इसके माध्यम से संस्था के निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है। इस से प्रभावकारी प्रबंधकीय नियंत्रण भी संभव है। इन बजटों का वर्गीकरण समय, कार्य तथा लोचशीलता के आधार पर किया जा सकता है। प्रत्येक संस्था में उस की प्रकृति तथा आवश्यकतानुसार विभिन्न बजट तैयार किये जा सकते हैं। उनमें से, विक्रय बजट, उत्पादन बजट तथा रोकड़ बजट तैयार करना आवश्यक है।

2.9 शब्दावली

1. **दीर्घकालीन बजट** - 5 वर्ष से अधिक समय के लिये तैयार किया गया बजट दीर्घकालीन बजट कहलाता है।

2. **क्रियान्वयन बजट** - क्रियान्वयन सम्बन्धी बजट, जैसे विक्रय बजट, उत्पादन बजट, रोकड़ बजट, पूंजीगत बजट, आदि क्रियान्वयन बजट हैं।

3. **मास्टर बजट** - इसमें, बजट अवधि की पूरी योजना संक्षिप्त रूप में चित्रित होती है। इस में बजटेड लाभ-हानि खाता तथा आर्थिक चिट्ठा को भी सम्मिलित किया जाता है।

4. **लोचदार बजट** - इस में, बजट को उत्पादन के विभिन्न स्तरों, जैसे 50 प्रतिशत, 60 प्रतिशत, 80 प्रतिशत पर तैयार किया जाता है जिससे परिवर्तन होने पर दुबारा बजट तैयार न करना पड़े।

5. **रोकड़ का अन्तर्वहन** - इसका तात्पर्य संस्था को प्राप्त होने वाले रोकड़ से है।

6. **रोकड़ बहिर्प्रवाह** - जब संस्था से, भुगतान के रूप में, रोकड़ बाजार जाता है तो उसे रोकड़ बहिर्प्रवाह कहते हैं।

2.10 बोध प्रश्न

1. बजट तथा बजटिंग से आप क्या समझते हैं? बजट के वर्गीकरण के क्या आधार हैं?

2. आप प्रबन्धक के रूप में, बजट का वर्गीकरण किस प्रकार से करेंगे ?

3. विक्रय बजट का महत्व समझाइये । इस बजट को तैयार करते समय किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए ?

4. एक विक्रय बजट का नमूना, काल्पनिक आँकड़ों की सहायता से दीजिए।

5. उत्पादन बजट से आप क्या समझते हैं? इसके निर्माण के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

6. उत्पादन बजट तैयार करते समय बजट अधिकारी को किन तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए?

7. रोकड़ बजट की परिभाषा दीजिए। इस बजट के तैयार करने से होने वाले लाभों की विवेचना कीजिये।

8. रोकड़ बजट के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए। रोकड़ बजट तथा वित्तीय बजट में अन्तर बताइये।

9. रोकड़ बजट कितने प्रकार के होते हैं? एक रोकड़ बजट का नमूना दीजिए।

10. बजट अधिकारी को रोकड़ बजट करते समय किन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

11. अ ब कं. लि. के मार्च से अगस्त 2009 तक आय-व्यय के संक्षिप्त पूर्वानुमान नीचे दिये गये हैं :

माह	विक्रय	क्रय	मजदूरी	उपरिव्यय
	रू.	रू.	रू.	रू.
मार्च	60,000	36,000	9,000	10,000
अप्रैल	62,000	38,000	8,000	9,500
मई	64,000	33,000	10,000	11,500
जून	58,000	35,000	8,500	9,500
जुलाई	56,000	39,000	9,500	9,500
अगस्त	60,000	34,000	8,000	8,500

आपको निम्नलिखित सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए मई 2009 के आरम्भ में 3 माह का रोकड़ बजट तैयार करना है।

(1) 1 मई 2009 को रोकड़ शेष 8000 रू. (2) विक्रय एवं क्रय सभी उधार पर हैं। (3) 16,000 रू. की लागत के संयंत्र की सुपुर्दगी जुलाई में होनी है जिसका 10 प्रतिशत भुगतान सुपुर्दगी पर तथा शेष 3 माह बाद होगा। (4) अग्रिम कर किश्तें प्रत्येक 8,000 रू. का भुगतान मार्च एवं जून में होगा (5) पूर्तिकर्ताओं द्वारा स्वीकृत उधार अवधि दो माह है तथा ग्राहकों को दी गई अवधि एक माह है तथा (6) सभी व्ययों में भुगतान अन्तराल एक माह का है।

1.2 एक कम्पनी तीन वस्तुएं A, B तथा C तैयार करती हैं। विक्रय अनुभाग अगले वर्ष के निम्नलिखित पूर्वानुमान तैयार करता है।

A. 4,00,000 units; B. 2,50,000 units and C. 5,00,000 units.

उत्पादन प्रत्येक माह बराबर रहेगा और निम्नलिखित रहतिया स्तर निश्चित किये गये हैं :

	Finished Good (Units)		Work-in Progress (units)			
	Opening	Closing	Opening	Completed (%)	Closing	Completed (%)
A	22,000	28,000	60,000	75	48,000	80
B	12,000	8,000	36,000	60	40,000	70
C	27,000	25,000	50,000	80	64,000	75

अगले वर्ष के लिए उत्पादन बजट तैयार कीजिए।

1.3 एक कम्पनी 'अ' और 'ब' दो वस्तुएं बनाती है और उन्हें दो विभागों उत्तर व दक्षिण के द्वारा विक्रय करती है। निम्नलिखित सूचना से बजटेड और वास्तविक बिक्री दिखलाते हुए चालू वर्ष के लिए विक्रय बजट तैयार कीजिए:

Product	Budget Sales		Actual Sales	
	North	South	North	South
A.	4000 @ Rs.9	6000 @ Rs.9	5000 @ Rs.9	7000 @ Rs.9
B.	3000 @ Rs.21	5000 @ Rs.21	2000 @ Rs.21	4000 @ Rs.21

बाजार अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अ वस्तु अधिक प्रसिद्ध है लेकिन अल्प मूल्यांकित है। यह देखा गया है कि यदि अ का मूल्य एक रूपये से बढ़ा दिया जाये तो भी इस वस्तु को अच्छा बाजार प्राप्त होगा। दूसरी ओर ब वस्तु ग्राहकों के लिए अधिक मूल्यांकित है तथा इसका मूल्य एक रूपये से कम करने पर ही अधिक विक्रय हो सकेगा। इन मूल्य परिवर्तनों के लिए प्रबन्धक सहमत हो गये हैं।

उपरोक्त निर्णयों के आधार पर विभागीय प्रबन्धकों द्वारा निम्नांकित अनुमान तैयार किये गयेः-

Product	North	South
A	+10%	+ 5%
B	+20%	+10%

गहन विज्ञापन कार्यक्रम के सहयोग से विभागीय प्रबन्धकों द्वारा अनुमानित बिक्री के अतिरिक्त निम्नांकित अतिरिक्त बिक्री सम्भव है :-

Product	Noth	South
A	600	700
B	400	500

NMDC-129

इकाई - 3 बजटीय नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 परिभाषा

3.3 बजट एवं बजटरी नियंत्रण

3.4 बजटरी नियंत्रण की प्रक्रिया

3.5 उद्देश्य

3.6 नियंत्रण अनुपात

3.7 बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन

3.8 लाभ

3.9 सीमायें

3.10 बजटरी नियंत्रण की सफलता के कारक

3.11 सारांश

3.12 शब्दावली

3.13 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- बजटरी नियंत्रण का अर्थ एवं प्रक्रिया ज्ञात होगी,
- इसके नियंत्रण के उद्देश्य की जानकारी होगी,
- इसके नियंत्रण सम्बन्धी अनुपात ज्ञात होंगे,
- इसके नियंत्रण सम्बन्धी प्रतिवेदन की जानकारी मिलेगी,
- इसके नियंत्रण संबंधी लाभ व हानि का ज्ञान होगा, तथा
- इसके नियंत्रण की सफलता के घटक की जानकारी होगी।

3.1 प्रस्तावना

नियोजन करने के पश्चात उसका उचित ढंग से क्रियान्वयन आवश्यक होता है क्योंकि नियोजन कितना ही परिपक्व क्यों न हो बिना उचित नियन्त्रण के वह निरर्थक हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक प्रबंधक, लेखांकन की उचित उद्धति अपनाता है जिससे वह भावी कार्यों, उत्पादन , विक्रय आदि के विषय में पूर्व जानकारी प्राप्त कर सके। कार्य के दौरान ही वह यह जानकारी प्राप्त करता है कि नियोजित लक्ष्यों व वास्तविक परिणामों में क्या और कितना अन्तर है। इस अन्तर की जानकारी प्राप्त कर वे सुधारात्मक उपाय अपनाता है। इस हेतु वह जो तकनीक प्रयोग में लाता है उसे ही बजटरी नियंत्रण कहते हैं। बजटरी नियंत्रण को किसी वस्तु के उत्पादन, विक्रय, लागत, लाभ सम्बन्धी सभी पहलुओं के नियोजन व नियंत्रण में बजट के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत, किसी कार्य के उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न व्ययों की राशि तथा उनकी अनुमानित मात्राओं की तुलना वास्तविक परिणामों से की जाती है। अनुमानित मात्रा एवं वास्तविक मात्रा के अन्तर इस प्रकार से जानकर अन्तर के कारणों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है। तदोपरान्त, उन कारणों को दूर करने के लिए आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करके नियोजन एवं वास्तविक परिणामों में अन्तर को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा नियंत्रण के प्रमुख लक्ष्य भविष्य के लिये सुधारात्मक कार्यवाही के रूप में उचित व सही नीति-निर्माण करना सुलभ हो जाता है।

3.2 परिभाषा

बजटरी नियंत्रण शब्द 'बजट' तथा 'नियंत्रण' के संयोग से बना है। बजट एक निश्चित कार्य अवधि के लिए व्यवसाय के समस्त कार्यकलापों से सम्बद्ध एक परिमाणात्मक योजना होती है। यह सम्पूर्ण व्यवसाय के प्रत्येक विभाग के लिए उच्चस्तरीय प्रबन्ध द्वारा निर्धारित नीतियों, योजनाओं, उद्देश्यों और लक्ष्यों का औपचारिक तथा परिमाणात्मक स्वरूप है। नियंत्रण का आशय अनुमानित योजना एवं लक्ष्यों तथा वास्तविक परिणामों की तुलना द्वारा संस्था की प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि तथा उसके फलस्वरूप निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति से लिया जाता है। कतिपय प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी बजटरी नियंत्रण की परिभाषायें निम्नलिखित हैं :

जे. आर. बाटलीबाय के अनुसार, ''आर्थिक कार्यों, उत्पादन के कार्यकलापों और विक्रय योजनाओं को विविध अवधियों के अन्तर्गत पूर्वानियोजित करके, उत्पादन के विभिन्न कार्यकलापों के अन्तर्गत प्रशासकीय कारखाना, विक्रय एवं विज्ञापन व्ययों पर नियन्त्रण बजटरी नियन्त्रण के द्वारा होता है।''

इस परिभाषा में बजटरी नियन्त्रण के क्षेत्र और प्रविधि को स्पष्ट किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बजटरी नियंत्रण का सम्बन्ध आर्थिक कार्यो, उत्पादन कार्यकलापों और विक्रय योजनाओं से होता है। नियंत्रण और विनियोजन प्रबन्ध के इन दो महत्वपूर्ण कार्यों पर इस परिभाषा

का विशेष जोर है।

वाल्टर डब्ल्यू. बिग्स के अनुसार, "बजटरी नियंत्रण शब्द का प्रयोग प्रबन्ध एवं लेखांकन की उस पद्धति के लिए किया जाता है जिसकी सहायता से जहाँ तक सम्भव हो भविष्य के कार्यों एवं उत्पादनों के सम्बन्ध में पूर्व जानकारी प्राप्त हो सके और वास्तविक परिणाम प्राप्त होने पर उनका मिलान, बजटरी अनुमानों से किया जा सके।"

इस परिभाषा में बजटरी नियंत्रण को प्रबन्ध एवं लेखांकन की एक पद्धति माना गया है। बजट का प्रयोग नियंत्रण प्रक्रिया में किस प्रकार होगा, इस बात को इस परिभाषा में स्पष्ट किया गया है।

आर.आर गुप्ता के अनुसार, "बजटरी नियंत्रण प्रबन्ध और लेखांकन की उस विधि को कहते हैं जिसके द्वारा प्रत्येक उत्पादन कार्य, विक्रय तथा उत्पादन की मात्रा एवं उसकी अनुमानित लागत उचित समय पूर्व ही निश्चित की जा सकती है और उत्पादन को चुकने के बाद वास्तविक कार्यों की तुलना बजटों से की जा सकती है।"

यह परिभाषा बाटलीबाय की परिभाषा से मिलती जुलती है और इसमें बजटरी नियंत्रण प्रक्रिया को भी स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

व्हैल्डन के शब्दों में "बजटरी नियंत्रण व्यवसाय के विभिन्न कार्यों का पूर्वानियोजन है। जिससे सम्पूर्ण व्यवसाय का नियंत्रण किया जा सके।"

यह परिभाषा सरल एवं संक्षिप्त है । इसमें व्यवसाय के सभी कार्यों का नियोजन इस प्रकार किया जाता है जिससे पूरा व्यवसाय नियंत्रित हो सके। इस परिभाषा में इस तकनीक की प्रविधि व उसकी विशिष्टतायें स्पष्ट रूप से नहीं बतायी गयी हैं।

ब्राउन और हावर्ड के अनुसार, "बजटरी नियंत्रण लागतों पर नियंत्रण करने की एक पद्धति है जिसमें बजटों को तैयार करना, विभागों को समन्वित करना और दायित्व निश्चित करना, वास्तविक निष्पादन का बजट के अंकों से तुलना करना और अधिकतम लाभप्रदता प्राप्त करने के परिणामों पर कार्य करना सम्मिलित है।" इस परिभाषा में बजटरी नियंत्रण प्रविधि की विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें बजटरी नियंत्रण को लागत नियंत्रिण करने की एक पद्धति माना गया है।

आई. सी. एम. ए. लन्दन ने बजटरी नियंत्रण की परिभाषा इस प्रकार दी है, "एक नीति की आवश्यकताओं के लिए कार्यनिर्वाहकों के उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित बजटों का संस्थापन तथा या तो व्यक्तिगत क्रिया द्वारा इस नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए या उसके पुनर्निरीक्षण हेतु आधार प्राप्त करने की दृष्टि से वास्तविक परिणामों की बजट से निरन्तर तुलना करना बजटरी नियंत्रण है।"

इस परिभाषा के अनुसार बजटरी नियंत्रण के लिए कई बजटों की आवश्यकता पड़ती हैं विभिन्न बजट इस दृष्टि से बनाये जाते हैं कि व्यवसाय की नीति से कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्व सम्बन्धित किये जा सकें ताकि वह नीति अमल में लाई जा सके। इस परिभाषा में निर्धारित नीति के

लक्ष्यों को ठीक करने के लिए दृढ़ आधार वास्तविक परिणामों का लक्ष्यों से तुलना करके प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से, बजटरी नियंत्रण की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं :

1. बजटरी नियंत्रण लागत नियंत्रण की एक तकनीक है।

2. यह प्रबन्ध एवं लेखांकन की एक पद्धति है।

3. यह प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण उपकरण होता है।

4. यह वस्तुतः नियोजन व नियंत्रण का एक साधन है जो समन्वय के द्वारा तीन पहलुओं नियोजन, समन्वय, नियंत्रण को परस्पर सम्बद्ध करता है।

5. बजटरी नियन्त्रण एक प्रक्रिया है जिसमें बजट लक्ष्यों का निर्धारण, उसका वास्तविक परिणामों से तुलना, अन्तर का विश्लेषण और भविष्य के लिए सुधारात्मक नीति का निर्माण शामिल है।

6. बजटरी नियंत्रण में बजट प्रतिवेदनों का प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा व्यवसाय के दैनिक क्रियाकलापों का उपयुक्त ढंग से प्रबन्ध होता है।

7. बजटरी नियंत्रण में कई प्रकार के बजट इसलिये बनाये जाते हैं कि व्यवसाय की नीति से कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्व सम्बन्धित किये जा सकें।

इन विशेषताओं और उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर बजटरी नियन्त्रण की एक सरल एवं संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है -

''प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में, बजटरी नियन्त्रण लागत को नियन्त्रित करने और व्यवसाय के दैनिक कार्यकलापों के नियोजन, समन्वय व नियन्त्रण को परस्पर सम्बद्ध करने की प्रबन्ध एवं लेखांकन की एक पद्धति है। बजटरी नियन्त्रण प्रक्रिया में बजटों को तैयार करना, वास्तविक निष्पादन का बजट के अंकों या लक्ष्यों से तुलना करना और अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु अन्तर के कारणों के विश्लेषण द्वारा उनमें सुधार किया जाना सम्मिलित है।''

3.3 बजट एवं बजटरी नियन्त्रण

बजट एवं बजटरी नियंत्रण के अभिप्राय का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वास्तव में बजट तथा बजट नियंत्रण आपस में प्रभावी रूप से अन्तर्सम्बन्धित है। विभिन्न विद्वानों ने अनमें अन्तरसम्बन्धों की व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की है -

NMBC-129

टैरी के अनुसार, ''बजट साधन है तथा बजटरी नियन्त्रण अन्तिम परिणाम है।'' बजट की सहायता से ही बजटरी नियन्त्रण तकनीक का प्रयोग सम्भव है। बजटरी नियन्त्रण के अन्तर्गत लक्ष्यों के पूर्वनिश्चय के लिए सबसे पहले बजटों का निर्माण आवश्यक है। अतः बजट बजटरी नियन्त्रण का आधार है।

सिकल के शब्दों में ''बजट बजटरी नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण अंग है । बजट एक वित्तीय योजना है तथा बजटरी नियन्त्रण वित्तीय योजना के प्रशासन का परिणाम है।''

इस कथन में बजटरी नियन्त्रण को विस्तृत रूप में लिया गया है और बजट को बजटरी नियन्त्रण का एक अंग माना गया है। बजटरी नियन्त्रण प्रक्रिया का पहला स्तम्भ बजट का निर्माण है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि बजटरी नियन्त्रण में बजट सम्मिलित है। बजट की योजना का क्रियान्वयन भी इस तकनीक के द्वारा होता है।

रौलैण्ड और विलियम ने बजट, बजटिंग और बजटरी नियन्त्रण में इस प्रकार अन्तर्भेद किया है - ''बजट विभागों के व्यक्तिगत उद्देश्य होते हैं जबकि बजटिंग बजट तैयार करने की प्रक्रिया है। बजटरी नियन्त्रण इन सभी को शामिल करता है और व्यावसायिक नियोजन व नियन्त्रण के लिए प्रबन्ध के समग्र उपकरण के रूप में बजटों के नियोजन का विज्ञान और उन बजटों का प्रयोग भी अतिरिक्त रूप में सम्मिलित है।''

बजटिंग बजटरी नियन्त्रण का अंग है। बजटरी नियन्त्रण इनका प्रशासनिक पहलू है जिसकी सहायता से नियन्त्रण कार्य सुविधाजनक ढंग से सम्पन्न होता है।

3.4 बजटरी नियन्त्रण की प्रक्रिया

प्रबन्धक को प्रभावी बजटरी नियन्त्रण के लिये क्रमबद्ध ढंग से कार्य करना चाहिए इस नियंत्रण के लिए कुछ महत्वपूर्ण कार्य-कलाप करना आवश्यक है। इन्हीं कार्य-कलापों को अपनाना ही बजटरी नियन्त्रण प्रक्रिया कहलाती है। इस सम्बन्ध में बजटरी नियंत्रण के लिए निम्नलिखित क्रियाओं को अपनाना आवश्यक होता है :-

1. **उत्तरदायित्वों का निर्धारण** - उपलब्धियों के मूल्यांकन के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण आवश्यक है। इस हेतु संस्था के प्रत्येक व्यक्ति, विभाग एवं कक्ष के उत्तरदायित्वों को निर्धारित कर दिया जाता है। कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को स्पष्ट विभाजन बजटरी नियंत्रण प्रक्रिया का आधार है।

2. **बजटों का निर्माण** - बजटरी नियंत्रण में कई बजटों की आवश्यकता पड़ती है। ये व्यवसाय के विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में होते हैं । बजटरी नियंत्रण के लिए उपयुक्त नीति एवं तुलना के लिए बजट पूर्वानुमानित लक्ष्य प्रदान करते हैं। व्यवसाय के विभिन्न कार्यों और विभिन्न विभागों के लिए अलग-अलग बजट के साथ-साथ एक समग्र बजट भी तैयार किया जाता है।

3. **उपलब्धियों का माप** - बजट के प्रशासन से वास्तविक परिणाम सामने आते हैं। ये अभिलेख एक व्यक्ति, विभाग एवं कक्ष के सम्बन्ध में बजट अवधि के लिए होते हैं। इन अभिलेखों को इकट्ठे करके उचित समय पर सम्बन्धित अधिकारियों के पास पहुँचाया जाता है।

4. **तुलना एवं समीक्षा** - वास्तविक निष्पादन के अभिलेखित आँकड़ों की तुलना बजट में प्रदर्शित लक्ष्यों से की जाती है। इन दोनों में अन्तर को ज्ञात कर अन्तर के कारणों का विश्लेषण करते समय व्यक्तियों और विभागों के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व निश्चयन के साथ-साथ बाह्य कारकों पर भी विचार किया जाता है।

5. **सुधारात्मक कार्यवाही** - बजट और वास्तविक परिणामों के अन्तर के विश्लेषण द्वारा ज्ञात तथ्यों की सहायता से एक सुधारात्मक नीति निश्चित की जाती है, जो भविष्य के निष्पादन परिणामों में सुधार लाती है।सुधारात्मक कार्यवाही के सम्बन्ध में उपयुक्त नीति का निर्धारण ही इस तकनीक का प्रमुख लक्ष्य है।

6. **अनुवर्तन** - इसमें परिस्थितियों में सुधार करने के लिए सम्मिलित किये जाने वाले तत्काल उपायों के परिणामों को शामिल किया जाता है। सुधारात्मक कार्यवाही का मूल्यांकन यह बतलाता है कि अवांछनीय अन्तरों को दूर करने के लिए अपनायी गयी नीति प्रभावकारी रही है अथवा नहीं। सुधारात्मक कार्यवाही ज्यादा प्रभावपूर्ण न होने पर, उनमें पुनः संशोधन इसी आधार पर किया जा सकता है।

3.5 बजटरी नियन्त्रण के उद्देश्य

प्रत्येक प्रबन्धक को बजटरी नियंत्रण के लिये उसके कुछ उद्देश्य निर्धारित करना चाहिए। उद्देश्य निर्धारित करने पर सफलता के साथ बजटरी नियंत्रण करने में सुगमता होती है। वास्तव में, बजटरी नियंत्रण प्रबंधकीय क्रियाओं में समन्वय स्थापित कर आवश्यक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है। इस के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. **नीति निर्धारण में सहायता करना** - बजट के द्वारा नीति तैयार की जाती है। बजट के क्रियान्वयन के द्वारा इन नीतियों का मूल्यांकन होता है। जब ये नीतियाँ बजटरी नियंत्रण पद्धति द्वारा परिशुद्ध एवं विश्वसनीय हो जाती है तो उन्हें व्यवसाय की स्थायी नीतियों के वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है।

2. **विधिवत् नियोजन करना** - बजटरी नियंत्रण के लिए लक्ष्यों का निर्धारण बजटों के माध्यम से होता है। लक्ष्यों का सही एवं विश्वसनीय ढंग से पूर्वानुमान ही बजटरी नियंत्रण पद्धति की आधारशिला होती है। अतः, इस हेतु यह पद्धति विधिवत् नियोजन करते हुए व्यवसाय के मौसमी परिवर्तनों के कुप्रभावों को दूर करती है।

NMDC-129

3. **पूँजी की आवश्याकताओं का निर्धारण करना** - बजट के दौरान कितनी पूँजी की आवश्यकता होगी, इसकी जानकारी से आवश्यक पूँजी की पूर्ण व्यवस्था की जा सकती है। बजट अवधि की पूँजी आवश्यकताओं की जानकारी के लिए पूँजी व्यय व विकास अनुसन्धान व्ययों के पूर्वानुमान के साथ-साथ उत्पादन कार्य पर किये जाने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्ययों के पूर्व निर्धारित समंक ज्यादा उपयोगी है।

4. **प्रशासन कार्य में सहायता प्रदान करना** - बजटरी नियंत्रण का उद्देश्य प्रबन्धकों को प्रशासन में मार्गदर्शन कराना है। बजटरी नियंत्रण की सहायता से प्रत्येक विभागाध्यक्ष को अपने विभाग के सम्बन्ध में पूर्व निश्चित लक्ष्यों की जानकारी हो जाती हैं। संस्था का उच्च प्रबन्ध और मध्यम स्तर का प्रबन्ध इन लक्ष्यों की सहायता से प्रशासन करता है।

5. **उत्तरदायित्व का निर्धारण** - बजटरी नियंत्रण व्यवस्था में, उत्तरदायित्वों का पूर्व निर्धारण हो जाता है। इससे कार्य में त्रुटि होने पर सम्बन्धित व्यक्ति या विभाग को उत्तरदायी ठहराने में सुविधा रहती है।

6. **उत्पादन लागत में मितव्ययिता** - बजटरी नियंत्रण का एक उद्देश्य यह भी है कि उत्पादन लागत को न्यूनतम रखा जाय जिससे कि लाभों में वृद्धि हो । इसमें सभी व्ययों को प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, स्थिर व परिवर्तनशील वर्गों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक प्रकार की लागत में कमी लाने का प्रयास किया जाता है।

7. **व्यावसायिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना** - प्रत्येक विभाग के लिए अलग अलग बजट लक्ष्यों के निर्धारण के साथ-साथ व्यावसायिक संस्थान का सम्मिलित लक्ष्य भी निश्चित कर लिया जाता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यवसाय के विभागों में समन्वय स्थापित होने की सम्भावना बढ़ जाती है और सभी विभागीय अधिकारियों में सहयोग की भावना का विकास होता है।

8. **प्रशासकीय शक्ति एवं उत्तरदायित्व का विकेन्द्रीकरण** - बजटों का निर्माण प्रत्येक विभाग व अनुभाग के लिए होता है और कार्य करने वाले के अधिकार व दायित्व पूर्व निश्चित रहते हैं। इस कारण से, प्रशासन शक्ति व उत्तरदायित्व निम्न स्तर पर भी पाया जाता है, जो विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को सुलभ बनाता हैं ।

9. **व्यवसाय की कार्यक्षमता बढ़ाना** - आय तथा व्ययों को नियोजित करके व्यवसाय को अधिक लाभप्रद बनाना बजटरी नियंत्रण का एक प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक विभाग के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्ययों पर नियंत्रण करने के साथ-साथ परिव्यय के विभिन्न तत्वों में सामंजस्य द्वारा व्यवसाय की कार्यकुशलता बढ़ायी जाती है। सही एवं उपयोगी प्रबन्धकीय निर्णयों से व्यवसाय की लाभोपार्जन क्षमता बढ़ती है। प्रबन्ध सुधारात्मक कार्यवाही के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करता है। विकास एवं अनुसंधान के साथ-साथ कार्यशील पूँजी के प्रयोग पर भी उपयुक्त नियंत्रण इस व्यवस्था के द्वारा सम्भव है।

3.6 बजटरी नियन्त्रण सम्बन्धी अनुपात

बजटरी नियंत्रण के लिए कई तकनीकों को प्रयोग में लाया जाता है। उनमें से एक है अनुपातों तथा प्रतिशतों का प्रयोग। इन अनुपातों तथा प्रतिशतों का उपयोग बजटरी संमकों तथा वास्तविक परिणाम की तुलना के लिये किया जाता है। इन के माध्यम से तुलना कर के आवश्यक तथा उचित निष्कर्ष निकाले जाते हैं जो नियंत्रण तथा नीति निर्माण की दृष्टि से उपयोगी हो सकते हैं। बजटरी अनुमानों तथा वास्तविक परिणामों का मिलान व तुलना करने के लिये जो प्रमुख अनुपात अपनाये जा सकते हैं वे निम्नलिखित हैं :

1. क्षमता अनुपात (Capacity Ratio) - यह अनुपात हमें बताता है कि बजट कार्य घण्टों को किस सीमा तक प्रयोग किया है। अनुपात के 100 प्रतिशत से ज्यादा होने पर कार्यक्षमता अनुकूल मानी जाती है। और यदि यह अनुपात 100 प्रतिशत से कम है तो इसका आशय यह है कि बजट की क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। इसका सूत्र निम्नलिखित है :

$$\text{क्षमता अनुपात} = \frac{\text{वास्तविक काम के घण्टे}}{\text{बजट के काम के घण्टे}} \times 100$$

$$Capacity\ Ratio = \frac{Actual\ Hours\ Worked}{Budgeted\ Hours} \times 100$$

2. क्रियाशीलता अनुपात (Activity Ratio)- इस अनुपात की गणना के लिए वास्तविक कार्य के प्रमापित घण्टे की संख्या ज्ञात करके उसमें बजट किये गये प्रमापित घण्टे की संख्या से भाग देते हैं तथा 100 से गुणा करते हैं। यह अनुपात बजट अवधि में प्राप्त क्रियाशीलता के स्तर को बताता है। सूत्र के रूप में,

$$\text{क्रियाशीलता अनुपात} = \frac{\text{वास्तविक उत्पादन के लिए प्रमापित घण्टे}}{\text{बजट के प्रमापित घण्टे}} \times 100$$

$$Activity\ Ratio = \frac{Standard\ Hours\ for\ Actual\ Production}{Budgeted\ Standard\ Hours} \times 100$$

अनुपात के 100 प्रतिशत से ज्यादा होने पर अनुकूल क्रियाशीलता तथा 100 प्रतिशत से कम होने पर प्रतिकूल क्रियाशीलता मानी जाती है।

3. कैलेण्डर अनुपात (Calender Ratio) - यह अनुपात बजट अवधि के अनुमानित समस्त कैलेण्डर दिनों में वास्तविक कार्य की स्थिति को बतलाता है। इस अनुपात के 100 प्रतिशत से कम होने का अभिप्राय है कि वास्तविक कार्य दिन अनुमानित कार्य दिनों की अपेक्षा कम हैं। अनुपात की गणना के लिए सूत्र इस प्रकार है :

$$\text{कैलेण्डर अनुपात} = \frac{\text{बजट अवधि में वास्तविक काम के दिन}}{\text{बजट अवधि में बजट के कार्य दिवस}} \times 100$$

$$Calender\ Ratio = \frac{Actual\ Working\ Days\ in\ Budget\ Period}{Budgeted\ Working\ Days\ in\ Budget\ Period} \times 100$$

4. **कार्यकुशलता अनुपात (Efficiency Ratio)** - यह अनुपात बजट अवधि में होने वाले कार्य-कुशलता के स्तर को मापता है। यह अनुपात यदि 100 प्रतिशत या उससे अधिक है तो संस्था के कार्यकुशलता का स्तर अच्छा माना जाता है। इसके विपरीत इस अनुपात के 100 प्रतिशत से कम होने पर संस्थान की कार्यकुशलता में कमी मानी जाती है। इस अनुपात की गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र हैं :

$$\text{कार्यकुशलता अनुपात} = \frac{\text{वास्तविक उत्पादन के लिए प्रमापित घण्टे}}{\text{वास्तविक काम के घण्टे}} \times 100$$

$$Efficiency\ Ratio = \frac{Standard\ Hours\ for\ Actual\ Production}{Actual\ Hours\ Worked} \times 100$$

3.7 बजटरी नियन्त्रण सम्बन्धी प्रतिवेदन

बजटरी नियंत्रण हेतु प्रबन्धक को एक बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार कराना चाहिए। व्यवहार में, अधिकांश संस्थायें यह प्रतिवेदन तैयार कराती हैं इस प्रतिवेदन में बजटरी संमक तथा वास्तविक परिणामों को एक तालिका के रूप में दिखाया जा सकता है। इस प्रतिवेदन को दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक आवश्यकतानुसार अवधि में तैयार किया जा सकता है। बजटरी समंक तथा वास्तविक परिणामों में विचरणों को इस प्रतिवेदन में दिखाया जाता है। ये विचरण अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकते हैं। इसे ज्ञात करके, इन विचरणों का विश्लेषण करके उनके कारणों को ज्ञात किया जाता है। तत्पश्चात, आवश्यकतानुसार, सुधारात्मक कार्यवाही को अपनाकर आवश्यक परिणाम प्राप्त करने का लक्ष्य पूरा करने का प्रयास किया जाता है। ये सुधारात्मक कार्यवाही उत्पादन तकनीक में उचित परिवर्तन, स्थायी सम्पत्तियों की मात्रा व स्वरूप में परिवर्तन, मजदूरी दरों में उचित परिवर्तन, लागत कम करने सम्बन्धी उपायोग आदि से सम्बन्धित हो सकती है।

बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन को निम्नलिखित प्रारूप में तैयार किया जा सकता है :

Budgetary Control Report

Cost Centre:

Department : **Period**

Particulars	Budget	Actual	Difference Favourable	Unfavourable
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
A. Controllable Expenses - -				
Total				

B. Uncontrollable Expenses - -				
Total				
C. Total Expenses				
D. Related Percentages - -				

बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन सम्बन्धी सावधानियाँ

बजटरी नियंत्रण सम्बन्धी प्रतिवेदन तैयार करते समय कुछ प्रमुख बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसके लिये, मुख्यतया, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

1. प्रतिवेदन में वास्तविक निष्पादन परिणाम बजट के लक्ष्य और उनमें अन्तर को स्पष्ट रूप से दिखलाना चाहिए। यदि अन्तर प्रतिकूल है तो उसे भी स्पष्ट रूप से अनुकूल अन्तरों से अलग दिखलाना चाहिए।

2. महत्वपूर्ण अन्तरों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिवेदन में दर्शाना चाहिए जिससे प्रबन्ध जल्द से जल्द इस सम्बन्ध में उपयुक्त सुधारात्मक कार्यवाही कर सकें।

3. प्रतिवेदन को शीघ्रातिशीघ्र सम्बन्धित उत्तरदायी अधिकारियों के पास भेज देना चाहिए। प्रभावकारी बजटरी नियंत्रण व्यवस्था में प्रतिवेदनों को देर से भेजने पर नियंत्रण कार्य ठीक से पूरा नहीं हो पाता है।

4. प्रतिवेदनों की सामयिकता प्रतिवेदनों के प्रयोग करने वाले अधिकारियों के प्रबन्ध स्तर पर निर्भर करती है। यदि फोरमैन को प्रतिवेदन प्राप्त करना है तो दैनिक प्रतिवेदन, साप्ताहिक प्रतिवेदन या पाक्षिक प्रतिवेदन ज्यादा उपयोगी होंगें। इसी प्रकार, यदि प्रतिवेदनों को उच्च प्रबन्ध के पास भेजना है तो वे त्रैमासिक या वार्षिक हो सकते हैं।

5. परिवर्तनशील व्ययों को लोचदार बजट (Fixed Budget) द्वारा अभिव्यक्त करना चाहिए। मौसमी परिवर्तनों को वर्ष के अन्त में दिखलाना चाहिए।

3.8 बजटरी नियन्त्रण से लाभ

प्रभावकारी प्रबन्ध की दृष्टि से बजटरी नियंत्रण एक उपयोगी तकनीक है। व्यवहार में, इसे अपनाकर प्रबन्धक निर्धारित लक्ष्यों को सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। उचित नियोजन, समन्वय व नियंत्रण के लिये यह तकनीक अधिक लाभकारी है।

NMDC-129

बजटरी नियंत्रण से मुख्यतया निम्नलिखित लाभ हैं :

1. **व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायितव** - विभिन्न प्रकार के बजट तैयार होने से संस्थान की समस्त क्रिया नियन्त्रित हो जाती हैं। लागत, उत्पादन की मात्रा एवं बिक्री सम्बन्धी क्रियाकलापों को पूर्वानुमानित व पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार कार्यान्वित किया जाता है। मौसमी परिवर्तनी को पहले से ध्यान में रखकर उत्पादन व बिक्री को उसी प्रकार नियोजित किया जाता है। इससे सभी विभागों में पूर्ण सहयोग, उनके कार्य तथा दायित्व का निर्धारण और सभी कार्यों में समन्वय व नियंत्रण के द्वारा व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायित्व आ जाता है।

2. **प्रबन्ध को मार्ग दर्शन** - बजटरी नियंत्रण व्यवस्था, प्रबन्ध का निम्नलिखित क्षेत्रों में मार्गदर्शन कर सकती है।

(अ) सामान्य प्रशासन - इसके अन्तर्गत भविष्य की योजनाओं पर ध्यान देना, अधिकारियों को लागत के सम्बन्ध में जागरूक बनाना, विभिन्न प्रशासकों व प्रबन्धकों का सहयोग एवं समन्वय प्राप्त करना और प्रत्येक क्रियाकलाप के लिए सुनिश्चित उत्तरदायित्व का निर्धारण करना सम्मिलित है।

(ब) क्रय - सामग्री और आपूर्तियों के गुणात्मक मापों को बनाये रखने के लिए उत्तरदायित्व का निश्चयन करने और आपूर्तियों में होने वाली कमियों को कम करने हेतु उपयुक्त समय में क्रय को करना बजटरी नियंत्रण पद्धति के द्वारा ही सम्भव है।

(स) उत्पादन - उत्पादन के क्षेत्र में प्रक्रियाओं, सम्पत्तियों और उत्पादन को जहाँ तक सम्भव हो सके प्रमापीकृत करने में बजटरी नियंत्रण मार्गदर्शन करता है। क्षयों और अन्य हानियों को कम करना भी इस तकनीक के द्वारा सम्भव है। मशीनों और कर्मचारियों के सबसे मितव्ययितापूर्ण उपयोग के लिए संयंत्र की क्षमताओं के अनुसार उत्पादन का वितरण करना और मितव्ययितापूर्ण कुशलतापूर्ण और आसान उत्पादन नियंत्रण व्यवस्था में सहायता करना भी बजटरी नियंत्रण के द्वारा सम्भव है।

(द) विक्रय - कम लाभदायक व हानिकारक उत्पादों के विक्रय को समाप्त करते हुए ग्राहकों की माँग के अनुसार विश्वसनीय विक्रय अनुमानों को बजटरी नियंत्रण आधार प्रदान करती है।वस्तुओं की सुपुर्दगी समय पर हो, इस दिशा में यह तकनीक प्रबन्ध का मार्गदर्शन करती है। उत्पादन और विक्रय में सामंजस्य इस प्रकार से स्थापित किया जाता है कि न तो अधिक रहतिया एकत्र हो जाय और न बिना संयंत्र क्षमता के अधिक आदेश इकट्ठे हो जायें। विक्रय और वितरण व्ययों के नियंत्रण में भी यह तकनीक प्रबन्ध का मार्गदर्शन करती है।

(य) वित्त - प्रबन्धकों को वित्तीय मामलों में भी बजटरी नियंत्रण तकनीक मार्गदर्शन करती है। कुछ प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं :

(क) कार्यशील पूँजी का सबसे मितव्ययितापूर्ण उपयोग करना।

(ख) अनुसंधान एवं विकास व्ययों पर नियंत्रण करना।

(ग) पूँजीगत व्ययों का नियोजन व नियंत्रण करना।

(घ) संयंत्र क्षमताओं और चालू-परिसम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग करना।

(ङ) आय की सीमाओं के अन्तर्गत व्ययों को नियन्त्रित करना।

(च) आवश्यकता पड़ने पर अतिरिक्त रोकड़ की व्यवस्था करना और अधिक रोकड़ का लाभदायक एवं तरल विनियोग करना।

3. **व्यवसाय के पक्ष को प्रस्तुत करना** - बजटरी नियंत्रण के तथ्यों की सहायता से, व्यवसायी कर-अधिकारियों तथा व्यापारिक सम्पत्तियों और लाइसेन्स अधिकारियों के सामने अपने पक्ष को ज्यादा विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं और अपने हितों की सुरक्षा कर सकते हैं।

4. **उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या** - बजटरी नियंत्रण प्रणाली के अन्तर्गत सबसे पहले संस्थान के उद्देश्यों का निश्चयन होता है। ये उद्देश्य प्रमुख व सहायक हो सकते हैं। ये प्रत्येक विभाग, व्यक्ति ओर व्यावसायिक क्रिया के सम्बन्ध में निश्चित होते हैं। इससे कर्मचारियों को अपने कार्यक्षेत्र, कार्य सीमा, अधिकार सीमा आदि के विषय में कोई भ्रम नहीं रहता है।

5. **अधिकारों, कर्तव्यों व दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण** - बजटरी नियंत्रण प्रक्रिया का सबसे पहला कदम अधिकारों, कर्तव्यों व दायित्वों का स्पष्ट रूप से निर्धारण होता है। कर्मचारियों के अधिकार और कर्तव्य लिखित रूप में निश्चित होते हैं और उनका संवहन कर्मचारियों के पास कार्य करने से पहले हो जाता है। इससे, वे अपना कार्य उत्तरदायी ढंग से पूरा करते हैं।

6. **मानक लागत विधि में सहायक** - मानक (प्रमाप) लागत विधि अपनाने के लिए संस्था के सभी कार्य पूर्वनियोजित होने चाहिए। मानक लागत पद्धति की सफलता के लिए बजटरी नियंत्रण पद्धति को अपनाना आवश्यक है।मानक लागत विधि में मानक लागतों के पूर्वनिर्धारण के लिए बजटरी नियंत्रण अपरिहार्य है क्योंकि इसकी सहायता से मानक लागतों का वास्तविक लागतों के सन्दर्भ में निर्धारण करना सम्भव है।

7. **नियोजन में निश्चितता** - बजटरी पद्धति का आधार नियोजन है। इसमें सभी बातें समंकों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, ताकि नियोजन के कार्य में निश्चितता बनी रहें। इससे नियोजन का कार्य भी सुविधाजनक ढंग से सम्पन्न हो जाता है।

8. **भावी समस्याओं के प्रति जागरूकता** - बजटरी नियंत्रण प्रणाली में व्यापार के भविष्य की समस्याओं पर पहले से विचार करने का प्रोत्साहन प्रबन्धकों को मिलता है। इससे प्रबन्धक भावी समस्याओं के बारे में पहले से ही अपनी नीतियाँ और कार्यक्रम निश्चित कर लेते हैं तथा भविष्य में आने वाली समस्याओं का आसानी से मुकाबला करते हैं।

9. **लेखांकन विभाग की कार्यकुशलता में वृद्धि** - लेखांकन विभाग को बजटरी नियंत्रण पद्धति के क्रियान्वयन के लिए वास्तविक निष्पादन का लेखांकन करना पड़ता है। बजटों के निर्माण के लिए भी पिछले वर्षों के विस्तृत लेखांकन समंकों की आवश्यकता पड़ती है। लेखांकन विभाग बजटरी नियंत्रण पद्धति के लिए वास्तविक निष्पादन परिणामों को ज्यादा सावधानी से लेखीकृत करता है। यह कार्य ज्यादा तेजी से करने और परिशुद्ध समंकों के संकलन से विभाग की कार्यकुशलता बढ़ जाती है।

10. **सहयोग एवं समन्वय की भावना को प्रोत्साहन** - इस प्रणाली के द्वारा संस्थान के विभिन्न विभागों, क्रियाओं तथा कर्मचारियों में आपसी सहयोग व समन्वय की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। सभी बजटों का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संस्था की सम्पूर्ण कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। इसके साथ ही साथ, प्रत्येक कर्मचारी के मन में निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहयोग एवं समन्वय से कार्य करने की भावना जागृत होती है।

11. **संगठन को सशक्त बनाना** - बजटरी नियंत्रण पद्धति के द्वारा प्रबन्ध को संस्थान के संगठन के बारे में आवश्यक जानकारी मिल जाती है। इससे व्यावसायिक संगठन के सशक्त व कमजोर बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। प्रबन्धकों, पर्यवेक्षकों व श्रमिकों की कार्यकुशलता की कमी में सुधार लाने के लिए आवश्यक प्रयत्न इस पद्धति के अन्तर्गत ही सम्भव है। इससे संगठन प्रभावकारी और सशक्त हो जाता है।

12. **अकुशल कर्मचारियों व अवांछनीय प्रवृत्तियों का शीघ्र निवारण** - बजट संस्था के सभी विभागों के लिए पहले से मापदण्ड निश्चित करता है। इनकी तुलना वास्तविक परिणामों से करके विभिन्न विभागों एवं कर्मचारियों की कुशलता के बारे में जानकारी मिल जाती है। लाभ व बिक्री में कमी, कार्यशील पूँजी के दुरूपयोग तथा व्ययों में अधिकता के लिए उत्तरदायी कर्मचारियों के बारे में शीघ्रातिशीघ्र जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। ऐसी प्रवृत्तियों को दूर करने के उपयोग को शीघ्र ही कार्य रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है।

13. **संस्थान की कार्यकुशलता में वृद्धि** - उत्पादन लागत में कमी और उत्पादन की किस्म में सुधार से संस्थान की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इस तकनीक से विकास एवं अनुसंन्धान कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है और लाभ में बढ़ोत्तरी होने से व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा क्षमता बढ़ती है। सहयोग और मिल-जुल कर काम करने से संस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ती है और नियंत्रण द्वारा अपव्यय, हानियाँ व क्षय कम हो जाते हैं।

14. **श्रम सम्बन्धों में सुधार** - बजटरी नियंत्रण व्यवस्था की सहायता से श्रम सम्बन्धों में भी सुधार लाया जा सकता है। श्रम एवं प्रबन्ध के मध्य विवाद के कारणों, बोनस, कार्य की दशाओं कल्याण और वेतन के बारे में विश्वसनीय जानकारी उपयुक्त नियंत्रण व्यवस्था के द्वारा ही दी जा सकती है। प्रबन्ध व्यवसाय के वास्तविक निष्पादन परिणामों और बचत के लक्ष्यों की तुलना द्वारा संस्था की स्थिति का ज्ञान श्रमिकों को कराता है और अपने विचारों के औचित्य को सिद्ध कर सकता है।

3.9 बजटरी नियन्त्रण की सीमायें

बजटरी नियंत्रण के उपर्युक्त लाभ होते हुए भी इस नियंत्रण की कुछ सीमायें भी हैं। बजटरी नियंत्रण की कुछ प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं :

1. **बजटरी नियंत्रण का आधार अनुमान हैं** - बजटरी नियंत्रण में बजटों का निर्माण पहले किया जाता है। इनके निर्माण में प्रायः अनुमानों का सहारा लिया जाता है। मुद्रा प्रसार, व्यवसाय चक्र तथा सरकारी नीतियों के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में सही बजट तैयार करना तथा उसका लक्ष्यों के अनुसार कार्यान्वयन करना कठिन होता है।

2. **लाभ में वृद्धि** - यह तकनीक वृहत स्तर की व्यावसायिक एवं औद्योगिक इकाइयों के लिए उपयोगी होती है। छोटी संस्थाओं में बजटरी नियंत्रण व्यवस्था की लागत उससे प्राप्त लाभों की तुलना में ज्यादा होती है। जो उन संस्थानों के लिए अपव्यय है। वास्तव में, यह इस तकनीक का व्यावसायिक संस्था के अनुसार उपयुक्त प्रयोग नहीं है। छोटे संस्थानों के लिए कम लागत वाली बजटरी नियंत्रण व्यवस्था कार्यान्वित करनी चाहिए।

3. **कर्मचारी द्वारा विरोध** - यह मनुष्य मात्र का स्वभाव है कि वह किसी नई व्यवस्था या परिवर्तन को आसानी से स्वीकार नहीं करता है। बजटरी नियंत्रण तकनीक में कर्मचारी के वास्तविक निष्पादन परिणामों का मूल्यांकन बजट के लक्ष्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। अन्तर के कारणों के आधार पर एक सुव्यवस्थित एवं कठोर नियंत्रण व निरीक्षण की व्यवस्था कर्मचारी पर लागू की जाती है।इस कारण से कर्मचारी इसका विरोध करते हैं।

4. **बजटरी नियंत्रण प्रबन्ध का एक उपकरण मात्र** - इस तकनीक को प्रबन्ध का एक उपकरण मात्र माना जाता है। इसकी सहायता से व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। यह तकनीक अपने आप में कोई लक्ष्य या साध्य नहीं है, यह एक साधन है और इसकी सहायता से प्रबन्ध व्यावसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करती है।

5. **कागजी कार्यवाही** - कुछ विद्वान नियंत्रण व्यवस्था को केवल कागजी कार्यवाही मानते है। इसमें कुछ नियमों को दिखाने के लिए सम्मिलित किया जाता है तथा जिनकी सहायता से संस्था की कार्यकुशलता बढ़ाने का प्रयास नहीं किया जाता है।

6. **विचरणों को छुपाना** - बजट के लक्ष्यों और वास्तविक परिणामों में प्रतिकूल अन्तर आने से विभाग का प्रमुख अधिकारी कमजोरियों को छिपाने का प्रयास करता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से जिस प्रकार किसी रोग को छिपाने वाले मरीज का उपयुक्त इलाज नहीं हो पाता है उसी प्रकार, बिना प्रतिकूल विचरण की सही जानकारी के उसके निवारणार्थ सुधारात्मक उपाय भी निश्चित नहीं हो पाते हैं।

7. **आवश्यक सहयोग का अभाव** - बजटरी नियंत्रण व्यवस्था की सफलता सामूहिक सहयोग

NMDC-329

एवं समन्वय की भावना पर निर्भर करती है। इस व्यवस्था के प्रशासन के लिए सभी विभागाध्यक्षों का पूर्ण सहयोग आवश्यक है। व्यावहारिक जगत में, ऐसी स्थिति का पाया जाना सम्भव नहीं है।

8. **स्थैतिका** - बजटरी नियंत्रण तकनीक के अन्तर्गत एक बार बजट बन जाने के पश्चात लक्ष्यों व सीमाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार लेखापालक व प्रशासक उन्हीं सीमाओं के अन्तर्गत अपने कार्य करते हैं। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार वह स्वतंत्रतापूर्वक कार्य नहीं कर सकते।

3.10 बजटरी नियन्त्रण की सफलता के कारक

प्रत्येक प्रबन्धक, बजटरी नियंत्रण तकनीक को नियंत्रण के माध्यम के रूप में अपनाता है। अतः, यह आवश्यक हो जाता है कि बजटरी नियंत्रण प्रभावकारी हो। अनेक कारक ऐसे हैं जो इसकी सफलता को प्रभावित करते हैं। बजटरी नियंत्रण की सफलता, सामान्यतया, निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती हैं :-

(क) व्ययों का उचित रूप में वर्गीकरण, अविभाजन व अवशोषण करना।

(ख) कारखाने की सभी प्रक्रियाओं और कार्यकलापों का उचित विभागीकरण एवं उपविभाजन करना।

(ग) सभी अधिकारियों को नियन्त्रण के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने की रूचि होनी चाहिए।

(घ) विवेकपूर्ण ढंग से बजट का निर्माण करना।

(ङ) बजट नियंत्रण प्रतिवेदनों पर गम्भीरता से विचार करना एवं उस पर शीघ्रातिशीघ्र कार्यवाही करना।

(च) आरोही, अवरोही तथा क्षैतिज संवहन व्यवस्था का सुचारू रूप से संचालन होना।

(छ) कर्मचारियों में आपसी सहयोग व समन्वय की भावना का होना।

(ज) संचालन एवं वित्तीय बजटों को समान महत्व देते हुए उनमें पारस्परिक समन्वय स्थापित करना।

(झ) बजट अनुमानों एवं वास्तविक उपलब्धियों के आधार पर विभिन्न प्रतिवेदनों को विभिन्न अधिकारियों के पास शीघ्रातिशीघ्र भेजना।

(ञ) संस्था में अच्छी लागत एवं वित्तीय लेखा पद्धति होना चाहिए। इसके बिना बजटरी नियंत्रण तकनीक द्वारा उपयोगी परिणाम प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

3.11 सारांश

आधुनिक प्रबन्धक, बजटरी नियंत्रण को एक उपयोगी एवं प्रभावकारी तकनीक के रूप में प्रयोग करता है। इसका मुख्य उद्देश्य नियोजित क्रियाओं के कार्यान्वयन पर नियंत्रण करना है। इसके माध्यम से, नियोजित तथा वास्तविक कार्यकलापों का अन्तर ज्ञात कर सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। यह नीति-निर्माण में भी सहायक होता है। बजट के माध्यम से ही, बजटरी नियंत्रण किया जाता है। इसके लिए कुछ विशेष अनुपातों का भी सहारा लिया जाता है। अन्त में, बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार किया जाता है, जिससे संक्षेप में वस्तुस्थिति की जानकारी मिलती है।

3.12 शब्दावली

बजट - एक निश्चित अवधि में सम्पन्न की जाने वाली क्रियाओं की पूर्वानुमानित योजना होती है।

बजटरी नियंत्रण - अनुमानित लक्ष्यों (परिमाणात्मक) तथा वास्तविक परिणामों की तुलना कर सुधारात्मक कार्यवाही करने की एक तकनीक है। इससे प्रभावकारी नियंत्रण हो पाता है।

सुधारात्मक कार्यवाही - कार्यकलापों में आवश्यक सुधार लाने के लिए किये गये उपाय, सुधारात्मक कार्यवाही कहलाते हैं।

अनुवर्तन - परिस्थितियों में सुधार हेतु अपनाये गये तत्काल उपायों के परिणामों को ज्ञात करना अनुवर्तन है।

नियंत्रण अनुपात - नियंत्रण के लिए कुछ अनुपात अपनाये जाते हैं जो लक्ष्यों एवं परिणामों में सम्बन्ध बताते हैं।

बजट विचरण - लक्ष्यों एवं प्राप्त परिणामों में जो अन्तर आता है उसे ही बजट विचरण कहते हैं। यह धनात्मक व ऋणात्मक हो सकते हैं।

लोचदार बजट - एक स्थिर बजट बनाने के स्थान पर उत्पादन क्षमता के विभिन्न स्तरों के आधार पर बजट बनाने को लोचदार बजट कहते हैं। इसके द्वारा उत्पादन में परिवर्तन होने पर, पुनः बजट तैयार नहीं करना पड़ता है।

3.13 बोध प्रश्न

1. बजटरी नियंत्रण के उद्देश्यों एवं उपयोगों को समझाइये।
2. नियोजन, नियंत्रण तथा समन्वय के क्षेत्र में बजटरी नियंत्रण के महत्व की समीक्षा कीजिये।
3. "बजटरी नियंत्रण नियोजन में सुधार लाता है, समन्वय में मदद करता है तथा नियंत्रण में

NMDC-129

सहायक होता है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

4. एक प्रबंधक के रूप में, बजटरी नियंत्रण की प्रक्रिया आप किस प्रकार से अपनायेंगें ?

5. आपको एक बजटरी नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार करना है। आप इसका क्या प्रारूप अपनायेंगे?

6. प्रबंधक के रूप में आप को बजटरी नियंत्रण की क्या उपयोगिता है, वर्णन कीजिए।

7. प्रबन्धकों के हाथों, बजटरी नियंत्रण किस प्रकार से नियंत्रण के लिये एक प्रभावकारी तकनीक है।

8. बजटरी नियंत्रण की सीमाओं का उल्लेख कीजिये।

9. एक प्रबंधक के रूप में, बजटरी नियंत्रण की सफलता के लिये आप क्या कदम उठायेंगे?

इकाई - 4 पूँजी बजटिंग

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पूँजी बजटिंग का अर्थ

4.3 पूँजी बजटिंग के उद्देश्य

4.4 पूँजी बजट तथा अन्य बजटों में अन्तर

4.5 पूँजी बजट के प्रकार

4.6 पूँजी बजटिंग का निर्माण

4.7 पूँजी बजटिंग की प्रविधि

4.8 पूँजी विनियोग के मूल्यांकन की तकनीक

4.8.1 तुलनात्मक लागत विधि

4.8.2 अपरिहार्यता विधि

4.8.3 कुल आय पद्धति विधि

4.8.4 औसत आय विधि

4.8.5 अदायगी अवधि विधि

4.8.6 असमायोजित प्रत्याय दर विधि

4.8.7 शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

4.8.8 आन्तरिक प्रत्याय दर विधि

4.9 पूँजी व्यय निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक

4.10 पूँजी बजटिंग का महत्व

4.11 पूँजी बजटिंग की सीमायें

4.12 सारांश

4.13 शब्दावली

NMDC-129

4.14 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- पूँजी बजटिंग का अर्थ एवं उसके उद्देश्य ज्ञात होंगे,
- पूँजी बजट के प्रकार तथा इसका अन्य बजटों से अन्तर की जानकारी होगी,
- पूँजी बजटिंग निर्माण की विधियाँ ज्ञात होंगी,
- पूँजी विनियोग के मूल्यांकन की तकनीक की जानकारी होगी,
- पूँजी व्यय निमार्ण को प्रभावित करने वाले कारक ज्ञात होंगे, तथा
- पूँजी बजटिंग का महत्व एवं सीमायें ज्ञात होंगी।

4.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में दो प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन व्यय । दीर्घकालीन व्यय संस्था की स्थायी सम्पत्तियों के विनियोग के लिये किया जाता है और इसमें बड़ी मात्रा में पूँजी लगानी पड़ती है। बड़े आकार के व्यावसायिक संस्था के प्रबन्धकों के समक्ष निर्णय लेने की यह एक महत्वपूर्ण समस्या है कि पूँजी व्यय कितना किया जाय, कहाँ किया जाय, कब किया जाय, क्यों किया जाय, तथा किसके द्वारा किया जाय। इस सम्बन्ध में जो बजट तैयार किया जाता है। उसे ही पूँजी बजटिंग कहते हैं। वास्तव में, संस्था की सफलता व असफलता सही प्रकार से पूँजी बजटिंग पर निर्भर करती हैं। प्रबन्धक को, इस सम्बन्ध में, पूँजी परियोजना भी तैयार करनी चाहिए।उसे विभिन्न परियोजनाओं की लाभदायकता का सुचारू ढंग से मूल्यांकन करना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यांकन की कई तकनीक उपलब्ध हैं। उन्हीं के माध्यम से, किसी उपयुक्त परियोजना का चुनाव कियाय जाना चाहिए। वास्तव में पूँजी बजटिंग में परियोजनाओं का मूल्यांकन, नियोजन, क्रियान्वयन और नियंत्रण समाहित हैं।

4.2 पूँजी बजटिंग का अर्थ

पूँजी बजटिंग का तात्पर्य संस्था की दीर्घकालीन या स्थिर पूँजी के इस प्रकार से विनियोजन से है कि उनसे प्राप्त होने वाली आय अधिकतम हो जाये। यह संस्था की दीर्घकालीन लाभदायकता को अधिकतम करने में सहायक है।पूँजी बजटिंग की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

आर. एम. लिम्स के शब्दों में, "पूँजी बजटिंग में संस्था की दीर्घकालीन लाभप्रदता (विनियोग पर प्रत्याय) को अधिकतम करने के उद्देश्य से उपलब्ध पूँजी के विस्तार का नियोजन सम्मिलित है।"

आई. एम. पाण्डेय के अनुसार, "बजटिंग निर्णय भावी लाभों के सम्भावित प्रवाह की प्रत्याशा में संस्था द्वारा अपने चालू कोषों को दीर्घकालीन क्रियाओं में कुशलतापूर्वक विनियोजित करने के निर्णय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

इस परिभाषा के निर्णयन पहलू पर विशेष जोर दिया गया है। इस में यह बात भी स्पष्ट रूप से बता दी गई है कि इस प्रकार के बजटों का सम्बन्ध दीर्घकालीन विनियोगों से है।

इन परिभाषाओं के आधार पर, पूँजी व्यय बजटिंग की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

1. पूँजी व्यय बजटिंग और पूंजी बजटिंग एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं।

2. संस्था की पूँजी के दीर्घकालीन विनियोजन से इसका सम्बन्ध रहता है। इसके अन्तर्गत, इस बात का अध्ययन नहीं किया जाता है कि पूँजी प्राप्त करने के लिए किन-किन साधनों की व्यवस्था आवश्यक है और उन्हें किस प्रकार से एकत्रित किया जाय। उनके विनियोजनों सम्बन्धी पहलू पर ध्यान इस बजट के द्वारा केन्द्रित होता है।

3. पूँजी बजटिंग का उद्देश्य दीर्घकालीन लाभप्रदता को अधिकतम करना है।

4. यह एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत उन परियोजनाओं में धन विनियोग करने या न करने का निर्णय लिया जाता है जिनकी लागतें व लाभ दीर्घ काल तक प्राप्त होते रहें। यह मुख्यतया निर्णयन से सम्बन्धित है।

इस प्रकार, "पूँजी व्यय बजटिंग या पूँजी बजटिंग संस्थान की दीर्घकालीन लाभोपार्जन क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से संस्था के दीर्घकालीन विनियोग के अन्तिम निर्णय के आधार पर बजट तैयार करने की प्रक्रिया है।"

4.3 पूँजी बजटिंग के उद्देश्य

कोई भी व्यावसायिक संस्था पूँजी बजटिंग को अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये तैयार करता है। इसके कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. **पूँजी व्ययों का नियोजन** - पूँजी व्यय बजटिंग की सहायता से विभिन्न पूँजी व्ययों के करने की व्यवस्था का पूर्वानुमान क्रमबद्ध नीति से प्रस्तुत किया जाता है। इस बजट की सहायता से स्थायी सम्पत्तियों पर किये जाने वाले व्ययों का पूर्ण नियोजन सम्भव हैं।

NMDC-129

2. **प्राथमिकतायें निर्धारित करना** - विभिन्न परियोजनाओं को उनकी लाभदायकता के अनुसार विन्यासित करना भी पूँजी व्यय बजटिंग का उद्देश्य है। विभिन्न वैकल्पिक परियोजनाओं का मूल्यांकन विभिन्न पूँजी बजटिंग प्रविधियों की सहायता से किया जाता है और इसी के आधार पर प्राथमिकतायें निश्चित होती हैं।

3. **पूँजी व्ययों के लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था** - पूँजी व्यय बजटिंग के द्वारा विभिन्न पूँजी व्ययों की पूर्व जानकारी मिल जाती है और उसी के अनुसार उन व्ययों को करने हेतु आवश्यक वित्त व्यवस्था भी की जाती है।

4. **पूँजी व्ययों में समन्वय** - बिना पूँजी व्ययों के पूर्वानुमान के विभिन्न परियोजनाओं पर किये जाने वाले व्ययों व उनके पूरा करने का कार्यक्रय संतुलित ढंग से पूरा नहीं किया जा सकता है।एक समन्वित पूँजी व्ययों की योजना के लिए पूँजी व्यय बजट का निर्माण अति उपयोगी है।

5. **प्रस्तावित पूँजी व्ययों का मूल्यांकन** - पूँजी व्यय निर्णयन की प्रक्रिया का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इससे प्रस्तावित पूंजी व्ययों की उपादेयता व लाभदायकता निश्चित होती है।

6. **लिए गये निर्णयों की प्रभावोत्पादकता का परीक्षण करना** - भूतकालीन पूंजी व्यय निर्णयों की प्रभावपूर्णता का परीक्षण भी पूँजी बजटिंग की सहायता से सम्भव है। इस प्रक्रिया की सहायता से जाना जा सकता है कि भूतकालीन निर्णय किस सीमा तक उपयोगी व लाभदायक रहे।

7. **पूँजी व्ययों पर नियंत्रण** - वास्तविक पूँजी व्ययों की पूर्व निर्धारित पूँजी बजट में दी गयी व्ययों से तुलना करके इन पर प्रभावकारी नियंत्रण रखा जा सकता है। संस्था के विभिन्न विभागों द्वारा किये गये पूँजी व्ययों का भी नियंत्रण इस प्रविधि के द्वारा आसानी से सम्भव है।

4.4 पूँजी बजट तथा अन्य बजटों में अन्तर

प्रत्येक व्यवसायिक संस्था, आवश्यकतानुसार कई प्रकार के बजट तैयार करती है। पूँजी बजट अन्य बजटों से कई प्रकार से भिन्न है। वास्तव में पूँजी बजट के तैयार करने में अधिक सावधानी तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है। क्योंकि यह दीर्घकाल के लिये तैयार किया जाता है। पूँजी बजट तथा अन्य बजटों में निम्नलिखित प्रमुख अन्तर हैं :

1. पूँजी व्यय बजट में प्रायः लाभ - हानि खाते में दिखाई जाने वाली मदों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अन्य बजटों में दिखाई जाने वाली मदें, सामान्यतया, लाभ-हानि खाते से सम्बन्धित होती हैं।

2. पूँजी व्यय बजट अन्य बजटों की तुलना में दीर्घकालीन घटकों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है।

3. पूँजी व्यय बजट का नियोजन अपेक्षाकृत ज्यादा अवधि (पाँच या दस वर्ष) के लिए होता है। यद्यपि इनका उपविभाजन साधनों की उपलब्धता व क्रय की प्राथमिकता के अनुसार एक वर्षीय बजटों में होता है। अन्य बजट संस्थान के एक वार्षिक कार्यक्रम को अभिव्यक्त करते हैं।

4. पूँजी व्यय बजट के निर्माण में प्रबन्धकीय निर्णय की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। पूँजी व्यय निर्णयों के लिए मूल्यांकन की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। अन्य बजट निर्णय प्रधान नहीं होते हैं।

4.5 पूँजी बजट के प्रकार

व्यावसायिक संस्थाओं के द्वारा पूँजी बजट कई प्रकार से तैयार किये जा सकते हैं। किन्तु उनके वर्गीकरण का कुछ आधार होना चाहिए। इन बजटों का वर्गीकरण निम्नलिखित दो आधार पर किया जा सकता है :

(अ) समय के आधार पर, तथा

(ब) प्रत्याय मापन के आधार पर

(अ) समय के आधार पर

इसमें पूँजी व्यय बजटों को निम्नलिखित दो वर्गों में रखा जा सकता है -

(1) दीर्घकालीन पूँजी व्यय बजट - प्रबन्धकों के व्यवसाय के सम्बन्ध में भावी कार्यक्रम की रूपरेखा इस बजट में प्राप्त होती है। इस बजट की अवधि सामान्यतया 5 से 10 वर्ष तक होती है। यद्यपि ये बजट इससे भी ज्यादा अवधि के लिए तैयार किए जाते हैं परन्तु इतनी लम्बी अवधि के लिए इन बजटों पर प्रभाव डालने वाले घटकों का सही पूर्वानुमान सम्भव नहीं हो पाता हैं । दीर्घकालीन पूँजी व्यय बजटों में बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार निरन्तर संशोधन होते रहते हैं और इस बजट में पर्याप्त मात्रा में लोच पायी जाती है।

(2) अल्पकालीन पूँजी व्यय बजट - इस बजट का निर्माण दीर्घकालीन पूँजी व्यय बजटों के क्रियान्वयन के लिए होता है। इसकी अवधि सामान्यतया एक वर्ष होती है। अल्पकालीन पूँजी बजट का निर्माण परियोजनाओं की प्राथमिक निर्णय व उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर होता है। इससे प्रबन्धकों द्वारा दिखाये गये अनुमान ज्यादा शुद्ध रहते हैं, इसलिए उनमें परिवर्तन की बहुत कम सम्भावना पायी जाती है।

(ब) प्रत्याय मापन के आधार पर - इस आधार के अन्तर्गत विनियोग करने से होने वाले लाभों को मापने की योग्यता को ध्यान में रखा जाता है। पूँजी व्यय बजट का निर्माण इस आधार पर निम्नलिखित दो रूपों में हो सकता है :

NMDC-129

(1) मापने योग्य प्रत्याय वाले पूँजी व्यय बजट - ऐसे बजटों के अन्तर्गत शामिल की जाने वाली परियोजनाओं में किये गये विनियोगों की लाभदायकता को मापा जा सकता है। ऐसे बजट निम्नलिखित हो सकते हैंः

(क) संवर्द्धन पूँजी व्यय बजट - इस बजट में चालू व्यवसाय के विस्तार की विभिन्न परियोजनाओं को सम्मिलित किया जाता है। छोटे एवं कम लागत वाली परियोजनाओं को वार्षिक पूँजी खर्च बजट में दिखलाया जा सकता है। इन नई परियोजनाओं में सामान्यतया मशीन या भवन का क्रय, भवनों या मशीनों का विस्तार, किसी अन्य व्यवसाय का संविलयन तथा एक साथ बड़े पैमाने पर विज्ञापन आदि सम्मिलित हैं। ऐसे बजट तैयार करने के पूर्व परियोजनाओं के लिए प्रबन्धक को काफी सोच विचार कर लागत एवं लाभ में सम्बन्ध स्थापित करते हुए उपयुक्त निर्णय लेना पड़ता है।

(ख) पुनर्स्थापन पूँजी व्यय बजट - विद्यमान पूँजीगत सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के लिए प्रबन्धकों को पुनर्स्थापन के विभिन्न विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प का चुनाव परियोजना मूल्यांकन की तकनीकों के आधार पर करना पड़ता है। पुनर्स्थापन के निर्णय के लिए नई मशीन की लागत व उससे मिलने वाले लाभ की तुलना वर्तमान मशीन के व्यय और उससे मिलने वाले लाभों से करनी पड़ती है। पूर्णतया निष्क्रिय मशीन का प्रतिस्थापन यथासम्भव जल्द ही कर लेना चाहिए।

(ग) वार्षिक पूँजी व्यय बजट - इसका निर्माण कम मूल्य वाले स्थायी सम्पत्तियों के संवर्द्धन व प्रतिस्थापन के लिए किया जाता है। इस बजट को तैयार करने में भी विभिन्न विकल्पों में प्राथमिकता का निर्धारण कर लेना चाहिए। वास्तव में प्रतिस्थापन पूँजी व्यय बजट और संवर्द्धन पूँजी व्यय बजट का क्रियान्वयन इसी बजट के माध्यम से होता है।

(2) न मापने योग्य प्रत्याय वाले पूँजी व्यय बजट - ऐसे पूँजी व्यय बजट, जिसमें सम्मिलित परियोजनाओं में किये जाने वाले विनियोग से उत्पन्न लाभों का अनुमान प्रत्यक्ष रूप से लगाना सम्भव नहीं है, को न मापने योग्य प्रत्याय वाले पूँजी बजट मानते हैं। ऐसे बजट निम्नलिखित हैं :

(क) कल्याण पूँजी व्यय बजट - श्रम व समाज के कल्याण के लिए किया गया दीर्घकालीन विनियोग इसी बजट के द्वारा पूर्वानुमानित किया जाता है। इनमें विनियोग करना प्रबन्धकों की दूरदर्शिता का प्रमाण है। इससे दीर्घकाल में श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि होने से अधिक उत्पादन और अधिक लाभ की अभिप्राप्ति हो जाती है। श्रमिकों के लिए आवास, यातायात, जलपान, खेलकूद, एवं मनोरंजन की सुविधा प्रदान करने वाली परियोजनाएं और समाज के लिए उद्यानों, चिकित्सालयों व विद्यालयों की सुविधा प्रदान करने वाली परियोजनायें इस बजट में सम्मिलित की जाती हैं।

(ख) प्रारम्भिक पूँजी व्यय बजट - एक संस्थान को स्थापित करते समय एक प्रारम्भिक पूँजीव्यय प्रतिवेदन को तैयार करना पड़ता है। इस प्रतिवेदन में सिविल वर्क्स, विद्युत कार्य, प्लांट, मशीन उपकरण, कार्यशील पूँजी व संस्थान को स्थापित करने में किये जाने वाले प्रारम्भिक व्ययों का

ब्यौरा रहता है। इस बजट में पूँजी व्यय को करने के लिए वित्तीय साधनों की प्राप्ति को भी दर्शाया जाता है। पूँजी व्यय का कितना भाग अंश निर्गमन, ऋणपत्र निर्गमन, वित्तीय संस्थाओं एवं बैंक से दीर्घकालीन ऋण द्वारा प्राप्त किया जायेगा, इसका निश्चयन प्रबन्ध ही करता है। इन प्रारम्भिक पूँजी व्ययों की लाभदायकता के बारे में उपयुक्त रीति से माप सम्भव नहीं है।

(ग) शोध एवं विकास बजट - व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में अनेक प्रकार के अनुसंधान किये जाते हैं और उन पर व्यय होता है। उत्पादन कि किस्म को सुधारने के लिए वस्तु की माँग को बढ़ाने के लिए और प्रतिस्पर्धा के कारण माँग गिरने से रोकने के लिए सतत् शोध कार्य द्वारा नये आकार प्रकार, मॉडल व डिजाइन की वस्तुओं को बाजार में प्रस्तुत करके संस्थान की दीर्घकालीन लाभोत्पादकता बढ़ायी जा सकती है। बाजार अनुसन्धान और उत्पादन शोध के लिए किये जाने वाले विनियोगों की संस्थान की वर्तमान लाभदायकता से तुलना की जा सकती है।

(4) प्रस्थिति पूँजी व्यय बजट - बड़े व्यावसायिक संस्थानों द्वारा भव्य प्रशासनिक भवनों का निर्माण, भव्य अतिथि गृह की व्यवस्था और आलीशान विक्रय विभागों की स्थापना द्वारा ग्राहकों की दृष्टि में व्यवसाय की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए विनियोग किया जाता है। इस प्रकार के पूँजीगत व्ययों से व्यवसाय को कब और कितना लाभ मिलेगा, यह निश्चित करना कठिन कार्य है।

4.6 पूँजी बजटिंग का निर्माण

पूँजी बजटिंग के निर्माण करते समय निम्नलिखित दो प्रमुख समस्याओं पर विचार करना आवश्यक है :

(अ) चयन की समस्या, तथा

(ब) विनियोग क्रम निर्धारण की समस्या

(अ) चयन की समस्या – सबसे पहले प्रबन्धक को विभिन्न परियोजनाओं के सम्बन्ध में यह निश्चित करना पड़ता है कि किन परियोजनाओं में विनियोग किया जाय और किन परियोजनाओं में विनियोग नहीं करना चाहिए। जहाँ कई परियोजनाएं होती हैं और प्रबन्धक को व्यवसाय की आवश्यकताओं के अनुरूप केवल कुछ परियोजनाओं पर ही कार्य करना है तो इसके लिए वह उन परियोजनाओं की लाभदायकता का मूल्याँकन करके केवल लाभदायक एवं उपयोगी परियोजनाओं को विनियोग के लिए चुन लेता है।

(ब) विनियोग क्रम निर्धारण की समस्या - जब उन परियोजनाओं को चुन लिया जाता है जिन्हें व्यवसाय में कार्यान्वित करना है, तो उनमें प्राथमिकता क्रम का निर्धारण भी कर लेना चाहिए। इससे विनियोग करते समय उत्पन्न समस्या का समाधान हो जाता है। आवश्यक योजनाओं को सबसे पहले कार्यान्वित किया जाता है और अन्य परियोजनाओं का क्रम इसी के आधार पर निश्चित किया जाता है।

NMDC-129

4.7 पूँजी बजटिंग की प्रविधि

पूँजी बजट तैयार करने की कोई सर्वमान्य या सर्वस्वीकृत विधि नहीं है। व्यावसायिक संस्थायें अपनी, आवश्यकतानुसार इसे अलग अलग ढंग से तैयार करती हैं। बजट अधिकारी को पूंजी बजट तैयार करने के लिए,सामान्यतया निम्नलिखित कदम उठाने पड़ते हैं:

(1) विनियोग प्रस्तावों की प्राप्ति - विनियोग प्रस्तावों का उद्भव प्रत्येक विभाग से होता है। विभागों के प्रमुख अधिकारी अपनी पूँजीगत आवश्यकताओं का संक्षिप्त ब्यौरा विनियोग प्रस्तावों के माध्यम से बजट अधिकारी के पास पहुँचाते हैं । विभागाध्यक्ष को इन प्रस्तावों में प्रस्ताव की लागत के अतिरिक्त, उनके वैकल्पिक परियोजनाओं, उनसे प्राप्त होने वाला प्रत्याय और उस प्रस्ताव के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था के बारे में अपने विचार सम्मिलित कर लेना चाहिए।

(2) बजट समिति द्वारा प्रस्तावों की जाँच - विभिन्न विभागों द्वारा भेजे गये विनियोग प्रस्तावों के समन्वय का कार्य बजट समिति करती है। बजट समिति प्रत्येक विभाग द्वारा भेजे गये विनियोग प्रस्तावों पर विचार करती है। उनकी दीर्घकालीन उपयोगिता व संस्था की वर्तमान लाभार्जन क्षमता पर पड़ने वाले उनके प्रभावों को ध्यान में रखते हुए उन प्रस्तावों को प्रारम्भिक स्वीकृति देती है। विभिन्न विभागों द्वारा भेजे गये विनियोग प्रस्तावों में यदि कोई विरोध हो तो उनमें समन्वय स्थापित करने का कार्य भी बजट समिति को करना पड़ता है। जैसे - विक्रय विभाग और उत्पादन विभाग के बीच की खाली पड़ी भूमि के उपयोग करने का प्रस्ताव दोनों विभागों द्वारा बजट समिति के पास प्राप्त होने पर समिति को उनकी तुलनात्मक उपयोगिता के आधार पर एक समन्वित व उपयुक्त निर्णय लेना पड़ता है।

(3) परियोजनाओं का मूल्यॉंकन और चयन - प्रस्तावों को चुनने के लिए सभी विनियोग प्रस्तावों का आर्थिक मूल्यांकन परियोजना की लागत तथा उससे प्रत्याशित आय के आधार पर किया जाता है। इस हेतु मूल्यांकन की विभिन्न तकनीकों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है। अनार्थिक एवं अलाभदायक विनियोग प्रस्तावों को छोड़कर शेष परियोजनाओं के प्राथमिकता क्रम का भी निर्धारण इन्हीं तकनीकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। संस्था के वित्तीय साधनों को ध्यान में रखते हुए परियोजनाओं को निम्नलिखित क्रम से पूरा किया जाता है - (क) चालू और अपूर्ण विनियोग प्रस्ताव (ख) वैधानिक रूप से आवश्यक परियोजनाएँ (ग) सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक विनियोग योजनाएँ (घ) प्रतिस्थापन के दृष्टिकोण से आवश्यक परियोजनाएँ और (ङ) नये विनियोग प्रस्ताव जो विक्रय अभिवृद्धि व वस्तु की लागत कम करने के सम्बन्ध मे हों।

(4) अन्तिम स्वीकृति - बजट समिति द्वारा चयन की गयी परियोजनाओं को उनके प्राथमिकता क्रम में व्यवस्थित करके उन्हें संचालक मण्डल के समक्ष अन्तिम स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संचालक मण्डल प्रत्येक विनियोग प्रस्ताव की अनिवार्यता, लाभप्रदता तथा उपलब्ध वित्तीय साधनों को ध्यान में रखकर अपनी स्वीकृति परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए देता है।

(5) पूँजी व्यय बजट का निर्माण - संचालक मण्डल के द्वारा विनियोग प्रस्तावों पर अन्तिम स्वीकृति मिलने के बाद बजट समिति द्वारा पूँजीगत विनियोग में प्रस्तावों को नियोजित रूप देने के लिये, पूँजी व्यय बजट का निर्माण किया जाता है । कोषों के नियोजन की दीर्घकालीन योजना को वार्षिक पूँजी व्यय बजट में वर्ष विशेष के वित्तीय साधनों को ध्यान में रखकर व्यवस्थित कर लिया जाता है।

(6) परियोजना का क्रियान्वयन - किसी विनियोग प्रस्ताव के क्रियान्वयन के लिए विभिन्न विभागाध्यक्षों को अनुबन्ध करने का अधिकार व व्यय करने की अधिकृत सीमा निश्चित करनी पड़ती है। इससे परियोजनाओं के क्रियान्वयन में अनावश्यक रूप से देरी नहीं होती है और छोटी व्ययों को करने का अधिकार निम्न स्तर के उत्तरदायी अधिकारियों को निर्धारित सीमा के अधीन प्रदान हो जाता है। व्यय अधिकृतिकरण योजना से अधिकारों का विकेन्द्रीकरण भी होता है।

(7) परियोजना का नियन्त्रण - पूँजी व्यय बजट को क्रियान्वित करने के बाद उच्च प्रबन्ध को अब यह भी देखना चाहिए कि परियोजना पर किये जाने वाले व्यय बजट अधिकृति की सीमाओं के अन्दर किये जा रहे हैं अथवा नहीं। इसके लिए पूँजी व्यय बजट के प्रस्तावित व्ययों का मिलान वास्तविक व्ययों से किया जाता है। अन्तर की मात्रा निश्चित करके अन्तर के कारणों का पता लगाना चाहिए और उसी के आधार पर बजट में अगले वर्ष के लिए आवश्यक संशोधन कर लिये जाते हैं। मासिक प्रतिवेदनों की तैयारी द्वारा पूँजी व्यय बजटिंग का प्रभावपूर्ण नियन्त्रण सम्भव है। यह प्रतिवेदन पूँजी व्यय बजट की तरह ही तैयार किया जाता है। अवधि में वर्ष के स्थान पर माह को प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

4.8 पूँजी विनियोगों के मूल्यांकन की तकनीक

पूँजी बजट तैयार करने के लिये प्रबन्धक प्रायोजनायें तैयार करता है। प्रयोजनाओं की प्राथमिकता निश्चित करने के लिए, वह संस्था उन प्रयोजनाओं की लाभदायकता का मूल्यांकन करती है। सामान्यतया छोटी संस्थायें किसी एक प्रविधि का चुनाव करती हैं जबकि बड़े आकार की संस्थायें एक या उससे अधिक प्रविधि को अपनाती हैं।

व्यवहार में, इन प्रायोजनाओं के मूल्यांकन के लिए विभिन्न संस्थायें निम्नलिखित तकनीकें प्रयोग में लाती हैं :

(1) तुलनात्मक लागत पद्धति

(2) अपरिहार्यता रीति

(3) कुल आय पद्धति

(4) औसत आय विधि

NMDC-129

(5) अदायगी अवधि विधि

(6) असमायोजित प्रत्याय दर रीति

(7) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

(8) आन्तरिक प्रत्याय दर विधि

(1) तुलनात्मक लागत पद्धति - यह पद्धति बहुत ही आसान है और छोटी संस्थाओं में इसका प्रयोग संस्था के अधिकारी बिना किसी विश्लेषण व मूल्यांकन के करते रहते हैं। इसमें विभिन्न प्रस्तावित परियोनाओं की प्रारम्भिक लागत का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। अन्य बातें समान होने पर, जिस परियोजना की लागत सबसे कम होगी उसी को पूँजी बजट में क्रियान्वयन के लिए सम्मिलित कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए, दो समान पूँजी परियोजनाओं की प्रारम्भिक लागत 1,50,000 रू. और 1,75,000 रू. है तो 1,50,000 रूपये वाली पूँजी परियोजना का चुनाव करके उसे पूँजी बजट में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस पद्धति का बहुत ही सीमित प्रयोग है और केवल उन्हीं पूँजी परियोजनाओं के लिए प्रयोग की जा सकती है जो बराबर कार्यक्षमता, समान लाभदायकता व बराबर जीवन काल की हो।

(2) अपरिहार्यता रीति - संस्था में कई बार पूँजी व्यय निर्णय पूर्व निश्चित योजना के आधार पर न लिए जा कर उस परियोजना की अपरिहार्यता के आधार पर लिये जाते हैं। आवश्यक परियोजनाएं बिना उसकी लागत व प्रत्याय को ध्यान मे रखे अधिकारियों द्वारा पूँजी व्यय बजट में सम्मिलित कर ली जाती है। जहाँ परियोजना के आर्थिक पहलू पर विचार नहीं किया जाता है बल्कि उसके क्रियान्वयन की अनिवार्यता या अपरिहार्यता पर विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए बिजली गिरने से ऑफिस का कुछ हिस्सा धराशायी हो गया। इस परियोजना का क्रियान्वयन बिना उसकी लाभदायकता पर विचार किये अनिवार्यता के आधार पर लागू किया जाता है। यहाँ पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार निर्णय लेना हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस रीति के निम्नलिखित गुण हैं :

(अ) यह रीति अत्यन्त सरल है

(ब) श्रम कानूनों के अन्तर्गत आवश्यक पूँजी व्यय निर्णयों के सम्बन्ध में अपरिहार्यता उचित कही जा सकती है।

(स) जहाँ परियोजनाओं का उपयुक्त ढंग से आर्थिक मूल्यांकन सम्भव नहीं है, वहाँ यही पद्धति प्रयोग होती है।

इस पद्धति की निम्नलिखित सीमायें हैं :

(अ) अधिक विनियोग एवं दीर्घकालीन अवधि की परियोजनाओं के लिए यह विधि निर्णय का आधार नहीं हो सकती है।

(ब) अपरिहार्यता के आधार पर निकाले गये निर्णय वैज्ञानिक नहीं होते और इनके ठीक रहने की सम्भावना कम रहती है।

(स) इस विधि के आधार पर निर्णय लेने में विभिन्न अधिकारियों द्वारा अपनी परियोजनाओं को स्वीकृत कराने के लिए प्रबन्ध की चापलूसी करने की सम्भावना बढ़ जाती है । इसमें उच्च अधिकारियों में आपसी संघर्ष की सम्भावना बढ़ जाती है।

(द) यदि कोई परियोजना स्थगित हो सकती है तो उसके लिए यह रीति ज्यादा उपयुक्त नही है।

3. **कुल आय पद्धति -** इस विधि में प्रत्येक वैकल्पिक परियोजना से होने वाले प्राप्त लाभ का परियोजना लागत के साथ प्रतिशत निकाल लिया जाता है। जिस परियोजना के लिए यह प्रतिशत ज्यादा होता है उसी क्रियान्वयन के लिए चुन लिया जाता है। यहाँ लाभ का आशय उस परियोजना के जीवन काल में होने वाली एकत्रित कुल लाभ की मात्रा से है। उदाहरण के लिए, परियोजना एक की पूँजी लागत 60,000 रू. है और परियोजना दो की पूँजी लागत 25,000 रू. और प्रत्याशित कुल लाभ 35,000 रू. है। दोनों परियोजनाओं की कुल आय प्रतिशत दर 100 प्रतिशत और 140 प्रतिशत है। अतः, परियोजना दो की कुल आय ज्यादा है और इसका क्रियान्वयन करना चाहिए। इस पद्धति के निम्नलिखित गुण हैं :

(अ) इस पद्धति में परियोजना की लाभदायक पर विचार किया जाता है।

(ब) यह पद्धति पूँजी लागत से लाभ की तुलना सापेक्ष रूप में करती है।

(स) इसमें समय तत्व पर विचार नहीं किया जाता है। समय के वर्तमान मूल्य को ध्यान में रखे बिना लाभ और पूँजी की तुलना की जाती है।

इस पद्धति की निम्नलिखित सीमायें हैं :

(अ) इसमें समय तत्व पर विचार नहीं कियाय जाता है। समय के वर्तमान मूल्य को ध्यान में रखे बिना लाभ और पूँजी की तुलना की जाती है।

(ब) यह पद्धति वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण नहीं है।

4. **औसत आय विधि** - यह पद्धति कुल आय विधि से मिलती जुलती है। यहाँ पूँजी लागत से कुल आय के स्थान पर औसत आय की तुलना की जाती है। औसत आय का पूँजी लागत से जो प्रतिशत होता है उसी के आधार पर अधिक लाभदायक परियोजना चुन लिया जाता है।इस पद्धति के द्वारा ज्ञात की हुई प्रत्याय दर अपेक्षाकृत कम रहती है क्योंकि इसमें परियोजना के द्वारा वर्तमान अर्जित लाभ दर को ध्यान में न रखकर उसका औसत निश्चित किया जाता है।

5. **अदायगी अवधि विधि -** यह पद्धति परियोजना के प्रारम्भिक विनियोग को पुर्न प्राप्त करने की अवधि को व्यक्त करती है। इसके लिए विनियोग की लागत को ह्रास के पूर्व और कर के पश्चात बचत की वार्षिक लागत अथवा अतिरिक्त अर्जन से विभाजित किया जाता है। सूत्र के रूप में

NMDC-123

$$अदायगी\ अवधि = \frac{प्रारम्भिक\ विनियोग}{शुद्ध\ वार्षिक\ रोकड़\ अन्तर्वाह}$$

$$Pay - back = \frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflow}$$

इस अवधि को रोकड़ वसूली अवधि, पुनर्प्राप्ति अवधि आदि के नाम से भी जाना जाता है। प्रारम्भिक विनियोग की राशि ज्ञात करने के लिए सभी रोकड़ बहिर्वाहों को ध्यान में रखा जाता है। नयी परियोजना की प्रारम्भिक लागत निश्चित करने के लिए सम्पत्ति का बीजक मूल्य, लाने का भाड़ा तथा स्थापना व्यय जोड़ लिया जाता है। सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए गैरेज का निर्माण व उसकी मरम्मत व अनुरक्षण के लिए कार्यशील पूंजी को प्रारम्भिक विनियोग में सम्मिलित कर लिया जाता है। प्रतिस्थापना परियोजनाओं में प्रारम्भिक लागत में से पुरानी सम्पत्ति का निस्तारण मूल्य कम कर दिया जाता है।

परियोजना पर विनियोजन राशि ज्ञात करने के उपरान्त उस विनियोग से प्राप्त होने वाली भावी रोकड़ आय का पता लगाया जाता है। पूँजी व्यय विश्लेषण, भावी रोकड़ आय का अनुमान लगाने के बाद किया जाता है। इस आय को ज्ञात करने के लिए प्रायः एक विवरण बनाया जाता है, जिसे वार्षिक शुद्ध रोकड़ प्रवाह विवरण कहते हैं। इसका प्रारूप इस प्रकार है -

Statement Showing Net Annual Cash Flow

Sales	**Rs.**
Less: Operating Expenses	
Less: Depreciation	
Income before Tax	
Less: Income Tax	
Income after Tax	
Add: Depreciation	
Net Annual cash inflow.	

उदाहरण - 1

अ. ब. कं. की दो परियोजनाओं के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ निम्नलिखित हैं :

	Project X	**Project Y**
Cost of Machine (Rs)	60,000	1,00,00
Estimated Life (Years)	20	24
Estimated Saving in scrap (p.a.Rs)	4,000	6,000
Additional cost of supervision(p.a.Rs)	4,800	6,400
Additional cost of maintenance(p.a.Rs)	2,800	4,400

Cost of Indirect Materials (p.a.Rs.)	2,400	3,200
Estimate of Saving in Wages (p.a.)		
(a) Wages per worker (p.a.Rs)	240	240
(b) No.of workers not required	15	20

अदायगी अवधि की गणना कीजिए और बताइये कि कौन सी परियोजना उपयुक्त है। कर को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं है।

हल,

Statement of Annual Operating Savings

Particulars	**Project X**	**Project Y**
(a) Estimating Savings		
(i) Scrap	4,000	6,000
(ii) Wages	36,000	48,000
	40,000	54,000
(b) Estimated Additional costs		
(i) Cost of supervision	4,800	6,400
(ii) Cost of Maintenance	2,800	4,400
(iii) Indirect Materials	2,400	3,200
	10,000	14,000
(c) Annual Operating Savings	**30,000**	**40,00**

$$Pay-back\,period = \frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflow} \quad \frac{60,000}{30,000} \quad \frac{1,00,000}{40,000}$$

= 2 years = 2.5 years

प्रायोजना x अधिक उपयुक्त है और इसको अपनाया जा सकता है।

रोकड़ अन्तर्वाहों की असमानता - वार्षिक बचत की रकम प्रत्येक आने वाले वर्ष में एक समान नहीं होती है। ऐसी स्थिति में अदायगी अवधि की गणना के लिए संचयी रोकड़ अन्तर्वाह के द्वारा अन्तर्वेशन की सहायता से की जा सकती है।। संचयी रोकड़ अन्तर्वाहों को ज्ञात करने के लिए पहले वर्ष की रोकड़ आय को दूसरे वर्ष की आय में जोड़कर दूसरे वर्ष की संचयी रोकड़ आय ज्ञात कर लेते हैं। इस संचयी राशि में तीसरे वर्ष की रोकड़ आय जोड़कर उस वर्ष की संचयी रोकड़ अन्तर्वाह ज्ञात कर लेते हैं। यह क्रम आगे आने वाले वर्षों में भी चलता रहता है। इस संचित राशि की तुलना विनियोग से की जाती है। और जब यह संचित राशि विनियोग के बराबर हो जाती है तो यही अदायगी अवधि कहलाती है। यदि वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों का संचयी योग शुद्ध विनियोग से पूर्ण संख्या में बराबर नहीं होता है तो अन्तर्वेशन के सूत्रों का प्रयोग कर अदायगी अवधि माहों और दिनों में ज्ञात कर ली जाती है। ऐसी स्थिति में आधारभूत मान्यता यह रहती है कि रोकड़ अन्तर्वाह वर्ष विशेष के

NMDC-129

दौरान समान रूप से अर्जित होता है।

उदाहरण - 2

एक कम्पनी एक मशीन को क्रय करने का विचार कर रही है। बाजार में दो मशीनों 'एक्स' और 'वाई' उपलब्ध है। प्रत्येक की लागत 50,000 रू. है। कर के पश्चात किन्तु ह्रास के पूर्व अर्जित धनराशि इस प्रकार अपेक्षित है :

Cash Inflows

Year	Machine X	Machine Y
	Rs.	Rs
1	12,500	6,250
2	18,750	18,750
3	25,000	25,000
4	12,500	18,750
5	6,250	12,500

अदायगी अवधि विधि द्वारा दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिए।

हल,-

Computation of Pay-back Period

	Machine X (Rs. 50,000)		Machine Y (Rs. 50,000)	
year	New Inflows Cash	Cumulaltive Cash Inflows	Net Inflows Cash	Cumulative Cash Inflow
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1.	12,500	12,500	6,250	6,250
2.	18,750	31,250	18,750	25,000
3.	25,000	56,250	25,000	50,000
4.	12,500	68,750	18,750	68,650
5.	6,250	75,000	12,500	81,250

Machine X

$$Pay-back\ Period = 2\frac{Rs.50,000 - Rs.31,250}{Rs.25,000}\ years$$

= 2+3/4 = $2^{3/4}$ years

= 2 years Nine months

Machine Y

Pay-back Period = 3 years

मशीन X का क्रय किया जाना चाहिए।

अदायगी अवधि के पश्चात लाभदायकता – अदायगी अवधि में परियोजना की अदायगी अवधि के बाद की रोकड़ आय की अवहेलना की जाती है। इसलिए परियोजनाओं की अदायगी अवधि के पश्चात के शेष जीवनकाल के अर्जनों की गणना कर उनकी तुलना की जाती है। जिस परियोजना की अदायगी अवधि के पश्चात की अर्जनें सर्वाधिक होंगी उस परियोजना को सर्वोत्तम माना जायेगा।अदायगी अवधि के पश्चात की अवधि के लिये कुल अवधि में से अदायगी अवधि को घटाकर ज्ञात किया जा सकता है। इसका शुद्ध वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह से गुणा कर कुल लाभदायकता ज्ञात कर ली जाती है और आपसी लाभदायकता की तुलना द्वारा परियोजनाओं का चुनाव व प्राथमिकता निश्चयन हो सकता है। अदायगी अवधि के बाद की लाभदायकता में सम्पत्ति के अन्तिम वर्ष का रोकड़ निस्तारण मूल्य भी सम्मिलित कर लिया जाता है।

उदाहरण - 3

दो परियोजनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएँ हैं :

	A	B
Cost (Rs)	20,000	28,000
Estimated Scrap (Rs)	2,000	4,000
Life (years)	10	12
Annual Profit after Taxation (Rs)	2,000	2,400

हल -

सर्वोत्तम परियोजना का चुनाव निर्णय आधार 1. अदायगी अवधि और 2. अदायगी अवधि के पश्चात् लाभदायकता को मानते हुए कीजिए।

(1) Pay-back Method		Project A	Project B
		Rs.	Rs
Profit after Taxation	$\left|\frac{Cost - Scrap}{Life}\right|$	2,000	2,400
Add: Depreciation	(Annual)	1,800	2,000
Annual Profit after Tax but before depreciation.		3,800	4,400
Pay-back period		20,000	28,000
		= 5.3 Years	= 6.4 years
	Rank	I	II

(ii) Post pay-back profitability method

	Project A	Project B
Life	10 years	12 years

Profitable period		
(life (-) Pay back period)	4.7 years	5.6 years
Cash Inflows over the profitable period	17,860	29,040
Add- Estimated Scrap	2,000	4,000
Surplus Cash Inflows	19,860	31,040
Rank	I	I

अदायगी अवधि के पश्चात की लाभदायकता का सूचकांक - तुलना में स्पष्टता के लिए, अदायगी अवधि के बाद के लाभ को निर्देशांकों में बदल लिया जाता है। यह परिवर्तन प्रतिशत आधार पर होता है। इस हेतु निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग होता है :

उदाहरण के लिए यदि अदायगी अवधि के पश्चात का लाभ 20,000 रू. है और शुद्ध विनियोग 1,00,000 रू. है तो अदायगी के पश्चाद लाभदायकता सूचकांक 20 प्रतिशत होगा।

उदाहरण - 4

क ख ग कम्पनी लि. दो परियोजनाओं 'अ' और 'ब' पर विचार कर रही है। इस सम्बन्ध में, निम्नलिखित विवरण दिये गये :

	Project A	**Project B**
Cost (in Rs)	50,000	70,000
Annual Savings (in Rs)	8,000	12,500
Estimated Scrap (in Rs)	2,500	5,000
Economic Life in years	10	12

आयकर को ध्यान में रखे बिना, परियोजनाओं 1. अदायगी विधि 2. अदायगी अवधि के पश्चात लाभदायकता और 3. अदायगी अवधि के पश्चात लाभदायकता सूचकांक के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।

हल,

(i) Pay back period	Project A	Project B
Cost or Investment (Rs)	50,000	70,000
Annual Savings (Rs)	8,000	12,500
Investment Annual Savings		
Pay back period =	6.25 years	5.6 years
Ranking	I	I

(ii) Post Pay-back profitability

Economic life (Years)	10	12
Pay back period (years)	6.25	5.6
Surplus life in years	3.75	6.4
Post pay back profit (in Rs)	30,000	80,000
Ranking	II	I

(iii) Index number of pay-back profitability

$$\text{IndexNumber} = \frac{\text{Post Payback Project}}{\text{Invesment}} \times 100$$

	60%	114%
Rank	II	I

अदायगी अवधि व्युत्क्रम - अदायगी अवधि की गणना में लाभदायकता का माप करने के लिए प्रत्याय दर की गणना नहीं की जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें विभिन्न वर्षों की अर्जनों के समय कारक पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इस हेतु अदायगी अवधि का व्युत्क्रम निकाल लिया जाता है।

सूत्र के रूप में-

$$\text{अदायगी अवधि व्युत्क्रम} = \frac{1}{\text{अदायगी अवधि}}$$

इस रीति का तभी प्रयोग करना चाहिए जब सम्पूर्ण अवधि के लिए वार्षिक बचत एक समान हो और परियोजना का आर्थिक जीवन अदायगी अवधि का कम से कम दुगुना हो। व्युत्क्रम को जब प्रतिशत से बदल दिया जाता है। तो यह विनियोग पर समय समायोजित प्रत्याय रीति के समीप होने की प्रवृत्ति दर्शाता है। इसकी गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र का भी प्रयोग किया जाता है।

$$\text{अदायगी अवधि व्युत्क्रम } (Pay-back\ Reciprocal) = \frac{\text{वार्षिक रोकड़ प्रवाह } (Annual\ Cash\ Inflow)}{\text{शुद्ध विनियोग } (Net\ Investment)}$$

उदाहरण के लिए 40,000 रू. लागत की परियोजना के 5 वर्षों तक 10,000 रू. रोकड़ अन्तर्वाह हो तो अदायगी अवधि व्युत्क्रम का प्रतिशत $\frac{Rs.10{,}000}{Rs.40{,}000} \times 100 = 25\%$ होगा। यही दर इस परियोजना की लाभप्रदता दर या समय समायोजित प्रत्याय दर होगी।

बेलआउट अदायगी अवधि - इस अदायगी अवधि में जोखिम तत्व पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिस परियोजना में जोखिम की अवधि सबसे कम होती है वह परियोजना अच्छी मानी जाती है। इसके लिए बेलआउट अदायगी अवधि भी कम होनी चाहिए। इस अवधि की गणना के लिए प्रायः निम्नलिखित कदम उठाने पड़ते हैं :

(1) प्रत्येक वर्ष के अन्त में सम्पत्ति के निस्तारण मूल्य को ज्ञात करना।

(2) प्रत्येक वर्ष के रोकड़ अन्तर्वाहों के आधार पर उनका संचयी योग निश्चित करना।

NMBC-129

(3) निस्तारण मूल्य और संचयी रोकड़ अन्तर्वाह को जोड़कर प्रत्येक वर्ष के लिए संचयी राशि निश्चित करना।

(4) जिस वर्ष यह योग परियोजना लागत के बराबर हो जाय वही उसकी बेलआउट अवधि होगी।

उदाहरण - 5

निम्नलिखित सूचनाएँ एक परियोजना के सम्बन्ध में है :

Cost	Rs. 1,00,000
Economic life	7 years
Annual Savings	Rs. 20,000

पहले वर्ष के अन्त में निस्तारण मूल्य 60,000 रूपया है। दूसरे वर्ष और उसके आगे विनियोग की लागत में होने वाली वार्षिक कमी 10,000 रू. है। अदायगी अवधि व्युत्क्रम और बेलआउट अदायगी अवधि को निश्चित कीजिये।

हल,

(i) $$Pay-back\ Reciprocal = \frac{Annual\ Saving}{Net\ Investment} \times 100$$

$$= \frac{Rs.20,000}{Rs.1,00,000} \times 100 = 20\%$$

(ii) Bailout pay back Period

Year	Annual Savings	Cum. Saving	Salvage Value	Total
	Rs.	Rs	Rs	Rs
1st Yr.	20,000	20,000	60,000	80,000
2nd Yr.	20,000	40,000	50,000	90,000
3rd Yr.	20,000	60,000	40,000	1,00,000

Bailout pay-back period = 3 years

अवहारित अदायगी अवधि - अदायगी अवधि की गणना में रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को ध्यान में रखने के लिए वार्षिकी के वर्तमान मूल्य (Present value of Annuity) की गणना की जाती है। इसकी गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र हैं :

$$V = \frac{a}{i} \qquad \frac{1}{(1+i)^n}$$

यदि हम विनियोग को V माने, वार्षिक बचत को a माने, स्वीकृत ब्याज की दर प्रति रूपया प्रति वर्ष को i मान लें तो वर्ष की संख्या n जिनके दौरान ब्याज को ध्यान में रखते हुए विनियोग की लागत पुनर्प्राप्त हो सकती है। n का मूल्य लघुगुणक सारणी की सहायता से भी निश्चित हो सकता है।

वार्षिक आय या बचत असमान होने पर प्रत्येक वर्ष की बचत या आय में भिन्नता होगी। इस

हेतु वर्तमान मूल्य कारक (Present Value Factor) की सहायता से प्रत्येक वर्ष की बचत का वर्तमान मूल्य ज्ञात करके उन्हें जोड़ लिया जाता है। इस योग से अदायगी अवधि पर परिकलन उसी प्रकार से किया जायेगा जिस प्रकार से सामान्य दशाओं में इस अवधि की गणना होती है।

उदाहरण - 6

निम्नलिखित विवरण एक परियोजना के सम्बन्ध में है :

Cost of Project Rs. 25,000

Operating Saving:	Rs~
1st Year	2,500
2nd Year	10,000
3rd Year	15,000
4th Year	15,000

अदायगी अवधि की निम्नलिखित दशाओं में गणना कीजिये।

(1) ब्याज कारक को ध्यान में नहीं रखना है।

(2) 10 प्रतिशत की दर से ब्याज कारक को ध्यान में रखना है।

हल,

(i) Pay-back period ignoring interest factor

Years	Annual Savings	Cumulative Savings
	Rs	Rs.
I	2,500	2,500
II	10,000	12,500
III	15,000	27,500

Pay back period = 2 years + $\frac{Rs.12,500}{Rs.15,000} \times 12 months$

= 2 years 10 months.

(ii) Discounted pay-back period at 10% of interest

years	Anual Savings	Present Value	Discounted Savings	Cum.Dis.Savings
	Rs.	Factors Rs.	Rs.	Rs.
I	2,500	.9091	2,273	2,273
II	10,000	.8265	8,265	10,538
III	15,000	.7513	11,270	21,808
IV	15,000	.6830	10,245	32,053

Discounted pay-back Period = 3 years +

= 3 years 4 months.

अदायगी अवधि के विधि के लाभ - पूँजीगत बजट को तैयार करने के लिए परियोजनाओं का मूल्यांकन और प्राथमिकता क्रम निर्धारित करने की सबसे सहज और सुगम रीति अदायगी अवधि है। यह रीति ऐसी परियोजनाओं के लिए उपयुक्त है जहाँ लाभदायकता के मापने की आवश्यकता नहीं हैं। इसके निम्नलिखित लाभ हैं :-

(i) यह एक आसान विधि है। अदायगी अवधि की गणना करना एक आसान कार्य है।

(ii) जहाँ पूँजी परियोजना अल्पावधि में पूरी होनी है और उसकी लागत ज्यादा नहीं है वहाँ यह रीति उपयोगी है।

(III) विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेते समय जोखिम, विनियोग की तरलता और अप्रचलन जैसे घटकों को ध्यान में रखा जाता है।

(IV) अन्य परिष्कृत विधियों की तुलना में विश्लेषण कार्य की अपेक्षाकृत कम लागत आती है।

(V) यह रीति ऋणदाताओं और विनियोक्ताओं द्वारा ऋण के रूप में विनियोग करने पर उसके वापसी की अवधि के बारे में अनुमान लगाती है।

(VI) संस्था के पास कम रोकड़ होने से पूँजी विनियोग की तीव्रता से वापसी के प्रश्न पर भी पुनर्विचार किया जा सकता है।

(VII) जब आय या बचत की रकम आरम्भ के कुछ वर्षों को छोड़कर अनिश्चित होती है तब यह रीति सर्वोपयुक्त होगी।

(VIII) इस रीति में इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि जितना ही अदायगी अवधि कम होगी उतना ही अप्रचलित मशीनों से उत्पन्न हानि की सुरक्षा की मात्रा अधिक होगी।

अदायगी अवधि रीति की सीमाएँ - यह विधि सरल और सहज होने के बावजूद कुछ अन्तर्निहित सीमाओं से ग्रस्त है। इसकी प्रमुख सीमायें निम्नांकित हैं :

(i) यह विधि पूँजी व्यय परियोजना के मूल्यांकन का पर्याप्त माप नहीं है। इसमें विनियोग की लाभदायकता पर विचार नहीं किया जाता है।

(ii) यह रीति पूँजी के लागत तत्व पर विचार नहीं करती है। बिना इसके विनियोग के निर्णय का कोई ठोस आधार नही होगा।

(iii) प्रबन्ध के लिए एक न्यूनतम स्वीकृत योग्य अदायगी अवधि का निर्धारण करना कठिन है। क्योंकि परियोजना को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने का निर्णय एक विवेकीय आधार पर नहीं होगा।

(iv) इस रीति में विभिन्न समयों एवं विभिन्न मात्राओं में रोकड़ अन्तर्वाहों में कोई अन्तर नहीं किया जाता है। यदि एक परियोजना आरम्भ के वर्षों में अधिक और बाद के वर्षों में कम तथा दूसरी परियोजना इसके विपरीत अर्जन स्थिति बतलाती है तो कम अदायगी अवधि के आधार पर निर्णय अलाभकारी हो सकता है।

उपयुर्क्त सीमाओं के बावजूद अमेरिका की अनेक कम्पनियाँ इसी विधि के आधार पर विनियोग निर्णय लेती हैं।

6. असमायोजित प्रत्याय दर रीति - यह रीति लेखांकन विधि या वित्तीय विवरण विधि या विनियोग पर प्रत्याय दर या औसत प्रत्याय दर के नाम से भी जानी जाती हैं। इस रीति के अन्तर्गत परियोजना में विनियोजित कुल राशि तथा उसे प्राप्त होने वाली कर के पश्चात की शुद्ध आय में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जब गणना में प्रारम्भिक विनियोग को आधार माना जाता है तो इसे विनियोग पर प्रत्याय (Return on Investment) कहते हैं और जब औसत विनियोग को (अर्थात प्रारम्भिक विनियोग का आधा) ध्यान में रखा जाता है तो इसे औसत प्रत्याय दर (Average Return Rate) कहते हैं। इसकी गणना परियोजना से उत्पन्न होने वाली ''औसत वार्षिक शुद्ध आय'' में ''औसत विनियोग राशि'' का भाग देकर उसे 100 से गुणा करके भी की जाती है। सूत्र के रूप में -

$$\frac{\text{Average Annual Income After Tax and Depreciation}}{\text{Average Investment}}$$

$$\text{जहाँ औसत विनियोग} = \frac{\text{प्रारम्भिक विनियोग - अवशिष्ट मूल्य}}{\text{विनियोग की अवधि}} \times 100$$

(उस दशा में जब स्थायी किश्त पद्धति का प्रयोग होता है)

यदि वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह दिये हों तो औसत वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों से वार्षिक ह्रास की राशि घटाकर, कर और ह्रास के बाद औसत वार्षिक आय ज्ञात हो सकती है। औसत वार्षिक आय की गणना रोकड़ प्रवाह के आधार पर नहीं की जाती है इसमें शुद्ध आय निकालने के लिए वर्ष के समस्त आय एवं व्ययों को ध्यान में रखा जाता है चाहे उनमें रोकड़ प्रवाह होता हो अथवा नहीं। कभी-कभी ऐसे दरों के आधार पर ही परियोजना की स्वीकृति व अस्वीकृति निश्चित की जाती है और अधिकतम प्रत्याय दर वाली परियोजना को क्रियान्वयन के लिए पूँजी बजट में सम्मिलित कर लिया जाता है।

उदाहरण - 7

भारत कं. लि. एक मशीन को खरीदने का विचार कर रही है। दो मशीनें अ और ब उपलब्ध है। दो मशीनों की निम्नलिखित सूचनाओं से आप यह निश्चित कीजिए कि कौन सा विकल्प ज्यादा लाभदायक है। कर की औसत दर को 50 प्रतिशत माना जा सकता है।

	मशीन अ	मशीन ब
Cost of Machine	Rs. 25,000	Rs. 40,000
Working life	4 years	6 years
Earnings before Tax:	Rs.	Rs.
Year I	5,000	4,000
Year I	7,500	7,000
Year III	10,000	12,500
Year IV	7,500	15,000
Year V	-	9,000
Year VI	-	6,500

	मशीन अ	मशीन ब
Total Net Profit	Rs.	Rs.
(before Tax)	30,000	54,000
Average Annual Profit		
(before Tax)	7,500	9,000
Average Annual profit		
After tax (Tax Rate 50%)	3,750	4,500
Cast of Machine	25,000	40,000
Average Investment	12,500	20,000
Average annual return on		
investment =	$\frac{Rs.3,750}{Rs12,500}\times 100$	$\frac{Rs.4,500}{Rs.20,000}\times 100$
	= 30%	= 22.5%

मशीन अ से अधिक औसत प्रत्याय प्राप्त हो रहा है। अतः, ब की अपेक्षाकृत यह अधिक लाभदायक सिद्ध होगा।

औसत विनियोग पर अतिरिक्त प्रत्याय दर - यह दर औसत विनियोग पर प्रत्याय दर की तरह ही होता है। इसमें कर के बाद औसत वार्षिक आय के स्थान पर करके बाद अतिरिक्त औसत वार्षिक आय को ध्यान में रखा जाता है। सूत्र के रूप में

$$\frac{Average\ Annual\ Additional\ profit\,(After\ Tax)}{Average\ Investment}\times 100$$

औसत वार्षिक अतिरिक्त आय पुरानी परियोजना के लाभों को नयी परियोजना के लाभों में से घटाकर औसत रूप में निश्चित की जाती है। इस दर से इस बात का निर्णय लिया जा सकता है कि अतिरिक्त वार्षिक प्रत्याय दर के सन्तोषजनक होने पर ही नयी सम्पत्ति को पूँजी बजट में क्रियान्वयन

के लिए सम्मिलित किया जा सकता है।

उदाहरण -8

एक कम्पनी में एक पुरानी मशीन पिछले दस वर्षों से कार्यरत है। प्रबन्ध उसी प्रकार के मशीन के संशोधित प्रारूप की क्रय करने के प्रस्ताव पर विचार कर रहा है जिससे उत्पादन में वृद्धि हो। निम्नलिखित आँकड़ों से आप एक लागत लेखापालक की हैसियत से, प्रस्ताव के बारे में अपनी राय दीजिये।

		पुरानी मशीन	नई मशीन
		रू.	रू.
(i)	Purchase price	90,000	1,80,000
(ii)	Expenditure per annum on		
	account of : Power	10,500	12,000
	Consumable Stores	6,000	7,500
	Repairs	7,500	6,000
(iii)	Labour cost per running hour	3	3.75
(iv)	Units of output per hour	60	90
(v)	Machine hours for the years	2,000	2,000
(vi)	Material cost per unit	0.40	0.40

प्रति इकाई विक्रय मूल्य 1 रू. और अनुमानित जीवन काल 10 वर्ष दोनों मशीनों के सम्बन्ध में हैं

हल,

Output per annum		2,000 x 60 = 1,20,000 units	2,000x90 = 1,80,000 units
Selling price per unit		Re. 1	Re 1
Sales for the year		1,20,000	1,80,000
Less: cost of production		Rs.	Rs.
Materials		48,000	72,000
Wages	6,000	7,500	
Power		10,500	12,000
Consumable stores		6,000	7,500
Repairs		7,500	6,000
Depreciation (10%)		9,000	18,000
		87,000	1,23,000
Profit before Tax		33,000	57,000
Less: 50% Tax		16,500	28,500
Profit after Tax		16,500	28,500

Average additional profit per annum (Rs. 28,500 - Rs. 16,500)=12,000

Average Annual Additional Return on Investment

$$= \frac{Average\ Annual\ Additional\ Profit}{Average\ Investment} \times 100$$

$$= Rs. \frac{12,000}{90,000} x 100 = 13.33\%$$

वास्वत में नई मशीन का ही क्रय किया जाना चाहिए क्योंकि इसका अतिरिक्त औसत प्रत्याय 13.33 प्रतिशत है।

विनियोग पर असमायोजित प्रत्याय दर के लाभ -

इस विधि के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं -

(i) यह विधि समझने एवं प्रयोग करने की दृष्टि से सरल है।

(ii) यह रीति विनियोग के पूर्ण आर्थिक जीवन के लाभों को ध्यान में रखती है।

(iii) नये उत्पाद को बाजार में लाना, लागत में कमी लाना व प्रतिस्पर्धात्मक कार्य-कलापों का तुलनात्मक अध्ययन इस रीति द्वारा ही सम्भव है।

(iv) इसमें ह्रास को भी संस्था का एक सामान्य व्यय माना जाता है और इससे लाभदायकता का निश्चयन ठीक से हो जाता है।

विनियोग पर असमायोजित प्रत्याय विधि की सीमाएँ - इस नीति की कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं-

(i) विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह रीति भविष्य के विभिन्न वर्षों की आय का वर्तमान मूल्य निश्चित नहीं करती है।

(ii) दीर्घकालीन परियोजनाओं की दशा में अतिमूल्यांकन की भय बना रहता है। यह इसलिए है कि इसमें समय अन्तराल पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

(iii) न्यूनतम या यथोचित प्रत्याय दर को प्रमाप रूप में निर्धारित करना एक कठिन कार्य है।

(iv) यह रीति विभिन्न परियोजनाओं के अनुमानित जीवन काल पर विचार नहीं करती है।

7. **शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि -** इसके पूर्व जिन विधियों का वर्णन किया गया है, उनमें मुद्रा के समय मूल्य को ध्यान में नहीं रखा जाता है। इससे उनके अन्तर्गत परियोजनाओं का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के अन्तर्गत, मुद्रा के समय मूल्य को भी ध्यान में रखा जाता है। अतः यह अधिक वैज्ञानिक विधि है। पहले हम रोकड़ के अन्तर्वाहों के वर्तमान ज्ञात करते हैं और उनका योग कर लेते हैं। तत्पश्चात, रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य ज्ञात करते हैं। रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य के याग से रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य या विनियोजन घटा देते हैं। जो शेष बचता है वह धनात्मक होता है तभी परियोजना को स्वीकार किया जाता है। यदि ऋणात्मक शेष हो तो परियोजना को पूँजी बजट में सम्मिलित नहीं किया जाता है। यदि दो या अधिक

परियोजनाओं में से चुनाव करना है तो धनात्मक शेष वाली परियोजना को चुना जाता है। इस विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित कदम उठाये जाते हैं।

(i) संस्था की पूँजी लागत के आधार पर, एक कटौती के लिए उचित ब्याज दर का निर्धारण करना।

(ii) भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को निश्चित करना और उनका योग करना।

(iii) भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के योग से प्रारम्भिक विनियोग को घटा देना।

(iv) शेषफल ही शुद्ध वर्तमान मूल्य है जो परियोजना के मूल्यांकन या प्राथमिकता निश्चित करने में प्रयोग होता है।

उदाहरण - 9

एवराइट लिमिटेड एक मशीन खरीदने का विचार रखती हैं। दो मशीनें नं. 1 व नं. 2 उपलब्ध हैं जिनमें से प्रत्येक की लागत 60,000 रू. है । मशीनों की लाभदायकता की तुलना करने के लिए अवहार की दर 10 प्रतिशत अनुमानित की गई है। कर के प्रावधान के बाद प्राप्तियाँ इस प्रकार से होंगी :

Cash Flows After Tax (CFAT)

Year	Machine No. 1	Machine No. 2
1	15,000	8,000
2	25,000	15,000
3.	20,000	25,000
4.	20,000	30,000
5.	15,000	22,000

विभिन्न प्रस्तावों में कौन सी मशीन अधिक लाभदायक होगी?

नोट - एक रूपये का वर्तमान मूल्य 10 प्रतिशत के बट्टे पर 1, 2,3, 4 और 5 वर्ष के अन्त में क्रमशः 0.9091, 0.8264, 0.7513, 0.6830 और 0.6209 है।

Present Value of Cash Flows

Year	Cash Flows after Tax		P.V. Factor	Present Value	
	Machine No.1	Machine No.2		Machine No.1	Machine No.2
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	15,000	8,000	0.9019	13,637	7,273
2	25,000	15,000	0.8264	20,660	12,396
3.	20,000	25,000	0.7513	15,026	18,783
4.	20,000	30,000	0.6830	13,660	20,490
5.	15,000	22,000	0.6209	9,314	13,660
			Total	72,297	72,602

NMDC-129

Net present value = Present value - Cost of Investment

Machine No. 1 = Rs. 72,297 - Rs. 60,000 = Rs. 12,297

Machine No. 2 = Rs. 72,602 - Rs. 60,000 = Rs, 12,602

मशीन संख्या 2 का क्रय किया जाना चाहिए क्योंकि इस का शुद्ध वर्तमान मूल्य मशीन संख्या 1 से अधिक है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य सूचकांक - इसे लाभदायकता सूचकांक, आधिक्य वर्तमान मूल्य सूचकांक या शुद्ध प्राप्ति सूचकांक विधि भी कहते हैं। समान लागत वाली परियोजनाओं में आधिक्य की गणना वर्तमान मूल्य के आधार पर करके परियोजनाओं का मूल्यांकन और उनमें प्राथमिकता निश्चित की जा सकती है। जो परियोजनायें अलग-अलग लागत की हैं, उनमें प्राथमिकता का निश्चयन किसी सापेक्ष माप के आधार पर ही होगा। इस सापेक्ष माप में रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को प्रारम्भिक लागत से विभाजित कियाय जाता है। यदि यह सूचकांक एक से ज्यादा है तभी परियोजना को स्वीकृत किया जाता है। इस सूचकांक को प्रतिशत आधार पर भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। यदि सभी परियोजनाओं का सूचकांक 1 से ज्यादा है और उनमें से कुछ का चुनाव करना है या परियोजनाओं की प्राथमिकता निश्चित करनी है तो सबसे ऊँचे सूचकांक मूल्य वाली परियोजनाओं को प्राथमिकता क्रम में सबसे पहले लिखा जाता है। सूत्र के रूप में -

$$\text{लाभदायकता सूचकांक} = \frac{\text{रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य}}{\text{प्रारम्भिक विनियोग}}$$

$$Profitability\ Index = \frac{Present\ Value\ of\ Cash\ Inflows}{Original\ Investment}$$

उदाहरण - 10

तीन विनियोग प्रस्तावों के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण उपलब्ध हैं :

	I	II	III
Cost (in Rs)	25,000	30,000	35,000
Annual Savings (in Rs)	7,500	8,000	8,500
Estimated scrap (in Rs)	4,000	5,000	7,500
Life in years	12	10	9

ब्याज की दर 9 प्रतिशत मानते हुए, इन प्रस्तावों की प्राथमिकता (i) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि, और (ii) शुद्ध वर्तमान मूल्य सूचकांक विधि द्वारा निर्धारित कीजिए।

हल -

	I	II	III
Annual savings in Rs.	7,500	8,000	8,500
Present value factor(Annuity) for			
12,10 and 9 years at 9%	7.1607	6.4176	5.9852
(a) Present Value of savings (Rs)	53,706	51,341	50,873
Value of scrap in Rs.	4,000	5,000	7,500
Present value of Re.1 for 12,10			
and 9 years at 9%	0.35553	0.42241	0.46043
(b) Present value of scrap in Rs	1,422	2,112	3,453
Total present value (a+b)	55,128	53,453	54,326
Cost in Rs.	25,000	30,000	35,000
(i) Excess present value in Rs	30,128	23,453	19,326
Ranking	I	II	III
(ii) Net present value index	2.20	1.78	1.55
Ranking	I	II	III

इस प्रकार से इस विधि के अनुसार तीनों प्रायोजनाओं की रैंकिंग ज्ञात की जा सकती है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के लाभ - परियोजना मूल्यांकन की वर्तमान मूल्य विधि के निम्नलिखित लाभ हैं :-

(i) इसकी गणना करना अपेक्षाकृत सरल है। औसत प्रत्याय दर में औसत वार्षिक आय और औसत विनियोग की आवश्यकता पड़ती है।

(ii) दीर्घकालीन निर्णयों के लिए इस रीति को सर्वोत्तम माना जा सकता है। ऐसा मत हार्नग्रेन का है।

(iii) परियोजना के जीवन काल से असमान अर्जनों की दशा में भी यह विधि असमायोजित प्रत्याय दर की तुलना में ज्यादा शुद्ध एवं गणना करने में आसान है।

(iv) इस रीति के द्वारा वैकल्पिक प्रस्तावों के बीच स्पष्ट व सही अन्तर किया जा सकता है।

(v) इस रीति में परियोजना के पूरे जीवन काल के रोकड़ प्रवाहों को ध्यान में रखा जाता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के दोष - इस विधि की सरलता व तर्कपूर्णता के बावजूद इसकी निम्नलिखित सीमायें हैं :

(i) परियोजना के जीवन काल का शुद्ध रूप में पूर्वानुमान लगाना एक कठिन कार्य है।

NMBC-129

(ii) रोकड़ अन्तर्वाहों के अवहार करने में प्रयुक्त निर्धारित दर का निश्चयन एक समस्या है क्योंकि पूँजी लागत का सही निर्धारण सम्भव नहीं हैं।

(iii) यह एक स्थैतिक रीति है। यह परिस्थितियों को एक समय बिन्दु पर समाप्त मानकर चलती है । प्रवैगिक व्यावसायिक क्रियाओं के सन्दर्भ में, इस रीति को उपयुक्त नहीं माना जा सकता है।

8. आन्तरिक प्रत्याय दर विधि

यह विधि अधिक प्रचलित है एवं अधिक वैज्ञानिक भी है। वास्तव में, आन्तरिक प्रत्याय दर ब्याज की वह अधिकतम दर है जो परियोजना पर बिना किसी हानि के विनियोजित पूँजी पर उसके जीवन काल में चुकाई जा सकती है। इसे कई नामों से जाना जाता है जैसे, समय समायोजित प्रत्याय दर, अवहारित (Discounted) रोकड़ प्रवाह दर या परियोजना प्रत्याय दर। इसकी परिभाषा निम्नलिखित है। "आन्तरिक प्रत्याय दर को प्रत्याय की एक ऐसी दर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजित की लागत के तुल्य कर देती है।"

इस दर पर वर्तमान मूल्य शून्य के बराबर होता है। वास्तव में, इस दर पर भावी वार्षिक बचतों का वर्तमान मूल्य विनियोग की राशि के बराबर होता है। सूत्र के रूप में

$$\frac{C_n}{(1+r)^n} \quad I=0$$

जहाँ I का अर्थ प्रारम्भिक विनियोग और C_n का अर्थ n वर्षों के लिए शुद्ध रोकड़ प्रवाह से लगाया जाता है। उदाहरण के लिए एक परियोजना के रोकड़ अन्तर्वाह प्रथम वर्ष के अन्त में 4,480 रू. है और उसकी लागत 4,000 है। यह परियोजना केवल एक वर्ष के लिए है। ऐसी दशा में आन्तरिक प्रत्याय की दर निकालने की विधि इस प्रकार होगी -

$$\frac{Rs.4,480}{(1+r)^n} = 4,000 = 0$$

$$Or \quad \frac{Rs.4,480}{(1+r)^n} = Rs.4,000$$

जब n=1 है तो यह होगा

$$(1+r)^1 \; Rs.4,000 = Rs.4,480$$

$$4,000 + 4,000r = Rs.4,480$$

$$4,000r = Rs.4,480 - Rs.4,000 = Rs.480$$

$$Or \quad r = \frac{480}{Rs.4,000} = .12 \, or \, 12\%$$

उपरोक्त उदाहरण केवल एक वर्ष की परियोजना से ही सम्बन्धित हैं किन्तु व्यवहार में परियोजनायें एक वर्ष से अधिक के लिए होती हैं।

जब परियोजना की अवधि एक वर्ष से अधिक हो तो उस स्थिति में वर्तमान मूल्य सारणियों की सहायता ली जाती है।

रोकड़ अन्तर्वाह के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो परिस्थितियाँ हो सकती हैं :

(अ) समान रोकड़ अन्तर्वाह की स्थिति

(ब) असमान रोकड़ अन्तर्वाह की स्थिति

(अ) समान रोकड़ अन्तर्वाह की स्थिति

ऐसी स्थिति हो सकती है कि परियोजना के परिचालन से वर्ष प्रति वर्ष समान रोकड़ अन्तर्वाह हो । ऐसी स्थिति में, प्रत्याय दर की गणना की निम्नलिखित विधि को अपनाया जा सकता हैः

(1) विनियोग की लागत में वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों की राशि का भाग देकर वर्तमान मूल्य कारक की गणना की जाती है।

(2) वार्षिकी सारणी का अवलोकन करके वर्षों की उन संख्या के बराबर की पंक्ति खोजिये जिनके दौरान बचत होने की सम्भावना है।

(3) इस पंक्ति में दिये कारकों में उपरोक्त (1) से ज्ञात किये गये निकटतम कारक को ढूँढा जाता है यह दर ही आन्तरिक प्रत्याय की दर कहलाती है।

(4) यदि सूत्र के द्वारा निकाला गया वर्तमान मूल्य कारक सारणी के किन्हीं दो कारकों के मध्य स्थित है तो निकटतम कारक के अतिरिक्त अन्तरगणन की रीतियों का प्रयोग करके ज्यादा शुद्ध परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, एक विनियोग की लागत 10,000 रू. है और इससे परियोजना के जीवन काल में 5 वर्ष तक प्रतिवर्ष 2,500 रू. रोकड़ अन्तर्वाह प्राप्त होने का अनुमान हो तो आन्तरिक प्रत्याय की दर गणना इस प्रकार से होगी।

वर्तमान मूल्य कारक = $\frac{Rs.10,000}{Rs.2,500}=4$

संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के जीवन का काल अर्थात 5 वर्ष वाली पंक्ति में इस वर्तमान मूल्य कारक पर प्रत्याय दर 8 प्रतिशत है। यद्यपि 8 प्रतिशत पर वर्तमान मूल्य कारक 3,993 है जो लगभग 4 के बराबर है। अतः, यहाँ आन्तरिक प्रत्याय की दर 8 प्रतिशत मानी जायेगी।

उदाहरण -11

शंकर कं. लि. की दो परियोजनाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण हैं :

	Project A	Project B
Cost (in Rs.)	48,000	1,00,000
Annual Cash flows (Rs)	8,000	20,000
Economic Life (in Rs)	8	10

आप यह बताइये कि कौन सी परियोजना बेहतर है?

हल,

	Project A	Project B
$Present\ value\ Factor = \frac{Investment}{Annual\ Cash\ Flow}$	$\frac{Rs.48,000}{8,000} = 6$	$\frac{Rs.1,00,000}{20,000} = 5$
Closest present values	5.9713	5.019
Discount Rate	7%	15%

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परियोजना B अधिक उपयुक्त है।

भूल एवं सुधार विधि -

परियोजनाओं के मूल्यांकन में यदि पर्याप्त शुद्धता के साथ प्रत्याय दर ज्ञात करना हो तो व्यवहार में, भूल एवं सुधार विधि को अपनाया जाता है। इसके अन्तर्गत, अन्तर्वेशन के सूत्रों की सहायता से शुद्ध आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना की जा सकती है। भूल एवं सुधार विधि के अन्तर्गत यदि रोकड़ प्रवाह सम हो वहाँ वर्तमान मूल्य कारक की गणना करके उसके ऊपर व नीचे के अवहार दरों को ज्ञात कर लिया जाता है।

इसके लिए निम्नलिखित सूत्र को प्रयोग में लाया जाता है -

$$r = LDR + \frac{Present\ value\ of\ LDR - Present\ value\ factor}{(HDR - LDR)}$$

जहाँ LDR = Lower Discount Rate

HDR= Higher Discount Rate

और r=Internal Rate of Return होता है।

इसी गणना कार्य को विनियोग के आधार पर भी किया जा सकता है। सूत्र इस प्रकार होगा-

$$LDR + \frac{(Present\ Value\ of\ Cash\ Inflow\ at\ LDR - Initial\ investment)}{(HDR - LDR)}$$

इस विधि को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है :

उदाहरण - 12

सोमनाथ कं. लि. के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनायें उपलब्ध हैं :

	Project A	Project B
Cost (in Rs.)	45,000	50,000
Annual Cash Flows (Rs)	7,500	10,000
Economic life (in years)	8	10

आप भूल सुधार विधि से ज्ञात कीजिये कि दोनों परियोजनाओं में कौन अधिक उपयुक्त हैं?

हल,

	Project A	Project B
$Investment\ Value\ Factor = \frac{Investment}{Annual\ Cash}$	$\frac{Rs.45,000}{7,500} = 6$	$\frac{Rs.50,000}{10,000} = 5$
Closest Present value =	5.9713	5,019

Project A

Closest present values to 6.00 from cumulative present value table for eight years are:

Present Value	Rate
6.210	6%
5.74%	8%

Thus internal rate of return will be between 6% and 8%

$$IRR = 6\% + \frac{6.210 - 6.00}{(6.21 - 6.00) - (5.747 - 6.00)} \times (8\% - 6\%)$$

$$= 6\% + \frac{.210}{.463} \times 2\% = 6\% + .9071$$

$$= 6.9071\%$$

Project B

Closest present values to 5.00 from comulative present value table for 10 years are

Present value	Rate
5.019	15%
4.833	16%

Thus internal rate of return will be between 15% and 16%

$$IRR - 15\% + \frac{5.019 - 5.00}{(5.019 - 5.00) - (4.833 - 5.00)} \times (16\% - 15\%)$$

$$= 15\% + \frac{.019}{.019 + .167} \times 1\%$$

$$= 15\% + \frac{.019}{.186} = 15\% + .1021$$

$$= 15.1021\%$$

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि प्रायोजना बी अधिक उपयुक्त है क्योंकि इस का आन्तरिक प्रत्याय दर अधिक है।

(ब) असमान रोकड़ अन्तर्वाह की स्थिति

व्यवहार में, ऐसा प्रायः पाया जाता है कि रोकड़ अन्तर्वाह वर्ष प्रति वर्ष असमान हों। इस स्थिति में आन्तरिक प्रत्याय दर ज्ञात करने के लिये भूल एवं सुधार विधि को अपनाना ही अधिक उपयुक्त होता है।

इस स्थिति में, इस की गणना निम्नलिखित ढंग से की जायेगी।

(1) एक प्रारम्भिक अवहार दर जिस पर जाँच कार्य आरम्भ किया जायेगा निश्चित की जाती है। इसके वर्तमान मूल्य कारकों की सहायता से रोकड़ अन्तरर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है और उन्हें परियोजना की विनियोजन लागत से तुलना के लिए सम्बन्धित किया जाता है। प्रारम्भिक अवहार दर निश्चित करने के लिए रोकड़ अन्तर्वाहों के औसत का प्रयोग प्रारम्भिक विनियोग को विभाजित करने के लिए किया जा सकता है।

(2) यदि प्रारम्भिक दर के वर्तमान मूल्यों का योग विनियोग के लागत से अधिक है तो प्रयुक्त दर से उच्च दर पर पुनः रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य उच्च दर के वर्तमान मूल्य कारक की सहायता से ज्ञात कर लेना चाहिए। वर्तमान मूल्यों के योग की तुलना प्रारम्भिक विनियोग से करके उसका अन्तर ज्ञात कर लेना चाहिए। यदि प्रारम्भिक दर के वर्तमान मूल्यों का योग विनियोग की लागत से कम है तो रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य कारक की सहायता से प्रयुक्त दर से निम्न दर ज्ञात कर लेना चाहिए।

(3) भूल एवं सुधार रीति के सूत्र का प्रयोग करना।

(4) यदि आन्तरिक प्रत्याय दर न्यूनतम अपेक्षित प्रत्याय दर से अधिक हो या बराबर हो, तो उस स्थिति में, परियोजना को स्वीकार कर लेना चाहिए।

उदाहरण - 13

गणपति कं.लि. के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण उपलब्ध हैं :

Initial Investment	Rs. 60,000
Life of the asset	4 years
Estimated net annual cash flows are:	
I Year	15,000
II Year	20,000
III Year	30,000
IV Year	20,000

आप आन्तरिक प्रत्याय दर (IRR) की गणना कीजिये

हल,

Cash Flow Table at Various Assumed Discount Rates of 10%, 12,%, 14%, & 15%

		Discount Rate 10%		12%		14%		15%	
Year	Annual cash flow Rs.	P.V.F.	P.V. Rs.	P.V.F.	P.V. Rs.	P.V.F.	P.V. Rs.	P.V.F.	P.V. Rs.
I	15,000	.909	13635	.892	13380	.877	13155	.869	13035
II	20000	.826	16520	.797	15940	.769	15380	.756	15120
III	30000	.751	22530	.711	21330	.674	20220	.657	19710
IV	20000	.683	13660	.635	12700	.592	11840	.571	11420
			66345		63350		60595		59285

14 प्रतिशत अवहार दर पर शुद्ध रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य 60,595 रू. है तथा 15 प्रतिशत अवहार दर पर 59,285 रू. है। विनियोग की आरम्भिक लागत 60,000 रू. है जो इन्हीं दो अवहार दरों के मध्य है। 14 प्रतिशत पर शुद्ध वर्तमान मूल्य + 595 है जबकि 15 प्रतिशत पर यह - 715 है। इस प्रकार से, आन्तरिक प्रत्याय दर लगभग 14.5 प्रतिशत होगा।

आन्तरिक प्रत्याय दर एवं शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में अन्तर -

यह दोनों ही प्रचलित विधियाँ है। और विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन करने तथा प्राथमिकता क्रम निर्धारित करने में उपायोगी हैं। इन दोनों विधियों में समय कारक को ध्यान में रखा जाता है। साथ ही, समान वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों तथा असमान वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों को भी ध्यान में रख कर इन विधियों के अन्तर्गत गणना की जाती है।

इन दोनों विधियों में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :

(1) आन्तरिक प्रत्याय दर में पुनर्विनियोजन दर की गणना विनियोग के प्रस्तावों के रोकड़ अन्तर्वाहों के आधार पर निश्चित होती है। इसमें शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की तरह पुनर्विनियोजन दर पूँजी लागत पर आधारित नहीं होती है। शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के लिए पुनर्विनियोजन दर का निश्चयन पूँजी लागत के आधार पर होता हैं

(2) आन्तरिक प्रत्याय की दर रीति में इच्छित न्यूनतम प्रत्याय दर को निश्चित किया जाता है जब कि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में यह पूर्वानिश्चित होती है।

(3) दो परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं (mutually exclusive projects) की दशा में, विधियों से समान निष्कर्ष प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

(4) आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में निश्चित की गई प्रत्याय दर परियोजना के लिए ब्याज की अधिकतम दर है। परियोजना की लागत इससे ज्यादा नहीं होनी चाहिए। दूसरी ओर शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि यह बतलाती है कि परियोजना में अधिकतम कितनी राशि विनियोजित की जाय कि इससे पूँजी लागत की ब्याज दर वसूल हो जाय।

(5) आन्तरिक प्रत्याय दर में प्रत्येक प्रस्ताव की ब्याज दर भिन्न-भिन्न होती है जबकि शुद्ध वर्तमान

मूल्य विधि में प्रत्येक प्रस्ताव की पुनर्विनियोग दर समान रहती है।

(6) आन्तरिक प्रत्याय दर में रोकड़ अन्तर्वाहों का पुनर्विनियोजन परियोजना के पूरे जीवन काल में आन्तरिक प्रत्याय की दर से होता रहता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति में रोकड़ अन्तर्वाहों के पुनर्विनियोजन से अपेक्षित प्रत्याय दर प्राप्त होते रहने की मान्यता है।

आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के लाभ -

यह विधि अधिक प्रचलित है क्योंकि यह अधिक तर्कपूर्ण है। इससे प्रयोजनाओं का मूल्यांकन अधिक सुनिश्चित ढंग से सम्भव है। इस विधि के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

(1) विनियोग के साथ जुड़े हुए जोखिम व अनिश्चितता के तत्व को यह रीति मान्यता प्रदान करती है।

(2) शुद्ध वर्तमान विधि के समान ही यह रीति समय कारक तथा परियोजना के सम्पूर्ण जीवन काल को ध्यान में रखती है।

(3) यह दर अधिक वास्तविक होती है और उधार पर ब्याज की दर, अंशों पर लाभांश की दर और ऋणपत्रों पर ब्याज की दर के समरूप होती है।

(4) इस विधि में परियोजना के मूल्यांकन के पूर्ण न्यूनतम इच्छित प्रत्याय दर निश्चित करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

(5) विभिन्न परियोजनाओं के आन्तरिक प्रत्याय की दर की तुलना पूँजी लागत से करके, प्रस्तावों की स्वीकृति व प्राथमिकता का निर्धारण आसानी से हो सकता है।

आन्तरिक प्रत्याय दर विधि की सीमायें -

आन्तरिक प्रत्याय दर के उपरोक्त प्रमुख लाभ होते हुए भी, इस विधि की निम्नलिखित प्रमुख सीमायें भी हैं -

(1) ब्याज या छूट दर के चुनाव में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

(2) संस्था को वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों के पुनर्विनियोजन करने से प्रत्याय की दर के बराबर आय प्राप्त होती है। वास्तव में, इस मान्यता के बराबर संस्थान को आय न प्राप्त हो तो निकाले गये निष्कर्ष गलत हो सकते हैं।

(3) गणना क्रियाओं के द्वारा कभी-कभी भ्रमपूर्ण निष्कर्ष मिलते हैं।

(4) भूल एवं सुधार रीति द्वारा प्रत्याय दर की गणना करना एक जटिल कार्य है।

4.9 पूँजी व्यय निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक

प्रबन्धक को पूँजी व्यय सम्बन्धी समय-समय पर अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं। ऐसा निर्णय करते समय उसे अधिक सावधानी तथा सतर्कता की आवश्यकता होती है। साथ ही ऐसे निर्णय को

प्रभावित करने वाले कारकों या तत्वों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसे प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं :

(1) परियोजनाओं की अपरिहार्यता -

कभी-कभी परियोजनाओं का क्रियान्वयन अपरिहार्यता के आधार पर भी किया जाता है। इसमें प्रबन्ध वैकल्पिक विनियोग प्रस्तावों का मूल्यांकन नहीं करता अपितु शीघ्रता और अनिवार्यता के आधार पर पूँजी व्यय को करने का निर्णय लेता है। जैसे मशीन के नष्ट होने पर उसका शीघ्र प्रतिस्थापन, कानूनी व्यवस्थाओं के अधीन कर्मचारी के स्वास्थ्य, सुरक्षा व कल्याण पर किया जाने वाला विनियोग आदि।

(2) अप्रचलन से जोखिम -

इस तकनीकी युग में नये-नये आविष्कारों और नवीन उत्पादन विधियों के कारण अप्रचलन का जोखिम कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। इसी कारण से प्रबन्ध ज्यादा लम्बी अवधि की परियोजना को क्रियान्वित करने में रूचि नहीं रखता है।

(3) उपलब्ध कोष -

कोई भी परियोजना चाहे वह कितनी ही लाभदायक क्यों न हो तब तक क्रियान्वित नहीं हो सकती जब तक कि संस्था के पास पर्याप्त मात्रा में कोष उपलब्ध न हो। कोष ही परियोजना के क्रियान्वयन का आधार होता है और कभी-कभी ज्यादा लाभदायक परियोजनाएं कोषों की कमी के कारण क्रियान्वित नहीं की जाती हैं।

(4) परियोजना का जीवन काल-

पूँजी व्यय निर्णयन में परियोजना का जीवन काल भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लम्बी अवधि वाले परियोजना पूँजी की लागत को दीर्घकाल में वापस करते हैं जबकि अल्प अवधि वाली परियोजनाएं प्रत्येक वर्ष समान आय दे रही हैं और उनके जीवन काल में अन्तर है तो ज्यादा लम्बी अवधि वाली परियोजना बेहतर नहीं होगी।

(5) अमूर्त कारक -

संस्था की प्रतिष्ठा, कर्मचारियों का मनोबल आदि कुछ ऐसे कारक हैं जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । यहाँ विनियोजन की लाभदायकता पर विचार न करके इन अमूर्त कारकों से होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ को ध्यान में रखा जाता है। कम्पनी के मुख्य कार्यालय का शानदार भवन, भव्य अतिथि गृह व कर्मचारी कल्याण परियोजनाओं का सीधा सम्बन्ध परियोजना की लाभप्रदता से नहीं होता है।

(6) अर्जनों की भावी प्रत्याशा -

यदि भविष्य में ज्यादा लाभकारी विनियोग किये जा सकते हैं तो प्रबन्ध वर्तमान समय में उस परियोजना को चुनेगा जिसका जीवन काल कम हो। ऐसा करने में प्रबन्ध अपने कोष को शीघ्रातिशीघ्र वापस प्राप्त कर लेता है और उन्हें ज्यादा लाभकारी परियोजनाओं में लगा सकता है। भविष्य में यदि अर्जन दर गिरने की सम्भावना है तो दीर्घकालीन परियोजनाओं में विनियोग संस्था के हित में होगा।

(7) अवसर लागतें -

पूँजी व्यय निर्णयन में किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने के फलस्वरूप वैकल्पिक अर्जन की हानि को भी ध्यान में रखा जाता है। यही उस परियोजना की अवसर लागत होती है। प्रतिस्थापन निर्णयों

NMDC-129

में अवसर लागत की जानकारी आवश्यक है। विस्तार परियोजनाओं में अपने स्वामित्व में भवन का अवसर लागत इसके वैकल्पिक उपयोग से प्राप्त होने वाला किराया होता है।

(8) उत्पादन माँग -

जब अतिरिक्त सम्पत्तियाँ उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए क्रय की जाती है या ज्यादा क्षमता वाले सम्पत्तियों का प्रतिस्थापन होता है तो बढ़े हुए उत्पादन की बाजार में माँग को भी ध्यान में रखा जाता है। यदि बढ़े हुए उत्पादन का पूरा हिस्सा बाजार में बिना वस्तु का मूल्य कम किये बेचा जा सकता है तो ऐसी विस्तार परियोजना या प्रतिस्थापना परियोजना का क्रियान्वयन हो सकता है।

(9) कोषों का पूर्ण उपयोग -

यदि किसी संस्थान के पास पूँजी विनियोग के लिए पर्याप्त कोष है और उनका लक्ष्य स्थानों पर लाभदायक विनियोजन नहीं हो सकता तो ऐसी दशा में उन सभी कोषों का प्रयोग पूँजी विनियोग के लिए किया जा सकता है चाहे उस परियोजना के क्रियान्वयन से अपेक्षाकृत कम प्रत्याय क्यों न प्राप्त हो।

(10) तकनीकी कारक -

संस्था के पास सम्बन्धित तकनीकी का होना आवश्यक है जिससे उस परियोजना का लाभपूर्ण ढंग से क्रियान्वयन हो सके। यदि संस्था तकनीकी रूप से उस परियोजना को क्रियान्वित करने में सक्षम नहीं है तो ऐसी परियोजना चाहे वह लाभदायक ही क्यों न हो क्रियान्वित नहीं करनी चाहिए।

4.10 पूँजी बजटिंग का महत्व

पूँजी बजटिंग प्रत्येक व्यावसायिक संस्था के लिए अत्यन्त उपयोगी व आवश्यक है। इसकी सहायता से प्रबन्ध नियोजन, निर्णयन व नियंत्रित कार्य को प्रभावी ढंग से सम्पन्न करता है। व्यावसायिक संसाधन सीमित होते हैं और इनका उपयोग इस प्रकार से करना चाहिए कि अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस दृष्टि से, इस का निम्नलिखित महत्व है :

(1) दीर्घकालीन योजना व नीति निर्माण में सहायक -

पूँजी व्यय बजटिंग दीर्घकालीन योजना व नीति-निर्माण का आधार होती है। इसके आधार पर नष्टप्राय सम्पत्ति या प्रयोगविहीन सम्पत्ति के पुनर्स्थापन के लिए उपलब्ध वैकल्पिक सम्पत्तियों के प्रारूपों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन व ह्रास के सम्बन्ध में ठोस नीति अपनाने में यह बजटिंग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

(2) बजटिंग में सुविधा -

पूँजी व्यय बजट के तैयार कर लेने से अन्य बजट आसानी से तैयार हो जाते हैं। यह बजट संस्था में उपलब्ध निर्माण प्रक्रिया की सुविधाओं की स्थिति को अभिव्यक्त करता है और उसी के आधार पर उत्पादन की मात्रा, श्रमिकों की संख्या, कच्चे माल का क्रय और रोकड़ की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। रोकड़ बजट, उत्पादन लागत बजट, विक्रय बजट, श्रम बजट और उत्पादन बजट का निर्माण पूँजी व्यय बजट के समंकों के आधार पर ही तैयार किया जाता है।

(3) जोखिम व अनिश्चितता को कम करना -

स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजन न केवल अधिक राशि का होता है बल्कि इसमें विनियोजन

लम्बी अवधि के लिए होता है। बड़ी मात्रा में दीर्घकाल के विनियोजनों में पूँजी के बने रहने व उसकी लाभदायकता के बारे में सदैव अनिश्चितता व जोखिम रहता है। पूँजी के द्वारा विनियोजन के प्रत्येक पहलू से विचार कर लिया जाता है और केवल उपयुक्त परियोजना को ही क्रियान्वयन के लिए स्वीकृत किया जाता है।

(4) आदर्श विनियोजन -

विनियोजन कब हो, कितना हो, क्यों हो, किस स्थान पर हो, यह सब जानकारी पूँजी व्यय बजट से प्राप्त होती है। स्थायी सम्पत्तियों में आवश्यकता से ज्यादा विनियोग व कम विनियोग की सम्भावनाएं इस बजट के बना लेने के बाद समाप्त हो जाती हैं। स्थायी सम्पत्तियों में उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त स्थान और उपयुक्त समय पर विनियोजन की जानकारी आदर्श विनियोजन नीति के रूप में इस बजट से प्राप्त होती है।

(5) आदर्श विनियोजन -

विनियोजन कब हो, कितना हो, क्यों हो, किस स्थान पर हो, यह सब जानकारी पूँजी व्यय बजट से प्राप्त होती है। स्थायी सम्पत्तियों में आवश्यकता से ज्यादा विनियोग व कम विनियोग की सम्भावनाएँ इस बजट के बना लेने के बाद समाप्त हो जाती हैं। स्थायी सम्पत्तियों में उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त स्थान और उपयुक्त समय पर विनियोजन की जानकारी आदर्श विनियोजन नीति के रूप में इस बजट से प्राप्त होती है।

(6) धन की व्यवस्था -

पूँजीगत परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक धनराशि इस बजट की सहायता से निश्चित हो जाती है। चूँकि इनमें काफी मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ती है इसलिए बिना पूँजी जानकारी के इतनी राशि एकत्र नहीं हो सकती।

(7) उपयुक्त निर्णय -

पूँजी व्यय बजटिंग उपयुक्त निर्णयन प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पूँजी विनियोजनों के मूल्यांकन एवं प्राथमिकता कम निर्धारण के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित निर्णयों को उपयुक्त ढंग से लेने की क्षमता प्रबन्ध में आ जाती है। निर्णयन कार्य में उच्च प्रबन्ध की व्यवसाय के दिन-प्रतिदिन परिचालन और अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं में पूँजी व्यय बजट के मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है।

(8) किस्म नियंत्रण -

विभिन्न पूँजी परियोजनाएँ यह संकेत करती हैं कि किस प्रकार की वस्तु का निर्माण संस्थान को करना चाहिए। वस्तु के प्रकार और किस्म के आधार पर ही पूँजी परियोजनाएं स्वीकृत होती है। और उसी के आधार पर इनके प्रकार व किस्म पर नियंत्रण होता है।

(9) पूँजी व्यय और लागत का नियंत्रण -

पूँजी व्यय अधिकृत सीमा तक अधिकृत समय में किये गये है। इस बात की जानकारी के बिना पूँजी व्यय बजट के नहीं हो सकती। इस बजट से पूँजी व्ययों की अधिकृति के बारे में जानकारी मिल जाती है जिसकी तुलना वास्तविक व्ययों से करके अन्तर के कारणों की सूचना मिल जाती है। लागत नियंत्रण व लागत कमी की विधियों का विचार-विमर्श करते समय, यह बजट मार्गदर्शक के

रूप में कार्य करता है। इस बजट के आधार पर यह भी देखा जा सकता है कि मानवीय श्रम के स्थान पर मशीन का प्रयोग होने से लागत किस प्रकार नियंत्रित होगी।

4.11 पूँजी बजटिंग की सीमायें अथवा कठिनाइयाँ

पूँजी बजटिंग संस्था तथा उसके प्रबन्ध के लिये अत्यन्त उपयोगी है फिर भी इस में अनेक कठिनाइयाँ तथा सीमायें हैं। उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित है -

(1) प्रत्याय दर का निश्चयन कठिन -

भविष्य की अनिश्चितता के कारण निश्चित करना काफी कठिन हो जाता है कि विनियोजित पूँजी से भविष्य में कितना लाभ मिलेगा। बिना लाभ के पूर्वानुमान के भविष्य के लिए प्रत्याय की दर का निश्चयन कठिन हो जाता है।

(2) गैर मौद्रिक कारक -

विनियोग को प्रभावित करने वाले कुछ ऐसे कारक होते हैं जिनका मुद्रा में मापन नहीं होता है। ऐसे गैर-मौद्रिक कारकों से इस तकनीक की सफलता में संदिग्धता आ जाती है।

(3) पूँजी की लागत का अनुमान लगाना कठिन -

पूँजी की लागत का निश्चयन बहुत सी मान्यताओं के अधीन होता है जो व्यवहार में सही नहीं उतरती हैं। पूँजी की प्राप्त करने की लागत के आधार पर ही अवहार घटक का निश्चयन होता है।

(4) निर्णय का परिणाम अनिश्चित -

इस तकनीक की यह मान्यता है कि भविष्य में वही परिस्थितियाँ रहेंगी जो वर्तमान में हैं। प्रायः व्यवहार में, पूँजी परियोजनाओं के क्रियान्वयन से वर्तमान की परिस्थितियाँ भविष्य में नहीं बनी रह सकती ।

(5) सामयिकता का निर्धारण कठिन -

पूँजी व्यय बजट निर्माण में पूँजी परियोजनाओं की विभिन्न अवधियों के कारण आयों की अवधि का अनुमान लगाना कठिन है। पूँजी परियोजना की अनुरक्षण लागत का अनुमान भी कठिन कार्य है। विनियोग प्रतिवर्ष कितना करना होगा और कितने वर्षों तक करना होगा इसका निश्चयन भी आसान नहीं है।

प्रबन्धकों के कौशल चातुर्यता, निर्णय लेने की क्षमता, भविष्य की अनिश्चितताओं को दूरदर्शिता से समझने की योग्यता द्वारा इन कठिनाइयों को दूर कर इस तकनीक का लाभकारी उपयोग किया जा सकता है।

4.12 सारांश

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में स्थायी सम्पत्तियों के सम्बन्ध में पूँजी व्यय करने होते हैं। इसके लिये, पूँजी बजट तैयार किया जाता है। यह बजट उपलब्ध वित्तीय साधनों से प्राप्त प्रत्याय को अधिकतम करने के उद्देश्य से तैयार किया जाता है। विनियोग के लिए प्रायोजनायें तैयार की जाती हैं जिनका मूल्यांकन कर प्राथमिकतायें निश्चित की जाती हैं । इसके मूल्यांकन की अनेक विधियाँ

प्रचलित हैं। परम्परागत विधियों में समय कारक को ध्यान में नहीं रखा जाता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य तथा आन्तरिक प्रत्याय विधि अधिक उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि इन में समय कारक को भी ध्यान में रखा जाता है। प्रबन्धक को पूँजी व्यय निर्णयन में विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे कि पूँजी का एक बड़ा हिस्सा, दीर्घकाल के लिये अनुचित तथा अनुपयोगी सम्पत्तियों में विनियोजित न हो।

4.13 शब्दावली

पूँजी व्यय - स्थायी सम्पत्तियों में दीर्घकाल के लिये किया गया व्यय पूँजी व्यय है।

विनियोग पर प्रत्याय दर - प्रयुक्त पूँजी के प्रयोग से होने वाले लाभ से इस दर की गणना की जाती है जो बताता है कि विनियोग पर किस दर से प्रतिफल प्राप्त हुआ है।

विनियोग क्रम निर्धारण - विभिन्न प्रायोजनाओं का वांछित तकनीक या विधि से मूल्यांकन करके उनके क्रम I, II, III आदि का निर्धारण करना।

संचयी रोकड़ अन्तर्वाह - पहले वर्ष की रोकड़ प्राप्ति को दूसरे वर्ष की प्राप्ति में जोड़कर संचयी रोकड़ अन्तर्वाह की गणना की जाती है।

लाभदायकता सूचकांक - रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को आरंभिक विनियोग से भाग देकर इसे ज्ञात किया जाता है।

अप्रचलन से जोखिम - नये आविष्कारों अथवा नवीन उत्पाद विधियों के कारण जब पुरानी सम्पत्तियाँ उपयोगी नहीं रह जाती तो उससे होने वाले जोखिम को ही अप्रचलन से जोखिम कहते हैं।

4.14 बोध प्रश्न

1. पूँजी बजटिंग से आप क्या समझते हैं? पूँजी बजटिंग के औचित्य एवं सीमाओं का उल्लेख कीजिये।
2. एक औद्योगिक कम्पनी की दृष्टि से, पूँजी बजटिंग का क्या महत्व है?
3. पूँजी बजटिंग की विभिन्न विधियों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
4. निवेश परियोजनाओं के क्रम-निर्धारण की समय समायोजित विधियों की विवेचना कीजिए। क्या आप शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि से आन्तरिक प्रत्याय विधि को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं? कारण सहित, उत्तर दीजिये।
5. आन्तरिक प्रत्याय दर से आप क्या समझते हैं? इसमें तथा शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में अन्तर कीजिये।
6. अदायगी अवधि विधि को उदाहरण देकर समझाइये। यह विधि व्यवसायियों में क्यों अधिक प्रचलित है? इसकी सीमाओं का भी उल्लेख कीजिए।
7. रमन कं. लि.दो मशीनों के क्रय पर विचार कर रही है। उनसे सम्बन्धित निम्नलिखित सूचनायें उपलब्ध हैं :

	मशीन अ	मशीन ब
जीवन काल	3 वर्ष	3 वर्ष
पूँजी लागत	रु0 1,00,000	रु0 1,00,000

लाभ (कर उपरान्त)

प्रथम वर्ष	80,000	20,000
द्वितीय वर्ष	60,000	70,000
तृतीय वर्ष	40,000	1,00,000

दोनों मशीनों की लाभदायकता का अनुमान निम्नलिखित विधियों द्वारा लगाइये।

(1) अदायगी अवधि विधि

(2) विनियोजन पर प्रत्याय विधि

संकेत : अदायगी अवधि विधि - 1 वर्ष 4 माह तथा 2 वर्ष 1 माह 6 दिन, विनियोजन पर प्रत्याय 53.3 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत ।

8. हिन्द कं. लि. दो परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं पर विचार कर रही है। दोनों पर आरंभिक विनियोग 20,000 रू. प्रति परियोजना है तथा जीवनकाल 5 वर्ष है । कम्पनी की वांछित प्रत्याय दर 10 प्रतिशत है तथा कर 50 प्रतिशत की दर से दिया जाता है। परियोजना पर ह्रास सीधी रेखा विधि से लगाया जायेगा। परियोजना से उत्पन्न संभावित शुद्ध रोकड़ प्रवाह निम्नलिखित है :

	वर्ष				
	1	2	3	4	5
प्रायोजना अ (रू.)	8,000	8,000	8,000	8,000	8,000
प्रायोजना ब (रू.)	12,000	6,000	4,000	10,000	10,000

निम्नलिखित विधियों से ज्ञात कीजिए कौन सी परियोजना स्वीकृत की जाय :

(1) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

(2) लाभदायकता सूचकांक विधि

(3) आन्तरिक प्रत्याय दर विधि

संकेत : शुद्ध वर्तमान मूल्य - अ 1,373 रू., ब 1,167 रू.

लाभदायकता सूचकांक - अ 1,137 रू. ब 1,177 रू.

आन्तरिक प्रत्याय दर - अ 15.24 प्रतिशत, 16.78 प्रतिशत

8. एक कम्पनी के प्रबन्धक एक परियोजना में 80,000 रू. विनियोजित करने का प्रस्ताव रखते हैं। पाँच वर्षों की अर्जनें निम्नलिखित हैं :

	रू.		रू.
प्रथम वर्ष	6,000	चतुर्थ वर्ष	4,000
द्वितीय वर्ष	8,000	पंचम वर्ष	4,000
तृतीय वर्ष	6,000		

आप यह समझाइये कि परियोजना को क्रियान्वयन के लिये लिया जा सकता है अथवा नहीं। आप वर्तमान मूल्य को अवहारित करने की दर 10 प्रतिशत मान सकते हैं।

(संकेत - शुद्ध वर्तमान मूल्य - 1,784 रू.)

इकाई - 5 शून्य आधार बजटिंग

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 परिभाषा
5.3 शून्य आधार बजटिंग तथा वृद्धिमान बजटिंग में अन्तर
5.4 इसकी महत्वपूर्ण प्रक्रिया
5.5 निर्णयन पैकेज
5.6 इसे अपनाने की अवधि - अन्तराल
5.7 भारत में शून्य आधार बजटिंग
5.8 शून्य आधार बजटिंग के उपयोग
5.9 शून्य आधार बजटिंग से लाभ
5.10 शून्य आधार बजटिंग की कमियाँ
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् -

- शून्य आधार बजटिंग का अर्थ ज्ञात होगा
- इसमें तथा परम्परागत वृद्धिमान बजटिंग में अन्तर ज्ञात होगा।
- इसके लिए अपनाये जाने वाले चरणों की जानकारी होगी,
- निर्णयन पैकेज के विषय में ज्ञात होगा,
- इसके उपयोग, लाभ तथा कमियों की जानकारी होगी

5.1 प्रस्तावना

सामान्यतया, बजट में, जिसे परम्परावादी या वृद्धिमान बजट कहते हैं, वर्तमान वर्ष के बजट को पिछले वर्ष के बजट के आँकड़ों के आधार पर बनाया जाता है। विगत बजट में, कुछ प्रतिशत जोड़कर वर्तमान बजट तैयार किया जाता है इसीलिये इसे वृद्धिमान बजट कहते हैं। इसमें यह मान कर चला जाता है कि गतवर्ष में किये गये व्यय उचित थे और उस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। शून्य आधार बजटिंग के अन्तर्गत, पिछले वर्ष के बजट पर ध्यान नहीं दिया जाता है और इसकी यह मान्यता होती है कि बिना उचित कारण के कोई भी व्यय नहीं होगा। इसमें, 'शून्य' को आधार मान कर बजट तैयार किया जाता है तथा व्यय किये जाने वाले प्रत्येक रूपये की माँग की जाँच

NMDC-129

कर उसे उचित या अनुचित ठहराया जाता है। हर प्रबंधक का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह इस बात का उचित कारण बताये कि निर्दिष्ट धन क्यों खर्च होना चाहिए और यदि प्रस्तावित कार्य नहीं हुआ हो तथा पैसा खर्च नहीं हुआ हो तो क्या होगा? वह प्रत्येक क्रिया-कलाप का लागत-लाभ विश्लेषण करे जो उसके नियंत्रण में है और जिसके लिये वह उत्तरदायी है।

शून्य आधार बजटिंग की उत्पत्ति अमेरिका में हुई। सन् 1964 से, अमेरिका के कृषि विभाग ने शून्य आधार पर बजटिंग का उपयोग अपने बजट बनाने में किया, हालाँकि यह सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त एक प्रयोग था। बाद में **पीटर ए. फायर,** एक स्टाफ नियंत्रण प्रबंधक, ने इस तकनीक को टेक्सास इन्स्ट्रूमेन्ट्स कार्पोरेशन में विकसित किया और इसे सबसे पहली बार सन् 1969-70 में टेक्सास में निजी क्षेत्र की कम्पनियों में लागू किया तथा इसके प्रयोग को प्रचलित किया।

फायर ने शून्य आधार बजटिंग पर **हारवर्ड बिजनेस रिव्यू** में एक लेख नवम्बर - दिसम्बर 1970 में लिखा और 1973 में इस पर एक पुस्तक भी लिखी। जार्जिया के गवर्नर **जिमी कार्टर** ने जब **हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू** में शून्य आधार बजटिंग पर लेख पढ़ा तब उन्होंने **फायर** को एक अस्थायी सलाकहार के रूप में जार्जिया राज्य में इसे लागू करने के लिए बुलाया। सन 1972 में **जिमी कार्टर** ने राज्य में नया शून्य आधार बजटिंग पद्धति आरम्भ किया। बाद में, राष्ट्रपति का चुनाव जीतने के बाद **जिमी कार्टर** ने शून्य आधार बजटिंग को अपने राज्य के बजटरी नियंत्रण तंत्र में सम्मिलित किया। **कार्टर** को यह तकनीक इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने अपने कार्यकाल के प्रथम वर्ष में शून्य आधार बजटिंग के उपयोग को पूरे राजकोषीय वर्ष 1979 में अनिवार्य कर दिया।

5.2 परिभाषा

विगत वर्ष के बजट को ध्यान में रख कर 'शून्य' के आधार पर बनाने की प्रक्रिया ही शून्य आधार बजटिंग है। इसकी प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :

आई.सी.एम.ए. के अनुसार, "शून्य आधार बजटिंग एक विधि है, जिसमें सभी गतिविधियों का हर बार जब बजट बनता है, पुनर्मूल्यांकन होता है। प्रत्येक गतिविधि का भिन्न स्तर पर मूल्यांकन किया जाता है और फिर उपलब्ध कोष के बराबर एक संयोजित परियोजना चुनी जाती है।" इस परिभाषा में सभी गतिविधियों के मूल्यांकन पर जोर दिया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रख कर ही कोई निर्णय लिया जाना चाहिए।

पीटर ए. फायर के अनुसार, "यह एक नियोजन एवं बजटिंग की प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक प्रबन्धक को शून्य से (इसीलिये शून्य आधार) अपने पूरे बजट सम्बन्धी विस्तृत प्रस्तावों का औचित्य देना होगा। उसे सिद्ध करने का भार प्रत्येक प्रबन्धक पर डाल दिया जाता है कि वह धन का व्यय क्यों करें। इस में यह आवश्यक है कि सभी गतिविधियों का विश्लेषण निर्णयन पैकेज के रूप में किया जाय जिस के क्रमबद्ध विश्लेषण का मूल्यांकन किया जाय और महत्ता के क्रम पर उसका श्रेणीयन किया जाय।" इस परिभाषा में, संक्षेप में शून्य आधार बजटिंग का विवरण दिया गया है तथा यह भी बताया गया है कि इस के लिये क्या उपाय अपनाया जाना चाहिए। निर्णयन पैकेज तैयार करने पर भी जोर दिया गया है। साथ ही, उसका उचित मूल्यांकन भी किया जाना चाहिए। उनके

MCOC-129

श्रेणी बद्ध करने पर भी जोर दिया गया है। जो पैकेज अधिक महत्वपूर्ण हो उसे पहले अपनाया जाना चाहिए और जो कम महत्वपूर्ण हो उसे संस्था की परिस्थिति के अनुसार यह निर्णय लेना चाहिए कि बजट में सम्मिलित किया जाये या नहीं। वास्तव में, इस बजटिंग पद्धति के अपनाने का औचित्य यही है कि प्रत्येक व्यय के लागत-लाभ को निर्धारित करके उसे उचित ठहराया जाये। विगत वर्ष में किये गये सभी व्ययों को सही न माना जाय और उन पर पुनर्विचार किया जाय।

शून्य आधार बजटिंग का विचार बिल्कुल नया नहीं है। हर फर्म इसे अपने सम्पूर्ण काल में एक बार अनुभव करता है। उदाहरण के लिये, जब कोई फर्म अपना पहला बजट बना रही हो या फर्म के पुनर्गठन के अवसर पर बजट का संशोधन करना चाहती है, तब इस तकनीक का उपयोग करती है। संस्थाएँ, अपने वित्तीय जीवन में इसका उपयोग केवल कम समय के लिये ही करती हैं। विश्व की अधिकांश उपक्रमें परम्परागत वृद्धिमान बजटिंग (incremental budgeting) तकनीक के आधार पर अभी भी अपना बजट बनाती है।

5.3 शून्य आधार बजटिंग तथा वृद्धिमान बजटिंग में अन्तर

शून्य आधार बजटिंग तथा परम्परागत या वृद्धिमान बजटिंग में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं :

अन्तर का आधार	वृद्धिमान बजटिंग	शून्य आधार बजटिंग
1. अभिमुखता	यह लेखांकन अभिमुख है न कि निर्णय अभिमुख। इसमें व्यय कितना किया जाय इस पर जोर है।	यह निर्णयन आमुख है तथा व्यय क्यों किया जाय इस पर जोर है।
2. निर्भरता	इसमें विगत आँकड़ों पर निर्भरता है।	यह विगत आँकड़ों पर निर्भर नहीं है।
3. दृष्टिकोण	यह इस दृष्टिकोण से प्रभावित है कि व्यय का किस प्रकार से अनुश्रवण किया जाय।	इसका दृष्टिकोण उद्देश्यों को पूरा करने पर है।
4. जोर	इसका जोर विगत वर्ष से कितना कम या अधिक व्यय किये जाने पर है।	इसका जोर, मुख्यतया, लागत-लाभ विश्लेषण पर है।
5. संवहन	इसमें संवहन, सामान्यतया, ऊर्ध्वगामी होता है।	इसमें संवहन क्षैतिज तथा ऊर्ध्वगामी दोनों होता है।
6. विधि	इसकी तैयारी परम्परागत प्रकार के बजट की तैयारी पर आधारित है।	इसकी तैयारी निर्णयन पैकेज के चुनाव, तथा लागत-लाभ विश्लेषण को दृष्टि में रखकर करनी है।
7. यंत्रवत एवं नियमित	इसमें सभी प्रक्रिया यंत्रवत तथा नियमित ढंग से होती है।	इसमें प्रत्येक वर्ष बजटिंग की प्रक्रिया नवीन होती है। सभी क्रियाकलापों का

		प्रतिवर्ष मूल्यांकन किया जाता है।
8. विभक्तिकरण	इसमें बजट का विभक्तीकरण या किसी व्यय विशेष पर कितना व्यय किया जायेगा, प्रबन्धकों की संतुष्टि पर निर्भर करता है।	इसमें बजट का विभक्तीकरण एक निर्णयन इकाई के प्रबंधन पर तथा निर्णयन पैकेज के श्रेणी पर निर्भर करता है।
9. अधिक धन आवंटन की संभावना	इसमें, प्रबंधक अपने बजट की माँग को बढ़ाचढ़ा कर करता है। इसके फलस्वरूप अधिक धन के आवंटन की संभावना है।	इसमें, व्यय को सामान्य परिस्थितियों में, बढ़ाचढ़ा कर दिखाने की संभावना नहीं रहती है।

5.4 इसकी महत्वपूर्ण प्रक्रिया

शून्य आधार बजटिंग के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमुख कदम उठाने होते हैं :

1. सर्वप्रथम बजटिंग के उद्देश्य को निर्धारित करना चाहिए क्योंकि प्रत्येक संस्था में उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

2. यह भी निर्णय लिया जाना चाहिए कि संस्था में किस सीमा तक शून्य आधार बजटिंग को अपनाया जाता है। व्यवहार में, यह संभव है कि सम्पूर्ण संस्था में इसे लागू न किया जाये।

3. संस्था की निर्णयन इकाई की पहचान तथा निर्णयन पैकेज को विकसित करना चाहिए।

4. प्रत्येक निर्णयन पैकेज के औचित्य का विश्लेषण करना चाहिए। साथ ही वैकल्पिक निर्णयन पैकेज भी विकसित किया जाना चाहिए।

5. प्रत्येक निर्णयन पैकेज का, औचित्य के आधार पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह देखना चाहिए कि उपलब्ध संसाधनों की दृष्टि से वह उपयुक्त है अथवा नहीं।

6. इसके उपरान्त, प्रत्येक पैकेज का श्रेणीयन किया जाना चाहिए। इससे यह ज्ञात हो सकेगा कि पहले किस पैकेज का क्रियान्वयन किया जाना है।

7. अन्त में पैकेजों को ध्यान में रखकर आवश्यक संसाधनों का आवंटन किया जाना चाहिए।

निर्णयन पैकेज

सारांश में, एक निर्णयन इकाई लेखा प्रणाली में एक या एक से अधिक क्रियाओं को जोड़ देना चाहिए या वह संस्था के संगठन से जुड़ा होना चाहिए। निर्णयन इकाई की पहचान करने के बाद निर्णयन पैकेज को बनाना चाहिए।

एक निर्णयन पैकेज एक लेख या फार्म है, जिसमें निम्नलिखित बातें होती हैं:

1. एक क्रिया या गतिविधि का विवरण।

2. क्रिया या गतिविधि के लक्ष्य या उद्देश्य ।
3. निष्पादन के विशिष्ट उपाय।
4. किसी गतिविधि को वित्त पोषण करने से होने वाला लाभ।
5. गैर-वित्तीय सहायता के परिणाम।
6. पैकेज की अनुमानित लागत ।
7. उसी गतिविधि को पूरा करने के वैकल्पिक तरीके।

निर्णयन पैकेज को निम्नलिखित में से किसी एक तरह से बनाया जा सकता है :-

1. परस्पर पृथक पैकेज
2. वृद्धिमान पैकेज

(1) परस्पर पृथक पैकेज -

यह एक ही कार्यप्रणाली को करने के लिए वैकल्पिक साधनों को पहचानने से संबंधित है। इन विकल्पों को श्रेणीबद्ध किया जाता है और फिर सर्वोत्तम विकल्प चुना जाता है एवं दूसरे पैकेज को छोड़ दिया जाता है।

(2) वृद्धिमान पैकेज -

यह क्रमबद्ध स्तर के प्रयास और कोष की पहचान करने को दर्शाता है जिसे किसी विशिष्ट क्रिया या कार्य संपादन पर खर्च किया जा सकता है।

परस्पर पृथक वैकल्पिक पैकेज को मूलभूत प्रयासों की प्राप्ति में वृद्धिमान स्तर के प्रयासों में परिभाषित किया जा सकता है।

इसलिए लगातार प्रारंभिक प्रयास में गतिविधि को परिभाषित किया जाता है। लक्ष्य की पूर्णता को प्राप्त करने वाले उपायों को विश्लेषित करने में (उदाहरण-वैकल्पिक पैकेज) फिर गतिविधि को करने के लिए विभिन्न स्तरीय प्रयासों का विश्लेषण करना (उदाहरण - वृद्धिमान पैकेज) होता है।

निर्णयन पैकेज को बनाने के बाद उनको श्रेणीबद्ध किया जाता है। बजट का उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों को गतिविधि की सर्वाधिक लाभ की दिशा की ओर निर्देशित करना होता है और यह निर्णयन पैकेज को प्रमुखता के आधार पर श्रेणीबद्ध करके किया जाता है।

निर्णयन पैकेज को फर्म के घटते लाभ के अनुसार आंकलित और श्रेणीबद्ध किया जाता है । लाभ के ऊपर केन्द्रित करना व संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना, ये दोनों बातें दर्शाये परिणामों के आधार पर सीमित संसाधनों को बाँटने में मदद करती हैं।

जब उपलब्ध संसाधनों की घोषणा कर दी जाती है, श्रेणीबद्ध निर्णयन पैकेज को एकत्र राशि के आधार पर मिलाना एक सरल प्रक्रिया होती है। सम्पूर्ण उपलब्ध संसाधन ग्रहणीय खर्चों को निर्धारित करते हैं। यदि बजट सत्र के दौरान कोई परिवर्तन घटित होता है तब निर्णयन पैकेज की श्रेणीबद्धता का पुनः परीक्षण होना चाहिए। साथ ही संसाधन भी इसके आधार पर तय किए जाने चाहिए।

शून्य आधार बजटिंग वृद्धिमान बजटिंग के ठीक विपरीत है। प्रत्येक निर्णयन इकाई के प्रबंधक को बजट बाँटते समय उचित कारण बताना पड़ता है। इसमें पिछले खर्च का उल्लेख नहीं

NMC-129

किया जाता है। अतः शून्य आधार बजटिंग का मुख्य लक्षण सभी बजटेड गतिविधियों का पुनर्मूल्यांकन देखने के लिए जाँचा जाता है कि कोई गतिविधि वास्तव में जरूरी है और यदि है तो इस प्रक्रिया की लागत क्या है?

5.6 इसे अपनाने की अवधि-अन्तराल

इस प्रक्रिया की अवधि-अन्तराल एक सामान्य चर्चा का विषय है और इसका उत्तर प्रत्येक वर्ष के रूप में हाँ या नहीं, दिया जा सकता है। कुछ प्रबंधन, इसे दोहराने के लिए नहीं कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक सुझाव निम्नलिखित हैं :

1. हर 2-3 वर्ष में इस प्रक्रिया को दोहराना चाहिए।

2. ऐसी गतिविधियों एवं संस्थानों का अध्ययन करना जो शून्य बजटिंग का उपयोग प्रत्येक वर्ष करते हैं ताकि कुछ संस्थान इस प्रक्रिया को प्रत्येक वर्ष करें।

3. उन्हीं कार्यक्रमों के लिए प्रक्रिया को दोहराया जाए जिनमें बड़े बदलाव जरूरी हैं। या परेशानी है ताकि प्रबंधन उन पर ध्यान केन्द्रित कर सके।

4. प्रबंधन के बदलाव के साथ प्रक्रिया को दोहराना ताकि नए प्रबंधन पूरी तरह से कार्यक्रम तथा प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार कर सकें।

5. उपरोक्त के कुछ कांबिनेशन/संयोग का उपयोग करना।

टेक्सास इन्स्ट्रूमेन्ट, यू.एस.ए. में शून्य आधार बजटिंग को प्रत्येक वर्ष दोहराने की संभावना के बारे में नहीं सोचा गया क्योंकि वहाँ परिवर्तन अपवाद नहीं बल्कि एक नियम जैसा बन गया था।

5.7 भारत में शून्य आधार बजटिंग

भारतीय यूनियन बजट में शून्य आधार बजटिंग - केन्द्रीय सरकार ने अप्रैल 1987 से शून्य आधार बजटिंग को अपनाने का प्रयास किया। यह दुर्लभ राष्ट्रीय संसाधनों को उचित ढंग से बाँटने में मदद करने के उद्देश्य से तथा इससे लाभ पाने के उद्देश्य से किया गया था। यह कई विकास के कार्यों एवं गैर-विकास के कार्यों में लागू किया था। एक पत्र, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा 10 जुलाई 1986 में प्रकाशित किया गया था। इसमें सरकारी उपक्रमों को शून्य आधार बजटिंग का उपयोग मूलतः बजट के लिए कहा गया था। तमिलनाडु, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश ने शून्य आधार बजटिंग में काफी उत्सुकता दिखाई थी। महाराष्ट्र सरकार ने 1987-88 तथा राजस्थान सरकार ने 1996-97 में शून्य आधार बजटिंग को लागू करने का विचार किया। लेकिन पूरे देश में, राजनैतिक कारणों से, इसे सरकारी संस्थाओं में अधिकांश जगहों पर लागू नहीं किया गया।

5.8 शून्य आधार बजटिंग के उपयोग

शून्य आधार बजटिंग, बजटिंग की एक प्रक्रिया है जिसे प्रबंधन एक तकनीक के रूप में उपयोग करता है । इसको लागू करने के लिए दो बातें हैं :

1. संस्थान में बजटिंग प्रणाली का होना।

MADC-129

2. कार्य निष्पादन के मूल्यांकन में प्रबंधकों द्वारा परिमाणात्मक पद्धतियाँ विकसित करना।

शून्य आधार प्रक्रिया निर्णयन पैकेज को पहचानती है और फिर उसे लागत-लाभ विश्लेषण के द्वारा क्रमबद्ध करती है। अतः, यह तकनीक ऐसी किसी भी गतिविधि, कार्य सम्पादन में उपयोग की जा सकती है जहाँ पर लागत - लाभ विश्लेषण पाया जाता हो। यद्यपि यह मूल्यांकन अत्यधिक विषयपरक है।

(अ) उद्योगों में - शून्य आधार बजटिंग का उपयोग निम्नलिखित क्षेत्रों में है।

(1) प्रशासनिक क्षेत्र में

(2) तकनीकी उदाहरण : अनुसंधान एवं विकास
इंजीनियरिंग
प्रयोगशालाओं
गुणवत्ता नियंत्रण में
रखरखाव में
उत्पादन योजना में

(3) व्यावसायिक उदाहरण बाजार अनुसंधान
तकनीकी मदद
माल ढुलाई एवं वितरण में

इस प्रकार, शून्य आधार बजटिंग विशेष लागत क्षेत्रों में अधिक लागू होता है। सीधे लागत मूल्य जैसे सीधी सामग्री, सीधा श्रम और परिवर्तनीय निर्माण कार्य, ये सब मानक लागत तकनीक से बेहतर नियंत्रित किए जाते हैं क्योंकि इन स्थितियों में संसाधन और उत्पादन के बीच संबंध को निर्धारित किया जा सकता है।साथ ही उन मानकों से वास्तविक का, मानक और विचलन मापा जा सकता है। जहाँ मानकों को निर्धारित किया जा सकता है, संसाधन से जुड़े मूल्यों को मानक लागत के उपयोग से नियंत्रित करना चाहिए। यदि संसाधन के एक उपयोग की तरह उत्पाद को विशिष्टीकृत नहीं किया जा सकता तो लागत नियंत्रण के दूसरे उपयोगों का उपयोग करना चाहिए। शून्य आधार बजटिंग एक योजना है, संसाधन निर्धारण है और नियंत्रण औजार है। शून्य आधार बजटिंग प्रणाली के अनुसार व्यय के समर्थन होने की आवश्यकता अनुमानित उत्पादन के आधार पर है। इसलिए शून्य बाधार बजटिंग किसी उद्यम में संपूर्ण बजटिंग प्रयासों के केवल एक भाग पर लागू हो सकता है। इसलिए क्षेत्र / योजना बनाने में एवं नियंत्रित करने में इसका उपयोग बहुत कठिन है।

(ब) सरकार - शून्य आधार बजटिंग तेजी से सभी सरकारी गतिविधियों में तथा एजेन्सी में अपनायी जा सकती है क्योंकि सरकार एक सेवा संस्थान है जो कर देने वालों को कुछ लाभ देती है। शून्य आधार बजटिंग सर्वप्रथम जार्जिया राज्य में अमेरिका में उपयोग की गई थी बाद में स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि आदि में इसे लागू किया गया।

5.9 शून्य आधार बजटिंग से लाभ

शून्य आधार बजटिंग से, किसी भी व्यावसायिक संस्था या सरकार को निम्नलिखित लाभ है :

NMDJ-429

1. यह पहले से चली आ रही अक्षम प्रक्रियाओं को समाप्त करती है तथा केवल लाभप्रद प्रक्रियाओं को अपनाने पर ही बल देती है।

2. इसमें, सभी चालू प्रक्रियाओं पर विस्तृत अध्ययन पर जोर दिया जाता है और उन प्रक्रियाओं को नहीं अपनाया जाता जिससे समुचित लाभ न हो।

3. यह क्षय, बर्बादी तथा अप्रचलित प्रक्रियाओं की पहचान करने में सहायक है। साथ ही, उन्हें समाप्त किया जाता है।

4. बजट तैयार करने से पूर्व सुचारू ढंग से योजना तैयार करने पर विशेष बल इसमें दिया जाता है।

5. प्रबन्धकों द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर पेश किये जाने वाले बजट पर रोक लगाता है जिससे न तो अनावश्यक धन का आवंटन हो और न ही धन का अपव्यय हो।

6. यह प्रबन्धकों तथा उनसे जुड़े स्टाफ का बजटिंग की हर प्रक्रिया में हर स्तर पर भागीदारी को बढ़ावा देता है। इससे उन्हें कार्य में अधिक रूचि लेने की प्रेरणा मिलती है।

7. पूरी संस्था में, इसके फलस्वरूप, पर्याप्त संवहन में वृद्धि होती है।

8. यह ऐसी उपयुक्त तकनीक है जिसमें यह संस्था विशेष को उपलब्ध दुर्लभ संसाधनों के उपयोग का सर्वोत्तम विकल्प ढूँढने में सहायक होती है।

9. यह निर्णयन पैकेज सम्बन्धी प्रपत्रों के उपलब्ध होने से प्रबन्धकों को पूरी संस्था के क्रिया-कलापों के गहन अध्ययन करने का अवसर उपलब्ध होता है। यह प्रभावकारी नियोजन नियंत्रण तथा प्रबंधन में सहायक होता है।

10. इस प्रकार की बजटिंग, विशेष रूप से, सेवा विभागों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है जहाँ उत्पाद की पहचान करना कठिन होता है।

5.10 शून्य आधार बजटिंग की सीमायें

शून्य आधार बजटिंग की प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं :

1. निर्णयन इकाई की पहचान करना आसान नहीं होता है। इससे, इस प्रकार के बजट को तैयार करने में कठिनाई होती है।

2. निर्णयन पैकेज तैयार करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है विशेष रूप से बड़े आकार की संस्था में ।

3. इस प्रकार की बजटिंग में अधिक कागजी कार्यवाही करनी पड़ती है। समय भी अधिक लगता है। और बजटिंग की लागत में अपेक्षाकृत वृद्धि होती है।

4. पूरी बजटिंग प्रक्रिया, निर्णयन इकाई के प्रबंधकों के द्वारा पूरी की जाती है अतः, यह तकनीक तब तक सफलता के साथ लागू नहीं की जा सकती जब तक इसके लिये वे प्रशिक्षित न हों।

5. प्रबन्धकों को शून्य आधार बजटिंग के विचार को ठीक तरह से समझने में कठिनाई होती है और किसी नये विचार को अपनाने का विरोध भी करते हैं।

6. निर्णयन पैकेज का श्रेणीयन, आवश्यक धन के आवंटन में कठिनाई आती है और यह

प्रक्रिया थका देने वाली होती है।

7. संस्था के अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में इस प्रकार की बजटिंग बाधा डालती है तथा, प्रायः इससे विपरीत परिणाम मिलने की सम्भावना रहती है।

8. शून्य आधार बजटिंग के अन्तर्गत, लोचपूर्ण बजटिंग संभव नहीं है अतः इससे प्राप्त होने वाले लाभों से संस्था विशेष वंचित रह जायेगी।

5.11 सारांश

शून्य आधार बजटिंग में 'शून्य' को आधार मानकर बजट तैयार किया जाता है। इसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपने विस्तृत प्रस्तावों के लिए औचित्य देना होता है। सभी गतिविधियों का विश्लेषण निर्णयन पैकेज के रूप में किया जाता है। इन पैकेजों का मूल्यांकन का उनका श्रेणीयन किया जाता है। इस प्रकार की बजटिंग की उत्पत्ति अमेरिका में हुई । इसे **पीटर ए. फायर** ने विकसित किया था। तत्कालीन राष्ट्रपति **जिमी कार्टर** ने इस बजटिंग को राज्य स्तर पर लागू किया। भारत में भी, इसके लिये प्रयास किया गया किन्तु अभी इसे अपनाया नहीं जा सका है। यह विशेष रूप से, सेवा सम्बन्धी संस्थाओं के लिये उपयोगी है जहाँ उत्पाद की पहचान कठिन होती है।

5.12 शब्दावली

1. **शून्य आधार बजट** - बजट बनाते समय विगत वर्षों के तथ्यों एवं समंकों पर ध्यान न देकर 'शून्य' को आधार माना जाता है।

2. **वृद्धिमान बजट** - परम्परागत बजट में, विगत वर्ष की धनराशि में कुछ वृद्धि करके बजट तैयार किया जाता है। इसीलिये, इसे वृद्धिमान बजट कहते हैं।

3. **निर्णयन पैकेज** - निर्णयन पैकेज एक लेख या फार्म है जिसमें गतिविधि का पूरा विवरण, उद्देश्य, लागत, व लाभ आदि का विवरण दिया जाता है।

4. **पैकेज का श्रेणीयन** - प्रत्येक निर्णयन पैकेज को क्रमबद्ध ढंग से कई श्रेणियों में बाँटा जाता है जिससे श्रेणी के आधार पर उसका क्रियान्वयन किया जा सके।

5. **परस्पर पृथक पैकेज** - यह एक ही कार्यप्रणाली को करने के लिये, वैकल्पिक साधनों के पहचानने से सम्बन्धित है जिससे सर्वोत्तम विकल्प को चुना जा सके।

5.13 बोध प्रश्न

1. शून्य आधार बजटिंग की उत्पत्ति का वर्णन कीजिए तथा इसका अर्थ समझाइये।

2. शून्य आधार बजटिंग की परिभाषा दीजिए तथा इसका महत्व समझाइये।

3. शून्य आधार बजटिंग की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए। इसके क्या उपयोग हैं?

4. शून्य आधार बजटिंग तथा वृद्धिमान बजटिंग में अन्तर बताइये। शून्य आधार बजटिंग क्यों प्रचलित नहीं हो पायी है?

5. शून्य आधार बजटिंग के लाभ तथा उसकी सीमाओं का उल्लेख कीजिये।

6. निर्णयन पैकेज से आप क्या समझते हैं। इसके भेद बताइये तथा इसमें वर्णित विषयों का उल्लेख कीजिये।

NMRC-129

इकाई - 6 निष्पादन बजटिंग

इकाई की रूपरेखा-

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 निष्पादन बजटिंग का अर्थ एवं विशेषताएं

6.3 निष्पादन बजटिंग के उद्देश्य

6.4 निष्पादन बजटिंग की प्रक्रिया

6.5 परम्परागत बजटिंग एवं निष्पादन बजटिंग में अन्तर

6.6 निष्पादन बजटिंग से लाभ

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 बोध प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको -

- निष्पादन बजटिंग का अर्थ ज्ञात होगा
- इस बजटिंग के उद्देश्यों की जानकारी होगी ।
- इस बजटिंग की प्रक्रिया ज्ञात होगी,
- निष्पादन बजटिंग तथा परम्परावादी बजट में अन्तर की जानकारी होगी,
- निष्पादन बजटिंग से होने वाले लाभ या उसके प्रभाव की जानकारी होगी।

6.1 प्रस्तावना

1949 में सर्वप्रथम, **हूवर कमीशन** ने अमेरिका में निष्पादन बजटिंग का प्रयोग किया था । इस कमीशन ने कार्य, कार्यक्रम तथा क्रिया-कलापों के या गतिविधियों के आधार पर बजट तैयार करने पर विशेष बल दिया था। इस प्रकार के बजट में वित्तीय तथा भौतिक पक्षों को सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत किसी भी कार्यक्रम या गतिविधियों के लिये भौतिक रूप में उत्पाद तथा उससे सम्बन्धित वित्तीय आगतों या व्यय के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जो कि परम्परागत बजटिंग में नहीं किया जाता । बजटिंग की प्रक्रिया सरकारों के द्वारा विशेषतया की जाती है जहाँ व्यय पर तथा वित्तीय पहलुओं पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। इस कमी को दूर करने के लिये ही निष्पादन बजटिंग का आरम्भ किया गया। बजटेड नियोजन का उचित कार्यान्वयन अत्यन्त आवश्यक होता है। इस सम्बन्ध में, वास्तविक निष्पादन का माप वित्तीय तथा भौतिक दोनों ही पहलुओं के माध्यम से किया जाता है।

6.2 निष्पादन तथा बजटिंग का अर्थ एवं विशेषताएँ

निष्पादन बजटिंग के अन्तर्गत कार्य, कार्यक्रम क्रिया - कलापों तथा प्रात्योजनाओं के लिये बजट तैयार किया जाता है।

कोहलर के शब्दों में, ''निष्पादन बजट उत्पादन का बजट है जैसा कि कार्यक्रम नियोजन बजटिंग प्रणाली में होता है।'' इस परिभाषा में, निष्पादन बजटिंग तथा कार्यक्रम नियोजन बजटिंग में अन्तर नहीं किया गया है जबकि निष्पादन बजटिंग कार्यक्रम नियोजन बजटिंग से आधार भूत रूप से अलग है।

वास्तव में, ''निष्पादन बजट कार्यों, क्रिया-कलापों तथा प्रायोजनाओं पर आधारित बजट है जो कि कार्य सम्पादन किये जाने वाले कार्य की सामान्य एवं सापेक्ष महत्ता तथा प्रदान की जाने वाली सेवाओं पर विशेष ध्यान देता है न कि कार्मिक सेवा, आपूर्ति तथा उपकरण आदि जैसे निष्पादन के साधनों पर। इस प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों के कार्यों को क्रिया-कलापों के कार्यक्रमों, उप-कार्यक्रमों तथा संघटीय योजनाओं आदि में बॉटती है। और प्रत्येक का अनुमान लगाती है।''

यह परिभाषा व्यापक है तथा निष्पादन बजटिंग के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालती है। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट के अनुसार निष्पादन बजटिंग ''एक अवधि में पूरा किये जाने वाले जॉब के विशिष्ट उद्देश्यों के विश्लेषण, पहचान करने, सरलीकरण तथा पारदर्शक बनाने की प्रक्रिया है जो संगठनीय उद्देश्यों तथा जॉब के उद्देश्यों के सन्दर्भ में हो। यह तकनीक संगठन के व्यावसायिक उद्देश्यों के लिये विशिष्ट निर्देशन से सम्बन्धित है।'' इस परिभाषा में संगठन तथा जॉब के उद्देश्यों की पूर्ति पर विशेष बल दिया गया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से, निष्पादन बजटिंग की निम्नलिखित विशेषतायें ज्ञात होती हैं :-

1. कार्य या सेवा का, जो निष्पादित किया जाना है, स्पष्ट रूप से विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है।

2. कार्यो, कार्यक्रमों, क्रिया-कलापों तथा प्रायोजनाओं के संदर्भ में बजट का क्रियात्मक वर्गीकरण किया जाता है।

3. आगत और उसके लागत के संदर्भ में, उत्पादों के मापन की तकनीक तैयार की जाती है, इसके लिये आवश्यक माप तैयार किये जाते हैं।

4. वित्तीय तथा भौतिक दोनों पहलुओं को अन्तर्सम्बन्धित किया जाता है जिससे प्रभावी नियंत्रण संभव हो सके।

6.3 निष्पादन बजटिंग के उद्देश्य

निष्पादन बजटिंग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु तैयार किया जाता है। इसके कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

NMRC-129

1. प्रत्येक क्रिया-कलाप तथा कार्यक्रमों के भौतिक तथा वित्तीय पहलुओं में आपस में सह-सम्बन्ध स्थापित करना।

2. प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर बजट तैयार करने की प्रक्रिया में आवश्यक सुधार लाना।

3. प्रत्येक स्तर पर, निर्णयन, जाँच तथा नियंत्रण आदि के लिये पर्याप्त सुधार लाना।

4. निष्पादन अंकेक्षण के लिये सहायता प्रदान करना तथा उसे अधिक प्रभावशाली बनाना।

5. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों ही प्रकार के उद्देश्यों के संदर्भ में उनकी प्रगति का मापन करना।

6. प्रशासकीय या सरकारी प्रशासन के संदर्भ में, नियंत्रण करने वाली विभिन्न संस्थाओं , जैसे - पी.ए.सी., प्रन्यास मण्डल तथा विधायिका आदि को आवश्यक सहायता प्रदान करना।

6.4 निष्पादन बजटिंग की प्रक्रिया

निष्पादन बजटिंग की कोई पद्धति लागू करने के लिये विशेषकर शासकीय विभागों के लिए जहाँ यह तकनीक विशेषकर उपयोगी है, सबसे पहले सरकार के दीर्घावधि के उद्देश्यों की दिशा में प्रत्येक विभाग द्वारा प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों को निर्धारित करना आवश्यक है। यदि शहर को साफ रखना स्थानीय सरकार के दीर्घकालिक लक्ष्य है। तो उस दिशा में सम्बन्धित स्वास्थ्य विभाग की गतिविधियों को भी तय करना चाहिए। तब यह विभाग उत्तरदायित्व केन्द्र होगा जहाँ आवश्यक गतिविधियों का निर्वाह किया जाता है। निष्पादन बजटिंग के लिये निम्नलिखित प्रक्रिया अपनानी चाहिए:

1. लक्ष्यों, उद्देश्यों व नीतियों का निर्धारण करना।

2. प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिये परिमाणात्मक इकाइयों में अनुमानित निष्पादन का एक कार्यक्रम तय करना आवश्यक है।

3. प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिये प्रदर्शन का कार्यक्रम तय करने के बाद विभिन्न गतिविधियों के लिये व्यवस्थित व्यय की राशि तथा गतिविधियों को अपना कर मदद देने वाले स्त्रोतों की घोषणा करना जरूरी है।

4. वास्तविक प्रदर्शन की तुलना प्रत्येक गतिविधि के लिये तय किये लक्ष्य (दोनों भौतिक इकाइयों एवं धन के संदर्भ में) एवं वास्तविक प्रदर्शन से करते हैं।

5. निर्धारित समय अवधि में प्रबन्धन को विचलन से अवगत कराने के लिये और सुधारात्मक गतिविधियाँ सुझाने के लिये प्रतिवेदित करते हैं।

6. नियंत्रण एवं बजट की प्रक्रिया में पुनर्विचार हेतु मूल्यांकन की सुव्यवस्थित प्रक्रिया लागू होना।

7. निष्पादन बजटिंग को सुचारू रूप से कार्यान्वित करने के लिए, संस्था के लेखांकन सम्बन्धी

संरचना में भी आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए। वास्तव में, लेखांकन को कार्य, कार्यक्रम तथा क्रिया कलाप आमुख किया जाना चाहिए जिससे इस बजटिंग की विचारधारा उसमें समाहित हो सके।

6.5 परम्परागत तथा निष्पादन बजटिंग के अन्तर

परम्परागत बजटिंग तथा निष्पादन बजटिंग दोनों में कई आधारभूत अन्तर है। इनमें कुछ प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं -

1. परम्परागत बजटिंग में लागत और राजस्व को धन के रूप में व्यक्त किया जाता है और गतिविधि के बजटेड लागत की तुलना गतिविधि की वास्तविक लागत से की जाती है। निष्पादन बजटिंग, भौतिक इकाइयों एवं सम्बन्धित लागत दोनों ही पहलुओं पर जोर देता है।

2. परम्परागत बजटिंग में क्रियात्मक बजट तैयार होते हैं और अन्त में मास्टर बजट बनता है। निष्पादन बजट किसी उत्तरदायित्व केन्द्र के द्वारा किसी गतिविधि के प्रदर्शन को दर्शाने के लक्ष्य रखने वाली संगठनात्मक गतिविधयों पर जोर देता हैं

3. परम्परागत बजट अवधि के लिये कार्ययोजना बनाता है। यह मूलतः सामान्य होती है। निष्पादन बजटिंग निश्चित लक्ष्यों इसके लिये आवश्यक गतिविधियों की कीमत का निष्पादन की विधियों एवं वास्तविक निष्पादन का उल्लेख करता है।

4. परम्परागत बजटिंग वित्तीय पहलुओं पर जोर देता है किन्तु वह भौतिक पहलुओं और प्रदर्शन पर ध्यान नहीं देती। परिणामस्वरूप, भौतिक इकाइयों और सम्बन्धित मूल्य के रूप में प्रदर्शन का नियंत्रण प्राप्त नहीं किया जा सकता। निष्पादन बजटिंग इस समस्या के हल का मार्ग निकालता है। निष्पादन बजटिंग कार्यक्रम बजटिंग से आधारभूत रूप से अलग है। निष्पादन बजटिंग में भी कार्यक्रमों का तथा भौतिक इकाइयों के उत्तरदायित्व केन्द्रों के द्वारा प्रदर्शन अनुमानों का विकास जरूरी है, कभी-कभी वे गतिविधियाँ जो निष्पादन बजट को दर्शाती हैं कार्यक्रम को भी सम्मिलित कर सकती हैं। कार्यक्रम बजट भविष्योन्मुखी है जबकि निष्पादन बजटिंग भूतकाल पर आधारित है।

6.6 निष्पादन बजटिंग से लाभ

परम्परागत बजटिंग की कमियों को दूर करने के लिये ही, निष्पादन बजटिंग का प्रयोग आरम्भ हुआ है। वास्तव में, निष्पादन बजटिंग लाभ कमाने वाली एवं लाभ न कमाने वाली दोनों ही प्रकार की संस्थाओं के लिये लाभप्रद सिद्ध हुआ है। निष्पादन बजटिंग के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. दीर्घकालीन लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर प्रगति सुनिश्चित करती है।

2. कार्यक्रमों और गतिविधियों के भौतिक एवं आर्थिक पहलुओं के बीच संबंध स्थापित करती है।

3. प्रबंधन के हर स्तर पर बजट पुनर्विचार की एवं निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करती है।

NMDC-129

4. अधिक प्रभावी अंकेक्षण की सुविधा प्रदान करती है।

5. यह समयबद्ध लक्ष्यों की प्रगति नापने में मदद करता है जिससे कि समय पर सुधारात्मक कदम उठाए जा सकें।

6. यह प्रबंध शैली में भी सुधार लाता है जिससे कि विकेन्द्रीकृत उत्तरदायित्व संरचना स्थापित हो सके साथ ही संस्था में आवश्यकतानुसार, प्रभावी अधिकार अन्तरण किया जा सके।

6.7 सारांश

सीमित संसाधनों को नियोजित तथा नियंत्रित करने के लिये, निष्पादन बजटिंग का उपयोग आरम्भ किया गया जिसे निजी, सार्वजनिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों द्वारा सफलता के साथ अपनाया गया। निष्पादन बजटिंग कार्यक्रमों तथा गतिविधियों के आधार पर तैयार किया जाता जिसमें भौतिक इकाइयों तथा सम्बन्धित लागत दोनों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं नीतियों को निर्धारित कर, उत्तरदायित्व केन्द्र का निर्णयन लिया जाता है जिससे कि वास्तविक प्रदर्शन या निष्पादन की तुलना निर्धारित लक्ष्यों से करके उसमें आवश्यक सुधार लाया जा सके निष्पादन बजटिंग तथा कार्यक्रम बजटिंग दोनों ही आधारभूत दृष्टि से भिन्न-भिन्न है, यद्यपि दोनों में कुछ समानतायें भी हैं ।

6.8 शब्दावली

कार्यक्रम बजटिंग - दीर्घकालीन योजनाओं, सम्बन्धित उपलब्धियों एवं संसाधनों से संबंधित बजट तैयार करने की प्रक्रिया है।

उत्तरदायित्व केन्द्र - किसी भी विभाग में निर्धारित वह केन्द्र जहाँ आवश्यक गतिविधियों का निर्वाह किया जाता है और सम्बन्धित प्रबन्धक को कार्य के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सके।

विचलन - सम्बन्धित लक्ष्यों तथा वास्तविक प्रदर्शन में अन्तर को विचलन कहते हैं। यह धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ही हो सकता है।

भौतिक इकाई - यह परिमाण या मात्रा से सम्बन्धित है न कि धन से। उत्पादन 100 टन है यह इसकी भौतिक इकाई है।

6.9 बोध प्रश्न

1. निष्पादन बजटिंग से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताएं बताइये।

2. निष्पादन बजटिंग तथा परम्परागत बजटिंग में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3. निष्पादन बजटिंग की परिभाषा कीजिये। क्या निष्पादन बजटिंग तथा कार्यक्रम बजटिंग समानार्थी है?

4. निष्पादन बजटिंग की प्रक्रिया समझाइये तथा इसके उपयोगों का वर्णन कीजिये।

5. "निष्पादन बजटिंग को परम्परागत बजटिंग की सीमाओं को दूर करने के लिये अपनाया जाता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिये।

खण्ड

5

प्रतिवेदन एवं एकीकृत लेखांकन के उभरते आयाम

इकाई -1	प्रबन्ध प्रतिवेदन के उद्देश्य तथा सिद्धान्त	5
इकाई -2	प्रमाण लागत विधि तथा विचरणांश विश्लेषण	9
इकाई -3	विभिन्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन की आवश्यकता	36
इकाई -4	मानव संसाधन लेखांकन	50
इकाई -5	स्फीति लेखा-विधि	60

NMDC-129

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 जगदीश प्रकाश	पूर्व प्रति कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डीन एवं पूर्व विभागाध्यक्ष वाणिज्य संकाय, पूर्व निदेशक मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालरय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 सुधीर शुक्ला	रीडर, वाणिज्य विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक - कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज-2023

मुद्रक - के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

खण्ड-5 परिचय

इस खण्ड में प्रबन्धकीय लेखांकन के अन्तर्गत प्रतिर्वदन एवं एकीकृत लेखांकन के उभरते आयाम का विशद विवरण पाँच इकाईयों में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

इकाई - 1 में प्रबन्धकीय प्रतिवेदन के उद्देश्य तथा सिद्धान्त की व्याख्या की गई है।

इकाई - 2 में प्रमाण लागत विधि, और विचरणांश विश्लेषण की चर्चा की गई है।

इकाई - 3 में विभिन्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन की आवश्यकता की व्याख्या की गई है।

इकाई - 4 में मापन संसाधन प्रबन्ध की विशद व गहन व्याख्या की गई है।

इकाई - 5 में स्फीतिलेखा विधि का विश्लेषण किया गया है।

NMDC-129

NMDC-129

इकाई –1 प्रबन्ध हेतु प्रतिवेदन : प्रतिवेदन के उद्देश्य तथा सिद्धान्त (REPORTING TO MANAGEMENT : OBJECTIVE AND PRINCIPLES OF REPORTING)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रतिवेदन का अर्थ

1.3 प्रतिवेदन का उद्देश्य

1.4 प्रतिवेदन के सिद्धान्त

1.5 सैद्धान्तिक प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- प्रतिवेदन की रूपरेखा एवं आशय ज्ञात होगा।
- प्रतिवेदन का अर्थ ज्ञात होगा।
- प्रतिवेदन के उद्देश्य ज्ञात होंगे।
- प्रतिवेदन के सिद्धान्त ज्ञात होंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रबन्ध हेतु प्रतिवेदन या प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली प्रबन्धकीय लेखाविधि का एक महत्वपूर्ण अंग है। किसी भी संस्था से सम्बन्धित सभी अधिकारियों के समक्ष भिन्न–भिन्न प्रकार की सूचनाओं को प्रस्तुत किया जाता है जिनके आधार पर ही वे उचित व सही निर्णय लेते हैं और नीति निर्धारण करते हैं। यह कार्य प्रतिवेदनों एवं अन्य विवरण पत्रों के आधार पर ही किया जाता है। अतः प्रबन्ध लेखापाल का यह कर्तव्य हो जाता है वह व्यवसाय के संचालन एवं अन्य सूचनाओं से सम्बन्धित तथ्यों एवं आंकड़ों को सही समय पर सम्बन्धित अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करने की क्रिया को ही प्रबन्ध हेतु प्रतिवेदन कहा जाता है। इसकी प्रभावशाली व्यवस्था के अभाव में प्रबन्ध के लिये लेखा– विधि का कोई महत्य नहीं रह जाता है।

1.2 प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली का अर्थ (Meaning of Managerial Reporting System) :

प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली संवहन वह प्रक्रिया है जिसमें सूचनायें एकत्रित कर रखी जाती है और संस्था के नियोजन, निर्देशन, निर्णयन तथा नियंत्रण आदि जैसे प्रबन्धकीय कार्यों के लिये उपलब्ध करायी जाती है। वस्तुतः 'प्रतिवेदन' एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रतिवेदनों के द्वारा सूचना सम्बन्धित अधिकारियों को निरन्तर प्रदान की जाती है। इस प्रकार 'प्रतिवेदन' प्रबन्ध हेतु आवश्यक सूचनाओं को प्रेषित करने की एक विधि है। सही एवं उचित तैयार किया गया प्रतिवेदन पाने वाले के ज्ञान में अभिवृद्धि करता है। प्रतिवेदन का शाब्दिक अर्थ सूचनाओं को सम्प्रेषित करना है। हॉम स्ट्रीट एवं वैट्टी के अनुसार, "प्रतिवेदन प्रबन्ध को निर्णयन कार्य में सहायता देने हेतु व्यवसाय के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को शोध अथवा वस्तुस्थिति से सम्बन्धित सूचना देने का लिखित संवहन है।"

आई0सी0एम0ए0 लन्दन के अनुसार, "प्रतिवेदन प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें परिभाषित समंक साधनों का उपयोग करने वाले उत्तरदायी लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए संकलित, संश्लेषित एवं सम्प्रेषित किये जाते है।" इस प्रकार ये प्रतिवेदन सामान्यतः साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक जैसी आवश्यकता हो, प्रेषित किये जाते है।

1.3 प्रतिवेदन के उद्देश्य (Objective of Reports) :

प्रतिवेदन के उद्देश्य निम्नलिखित है—

1. प्रतिवेदन प्रणाली का सर्वप्रथम उद्देश्य लेखा – सूचनाओं को सम्बन्धित अधिकारियों तथा उच्च प्रबन्धकों तक पहुंचाना होता है। ये सूचनायें आर्थिक चिट्ठा, लाभ–हानि खाता, कोष प्रवाह विवरण, रोकड़–प्रवाह विवरण आदि के रूप में हो सकती है।

2. प्रतिवेदन की सहायता से विभिन्न योजनाओं में सर्वश्रेष्ठ योजना का चुनाव सम्भव हो पाता है जैसे–बनाओ या खरीदो का निर्णय, किराये या खरीदो का निर्णय आदि इसके उदाहरण है।

3. विभिन्न प्रकार के लेखों के विश्लेषण के द्वारा संस्था के लाभ को बढ़ाया नहीं जा सकता फिर भी प्रबन्ध के लिये आवश्यक हल निकालने में सहायता प्रदान करते हैं जिससे क्रियाशीलन लाभदायक हो सके।

4. प्रतिवेदनों से प्रबन्धकों के अलावा व्यवसाय के अन्य पक्षों जैसे–वित्तीय संस्थाओं, सरकार, कर अधिकारियों, स्कन्ध विपणि आदि को महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती है।

5. नियंत्रण प्रतिवेदन का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है। प्रतिवेदनों से कर्मचारियों

NMDC-129

की क्षमता का माप सम्भव होता है। यह लागत को नियंत्रित करने में काफी मदद करता है। प्रतिवेदन की सहायता से प्रबन्धक गलत एवं अनिष्टकारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रख सकते हैं।

6. प्रतिवेदनों की सहायता से प्रबन्धकीय क्षमता के निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है साथ ही प्रबन्धकीय क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

7. व्यावसायिक परिवर्तनों की स्थिति में इसका सामना करने में प्रतिवेदनों से महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त कर काफी सहायता मिलती है।

8. व्यवसायिक प्रतिवेदनों से व्यवसाय के परिणामों का विश्लेषण किया जा सकता है। व्यवसाय के भूतकालीन परिणामों तथा वर्तमान परिस्थितियों को देखकर प्रबन्धक भविष्य के लिये नियोजन कर सकता है।

9. प्रतिवेदनों के आधार पर विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

10. प्रतिवेदनों के माध्यम से ग्राहकों, अंशधारियों एवं सरकार से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

1.4 प्रतिवेदन के सिद्धान्त (Principles of Reporting) :

प्रतिवेदन उन अनेक ऐसी सूचनाओं का संक्षिप्त विवरण होते हैं जो कि प्रबन्धकों को अपने निर्णयों के लिये आवश्यक होते हैं। अतः इनको तैयार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये–

(1) **उचित शीर्षक** : प्रत्येक प्रतिवेदन का इसके अन्तर्निहित विषयों की प्रकृति को दर्शाता हुआ एक उचित शीर्षक होना चाहिये जिससे कि यह पता चल सके कि यह कहाँ से आरम्भ किया गया है, किस अवधि का है और किस व्यक्ति के लिए तैयार किया गया है।

(2) **सरलता** : प्रतिवेदन सरल, स्पष्ट और बोधगम्य भाषा में तैयार किये जायें ताकि उनके प्रयोगकर्ता उनका सही उपयोग कर सकें। जहाँ तक हो सके प्रतिवेदनों में लेखा–विधि की तकनीकी भाषा का प्रयोग न किया जाय।

(3) **तर्कसंगत क्रम** : प्रतिवेदन में सूचनाओं को तर्कसंगत क्रम में प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

(4) **संक्षिप्तता** : प्रतिवेदन अनावश्यक रूप से बड़ा न होकर संक्षिप्त, विशिष्ट व सही होना चाहिये। अनावश्यक व असम्बद्ध सूचनाओं को प्रतिवेदन में नहीं दिया जाय। प्रतिवेदन के सहायक तथ्यों या आंकड़ों को परिशिष्ट के रूप में दिया जाना चाहिये।

(5) **स्पष्टता** : प्रतिवेदन में दी गयी सूचनायें स्पष्ट होनी चाहिये जिससे कि इसको पढ़ने वाला इससे कोई गलत निष्कर्ष न निकाल सके।

NMRC-129

(6) सम्बद्धता : प्रतिवेदन में सभी स्तर के प्रबन्धकों को केवल वे ही सूचनायें प्रस्तुत की जायें जो कि उनके लिये आवश्यक और उपयोगी हों।

(7) तत्परता : प्रतिवेदन की तैयारी व उसके प्रस्तुतीकरण में शीघ्रता लायी जाये। कार्य सम्पादन के तुरन्त बाद ही प्रतिवेदन का कार्य पूरा हो जाना चाहिये। इसमें देरी से कार्यवाही का समय निकल जाता है तथा इनकी तैयारी का उद्देश्य ही विफल हो जाता है।

(8) तुल्यता और एकरूपता : प्रतिवेदन में पिछले निष्पादनों से तुलना करना सम्भव होना चाहिये जिससे प्रवृत्ति और सम्बन्ध का पता लग सके। इसके लिये विभिन्न अवधियों के प्रतिवेदनों में एकरुपता होनी चाहिये।

(9) अपवाद का सिद्धान्त : प्रतिवेदन में सूचनाओं के प्रस्तुतीकरण में 'अपवाद के सिद्धान्त' का पालन किया जाय अर्थात् इसमें केवल वे ही तथ्य दर्शाये जायें जोकि सामान्य या योजना से भिन्न हों।

(10) अनुकूलनीयता : प्रतिवेदन का प्रारूप व विषय–वस्तु इसके तैयार करने के उद्देश्य व इसके प्रयोगकर्ता प्रबन्धक के दृष्टिकोण व रूचि के अनुरूप होना चाहिये किन्तु एक ही प्रबन्धक को प्रस्तुत किये जाने वाले एक ही विषय के विभिन्न अवधियों के प्रतिवेदनों में एकरूपता होनी चाहिये।

(11) शुद्धता : प्रतिवेदन में दी गई सूचनायें शुद्ध व सही हों अन्यथा प्रबन्ध का इन प्रतिवेदनों से विश्वास ही उठ जायेगा। प्रतिवेदन में शुद्धता लाने के प्रयत्न में सूचना की स्पष्टता, शीघ्रता व लागत पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये।

(12) नियन्त्रणीय और अनियन्त्रणीय तथ्यों में स्पष्ट–भेद : प्रत्येक प्रतिवेदन में नियन्त्रणीय और अनियंत्रणीय तथ्यों का वर्णन पृथक्–पृथक् होना चाहिये जिससे उत्तरदायित्वों का सही निर्धारण किया जा सके।

(13) लागत : प्रतिवेदन प्रणाली से मिलने वाला लाभ उसमें निहित लागत के अनुरूप होना चाहिये। यद्यपि इस प्रणाली के लाभ का मौद्रिक मूल्यों में आकलन करना सम्भव नहीं है, किन्तु यह प्रयास करना चाहिये कि प्रतिवेदन प्रणाली मितव्ययी हो।

1.5 बोध प्रश्न :

प्रश्न–1 प्रबन्ध हेतु प्रतिवेदन से आप क्या समझते है? इसके उद्देश्यों को बतलाइये।

प्रश्न–2 प्रतिवेदन के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये।

इकाई–2 प्रमाप लागत विधि तथा विचरणांश विश्लेषण (STANDARD COSTING AND VARIANCE ANALYSIS)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रमाप लागत विधि का अर्थ

2.2 प्रमाप लागत विधि का निर्धारण

2.3 प्रमाप लागत विधि का उद्देश्य

2.4 लागत विचरणांश का विश्लेषण

2.5 विचरणांश की गणना

- 2.5.0 सामग्री लागत विचरणांश
- 2.5.1 श्रम लागत विचरणांश
- 2.5.2 अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश

2.6 प्रमाप लागत विधि के लाभ

2.7 प्रमाप लागत विधि की सीमायें

2.8 सैद्धान्तिक प्रश्न

2.9 व्यवहारिक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- प्रमाप लागत का अर्थ ज्ञात होगा।
- प्रमाप लागत का निर्धारण ज्ञात होगा।
- प्रमाप लागत का उद्देश्य ज्ञात होगा।
- प्रमाप लागत का विचरणांश का विश्लेषण ज्ञात होगा।
- विचरणांश में सामग्री, श्रम व अप्रत्यक्ष व्यय की गणना की जानकारी होगी।
- प्रमाप लागत विधि के लाभ ज्ञात होंगे।
- प्रमाप लागत विधि की सीमायें ज्ञात होंगी।
- प्रमाप लागत की गणना–प्रक्रिया ज्ञात होगी।

2.1 प्रमाप लागत विधि का अर्थ (Meaning of Standard Costing) :

प्रमाप लागत लेखा–विधि का विधिवत् अध्ययन करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि प्रमाप लागत से क्या आशय होता है। सामान्यतः प्रमाप लागत से तात्पर्य उन लागतों से होता है ,जो एक दी गयी परिस्थितियों में एक प्रदत्त उत्पादन की मात्रा पर सामान्य रुप में की जा सकती हों। ब्रउन एवं हावर्ड के अनुसार, ''प्रमाप लागत एक पूर्व निर्धारित लागत है, जो यह निर्धारित करती है कि दी हुई परिस्थितियों में प्रत्येक उत्पाद या सेवा पर क्या लागत होनी चाहिए।''

आई.सी.एम.ए.आफ इंग्लैण्ड के अनुसार,''प्रमाप लागत एक पूर्व–निर्धारित लागत है जिसकी गणना प्रबन्ध के कुशल संचालक के प्रमापों एवं सम्बद्व आवश्यक व्यय से की जाती है।''

जे.आर. बाटलीबॉय के अनुसार,''प्रमाप लागत का आशय ऐसी पूर्व–निर्धारित लागतों से है जो उस समय की जाती हैं जबकि यंत्र,उत्पादन तकनीकी ,सामग्री एवं श्रम आदि से सम्बन्धित क्रियाएं अधिक कार्यक्षमता के साथ संगठित होती हैं और उन दी गई परिस्थितियों में प्रयोग की जाती हैं। जो स्थिर व व्यवहारिक होती है और बहुत आदर्शवादी तथा अप्राप्य नहीं होती हैं।

ऐतिहासिक लागत–विधि के अन्तरगत कोई ऐसा मापदण्ड नही है जिसके प्रयोग द्वारा यह जाना जा सके कि वर्तमान आदर्श है या नही, यदि नहीं तो आदर्श व वास्तविक में अन्तर क्या और क्यों है? प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत निर्मित प्रत्येक वस्तु की लागत के प्रत्येक तत्व–सामग्री, श्रम व अप्रत्यक्ष व्ययों के लक्ष्य, समय, उत्पादन की मात्रा तथा लागत–पूर्व निर्धारित कर दिये जाते हैं। जैसे–जैसे कार्य का निष्पादन होता है, वास्तविक लागतों की प्रमाप लागतों की तुलना की जाती है; दोनों के अन्तर को लागत विचरणांश कहते हैं, इन विचरणांशों का 'कारण सहित' विश्लेषण किया जाता है, ताकि उत्तरदायी व्यक्तियों को अक्षमता के विषय में सूचित किया जा सके और उचित कार्यवाही की जा सके।

एक पूर्ण प्रमाप लागत विधि में निम्नलिखित विधियां निहित होती हैं ;

I. कुल लागत के प्रत्येक तत्व के लिए प्रमाप निर्धारित करना (अर्थात् प्रमाप लागत का निर्धारण)।

II. कुल लागत के विभिन्न तत्वों के लिए प्रमाप लागत का अभिलेखन (अर्थात्प्रमाप लागत का प्रयोग)।

III. साथ–ही–साथ वास्तविक लागतों का अभिलेखन (ऐतिहासिक लागत विधि)।

IV. वास्तविक लागत व प्रमाप लागत की तुलना।

v. वास्तविक लागतों का प्रमाप लागतों से विचरणांश ज्ञात करना (विचरणांशों का मापन)।

vi. विचरणांशों के लिये उत्तरदायी कारकों का पता लगाना (विचरणांशों का विश्लेषण)।

vii. प्रबन्ध को रिपोर्ट देना ताकि उचित कार्यवाही की जा सके।

उक्त विवेचना से स्पष्ट हो रहा है कि प्रमाप लागत विधि नियन्त्रण की एक तकनीक है। इनके अन्तर्गत कार्यकुशलता और कार्यशीलता के सामान्य स्तरों के आधार पर प्रत्येक क्रिया के लागत–समंक पहले से ही निर्धारित कर दिये जाते हैं और वास्तविक निष्पादन पर हुई लागतों की पूर्व–निर्धारित प्रमापों से तुलना की जाती है और विचरणांश ज्ञात किये जाते हैं, तत्पश्चात् विचारणांश के कारणों का पता लगाकर प्रबन्ध को सूचित किया जाता है जिसके आधार पर प्रबन्ध आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करके भविष्य में वास्तविक लागतों को प्रमाप लागतों के अनुकूल रखने का प्रयत्न करता है। **ब्राउन एवं हावर्ड** के अनुसार ''प्रमाप लागत विधि लागत लेखांकन की तकनीकी है जिसमें संचालक की कुशलता निर्धारित करने के लिए प्रत्येक उत्पाद या सेवा के प्रमाप लागत की तुलना वास्तविक लागत से की जाती है, ताकि तुरन्त ही कोई सुधारात्मक कार्यवाही की जा सके।

'इन्स्टीटयूट आफ कास्ट एण्ड मैनेजमैण्ट एकाउण्टेण्ट ऑफ इंग्लैण्ड के अनुसार,''प्रमाप लागत विधि प्रमाप लागतों की तैयारी और प्रयोग,उनकी वास्तविक लागतों से तुलना और कारणों व प्रभावों के बिन्दुओं को दर्शाते हुए विचरणांशों का विश्लेषण है।''

2.2 प्रमाप लागत का निर्धारण (Establishment of Standard Cost)

एक बार निर्णय कर लेने के बाद कि किस प्रकार के प्रमाप की गणना व प्रयोग किया जायगा ,उत्पादन स्तर के विषय में विचार करना आवश्यक होता है कि जिस अवधि के लिए प्रमाप निश्चित होने हैं, उस अवधि में उत्पादन–स्तर कितना प्राप्त किया जा सकता है। उत्पादन स्तर अपने आप में बिक्री की मात्रा व व्यवसाय में रखने योग्य स्कन्ध की मात्रा से निर्धारित होता है। उत्पादन –स्तर निर्धारित होने के बाद व्यवसाय में निर्माण, वितरण व प्रबन्ध के लिए आवश्यक उत्पादनों के साधनों यथा सामग्री,श्रम ,सेवा, आदि की मात्रा व गुण आकलित किये जा सकते हैं। इन सूचनाओं के आधार पर प्रमाप निर्धारित किये जा सकते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उत्पादन स्तर का प्रभाव श्रम, सामग्री व सेवा प्रति इकाई लागत पर भी पड़ता है।

प्रमाप लागत के निर्धारण में प्रति इकाई प्रमाप लागत व प्रमाप लागत इकाई का निर्धारण भी शामिल होता है। इसका तात्पर्य यह है कि लागत इकाई के लिए

तथा प्रत्येक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लागत के लिये प्रमाप निर्धारित करना होता है। प्रत्यक्ष लागत में सामग्री,श्रम और अन्य प्रत्यक्ष व्यय शामिल होते हैं। अप्रत्यक्ष लागत में लागत इकाईयों के निर्माण के लिये उत्तरदायी लागत केन्द्रों की लागतों को शामिल करते है। लागत इकाईयां ठोस,तरल ,उप–अंग, एकीकृत वस्तु और विभिन्न प्रकार की सेवाओं जैसे, यातायात ,विद्युत, पेशेवर सेवायें आदि का रुप ले सकती हैं। संक्षेप में, किसी कार्य या उत्पादन–स्तर की प्रमाप लागत निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक होता है कि निष्पादन सामग्री–प्रयोग, उत्पादन मात्रा एवं लागत के विभिन्न तत्वों का प्रमाप निश्चित किया जाय। सामान्यतः लागत लेखापालक ही प्रमाप निश्चित करने के लिए उत्तरदायी होता है, जिसे काफी सर्तकता व बुद्धिमता से कार्य करना पड़ता है, परन्तु उसे तकनीकी विशेषज्ञों जैसे समय व थकान–अध्ययन अभियन्ता, उत्पादन अभियन्ता, क्रेता व अन्य सेविवर्गीय व्यक्तियों से पूर्ण सहयोग अपेक्षा करनी चाहिये क्योंकि उनके सहयोग से ही प्रमाप का उचित निर्धारण सम्भव हो सकता है।

निम्नलिखित प्रत्येक लागत तत्व के सम्बन्ध में प्रमाप लागत का निर्धारण करना पड़ता है:

1– प्रत्यक्ष सामग्री

2– प्रत्यक्ष श्रम

3 अप्रत्यक्ष

(अ) परिवर्तनशील

(ब) स्थिर

(1) प्रत्यक्ष सामग्री– किसी वस्तु या कार्य पर प्रत्यक्ष सामग्री–व्यय की रकम सामग्री की मात्रा व सामग्री मूल्य दर पर निर्भर करती है। अतः प्रत्यक्ष सामग्री की प्रमाप लागत निर्धारित करते समय निम्न कदम उठाये जाते है :

(अ) प्रत्येक उत्पादन में प्रयुक्त सामग्री के संबन्ध में प्रमाप ड्राइंग ,सूत्र,गुण व विस्तार वर्णन निश्चित कर लिया जाता है, साथ ही आकार ,भार व अन्य माप के संदर्भ में प्रमाप मात्रा निर्धारित कर ली जाती है। इसके लिये भूतकाल का अभिलेख, पूर्व अनुभव व इंजीनियरिंग या रासायनिक वर्णन सहायक हो सकते हैं। यदि उत्पादन पहली बार किया जा रहा हो तो सामग्री की प्रमाप मात्रा का निर्धारण नमुनों की कुछ वस्तुओं का निर्माण करके या विशेषज्ञों से परामर्श करके या समान वस्तुओं के वर्तमान उत्पादकों के अनुभव के आधार पर किया जा सकता है।

(ब) सामान्यतः प्रत्येक उत्पादन विधि में सामग्री का कुछ भाग नष्ट हो जाता है,जिस पर प्रबन्ध व कर्मचारियों का नियन्त्रण नहीं होता है। इसे समान्य क्षय कहते है। यदि ऐसा है तो गत अनुभव व वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर प्रमाप के सामान्य क्षय का भी निर्धारण कर लेना चाहिए।

(स) प्रत्येक उत्पाद में प्रयुक्त समस्त सामग्री का प्रमाप मूल्य दर निश्चित कर

लेना चाहिए। मूल्य दर का प्रमाप निश्चित करते समय बाजार मूल्य, गत अवधि में मूल्य दर व भावी मूल्य परिवर्तनों की प्रवृति, आदि को ध्यान में रखना चाहिए। लागत लेखापालक द्वारा क्रेता अभिकर्ता के सहयोग से मूल्य दर निर्धारित होनी चाहिए और हाथ में स्कन्ध, मूल्य, उच्चावचन की सम्भावना एवं सामग्री के लिए प्रेरित आर्डर, आदि के सम्बन्ध में उचित समायोजन कर लेना चाहिए।

उपर्युक्त ढंग से सामग्री की प्रमाप मात्रा व प्रमाप मूल्य दर निर्धारित कर लेने के बाद सामाग्री की प्रमाप लागत सरलतापूर्वक ज्ञात की जा सकती है। सामग्री की प्रमाप लागत सामग्री की प्रमाप मात्रा x प्रमाप मूल्य दर के बराबर होती है– (SCM = SQ x SP)।

(2) प्रत्यक्ष श्रम–श्रम की प्रमाप लागत मजदूरी की मात्रा व मजदूरी दर पर निर्भर करती है। अतः इसका निर्धारण करते समय दो प्रकार के प्रमाप निश्चित करने पड़ते हैं: (अ) मजदूरी की मात्रा का प्रमाप, (ब) मजदूरी दर का प्रमाप।

(अ) मजदूरी की मात्रा से तात्पर्य उन श्रम घण्टों से होता है, जो प्रत्येक इकाई के निर्माण पर व्यय किया जाता है। सर्वप्रथम विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन हेतु श्रम के विभिन्न वर्गों का निर्धारण कर लेना चाहिए और प्रत्येक वर्ग के मजदूरों की संख्या निश्चित कर लेनी चाहिए। तत्पश्चात् पूर्व अनुभव के आधार पर या आदर्श कार्यकुशलता के आधार पर या विशेष समय अध्ययन के आधार पर प्रत्येक मजदूर द्वारा किए जाने वाले कार्य की माप तथा प्रत्येक कार्य के लिए प्रमाप घण्टे निर्धारित कर लेने चाहिए।

(ब) मजदूरी दर का प्रमाप निश्चित करते समय उस मजदूरी दर का प्रयोग करना चाहिए जिस पर सामान्य प्रयत्न करने से श्रमिक उपलब्ध हो सकते हों। भूत काल का अनुभव, भावी परिवर्तन तथा आशंसित श्रम सन्नियम निर्णय एवं परिनिर्णय, आदि को भी ध्यान में रखना चाहिए। प्रत्येक वर्ष के मजदूर के लिए अलग–अलग प्रमाप मजदूरी दर निश्चित कर लेनी चाहिए।

इकाई प्रमाप मजदूरी मात्रा व प्रमाप मजदूरी दर निश्चित करने के बाद प्रति इकाई प्रमाप लागत निश्चित की जा सकती है– (SLM = SH x SR)।

(3) अप्रत्यक्ष व्ययः– एक वस्तु के उत्पादन में किए जाने वाले अप्रत्यक्ष व्यय दो प्रकार के हो सकते हैं :

(अ) परिवर्तनशील व्यय :– इस प्रकार के व्ययों की यह विशेषता होती है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ ये खर्च योग में बढ़ते जाते हैं और प्रति इकाई समान रहते हैं, अतः परिवर्तनशील व्ययों को प्रति इकाई या प्रति घण्टों के अनुसार ज्ञात करना चाहिए।

(ब) स्थिर व्यय :– स्थिर व्ययों पर उत्पादन मात्रा के घटने–बढने का विशेष प्रभाव नही पड़ता। ये प्रायः अपरिवर्तित रहते है, परन्तु उत्पादन में वृद्धि होने पर प्रति इकाई कम होते जाते हैं और कमी होने पर बढ़ते जाते हैं। अतः इनके

सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगा लेना चाहिए कि ये व्यय पूरी अवधि के लिए कितने होगें और उस अवधि में उत्पादन मात्रा कितनी होगी और दोनों के आधार पर प्रति इकाई प्रमाप स्थिर व्यय निश्चित कर लिया जाता है। साधारणतया स्थिर व्यय के सम्बन्ध में प्रमाप लागत का निर्धारण श्रम लागत के कुछ निश्चित प्रतिशत के आधार पर किया जाता है।

प्रमाप सामग्री लागत ,प्रमाप श्रम लागत व प्रमाप अप्रत्यक्ष व्यय(स्थिर एवं अस्थिर) का योग उत्पादन या कार्य का प्रमाप लागत माना जाता है। जब इसे प्रमाप विक्रय मूल्य में से घटा देते हैं, तो प्रति इकाई प्रमाप लाभ ज्ञात हो जाता है।

2.3 प्रमाप लागत विधि के उद्देश्य (Objectives of Standard Costing) :

प्रमाप लागत विधि के विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित है

(i) प्रमाप लागत विधि नियन्त्रण का एक औजार है जिसकी सहायता से प्रभावपूर्ण नियन्त्रण सम्पादित कर कार्य क्षमता व उत्पादकता में वृद्वि की जा सकती है।

(ii) इस लागत विधि का दूसरा उद्देश्य ही वास्तविक और प्रमाप लागतों में अन्तर का निर्धारण कर विचरणों के कारणों का पता लगाया जाता है। कारणों की जानकारी के आधार पर विचरणों के लिए उत्तरदायी व्यक्ति/ केन्द्र का पता लगाया जा सकता हैं।

(iii) कभी–कभी बजटरी नियंत्रण के सहायक के रुप में प्रमाप लागत लेखा विधि को अपनाना भी उद्देश्य हो सकता है। इन दोनों के संगम से नियंत्रण व्यवस्था और अधिक प्रभावशाली बन जाती हैं।

(iv) प्रबन्ध को महत्व पूर्ण सूचना प्रदान करना भी लागत लेखा विधि का उद्देश्य होता है। इस विधि के माध्यम से प्रबन्धकों को वह सूचना दी जा सकती है जिसके फलस्वरुप उत्पादन कार्य पूर्व –निर्धारित योजना व प्रमाप के आधार पर संपादित नही हो सका।

(v) प्रबन्ध में आगे देखने और भावी विचार करने की शक्ति का विकास करना भी प्रमाप लागत लेखाविधि का उद्देश्य होता हैं।

2.4 लागत विचरणांश का विश्लेषण (Analysis of Cost Variances)

प्रमाप लागत–विधि का महत्व एवं उसकी उपयोगिता विचरणांश विश्लेषण में ही निहित होती है। विचरणांश विश्लेषण एक ऐसी विधि है जिसके अन्तर्गत कुल लागत विचरणाशों को इस ढंग से उपवर्गों में विभाजित किया जाता है कि उनके कारणों एवं उनके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों का सरलतापूर्वक पता लगाया जा सके।

लागत नियन्त्रण की दृष्टि से लागत के विभिन्न तत्वों में विचरणांश की सही स्थिति का ज्ञान महत्वपूर्ण होता है, परन्तु इन विचरणांशो को ज्ञात करना ही प्रबन्धकों के लिए पर्याप्त नहीं होता है जब तक की उन विचरणांशों के लिए उत्तरदायी कारणों की जानकारी भी उन्हें न मिले। अतः विचरणांश ज्ञात करना,उनके लिए उत्तरदायी कारणों को खोजना, उनके प्रभाव का मापन करना और यह ज्ञात करना कि उनमें से कौन से प्रबन्ध के नियंत्रण के अन्तर्गत हैं और कौन से नहीं आदि को विचरणांश विश्लेषण की संज्ञा दे सकते हैं। इस प्रकार विचारणांश विश्लेषण के अन्तर्गत निम्न क्रियाएं की जाती हैं :–

(i) विचरणांश की गणना

(ii) विचरणांश के कारणों का पता लगाना

(iii) विचरणांश का निपटारा

2.5 विचरणांश की गणना (Calculation of Varainces)

पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों अर्थात् प्रमापों (लागत के रुप में) और वास्तविक परिणामों (लागत के रुप में) के बीच पाये जाने वाले अन्तर को ही विचरणांश या लागत विचरणांश कहते है। विचरणांशों का समुचित वर्गीकरण व आकलन विधि का ज्ञान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। वर्गीकरण के सम्बन्ध में कोई एक राय नही दी जा सकती है। सामान्यतः इनके वर्गीकरण का आधार व वगीकृत रुप निम्नलिखित हो सकता है :

विचरणांश

नियन्त्रण के आधार पर	**प्रभाव के आधार पर**	**लागत तत्व के आधर पर**
(अ) नियन्त्रणीय विचरणांश	(अ) अनुकूल विचरणांश	(अ) सामग्री लागत विचरणांश
(ब) अनियन्त्रणीय विचरणांश	(ब) प्रतिकूल विचरणांश	(ब) श्रम लागत विचरणांश
		(स) अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश

यह ध्यान देने योग्य है कि विचरणांशों के उक्त वर्गीकरण के आधार अपने आप में स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि परिपूरक है। अन्य शब्दों में लागत तत्व के आधार पर सामग्री लागत विचरणांश नियंत्रणीय व अनुकूल भी हो सकता है, परन्तु लागत तत्व के आधार पर किया गया वर्गीकरण विचरणांश गणना हेतु महत्वपूर्ण होता है जबकि अन्य आधार पर किए गए वर्गीकरण सूक्ष्म विश्लेषण के लिए आवश्यक होते हैं। यहाँ पर हम पहले अन्य आधार पर किए गए वर्गीकरण करेंगे:

(अ) नियन्त्रणीय विचरणांश– यह कहने की अवश्यकता नही है कि विचरणांशों का नियन्त्रणीयता के आधार पर वर्गीकरण प्रबन्ध के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। प्रबन्ध केवल उन्ही विचरणांशों का निपटारा सही ढंग से कर सकता है, जो नियन्त्रणीय हो। जब प्रबन्ध सरलतापूर्वक किसी विचरणांश के लिए

उत्तरदायी व्यक्ति की खोज कर लेता है और उत्तरदायी कारण उसके नियन्त्रण में होते है, तो ऐसे विचरणांश को नियन्त्रणीय विचरणांश कहते हैं। **आई.सी.एम.ए.आफ इंग्लैण्ड** के अनुसार ''नियन्त्रणीय लागत विचरणांश वह लागत विचरणांश है, जिसे किसी विशिष्ट व्यक्ति के मूल उत्तरदायित्व के रूप में पहचाना जा सके।''

अन्य शब्दों में, एक विचरणांश की स्थिति नियन्त्रणीय तभी समझी जायेगी, जब उसके लिए किसी विशेष व्यक्ति या विभाग को उत्तरदायी ठहराया जा सकेगा। उदाहरण के लिए फोरमैन की निरीक्षण में लापरवाही के कारण या सेविवर्गीय अधिकारी द्वारा अक्षम श्रमिकों की नियुक्ति के कारण या क्रय अधिकारी द्वारा घटिया किस्म का कच्चा माल खरीदने के कारण या श्रमिकों द्वारा कच्चा माल के प्रयोग में लापरवाही के कारण सामग्री प्रयोग विचरणांश हो सकता है। इस विचराणांश के लिए स्पष्टतः फोरमैन, सेविवर्गीय अधिकारी, क्रय अधिकारी या श्रमिक को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अतः यह विचरणांश नियन्त्रणीय माना जायेगा।

(ब) अनियन्त्रीय विचरणांश– वह विचरणांश जिसके लिए किसी विशेष व्यक्ति या विभाग को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता हो, अनियन्त्रणीय विचरणांश कहलाता है। ऐसे विचरणांश के लिए संस्था के बाहर के तत्व या कारक उत्तरदायी होते हैं, जिन पर संस्था के प्रबन्ध का कुछ भी नियन्त्रण नहीं होता हैं। उदाहरण के लिए, सामग्री मूल्य विचरणांश उस समय नियन्त्रणीय माना जायेगा जब आयात करों में वृद्धि के कारण मूल्यों में वृद्धि होने के कारण ऐसा विचरणांश उत्पन्न हुआ हो। इसी प्रकार श्रम–मूल्य विचरणांश पंच–निर्णय के कारण मजदूरी में वृद्धि के कारण हो सकता है। ये दोनों कारक अर्थात् आयात कर में वृद्धि या पंच–निर्णय के परिणामस्वरूप मजदूरी में वृद्धि संस्था के प्रबन्ध के नियन्त्रण से परे है।

(स) अनुकूल विचरणांश – विचरणांश के प्रभाव को मापते हुए और उसे दृष्टि में रखते हुए विचरणांश को अनुकूल अथवा प्रतिकूल श्रेणियों में रख सकते है। जब वास्तविक निष्पादन के परिणाम (लागत के रूप में) पूर्व– निर्धारित प्रमापों से अच्छे होते हैं, तो उसे अनुकूल विचरणांश कहते है। सामान्यतः अनुकूल विचरणांश व्यावसायिक कुशलता के प्रमाण होते है।

(द) प्रतिकूल विचरणांश– जब वास्तविक निष्पादन के परिणाम पूर्व–निर्धारित प्रमापों से बुरे या खराब होते हैं, तो उनसे उत्पन्न विचरणांश प्रतिकूल कहलाते हैं। सामान्यतः प्रतिकूल विचरणांश अकुशलता के ही परिचायक होते हैं ऐसे विचरणांशों का गहन विश्लेषण प्रबन्ध के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है।

विचरणांश की गणना विधि की दृष्टि से विचरणांशों का उक्त वर्गीकरण उतना महत्वपूर्ण नही है जितना कि लागत तत्व के आधार पर किया गया वर्गीकरण होता है। लागत–तत्व के आधार पर विचरणांश का वर्गीकरण सामान्यतः निम्न प्रकार का हो सकता है :–

1– सामग्री लागत विचरणांश (Material Cost Variance)

2– श्रम लागत विचरणांश (Labour Cost Variance)

3– अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश (Overhead Cost Variance)

2.5.0 सामग्री लागत विचरणांश

सामग्री की वास्तविक लागत व पूर्व–निर्धारित लागत के अन्तर को सामग्री विचरणांश कहते हैं। पूर्व निर्धारित लागत प्रमाप लागत होती है इस विचरणांश को ज्ञात करने के लिए वास्तविक उत्पादन के लिए प्रमाप लागत और वास्तविक लागत ज्ञात की जाती है। प्रमाप लागत प्रमाप मात्रा और प्रमाप मूल्य का गुणनफल होती है और इसी प्रकार वास्तविक लागत वास्तविक मात्रा और वास्तविक मूल्य का गुणनफल होती है। इस प्रकार सामग्री लागत विचरणांश का सूत्र होगा :–

Material Cost Variance = (SQ x SP) - (AQ x AP)

M.C.V. = (SC - AC)

SC > AC Favourable

SC < AC Unfavourable

यह विचरणांश कई कारणों का सामूहिक परिणाम हो सकता है जैसे–

1– सामग्री का अधिक या कम मात्रा में प्रयोग।

2– सामग्री के मूल्य में वृद्धि या कमी।

3– सामग्री के निर्माण में पूर्व–निर्धारित सूत्रों के आधार पर मिश्रण न करना।

4– वास्तविक उत्पादन व प्रमाप उत्पादन में अन्तर होना।

इस प्रकार सामग्री विचरणांश के चार अंग होते हैं–

(अ) सामग्री प्रयोग या मात्रा विचरणांश (Material Usage or Quantity Variance)

(ब) सामग्री मूल्य विचरणांश (Material Price Variance)

(स) सामग्री मिश्रण विचरणांश (Material Mix Variance)

(द) सामग्री उत्पत्ति विचरणांश (Material Yield Variance)

(अ) सामग्री प्रयोग या मात्रा विचरणांश– जब सामग्री की प्रमाप मात्रा की तुलना में सामग्री की वास्तविक प्रयोग की मात्रा कम या अधिक होती है तो इस कम या अधिक सामग्री की लागत ही सामग्री प्रयोग विचरणांश कहलाती है। इसकी गणना प्रमाप मूल्य दर पर की जाती है। अन्य शब्दों में सर्वप्रथम सामग्री की प्रमाप लागत (प्रमाप मात्रा x प्रमाप मूल्य) निकाल ली जाती है। इसके बाद सामग्री की वास्तविक मात्रा का प्रमाप मूल्य में गुणा करके कुल लागत ज्ञात कर

ली जाती है और इन दोनों का अन्तर ही सामग्री का प्रयोग विचरणांश कहलाता है। इसका सूत्र निम्न है :

Material Usage Variance = (SQ x SP) - (AQ x SP)

= (SQ - AQ) x SP

SQ > AQ Favourable

SQ < AQ Unfavourable

(ब) सामग्री मूल्य विचरणांश– वास्तविक मूल्य दर प्रमाप मूल्य से कम या अधिक होने के कारण जो अतिरिक्त रकम कम या अधिक रूप में खर्च करनी पड़ती है उसे ही सामग्री मूल्य विचरणांश कहते है। इसको ज्ञात करने के लिए क्रय की गयी सामग्री की वास्तविक लागत व प्रमाप लागत ज्ञात कर ली जाती है अर्थात वास्तविक सामग्री की मात्रा का प्रमाप मूल्य व वास्तविक मूल्य के अन्तर से गुणा कर देते हैं। इन दोनों के अन्तर को सामग्री मूल्य विचरणांश कहते हैं। सूत्र के रूप में

Material Price Variance = (AQ x SP) - (AQ x AP)

= (SP - AP) x AQ

SP > AP Favourable

SP < AP Unfavourable

(स) सामग्री मिश्रण विचरणांश– इस प्रकार का सामग्री विचरणांश उस विशिष्ट दशा में उत्पन्न होता है, जब अनेक प्रकार की सामग्री का प्रयोग होता है और उनका निश्चित अनुपात में प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए ठोस बनाने के लिए सीमेण्ट, बालू और कंकड़ का एक साथ मिश्रण करना पड़ता है। यदि उत्पादन में प्रयुक्त सामग्री की वास्तविक मात्रा प्रमाप मात्रा से भिन्न होती है तो सर्वप्रथम सामग्री प्रयोग विचरणांश होता है, परन्तु यदि मात्रा में अन्तर विभिन्न सामग्री के मिश्रण अनुपात में परिवर्तन के कारण हुआ हो तो उसे अलग करके मिश्रण विचरणांश के रूप में माना जाता है। **इन्स्टीट्यूट ऑफ कॉस्ट एण्ड मैनेजमेण्ट एकाउण्टैण्ट, इंगलैण्ड** द्वारा प्रतिपादित शब्दावली के अनुसार सामग्री मिश्रण विचरणांश को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

सामग्री मिश्रण विचरणांश सामग्री के मिश्रण अन्तर (प्रमाप व वास्तविक) का प्रमाप लागत होता है अर्थात प्रमाप मिश्रण और वास्तविक मिश्रण समान होने पर मिश्रण विचरणांश का जन्म नहीं होगा और इसलिए उसे ज्ञात नहीं किया जायेगा। इसकी गणना दो प्रकार से की जा सकती है :–

(1) यद्यपि मिश्रण अनुपात में अन्तर है, परन्तु प्रमाप मिश्रण की कुल मात्रा, वास्तविक मिश्रण की कुल मात्रा के बराबर हो। इस दशा में मिश्रण विचरणांश की गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जा सकती है –

MMDC-129

Mix Variance = (SQ - AQ) x SP

(2) यदि वास्तविक मिश्रण की कुल मात्रा व प्रमाप मिश्रण की कुल मात्रा में भिन्नता हो तो प्रमाप मिश्रण की कुल मात्रा का पुनर्निर्धारण कर लेना चाहिए। यह पुनर्निर्धारण वास्तविक मिश्रण की कुल मात्रा के मिश्रण के प्रमाप अनुपात के आधार पर बांट दिया जाता है। इस प्रकार मिश्रण के प्रत्येक सामग्री की नवीन प्रमाप मात्रा ज्ञात हो जाती है जिसे Revised Quantity (RQ) कहेंगे। इस दशा में मिश्रण अनुपात की गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जाती है–

Material Usage Variance = (SQ - RQ) - SP

SQ > RQ Favourable

SQ < RQ Unfavourable

और

Mix Variance = (RQ - AQ) x SP

RQ > AQ Favourable

RQ < AQ Unfavourable

RQ = Total AQ x Standard Mix

(द) सामग्री उत्पत्ति विचरणांश– सामग्री के सम्बन्ध में प्रमाप लागत की निर्धारण विधि बताते समय यह अंकित किया गया था कि उत्पादन विधि में कोई सामान्य क्षय या हानि की सम्भावना हो तो उसे ध्यान में रखना चाहिये। यदि इस प्रकार की सामान्य हानि की विद्यमानता हो तो उसके सम्बन्ध में भी प्रमाप निश्चित किया जा सकता है और साथ ही सामान्य उत्पत्ति का भी प्रमाप निर्धारित किया जा सकता है। यह प्रमाप उत्पत्ति उत्पादन की वह उत्पादन मात्रा होती है जो प्रमाप सामग्री की मात्रा से आशंसित की जा सकती है। अधिकांश दशा में वास्तविक उत्पत्ति व प्रमाप उत्पत्ति में अन्तर हो सकता है और इस प्रकार के अन्तर को ही उत्पत्ति विचरणांश कहते है। सामग्री उत्पत्ति विचरणांश प्रमाप सामान्य हानि और वास्तविक सामान्य हानि के अन्तर का प्रमाणित सामग्री लागत के बराबर होता है। इसकी गणना करने के लिए भी दो स्थितियाँ मानी जा सकती है–

(1) प्रमाप मिश्रण व वास्तविक मिश्रण एकसमान है परन्तु वास्तविक उत्पत्ति प्रमाप उत्पत्ति से भिन्न है। इस दशा में सामग्री उत्पत्ति विचरणांश की गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जायेगी :–

Material Yield Variance = (AY - SY) x SC

OR MYV = (NL of Achual Mix - AL of Achual Mix) x SC

यहाँ पर SY = Standard Yield

AY = Actual Yield

SC = Standard Cost per unit

Standard Cost per unit की गणना के लिए कुल प्रमाप लागत को प्रमाप मात्रा में से सामान्य हानि की मात्रा घटाने के बाद बची हुई मात्रा से भाग दे देते हैं।

(2) जब प्रमाप मिश्रण व वास्तविक मिश्रण की कुल मात्रा में अन्तर हो और वास्तविक उत्पत्ति व प्रमाप उत्पत्ति में भी भिन्नता हो तो सर्वप्रथम प्रमाप मात्रा को पुनर्निर्धारित किया जायेगा। इसकी विधि का वर्णन पीछे किया गया है, तत्पश्चात् निम्न सूत्र का प्रयोग करके सामग्री उत्पत्ति विचरणांश की गणना की जायेगी।

Material Yield Variance = (AY - RY) x SC

यहां पर AY = Actual Yield

RY = Revised Yield

SC = Standard Cost per unit

परन्तु इस सूत्र में आकलित सामग्री उत्पत्ति विचरणांश की रकम में सामग्री प्रयोग विचरणांश का अंश भी शामिल होगा। अतः सामग्री लागत के पूर्ण विचरणांश का विश्लेषण करते समय (अर्थात सामग्री मूल्य, सामग्री मिश्रण, सामग्री प्रयोग व सामग्री उत्पत्ति सम्बन्धी विचरणांश निकालते समय) निम्न सूत्र का ही प्रयोग करना चाहिए–

Material Yield Variance = (AY - SY) x SC per unit.

उदाहरण–1 एक निर्माणी संस्था ने, जो प्रमाप लागत विधि प्रयोग करती है, निम्नलिखित सूचना दी है–

Standard :

Materails for 70 kg. of finished Productes	100 kg.
Price of Materials	Re. 1 per kg.

Actual :

Output	2,10,000 kg.
Materisls used	2,80,000 kg.
Cost of Materials	Rs. 2,52,000

सामग्री लागत के सम्बन्ध में विभिन्न विचरणांशों की गणना कीजिए।

SOLUTION :

$$SQ = \frac{2,10,000 \times 100}{70} = 3,00,000 \text{ kgs.}$$

$$AP = \frac{2,52,000}{2,80,000} = \text{Re. } 0.90$$

SC = 3,00,000 x 1 = Rs. 3,00,000

(i) Material Cost Variance = (SC - AC)

= (3,00,000 - 2,52,000) = Rs. 48,000 (F)

(ii) Material Usage Variance = (SQ - AQ) x SP
= (3,00,000 - 2,80,000) x 1
= Rs. 20,000 (F)

(iii) Material Price Varience = (SP - AP) x AQ
= (1 - 0.90) x 2,80,000
= Rs. 28,000 (F)

उदाहरण–2 एक पीतल के ढलाई कारखाना में प्रमाप मिश्रण में 60 प्रतिशत ताँबा तथा 40 प्रतिशत जस्ता है। उत्पादन में प्रमाप हानि 30 प्रतिशत है। प्रमाप मिश्रण व उत्पादन था–

Copper 60 kgs. Rs. 5 per kg.

Zinc 40 kgs. @ Rs. 10 per kg.

Standard Yield 70 Kg.

वास्तविक मिश्रण व उत्पादन था–

Copper 80 kgs. Rs. 4.50 per kg.

Zinc 70 kgs. @ Rs. 8.00 per kg.

Actual Yield 115 Kg.

सामग्री लागत विचरणांशों की गणना कीजिये।

SOLUTION

$$\text{Copper} = \frac{60}{100} \times 150 = 90 \text{ kgs.}$$

$$\text{Zinc} = \frac{40}{100} \times 150 = 60 \text{ kgs.}$$

	Revised Standard		Mix Actual Mix	
Copper	90 kgs. x 5	= Rs. 450	80 x 4.50	= Rs. 360
Zinc	60 kgs. x 10	= Rs. 600	70 x 8	= Rs. 560
	150	Rs. 1,050	150	Rs. 920
Less: Loss	45	—	35	—
	105	Rs. 1,050	115	Rs. 920

$$\text{SC per unit} = \frac{1,050}{105} = \text{Rs. } 10$$

(a) Materials Price Variance = (SP - AP) AQ

Copper = (5 - 4.50) x 80 = 40(F)

	Zinc	= (10 - 8) x 70 = 140(F)	180(F)
(b)	Materials Mix Variance	= (RQ - AQ) x SP	
	Copper	= (90 - 80) x 5 = 50(F)	
	Zinc	= (60 - 70) x 10 = 100(A)	50(F)
(c)	Materials Yield Variance	= (AY - SY) x SC per unit	
		= (115 - 70) x 10	450(F)
(d)	Materials Usage Variance	= (SQ - RQ) x SP	
	Copper	= (60 - 90) x 5 = 150(A)	
	Zinc	= (40 - 60) x 10 = 200(A)	350(A)

2.5.1 (II) श्रम लागत विचरणांश

किसी वस्तु के उत्पादित इकाई के वास्तविक श्रम लागत और प्रमाप श्रम लागत अन्तर को ही श्रम लागत विचरणांश कहते है। सूत्र के रूप में,

Labour Cost Variance = (SLC - ALC)

SLC = SH x SR

ALC = AH x AR

SLC > ALC - Favourbale

SLC < ALC - Unfavourable

प्रमाप श्रम लागत की गणना प्रमाप समय (कार्य–घण्टे) को प्रमाप मजदूरी से गुणा करके की जाती है। वह विचरणांश निम्न कारणों से हो सकता है–

(अ) वास्तविक श्रम घण्टा (समय) प्रमाप श्रम घण्टा से अधिक या कम हो सकता है।

(ब) वास्तविक मजदूरी दर प्रमाप मजदूरी दर से अधिक या कम हो सकती है।

(स) कुछ असाधारण परिस्थितियों एवं घटनाओं जैसे, हड़ताल, बन्दी, शक्ति की कमी, इत्यादि के कारण श्रम कुछ समय के लिए बेकार रह सकता है।

(द) प्रमापित क्षमता वाले श्रमिकों का अभाव हो सकता है अर्थात जिस क्षमता वाले श्रमिकों के आधार पर प्रमाप निश्चित किये गये हों, वास्तविक क्षमता उससे कम या अधिक हो सकती है।

इस प्रकार श्रम लागत विचरणांश चार प्रकार का होता है :–

(अ) श्रम समय विचरणांश (Labour Time Variance) – इसकी गणना करने के लिए वास्तविक समय और प्रमाप मजदूरी दर का गुणनफल ज्ञात कर लिया जाता है साथ ही प्रमाप समय और प्रमाप मजदूरी दर का गुणनफल भी ज्ञात कर लिया जाता है। इन दोनों का अन्तर ही श्रम समय विचरणांश कहलाता है। सूत्र के रूप में,

Labour Time Variance = (SH x SR) - (AH x SR)

Or Labour Efficiency Variance = (SH - AH) x SR

SH > AH - Favourbale

SH < AH - Unfavourable

(ब) श्रम दर (मूल्य) विचरणांश {Labour Rate (Price) Variance}– इसकी गणना हेतु वास्तविक कार्य घण्टों (समय) का वास्तविक मजदूरी दर से गुणा कर लिया जाता है। फिर वास्तविक कार्य घण्टों का प्रमाप मजदूरी दर से गुणा कर लेते हैं। इन दोनों का अन्तर ही श्रम मूल्य विचरणांश कहलाता है। सूत्र के रूप में

Labour Price or Rate Variance = (SR x AH) - (AR x AH)
= (SR - AR) x AH

SR > AR - Favourbale

SR < AR - Unfavourable

(स) बेकार समय विचरणांश (Idle Time Variance)– जैसा कि पूर्व ही बताया गया है कि कारखाने में श्रमिक कुछ समय के लिए बेकार होता है और ऐसे कारणों से जिन पर उसका नियन्त्रण नहीं होता है इस बेकार समय का प्रभाव भी श्रम विचरणांश पर पड़ता है। यदि इस तत्व से उत्पन्न विचरणांश को अलग से प्रदर्शित न किया जाय तो कर्मचारियों पर अक्षमता का दोषारोपण किया जा सकता है। इस प्रकार के विचरणांश का हमेशा बुरा प्रभाव पड़ता है और इसलिए बेकार समय के लिए उत्तरदायी कारकों का पता लगाना चाहिए और उन पर नियन्त्रण करना चाहिए। इसकी गणना विधि इस प्रकार है :–

Idle Time Variance = Idle Hours x SR (Always unfavourable)

(द) श्रम मिश्रण विचरणांश (Labour Mix Variance)– यदि कारखाने में कार्य करने वाले कर्मचारियों की क्षमतानुसार समूहीकरण प्रमाप में कुछ और हो और वास्तविकता में कुछ और हो तो इसके कारण उत्पन्न विचरणांश श्रम मिश्रण विचरणांश कहलाता है, जब एक विशेष प्रकार की दक्षता वाले कर्मचारियों का अभाव होता है तो उस समय इस प्रकार का विचरणांश उत्पन्न होता है। इस विचरणांश की गणना सामग्री मिश्रण की भाँति ही की जाती है अर्थात

(i) जब प्रमाप श्रम की मात्रा (घण्टों में या सप्ताह में) और वास्तविक श्रम की मात्रा एक समान हो परन्तु मिश्रण अनुपात में भिन्नता हो :

Labour Mix Variance = (SH - AH) x SR

और इस स्थिति में Labour Efficiency नहीं होगा।

(ii) जब प्रमाप श्रम की मात्रा व वास्तविक श्रम मात्रा में तथा मिश्रण अनुपात में भिन्नता हो

Labour Efficiency Variance = (SH - RH) x SR

Labour Mix Variance = (RH - AH) x SR

(य) श्रम उत्पत्ति विचरणांश (Labour Yield Variance)– जब उत्पादन (तैयार माल) की प्रमाप मात्रा और वास्तविक मात्रा में भिन्नता हो तो पूर्व बतलाये गये विचरणांश के अलावा श्रम उत्पत्ति विचरणांश की भी गणना की जायेगी।

Labour Yield Variance = (AY - SY) SLC per unit

उदाहरण : 3 निम्न सूचना एक कम्पनी की निर्माणी प्रक्रिया से सम्बन्धित है

Number of Employees	200
Weekly hours	40
Standard wage rate	50 Paise per hour
Standard output	250 Units per hour.

फरवरी के प्रथम सप्ताह में चार कर्मचारियों को 45 पैसे की दर से भुगतान हुआ और दो कर्मचारियों को 55 पैसे की दर से। शेष कर्मचारियों को प्रमाप दर से भुगतान हुआ। बेकार समय प्रति कर्मचारी एक घंटा है। वास्तविक उत्पादन 10,250 इकाइयां है। श्रम लागत विचरणांश की गणना कीजिए।

Solution :

(i)	Actal Cost of Labour (ALC) :		**Rs.**
	4 employees x 40 hours x 0.45 P	=	72
	2 employees x 40 hours x 0.55 P	=	44
	196 employees x 40 hours x 0.50 P	=	3880
			3996
(ii)	Actual Hours	=	200x 40 = 8000 Hours

(iii) Standard Hours $= \frac{10,250}{250} \times 200 = 8,200$ hours

चूंकि प्रति कर्मचारी एक घण्टा बेकार है, इसलिए Actual Hours 8000-200 = 7800 घंटा माना जायेगा।

(iv) Standard Cost of Labour (SLC) = 8200 hours x 50 P.

= Rs. 4,100.

Analysis of Labour Cost Variance

			Rs.
Labour Cost Variance	=	(SLC — ALC)	
	=	(4100—3996)	104 F
This is explained by :			
		(a) Labour Rate Variance	
	=	(SR — AR) x AH	
	=	(50P — 45P) x 160 = Rs 8 (F)	
	=	(50P — 55P) x 80 = Rs 4	4 F

(b) Labour volume or Efficiency Variance
= (SH — AH) x SR
= (8200 — 7800) x 50P
200 F

(c) Idle Time Variance = Idle Hours x SR
= 200 x 50 P 100 Unf

Total Labour Variance 104 F

नोट : चूंकि 196 कर्मचारी प्रमाप मजदूरी प्राप्त कर रहे हैं, इसलिए श्रम–दर विचरणांश केवल 6 श्रमिकों के सम्बन्ध में निकाला गया है।

उदाहरण : 4 एक कारखाना में प्रमाप श्रम मिश्रण इस प्रकार है:

Men 40, Women 20 and Boys 10.

वास्तविक श्रम मिश्रण इस प्रकार है :

Actual Labour Mix is as under :

Men 30, Women 30 & Boys 10.

प्रमाप दर प्रति घंटा पुरूष, औरत एवं लड़कों के लिए क्रमश: 2.50 रू0, 2.00 रू0 एवं 1 रू0 सभी कर्मचारियों के लिए कार्यकाल (घंटे) प्रतिदिन 8 है।

श्रम विचरणांश की गणना कीजिए।

Solution :

Standard Labour Hours & Cost :

Men	40 x 8 = 320 x 2.5 =	Rs 800
Women	20 x 8 = 160 x 2 =	Rs 320
Boys	10 x 8 = 80 x 1 =	Rs 80
	560	Rs. 1,200

Actual Labour Hours & Cost :

Men	30 x 8 = 240 x 2.5 =	Rs 600
Women	30 x 8 = 240 x 2 =	Rs 480
Boys	10 x 8 = 80 x 1 =	Rs 80
	560	Rs. 1,160

Labour Cost Variance = (SLC — ALC)
= (1200 — 1160) = 40 (F)

Labour Rate Variance is nil = Nil

Labour Efficiency Variance is nil = Nil

Labour Mix Variance = (SH — AH) SR

Men	(320—240) 2.50	=	200 F
Women	(160—240) 2	=	160 Unf
Boys	(80—80) 1	=	Nil
			40(F)

चूंकि प्रमाप दर ही वास्तविक दर मानी गयी है, अतः श्रम दर विचरणांश शून्य है। इसी प्रकार कुल प्रमाप घंटे और कुल वास्तविक घंण्टे एक समान हैं अतः श्रम दक्षता विचरणांश नहीं है। हां, श्रम मिश्रण विचरणांश होगा, जो 40 रू0 पक्ष में है।

2.5.2 (III) अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश (Overhead Variance)–

सामान्यतः कुछ अप्रत्यक्ष व्यय की प्रमाणित रकम प्रमापित कार्य घण्टों और इनसे उत्पादन योग्य प्रमापित इकाइयों के लिए निर्धारित की जाती है। फिर प्रमापित कार्य घण्टों की संगणना प्रमापित कार्य दिनों के आधार पर की जाती है। जब वास्तविक निष्पादन सम्पादित होता है, तो यह सम्भावना होती है कि वास्तविक कार्य दिन वास्तविक श्रम कार्य घण्टा और वास्तविक उत्पादन इकाई आदि प्रमाप से भिन्न हो जिसके कारण वास्तविक अप्रत्यक्ष व्यय की रकम भी प्रमाप से भिन्न हो जाती है और इस प्रकार अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश का जन्म होता है। अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश का विश्लेषण करने से पूर्व निम्न तथ्यों के विषय में जानकारी आवश्यक है।

(1) अप्रत्यक्ष व्यय की प्रमापित दर (Standard Overhead Rate)– यह दर प्रति घण्टा इकाई या प्रति इकाई के रूप में ज्ञात की जा सकती है, जिसके लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है :–

$$SRH = \frac{\text{Standard Overheads}}{\text{Standard Hours}}$$

$$SRU = \frac{\text{Standard Overheads}}{\text{Standard Units of Output}}$$

(2) अप्रत्यक्ष व्यय की वास्तविक दर (Actual Overhead Rate)– प्रमाप की तरह वास्तविक अप्रत्यक्ष व्यय की दर भी प्रति घण्टा या प्रति इकाई निकाली जाती है, यथा:

$$ARH = \frac{\text{Actual Overheads}}{\text{Actual Hours}}$$

$$ARU = \frac{\text{Actual Overheads}}{\text{Actual Units of Output}}$$

(3) सामान्य श्रम घण्टा (Normal Labour Hours)– वास्तविक उत्पादन की इकाई के लिए प्रमाप दर के अनुसार जितना श्रम घण्टा व्यतीत हुआ होता उसे ही सामान्य उत्पादन श्रम घण्टा कहते हैं, यथा:

$$NLH = \frac{\text{Standard Hours x Actual Units}}{\text{Standard Units}}$$

(4) सामान्य उत्पादन इकाई (Normal Units of Output)– वास्तविक श्रम

घण्टों के लिए प्रमाप की दर से जितनी इकाइयाँ उत्पादित की गयी होती है उन्हे ही सामान्य उत्पादन इकाई कहते हैं, यथा

$$NU = \frac{\text{Standard Hours x Actual Hours}}{\text{Standard Hours}}$$

(5) सम्भावित श्रम घण्टा (Possible Labour Hours)– इसकी गणना तभी की जाती है जब वास्तविक कार्य दिन और प्रमाप कार्य दिन में अन्तर हो। वास्तविक कार्य दिन के लिए प्रमाप दर के आधार पर जितना श्रम घण्टा व्यतीत हुआ होता है, उसे सम्भावित श्रम घण्टा कहते है, यथा

$$PLH = \frac{\text{Standard Hours x Actual Days}}{\text{Standard Days}}$$

(6) सम्भावित उत्पादन इकाई (Possible Units of Production)– सम्भावित श्रम घण्टों के लिए प्रमाप दर से जितनी इकाइयाँ उत्पादित हुई होती उसे ही सम्भावित इकाई कहते हैं, यथा

$$PU = \frac{\text{Standard Units}}{\text{Standard Hours}} \times PLH$$

(7) आशंसित उत्पादन इकाई (Expected Units of Production)– यदि उत्पादन विधि ऐसी है कि उत्पादन के दौरान कुछ सामान्य हानि की सम्भावना हो तो इस हानि के सम्बन्ध में भी प्रमाप निश्चित कर लिया जाता है। इस प्रकार प्रमाप कुल उत्पादन और प्रमाप कुल हानि का अन्तर शुद्ध प्रमाप उत्पादन होता है। वास्तविक उत्पादन में हुई वास्तविक हानि प्रमाप के अनुसार हो भी सकती है और नही भी हो सकती है। जब वास्तविक कुछ उत्पादन में से प्रमाप दर से सामान्य हानि घटा देते हैं तो आशंसित उत्पादन इकाई ज्ञात हो जाती है। सूत्र रूप में

$$\text{Expected Units of Production} = \frac{\text{Standard Output x Actual Gross Production}}{\text{Standard Gross Production}}$$

या

Expected Units of Production = Actual Gross Production — Actual Production x Percentage of Standard Loss

अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश– अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश वास्तविक अप्रत्यक्ष व्यय एवं पुनःप्राप्ति अप्रत्यक्ष व्यय का अन्तर है। सूत्र रूप में :

Overhead Variance = Recovered Overheads - Actual Overheads

Overhead Variance = (SRU - ARU) x AU

यहा पर Recovered Overheads वास्तविक उत्पादन के लिए प्रमाप अप्रत्यक्ष व्यय के बराबर होता है, अर्थात्

$$\text{Recovered Overheads} = \frac{\text{Standard Overheads}}{\text{Standard Units}} \times \text{Actual Units}$$

$$= \text{SRU} \times \text{AU}$$

$$\text{Recovered Overheads} = \text{SRH} \times \text{NLH}$$

अप्रत्यक्ष व्यय दो प्रकार के होते हैं– परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय एवं स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय। अत: अप्रत्यक्ष व्यय सम्बन्धी विचरणांशों को दो श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है :–

(अ) परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश **(Variable Overhead Variance)**

(ब) स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश **(Fixed Overhead Variance)**

(अ) परिर्वनशील अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश– वास्तविक उत्पादन इकाई के लिए प्रमापित परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय और उसी पर किये गये वास्तविक परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय के अन्तर को ही परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश कहते हैं सूत्र के रूप में,

Total Variable Overhead Variance = (SRU x AU) — (ARU x AU)

= (SRU - ARU) x AU

SRU > ARU - Favourble

SRU < ARU - Unfavourable

कुल परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश या तो प्रति घण्टा दर में अन्तर के कारण या श्रम क्षमता के अन्तर के कारण या दोनों के सामूहिक कारण से उत्पन्न होता है इस प्रकार इसके दो उप अंग है जिनकी गणना विधि इस प्रकार है:

विचरणांश के उप–अंग	श्रम घण्टों के आधार पर	इकाई के आधार पर
(i) Expenditure Variance	= (SRH- ARH) x ALH	= (NU x SRU) - (AU x ARU)
(ii) Efficiency Variance	= (NLH -ALH) x SRH	= (AU - NU) x SRU

(ब) स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश– वास्तविक उत्पादन की इकाई के लिए प्रमापित स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय और उसी के लिए किये गये वास्तविक अप्रत्यक्ष व्यय के अन्तर को ही स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश कहते है। इस विचरणांश के लिए वास्तविक एवं प्रमापित अप्रत्यक्ष व्यय दर में अन्तर या उत्पादन का प्रमाप एवं वास्तविक मात्रा में अन्तर उत्तरदायी होता है। उत्पादन मात्रा विचरणांश भी कई कारणों जैसे क्षमता, कुशलता, समय, उत्पादन से प्रभावित होता है, इस प्रकार अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश के उप–अंग निम्न प्रकार होते हैं :–

Fixed Overhead Variance
- Budget Variance or Expenditure Varaince
- Volume Variance = Efficiency Variance (including Yield Variance) + Capacity Variance + Calendar Variance

नोट– यदि प्रश्न में स्पष्ट रूप से परिवर्तनशील और स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय का वर्णन नहीं है अर्थात केवल अप्रत्यक्ष व्यय लिखा हुआ हो तो उस दशा मे विचरणांश के लिए वे ही सूत्र प्रयोग में लाने चाहिए जो स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय के सम्बन्ध में बताये गये है।

स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश की गणना

इसके उप–अंगो की गणना श्रम घण्टा व इकाई दोनों आधार पर की जा सकती है इस प्रकार

उप–अंग	श्रम घण्टा के आधार पर	इकाई के आधार पर
i) Budget Variance Or Expenditure Variance	= (SLH x SRH) - (ALH x ARH)	= (SU x SRU) - (AU x ARU)
(ii) Volume Variance	= (NLH - SLH) x SRH	= (AU - SU) x SRU

नोट–1– इन दोनों योग का Total, Fixed Overhead Variance के बराबर है।

2– Volume Variance के भी कई उप–अंग होते हैं, जैसे–

(a) Efficiency Variance = (NLH - ALH) x SRH या (AU -NU) x SRU

(b) Capacity Variance = (ALH -SLH) x SRH या (NU - SU) x SRU

यदि प्रमाणित कार्य और वास्तविक कार्य दिन में अन्तर हो तो उस दशा में कैलेण्डर विचरणांश भी होगा। ऐसी स्थिति में क्षमता विचरणांश की गणना उक्त सूत्र द्वारा न करके निम्न प्रकार से करनी चाहिए :–

(a) Capacity Variance = (ALH - PLH) x SRH या (NU -PU) x SRU

(b) Calendar Variance = (PLH -SLH) x SRH या (PU - SU) x SRU

(c) Yield Variance = (AU - EU) x SRU

नोट– Yield Variance की रकम Efficiency Variance में निहित होती है अतः इसकी गणना करके Efficiency Variance में से घटा दिया जाता है और तभी Efficiency Variance की शुद्ध मात्रा ज्ञात होती है।

NMDC-129

उदाहरण–5 : नीचे दिये गये आंकड़ों से उपरिव्यय विचरणांश की गणना कीजिये:

	Standard	**Actual**
Production in March	5,000 Units	4,000 Units
Labour Hours Per Unit	5 Hours	6 Hours
Total Labour Hours	25,000 Hours	24,000 Hours
Variable Overheads	Rs. 10,000	Rs. 12,000

Solution :

Working Notes :

(i) $SRH = \dfrac{10,000}{25,000} = 0.40$; $SRU = \dfrac{10,000}{5,000} = 2.00$

(ii) $ARH = \dfrac{12,000}{24,000} = 0.50$; $ARU = \dfrac{12,000}{4,000} = 3.00$

(iii) $NLH = \dfrac{25,000 \times 4,000}{5,000} = 20,000$ Hrs.

(iii) $NU = \dfrac{5,000 \times 24,000}{25,000} = 4,800$ Units.

Calculation of Variable Overhead Variance

(अ) श्रम घण्टों के आधार पर

		Rs.
Total Variable Overhead Variance =	(SRU — ARU) x AU	
	= (2.00 — 3.00) x 4,000	4,000 Unf
This is explained by		
(i) Expenditure Variance =	(SRH — ARH) x ALH	
	= (0.40 — 0.50) x 24,000	2,400 Unf
(ii) Efficiency Variance =	(NLH — ALH) x SRH	
	= (20,000 — 24,000) x 0.40	1,600 Unf
Total (i) + (ii)		4,000 Unf

(ब) इकाई के आधार पर

			Rs.
Total Variable Overhead Variance	=	(SRU — ARU) x AU	
	=	(2.00 — 3.00) x 4,000	4,000 Unf
This is explained by			
(i) Expenditure Variance	=	(NU — SRH)—(AU x ARU)	
	=	(4,800 x 2) — (4,000x3)	
	=	(9,600 — 12,000)	2,400 Unf
(ii) Efficiency Variance	=	(AU — NU) x SRU	
	=	(4,000 — 4,800) x 2	1,600 Unf
Total (i) + (ii)			4,000 Unf

उदाहरण–6 : निम्न आंकड़ों से विभिन्न स्थिर अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांशों की गणना कीजिए :

	Standard	Actual
Output in units	4,000	5,000
Working hours	2,500	2,400
Fixed Overheads	Rs. 20,000	Rs. 30,000

Solution :

Working Notes :

(i) $SRH = \frac{20,000}{2,500} = Rs. 8$; $SRU = \frac{20,000}{4,000} = 5$

(ii) $ARH = \frac{30,000}{2,400} = Rs. 12.50$; $ARU = \frac{30,000}{5,000} = Rs. 6.00$

(iii) $NLH = \frac{2,500}{4,000} \times 5,000 = 3,125$ Hrs. $NU = \frac{4,000}{2,500} \times 2,400 = 3,840$ Units

Calculation of Fixed Overhead Variance

(अ) श्रम घण्टों के आधार पर

			Rs.
Total Fixed Overhead Variance	= (SRU — ARU) x AU		
	= (5 — 6) x 5,000		5,000 Unf
This is explained by			
(i) Budget Variance	= (SFC — AFC)		
	= (20,000 — 30,000)		10,000 Unf
(ii) Volume Variance	= (NLH — SLH) x SRH		
	= (3,125 — 2,500) x 8		5,000 F
Volume Variance Consists of :			
(a) Efficiency Variance	= (NLH — ALH) x SRH		
	= (3,125 — 2,400) x 8	5,800 F	
(b) Capacity Variance	= (ALH — SLH) x SRH		
	= (2,400 — 2,500) x 8	800 Unf	
	Total (a+b)	5,000 F	
	Total (i+ii)	5,000 Unf	

(ब) इकाई के आधार पर

		Rs.
Total Fixed Overhead Variance as above		5,000 Unf
(i) Budget Variance	= (SFC — AFC)	
	= (20,000 — 30,000)	10,000 Unf
(ii) Volume Variance	= (AU — SU) x SRU	
	= (5,000 — 4,000) x 5	5,000 F
(a) Efficiency Variance	= (AU — NU) x SRU	
	= (5,000 — 3,840) x 5	5,800 F
(b) Capacity Variance	= (ALH —SLH) x SRH	
	= (3,840—4,000) x 5	8,00 Unf
	Total (a+b)	5,000 F
	Total (i+ii)	5,000 Unf

2.6 प्रमाप लागत विधि के लाभ (Advantages of Standard Costing) –

प्रमाप लागत विधि से निम्न लाभ प्राप्त हो सकते है

(1) प्रमाप लागत एक अमुक क्रिया के मापदण्ड होते हैं, जिससे वास्तविक लागत

NMOC-129

की तुलना की जा सकती है। वास्तविक लागत की गत वर्ष की वास्तविक लागत से भी तुलना की जा सकती है, परन्तु इस प्रकार की तुलना वैज्ञानिक और परिशुद्ध नही हो पाती है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे प्रश्न उठ पड़ते हैं जिनका सन्तोषजनक उत्तर व्यवहार में नहीं मिल पाता है। इसलिए प्रमाप लागत तुलनात्मक अध्ययन में न केवल सहायक बल्कि उचित मार्ग प्रदर्शक भी होते हैं।

(2) साधारण लेखांकन से नैत्यक रूप में विचरणांश के विश्लेषण द्वारा किये गये खर्चों पर सतत् नियन्त्रण रखा जा सकता है। निष्पादन से पूर्व निर्धारित प्रमाप से थोड़ा सा विचलन होने पर उत्तरदायी व्यक्ति की खोज की जा सकती है और उन तथ्यो पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है जो योजना के अनुसार नहीं किये जा रहे हों। इस प्रकार प्रबन्ध व्यवसाय की क्षमता सरलतापूर्वक बढ़ा सकता है।

(3) प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत विभिन्न सूचना हेतु जो विवरण तैयार किये जाते हैं वे अपेक्षाकृत संक्षिप्त एवं महत्वपूर्ण होते हैं। प्रबन्ध को सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार प्रमाप लागत–विधि के प्रयोग से समय और श्रम की बचत हो सकती है

(4) प्रबन्धकीय रिपोर्ट का निर्वचन भी अपेक्षाकृत सरल हो जाता है और इस रिपोर्ट के अध्ययन में समय की बचत हो जाती है। चूंकि रिपोर्ट में केवल महत्वपूर्ण सूचनाओं एवं तथ्यों को ही प्रदर्शित किया जाता है अतः प्रबन्ध तुरन्त ही महत्पूर्ण तथ्यों पर ध्यान दे सकता है।

(5) यदि प्रमाप का सतत् रूप से अध्ययन किया जाय और उसमें सुधार लाया जाय तो नियंन्त्रण का कार्य सुगम हो जाता है। यही नहीं यदि प्रमाप लागत विधि के अध्ययन द्वारा प्राप्त फल के अनुसार तुरन्त कार्य किया जाय तो लागत में कमी भी लायी जा सकती है। इस प्रकार लागत नियन्त्रण और लागत में कमी– ये दोनों उद्देश्य प्रमाप लागत विधि द्वारा पूरे किये जा सकते हैं।

(6) प्रमाप निर्धारित करने के लिए निर्माण, प्रशासन, विक्रय और वितरण आदि सभी क्रियाओं का विवरणात्मक अध्ययन करना पड़ता है। इस प्रकार के अध्ययन में लागत केन्द्र का स्थापन, अधिकार रेखा का स्पष्टीकरण और उत्तरदायित्व का निर्धारण शामिल होता है। अतः कुछ सीमा तक अक्षम एवं अपूर्ण क्रियाओं को प्रारम्भ में ही दूर किया जा सकता है।

(7) उत्पादन कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व ही निश्चितता के साथ उत्पादन एवं मूल्य सम्बन्धी नीति निर्धारित की जा सकती है।

(8) प्रमाप लागत विधि के अन्तर्गत श्रमिकों की क्षमता का ज्ञान सरलातापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। इसके आधार पर श्रमिकों को बोनस व प्रेरणा भुगतान की योजना सरलता से बनायी जा सकती है।

NMDC-129

2.7 प्रमाप लागत विधि की सीमाएं (Limitations of Standard Costing)–

प्रमाप लागत विधि हर समय और प्रत्येक स्थिति में लाभदायक यन्त्र के रूप में नहीं कर सकती है। अन्य विधियों की भांति इसकी भी कुछ सीमाएं होती हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है। कुछ सीमाएं निम्नलिखित हैं :–

1. प्रमाप लागत विधि को लागू करना बहुत ही खर्चीला होता हैं। प्रमाप निर्धारित करना न केवल खर्चीला होता है बल्कि उच्च स्तर की योग्यता व बुद्धि की जरूरत पड़ती है जो प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को सहज ही में उपलब्ध नहीं होती हैं। छोटे आकार की संस्थाओं में इस विधि को लागू करना अति कठिन होता है।

2. जिन परिस्थितियों में प्रमाप निर्धारित किये गये हों यदि उनमें परिवर्तन हो जाता है तो प्रमाप का पुनर्निरीक्षण आवश्यक हो जाता है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो प्रमाप जड़वत् माने जाते हैं और विचरणांश में प्रयुक्त होने लायक नहीं रह जाते है परन्तु पुनर्निरीक्षण का कार्य इतना पेचीदा व कठिन होता है कि बहुत सी संस्थाएं पुनर्निरीक्षण करती ही नहीं है।

3. प्रमाप लागत विधि मनोवैज्ञानिक विपरीत प्रभाव डाल सकती है। कर्मचारी वर्ग में हतोत्साह की भावना पैदा हो सकती है। ऐसा तभी होता है जब प्रमाप काफी ऊँचे रखे जाते हैं।

4. सभी प्रकार की औद्योगिक संस्थाओं के लिए यह विधि उचित नहीं मानी जाती है।

5. प्रमाप लागत विधि द्वारा ज्ञात कारकों को दूर करना ही उद्देश्य होना चाहिए। उत्तरदायी व्यक्ति को दण्डित करना इसका उद्देश्य नहीं होना चाहिए।

2.8 सैद्धान्तिक प्रश्न–

1. संक्षेप में प्रमाप लागत व प्रमाप लागत विधि शब्दों की व्याख्या कीजिए? इसके लाभों को बताइए?
2. प्रमाप लागत से आप क्या समझते है ? किस प्रकार प्रमाप निर्धारित किये जाते हैं ? अपने उत्तर को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें ?
3. विचरणांश विश्लेषण क्या है? इसे प्रबन्ध का यन्त्र क्यों कहते है?
4. विचरणांश शब्द की व्याख्या कीजिए तथा नियन्त्रणीय व अनियन्त्रणीय विचरणांश में भेद कीजिए?

2.9 व्यावहारिक प्रश्न–

1. एक कारखाने में प्रमाप मिश्रण में 60 प्रतिशत A और 40 प्रतिशत B है।

उत्पादन में प्रमाप हानि 30 प्रतिशत है। प्रमाप मिश्रण व उत्पादन इस प्रकार था:

A 60 Kg @ Rs. 8 per Kg.
B 40 Kg @ Rs. 15 per Kg.
Standard Yield 70 Kg.

वास्तविक मिश्रण व उत्पादन था :

Actual mixture and Yield were :
A 90 Kg. @ Rs. 7 Kg.
B 60 Kg@ Rs. 12 Per Kg.
Actual Yield 120 Kg.

उक्त सूचना से सामग्री विचरणांश की गणना की कीजिए।

[Ans : SC Per Unit 108/7, MCV = Rs. 501.43 (F), MPV = Rs. 270 (F), MUV = Rs. 540 (Unf), MMV= Nil, MYV = Rs. 771.43 (F)]

2. एक कारखाने में श्रमिकों के समूह में सामान्यतः 10 आदमी 5 महिलाए तथा 5 लड़के शामिल होते हैं। वे क्रमशः 1.25 रू. 0.80 रू. तथा 0.70 रू. प्रमाप घण्टा दर से मजदूरी पाते हैं। एक 40 घण्टे के सामान्य सप्ताह में समूह द्वारा 1,000 इकाई बनाने की आशा है।

एक विशेष सप्ताह में समूह में 13 आदमी, 4 महिलाएं तथा 3 लड़के शामिल थे। वास्तविक मजदूरी क्रमशः 1.20 रू. 0.85 रू. तथा 0.65 रू की दर से दी गयी। असाधारण समय के कारण 2 घण्टे बेकार गये और 960 इकाइया उत्पादित हुईं। विचरणांशों की गणना कीजिए।

[Ans : LCV = Rs. 70 (Unf), LRV = Rs. 24 (F), LEV = Rs. 40(F), LMV = Rs. 58.90 (Unf), Idle Variance = Rs. 43.10 (Unf), LYV = Rs. 32 (Unf)]

3. एक कारखाने में प्रति सप्ताह प्रमाप उत्पादन 2,000 इकाइयां हैं, परन्तु जून के प्रथम सप्ताह में वास्तविक उत्पादन 2,400 इकाईयां थीं। इस सप्ताह के लिए कुल अप्रत्यक्ष व्यय निम्न थे :

	Standard	**Actual**
Fixed	900	800
Variable	500	500
Semi-Variable	1,050	900

सप्ताह के दौरान किया गया अतिरिक्त समय कार्य एक दिन के कार्य के बराबर था। अर्द्ध–परिवर्तनशील व्यय एक–तिहाई स्थिर व दो–तिहाई परिवर्तनशील है। प्रमाप से व्यय विचरणांश की गणना कीजिए।

[Ans : Final Overhead Expenditure Variance = 150 (Unf), Variable Overhead Expenditure Variance = Rs. 120 (F)].

भाग–3 विभिन्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन की आवश्यकता (REPORTING NEEDS AT DIFFERENT MANAGERIAL LEVELS)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रतिवेदन के प्रकार :

- 3.2.1 उद्देश्य या प्रयोगकर्त्ता के आधार पर
- 3.2.2 प्रकृति के आधार पर
- 3.2.3 निहित सूचना तथ्य के आधार पर

3.3 प्रतिवेदन की विधियाँ

3.4 विभिन्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन :

- 3.4.1 उच्च प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन
- 3.42 मध्य प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन
- 3.4.3 निम्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन

3.5 सैद्धान्तिक प्रश्न

3.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- प्रतिवेदन की रुपरेखा व आशय ज्ञात होगें।
- प्रतिवेदन के प्रकारों की जानकारी होगी।
- प्रतिवेदन की विधियाँ ज्ञात होगी।
- प्रतिवेदन में प्रंबध के विभिन्न स्तरों की जानकारी होगी।
- प्रतिवेदन तैयार करने की प्रक्रिया की जानकारी होगी।

3.2 प्रतिवेदन के प्रकार

प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली के माध्यम से प्रबन्ध संस्था के सम्पूर्ण कार्यकलापों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। नियोजन, नियंत्रण व निर्णयन के क्षेत्र में प्रतिवेदन प्रणाली का मार्गदर्शन आशा से ज्यादा उपयोगी रहता है। चालू नियंत्रण प्रतिवेदनों से प्रबन्ध उचित सुधारात्मक कार्यवाही को लागू करके संस्थान की हानियों को कम

कर सकता है। प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली का आधार अपवाद का सिद्धान्त है अर्थात यह प्रणाली प्रबन्ध के सामान्य संचालन में कोई हस्तक्षेप नहीं करती है। उन्हीं क्षेत्रों में एवं उसी समय हस्तक्षेप होता है जब इसकी आवश्यकता है अर्थात् कोई क्रिया पूर्व नियोजित ढंग से न चल रही हो। प्रबन्ध के सभी स्तरों पर उचित सम्प्रेषण व्यवस्था द्वारा कम्पनी की गतिविधियों का सफल संचालन होगा। प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली के अभाव में प्रबन्धक संस्थान की कार्य निष्पत्ति एवं वित्तीय स्थिति के बारे में अंधेरे में रहेंगे और आवश्यक सूचनाओं के अभाव में पूँजी–बाजार से आवश्यक कोषों की व्यवस्था करना कठिन होगा। यह प्रणाली व्यावसायिक पूर्वानुमान, वित्तीय नियोजन एवं वित्तीय नियंत्रण का आधार है। कम्पनी के आन्तरिक प्रशासन एवं कार्यकुशलता से इन सूचनाओं का निकट का सम्बन्ध होता है। आवश्यक सूचनाओं का नियमित एवं ठीक सम्प्रेषण प्रबन्ध की जानकारी को बढ़ाकर आगे की यथोचित कार्यवाही करने के लिये प्रेरित करता है। निचले स्तर पर भी कर्मचारी जब तथ्यों एवं अन्य आवश्यक सूचनाओं से अवगत हो जाते हैं तो वे अधिक जिम्मेदारी एवं सूझ–बूझ से कार्य करते हैं। प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली द्वारा प्रबन्ध बाह्य पक्षों के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करता है। जनहित एवं सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी बातों पर प्रबन्ध तभी विचार कर सकता है जबकि संस्था में एक प्रभावपूर्ण प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली हो।

प्रतिवेदन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. **उद्देश्य या प्रयोगकर्ता के आधार पर (On the basis of objects or user)–**
    - अ) आन्तरिक प्रतिवेदन (Internal Reports)
    - ब) बाह्य प्रतिवेदन (External Reports)
2. **प्रकृति के आधार (On the basis of Nature)–**
    - अ) उपक्रम प्रतिवेदन (Enterprise Reports)
    - ब) नियंत्रण प्रतिवेदन (Control Reports)
    - स) अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन (Investigative Reports)
3. **सूचना तथ्यों के आधार पर (On the basis of Facts)–**
    - अ) परिचालन प्रतिवेदन (Operating Reports)
    - ब) वित्तीय प्रतिवेदन (Financial Reports)

3.2.1 (1) उद्देश्य या प्रयोगकर्ता के आधार पर

इस आधार पर लेखा–प्रतिवेदनों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

NMDC-129

(अ) आन्तरिक पक्षों के प्रयोग के लिये प्रतिवेदन अथवा आन्तरिक प्रतिवेदन।

(ब) बाह्य पक्षों के प्रयोग के लिये प्रतिवेदन अथवा बाह्य प्रतिवेदन।

(अ) आन्तरिक प्रतिवेदन :

ये प्रतिवेदन आन्तरिक प्रबन्ध और उसके नियंत्रण के लिये होते है। ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

(i) सामान्य, आवधिक अथवा नैत्यिक प्रतिवेदन–ये प्रतिवेदन व्यवसाय की दैनिक क्रियाओं के सम्बन्ध में होते हैं तथा इन्हें आवश्यकता व परिस्थितिनुसार दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अथवा तिमाही नियमित रूप से तैयार किया जाता है। इन प्रतिवेदनों में नैत्यिक वित्तीय सूचनायें दी जाती हैं। इनमें निम्न प्रतिवेदन सम्मिलित होते हैं–

(क) उत्पादन क्रिया का विवरण–इसका उद्देश्य उत्पादन मात्रा, उत्पादन कार्य में प्रयुक्त सामग्री, कच्चे व निर्मित माल के स्कन्ध आदि के सम्बन्ध में सूचनायें प्रदान करना होता है। यह प्रतिवेदन उत्पादन क्रिया पर नियंत्रण में सहायक होता है।

(ख) विक्रय प्रतिवेदन–इसमें प्राप्त आदेश, पूर्ण किये गये आदेश, रद्द किये गये आदेश तथा प्रदत्त आदेशों के सम्बन्ध में सूचना दी जाती है।

(ग) उत्पादन लागत प्रतिवेदन–इसमें प्रति इकाई उत्पादन लागत के सम्बन्ध में सूचना दी जाती है।

(घ) विक्रय लागत प्रतिवेदन–इसमें प्रत्येक उत्पाद, क्षेत्र व विक्रेता के अनुसार विक्रय लागतों का विश्लेषणात्मक विवरण दिया जाता है।

(ङ) विभागीय कार्यकरण विवरण–यह विवरण विभिन्न विभागों की कुशलता को मापने के लिए तैयार किया जाता है। इसमें प्रत्येक विभाग के निष्पादनों और बजटीय अंकों की तुलना करके विचरणों को प्रदर्शित किया जाता है।

(च) साख विभाग द्वारा कार्यवाही हेतु बकाया ग्रहकों के खातों की सूची।

(छ) अनुसंधान और विकास सम्बन्धी प्रतिवेदन।

(ज) विभिन्न बजट–जैसे रोकड़ बजट, पूँजीगत व्यय बजट, उत्पादन बजट आदि।

(झ) श्रम और मशीन के उपयोग पर प्रतिवेदन।

(ट) वित्तीय स्थिति प्रतिवेदन अथवा स्थिति विवरण, विश्लेषण और व्याख्या सहित प्रतिवेदन।

(ठ) व्यवसाय में प्रयुक्त राशि की सूचना देने वाले प्रतिवेदन, जैसे कोष प्रवाह विवरण, रोक–प्रवाह विवरण आदि।

(ii) विशिष्ट प्रतिवेदन– प्रबन्ध के समक्ष ऐसी बहुत सी समस्यायें आती हैं

जिनके लिये सामान्य प्रतिवेदन पर्याप्त सूचनायें नहीं दे पाती हैं। अतः इन विशिष्ट समस्याओं पर निर्णय लेने के लिये विशिष्ट प्रतिवेदन आवश्यक हो जाते हैं। ये प्रतिवेदन व्यवसाय की दैनिक क्रियाओं से न सम्बन्धित होकर किसी विशेष प्रबन्धकीय समस्या से सम्बन्धित होते हैं। ये प्रतिवेदन अन्वेषणात्मक प्रकृति के होते हैं और समस्या विशेष पर किये विशेष अध्ययन पर आधारित तथ्य प्रदान करते हैं। ये प्रतिवेदन प्रमुखतया सर्वोच्च प्रबन्ध के उपयोग के लिये होते हैं।

विशिष्ट प्रतिवेदन की तैयारी—चूँकि ये प्रतिवेदन किसी समस्या विशेष पर निर्णय में सहायता के लिये तैयार किये जाते हैं, अतः इनके लिये कोई एक प्रमापित प्रारूप या कोई एक निश्चित सिद्धान्त नहीं अपनाया जा सकता है। वस्तुतः ऐसे प्रतिवेदन की तैयारी समस्या विशेष की प्रकृति पर निर्भर करती है। लैंग मैक फारलैंड शिफ के अनुसार इन प्रतिवेदनों की तैयारी के लिए निम्नलिखित पग उठाने चाहिये—

(क) समस्या को परिभाषित करना,

(ख) प्रस्ताव से प्रभावित होने वाली लागतें और आय ज्ञात करना,

(ग) लागतों और सम्बन्धित आय के अनुमान लगाना,

(घ) लागतों और सम्बन्धित आय की तुलना करना।

ध्यान रहे कि विशिष्ट प्रतिवेदन में आय, लागत और पूँजी की उन्हीं मदों को शामिल करना चाहिये जो कि सम्भावित निर्णय से प्रभावित होंगे किन्तु साथ ही इसमें ऐसा कोई तथ्य नहीं छूट जाना चाहिये जिसका निर्णय पर प्रभाव पड़ेगा।

जे0 बैटी के अनुसार प्रत्येक विशिष्ट प्रतिवेदन को निम्न चार भागों में बाँटना चाहिये—

(क) प्रतिवेदन के कारण,

(ख) किये गये अन्वेषण,

(ग) जाँच के परिणाम और

(घ) निष्कर्ष और सुझाव

प्रतिवेदन से सम्बन्धित विस्तृत अंक, बिन्दु चित्र आदि परिशिष्ट के रूप में देने चाहिये। यदि ऐसा प्रतिवेदन बहुत बड़ा हो जाये तो प्रतिवेदन के साथ एक सारांश भी तैयार करना चाहिये।

विशिष्ट प्रतिवेदन के प्रकार अथवा निश्चयीकरण में विशिष्ट प्रतिवेदनों का महत्व—विशिष्ट प्रतिवेदन प्रबन्धकीय निर्णयन में अति सहायक होते हैं। निम्नलिखित प्रबन्धकीय समस्याओं पर निर्णय लेने के लिये ये प्रतिवेदन आवश्यक होते हैं—

(क) सामान्य व्यावसायिक नीति निश्चित करना,

(ख) मूल्य नीति निर्धारित करना,

(ग) विक्रय नीतियाँ निर्धारित करना और बाजार शोध परियोजनायें,

(घ) उत्पादन मात्रा और मूल्यों पर प्रतिवेदन,

(ङ) उत्पादन कार्य में देरी,

(च) मशीन की टूट–फूट के कारण उत्पादन कार्य रूक जाना,

(छ) श्रम विवादों के प्रभाव पर प्रतिवेदन,

(ज) वस्तु के किसी भाग को स्वयं बनाया जाय या बाजार से क्रय किया जाय,

(झ) वस्तु वर्तमान स्थिति में ही बेच दी जाय अथवा इस पर आगे और काम किया जाय,

(ञ) किसी स्थायी सम्पत्ति को पट्टे पर लिया जाय अथवा क्रय कर लिया जाय,

(ट) नई वस्तु का उत्पादन करना,

(ठ) किसी दिये हुये मूल्य पर आर्डर स्वीकार किया जाय अथवा नहीं,

(ड) व्यापारिक मन्दी के समय न्यूनतम मूल्य क्या हो,

(ढ) किसी विभाग या संयंत्र को बन्द करना,

(ण) पूंजी व्ययों पर निर्णय के लिये प्रतिवेदन,

(त) लागत में कमी की परियोजनाओं का अध्ययन, जैसे श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रतिस्थापन आदि।

(थ) अर्थ–प्रबन्धन का सर्वोत्तम ढंग निश्चित करना,

(द) फालतू धन के विनियोजन के लिये समुचित ढंग निश्चित करना,

(ध) सरकारी नीतियों में परिवर्तन का व्यवसाय पर प्रभाव आँकना,

(न) प्रतियोगियों की क्षमता का अध्ययन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विशिष्ट प्रतिवेदन बहुत सी प्रबन्धकीय समस्याओं पर निर्णय में सहायक होते हैं।

(iii) प्रबन्धकीय स्तर से सम्बन्धित प्रतिवेदन– इस वर्ग में विभिन्न स्तर के प्रबन्ध अधिकारियों को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदन आते है। इन प्रतिवेदनों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि जैसे–जैसे प्रबन्ध अधिकारी का स्तर ऊँचा होता जाता है, प्रतिवेदन का सीमा क्षेत्र व्यापक होता जाता है, लेकिन इसमें दिये गये विवरणों की मात्रा कम होती जाती है। प्रबन्धकीय स्तर के आधार पर इन प्रतिवेदनों को निम्न चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(क) संचालक मण्डल को प्रतिवेदन– संचालक मण्डल कम्पनी का सर्वोच्च

स्तरीय प्रबन्ध होता है। इस स्तर पर सम्पूर्ण व्यवसाय पर पर लागू होने होने वाली आधारभूत नीतियाँ और योजनायें निश्चित की जाती हैं तथा निर्णय लिये जाते हैं। संचालक मण्डल को प्रतिवेदन संस्था का मुख्य अधिकारी (प्रबन्ध संचालक) प्रस्तुत करता है तथा अन्य अधिकारी उसके द्वारा ही संचालक मण्डल को प्रतिवेदन देते हैं। जिन संस्थाओं में प्रबन्ध–लेखपाल संस्था का मुख्य वित्तीय अधिकारी होता है, वहाँ यह कार्य प्रबन्ध–लेखपाल करता है।

संचालक मण्डल को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदन बहुत ही सारांश में होते हैं। इनमें उन सभी सूचनाओं का समावेश होता है जो किसी कम्पनी के संचालन व नीति–निर्धारण के लिये आवश्यक होती हैं। तुलना व प्रवृत्ति विश्लेषण के लिये इन प्रतिवेदनों में वर्तमान अवधि के अंकों के साथ–साथ गत वर्षों के अथवा उसी प्रकार के व्यवसाय में संलग्न अन्य कम्पनियों के समंक भी दिये जाते हैं। आवश्यकतानुसार ये प्रतिवेदन वार्षिक, छमाही, तिमाही अथवा मासिक हो सकते हैं। किन्तु सभी प्रकार के प्रतिवेदन संचालक मण्डल को मण्डल की सभा से पूर्व ही प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। व्यवसाय का लाभ–हानि विवरण तथा स्थिति विवरण बोर्ड को मासिक आधार पर ही प्रस्तुत किये जाते है।

ये प्रतिवेदन अधिकतर सामान्य प्रकार के होते हैं। मोटे तौर पर इन प्रतिवेदनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–(1) आवधिक प्रतिवेदन और (2) विशिष्ट प्रतिवेदन। आवधिक प्रतिवेदन में बोर्ड को नियमित रूप से प्रस्तुत किये जाने वाले तथ्यों से सम्बन्धित प्रतिवेदन आते हैं। इनमें संक्षिप्त स्थिति विवरण, लागत प्रतिवेदन, मास्टर बजट, रोकड़ बजट पूँजी बजट तथा विकास और अनुसंधान व्यय बजट, उत्पादन और विक्रय सारांश, विचरण विवरण, स्टॉक, विवरण, विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय तथा विभिन्न लेखा अनुपात आदि सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त कम्पनी के प्रत्याशित भावी परिणामों के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त प्रतिवेदन भी संचालक मण्डल को प्रस्तुत किया जाता है। इन प्रतिवेदनों से संचालक मण्डल को व्यवसाय की वित्तीय स्थिति, लाभ प्रवृत्ति, तरलता, संचालन दशाओं, व्यावसायिक दशाओं, विक्रय, निष्पादन की स्थिति तथा आर्थिक दशाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

विशिष्ट परिस्थितियों में संचालक मण्डल विशिष्ट प्रतिवेदनों की मांग कर सकता है। इस प्रकार के प्रतिवेदनों की आवश्यकता विशेषतया तब होती है जबकि बोर्ड को दीर्घ या अल्पकालीन कोष जुटाने हों, संचालन क्रियाओं का विस्तार या आकार परिवर्तन करना हो अथवा संस्था की साख नीति में परिवर्तन करना हो। इसी प्रकार लाभांश घोषित करते समय संचालन मण्डल को संस्था के भूतकालीन अर्जन अभिलेखों, संचय स्थिति, अंशधारियों के स्वामित्व, स्थायी पूँजी और कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं, कम्पनी के आर्थिक हित आदि के सम्बन्ध में लेखा–सूचनाओं की आवश्यकता हो सकती है।

(ख) उच्च प्रबन्ध के लिये प्रतिवेदन–एक बड़ी कम्पनी में उच्च प्रबन्ध संचालक मण्डल और मध्य प्रबन्ध के बीच समाशोधन गृह का कार्य करता है। इस स्तर पर

NMRC-129

प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदन मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जिन्हें संचालक मण्डल को प्रेषित कर देना होता है और दूसरे वे जिन्हें मण्डल को प्रेषित करने की आवश्यकता नहीं होती। इन पर तो उच्च प्रबन्ध को ही विचार करना होता है। इस स्तर के प्रबन्धकों का कम्पनी के कार्यात्मक पहलू की ओर अधिक ध्यान रहता है। ये लोग विभिन्न विभागाध्यक्षों के पर्यवेक्षक और सलाहकार का कार्य करते हैं। चूँकि उच्च प्रबन्ध स्तर के बहुत से व्यक्ति कम्पनी के संचालक मण्डल के सदस्य होते हैं, अतः इस स्तर पर प्रतिवेदन क्रिया में ओवरलैपिंग की सम्भावना रहती है। उच्च प्रबन्ध को भेजे जाने वाले प्रतिवेदन में स्थिति विवरण व लाभा–लाभ सारांश, लागत प्रतिवेदन, विचरण विवरण, मास्टर बजट, रोकड़ बजट, पूँजी बजट व विकास एवं अनुसंधान व्यय बजट, उत्पादन और विक्रय सारांश, स्टाक विवरण और विभिन्न लेखा–अनुपात सम्मिलित होते हैं। इन प्रतिवेदनों की सहायता से ही उच्च प्रबन्ध व्यावसायिक क्रियाओं पर नियंत्रण करता है।

(ग) मध्य प्रबन्ध के लिये प्रतिवेदन–इस सम्बन्ध में निम्न प्रतिवेदन तैयार किये जा सकते हैं–

(A) विक्रय पर प्रतिवेदन–इस सम्बन्ध में निम्न प्रतिवेदन तैयार किये जा सकते हैं–

(a) वास्तविक विक्रय और बजटीय विक्रयों का विवरण। इसमें सम्बन्धित अवधि के गत वर्ष के अंक भी दिये जा सकते हैं।

(b) वास्तविक विक्रय व्यय और बजटीय विक्रय व्यय का विवरण।

(c) देनदारों का विवरण।

(d) विक्रेतानुसार, उत्पादानुसार अथवा क्षेत्रानुसार विक्रय का विवरण।

(e) देनदारों का विवरण।

(f) प्राप्त आर्डरों का सारांश।

(B) क्रय पर प्रतिवेदन– इन प्रतिवेदनों में विभिन्न समयों पर सामग्री की क्रय की मात्रा, सामग्री के स्टॉक की स्थिति, सामग्री के मूल्यों की प्रवृत्ति आदि बातें दी जाती हैं।

(c) उत्पादन पर प्रतिवेदन– इस सम्बन्ध में निम्न प्रतिवेदनें तैयार की जा सकती हैं–

(a) उत्पादन बजट तथा वास्तविक उत्पादन।

(b) उत्पादन विचरण विवरण।

(c) संयंत्र उपयोग बजट तथा वास्तविक संयंत्र उपयोग।

(d) श्रम बजट तथा वास्तविक श्रम का उपयोग।

(e) कुल उत्पादन का विवरण–इस विवरण से उत्पादन प्रवृत्तियों की जानकारी

प्राप्त होती हैं।

(D) लागतों पर प्रतिवेदन—उत्पादन लागत के प्रतिवेदन में सामग्री, श्रम और उपरिव्ययों का सारांश दिया जाता हैं। इसमें सामग्री क्षय, बेकार गये समय, मशीनी उपयोग आदि के सम्बन्ध में भी सूचनायें दी जाती हैं।

(घ) निम्न प्रबन्ध स्तर के लिये प्रतिवेदन—इन्हें दैनिक कार्य प्रतिवेदन भी कहते हैं। इन प्रतिवेदनों का कोई निश्चित प्रारूप नहीं होता हैं। इन प्रतिवेदनों में अधिकतर मात्रायें ही दिखलायी जाती हैं। वस्तुतः ये प्रतिवेदन कार्य प्रगति का दैनिक सारांश होते है।

(ब) बाह्य प्रतिवेदन

यद्यपि ये प्रतिवेदन अत्यन्त संक्षिप्त होते हैं किन्तु ये व्यवसाय के बाह्य पक्षों को बहुत महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करते हैं इनमें निम्नलिखित प्रतिवेदन सम्मिलित होते हैं—

(i) अंशधारियों के लिये प्रतिवेदन—जैसे आय विवरण, स्थिति विवरण, संचालकों का प्रतिवेदन आदि।

(ii) स्कन्ध विपणि प्रतिवेदन—यदि कम्पनी के अंशों का किसी स्कन्ध विपणि पर सूचियन किया जा चुका है तो कम्पनी को स्कन्ध विपणि के अधिकारियों के पास नियमित रूप से एक प्रतिवेदन भेजना होता है।

(iii) कर—विवरण—इसमें आयकर विवरण, बिक्री—कर विवरण, आबकारी कर विवरण व अन्य कर विवरण सम्मिलित होते हैं।

(iv) बैंक व अन्य साख संस्थाओं का प्रतिवेदन।

3.2.2 (2) प्रकृति के आधार पर

इस आधार पर लेखा—प्रतिवेदनों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) उपक्रम प्रतिवेदन,

(ब) नियंत्रण प्रतिवेदन, और

(स) अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन।

(अ) उपक्रम प्रतिवेदन—इन प्रतिवेदनों में सम्पूर्ण उपक्रम की किसी विशिष्ट क्रिया, कार्य अथवा समूची संचालन क्रिया के सम्बन्ध में वित्तीय सूचनायें दी जाती है। यह प्रतिवेदन व्यवसाय के बाह्य पक्षों को उपक्रम के बारे में सूचना संवहन का साधन होता है। संस्था का स्थिति विवरण, आय विवरण, संचालकों का प्रतिवेदन, अध्यक्षीय भाषण, आय—कर विवरण, स्कन्ध, विपणि अधिकारियों को भेजा गया विवरण आदि इसके उदाहरण हैं। इन प्रतिवेदनों का एक नियत प्रारूप होता हैं तथा विषय—वस्तु भी निश्चित होती है। इन प्रतिवेदनों के आधार पर ही वित्तीय विश्लेषक

NMDC-129

संस्था की क्रियाओं का विश्लेषण व उनकी टीका–टिप्पणी करते हैं। वित्तीय लेखा–विधि के क्षेत्र में प्रतिवेदनों का विशिष्ट स्थान है।

(ब) नियंत्रण प्रतिवेदन– ये प्रतिवेदन ही प्रबन्धकीय लेखा–विधि की नियंत्रण प्रक्रिया के आधार होते हैं। ये वास्तविक निष्पादन का बजटीय या प्रमापित अंकों से माप प्रस्तुत करते हैं। इसमें विचरण की सीमा और उसके कारणों को स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र के लिये एक पृथक् नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। इन्हें साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक अथवा वार्षिक आधार पर तैयार किया जा सकता है किन्तु इनकी प्रभावशीलता इनके शीघ्र तैयार करने में सन्निहित है। इनका कोई एक प्रमापित प्रारूप नही निर्धारित किया जा सकता है। ये प्रतिवेदन दो प्रकार के होते हैं–

(i) चालू नियंत्रण प्रतिवेदन– ये प्रतिवेदन मासिक, साप्ताहिक अथवा दैनिक आधार पर तैयार किये जाते हैं। इनका उद्देश्य निष्पादित क्रियाओं की उनके लिये निर्धारित प्रमापों से तुलना करके विचरण ज्ञात करना और उन्हें प्रबन्ध की जानकारी में लाना होता है, जिससे प्रबन्ध समय रहते आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही कर सके। व्यावसायिक क्रियाओं के उन क्षेत्रों में जहाँ अधिक उच्चावन की सम्भावना रहती हैं, जैसे बिक्री, आय कारखाना व्यय आदि, प्रबन्ध नियंत्रण प्रतिवेदन तैयार करता है।

(ii) सारांश (अथवा संक्षिप्त) नियंत्रण प्रतिवेदन– एक निश्चित अवधि में प्रमाप से हुये विचरणों का लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव को संक्षिप्त रूप में प्रकट करने वाले प्रतिवेदन ही सारांश नियंत्रण प्रतिवेदन कहलाते हैं। उनका उद्देश्य कारखाना प्रबन्ध की कुल प्रभावशीलता प्रकट करना तथा मुख्य प्रबन्ध अधिकारी के विचारार्थ विभिन्न विचरणों को सारांश रूप में प्रस्तुत करना तथा उनका बजटीय लाभ पर प्रभाव को दर्शाना होता है। ये प्रतिवेदन दो रूपों में तैयार किये जा सकते हैं–(क) मास्टर सारांश नियंत्रण प्रतिवेदन और (ख) सहायक सारांश नियंत्रण प्रतिवेदन। मास्टर प्रतिवेदन एक मासिक आय–विवरण होता है जिसमें सम्बन्धित माह के वास्तविक परिणामों की हाल ही में तैयार किये गये बजट से तुलना की गयी होती है। दूसरी ओर सहायक प्रतिवेदन विभिन्न क्रियाकलापों के सम्बन्ध में अधिक विवरणात्मक सारांश प्रस्तुत करता है। इस प्रकार मास्टर प्रतिवेदन से प्रबन्ध को सम्पूर्ण इकाई के संचालन परिणामों की बजटीय परिणामों से तुलनात्मक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है जबकि सहायक प्रतिवेदन से प्रत्येक अधिकारी वर्ग विभाग की वास्तविक और नियोजित संचालन क्रिया का अध्ययन करके उनके कार्यो पर नियंत्रण कर सकता है।

(स) अन्वेषणात्मक प्रतिवेदन– ये नियंत्रण प्रतिवेदन द्वारा प्रकट गम्भीर मामलों पर की गयी विशेष जाँच के आधार पर तैयार किये जाते हैं। इनमें समस्या के कारणों और उनके लिये उपायों पर प्रकाश डाला जाता है। ये विशिष्ट प्रतिवेदन होते हैं तथा इन्हें विचाराधीन परिस्थिति विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं के आध ार पर तैयार किया जाता है।

3.2.3 (3) निहित सूचना तथ्य के आधार पर

इस आधार पर लेखा–प्रतिवेदनों को दो भागों में बाँटा जाता है–

(अ) परिचालन प्रतिवेदन (ब) वित्तीय प्रतिवेदन।

(अ) परिचालन प्रतिवेदन–ये प्रतिवेदन व्यवसाय के संचालन परिणामों से सम्बन्धित होते हैं। इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है :–

(i) नियंत्रण प्रतिवेदन–इनका वर्णन किया जा चुका है।

(ii) सूचना प्रतिवेदन–इनका उद्देश्य संचालन से सम्बन्धित उन तथ्यों व सूचनाओं को सरल व स्पष्ट रूप में प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना होता है जो कि व्यावसायिक योजना की नीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। इन प्रतिवेदनों का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है तथा इनकी तैयारी में अपेक्षाकृत अधिक जाँच व विश्लेषण की आवश्यकता होती हे। ये प्रतिवेदन निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

(क) प्रवृत्ति प्रतिवेदन– इनमें किसी कार्य या कार्यों के दो या दो से अधिक अवधियों के परिणामों की तुलना की जाती है और परिवर्तन की मात्रा ज्ञात की जाती है। यह प्रतिवेदन दो प्रकार का हो सकता है–(i) मास्टर (ii) सहायक। मास्टर प्रवृत्ति प्रतिवेदन में सम्पूर्ण व्यवसाय के एक वर्ष के संचालन परिणामों की पिछले कई वर्षों के परिणामों से तुलना की जाती है जबकि सहायक प्रवृत्ति प्रतिवेदनों में विभिन्न विभागों, प्रक्रियाओं या अधिकारियों के संचालन परिणामों के तुलनात्मक अंक दिये जाते हैं।

(ख) विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन– इनमें एक ही अवधि की विभिन्न क्रियाओं के बीच अथवा विभिन्न क्षेत्रों में की जाने वाली समान प्रकार की क्रियाओं के बीच तुलना की जाती है और उनमें अन्तर ज्ञात किये जाते हैं। यह प्रतिवेदन परिणामों की क्षैतिज तुलना पर आधारित होता है।

(ग) क्रियाशीलता प्रतिवेदन– इन प्रतिवेदनों की रचना कार्यानुसार अथवा विभागानुसार की जाती है। ये प्रतिवेदन दो प्रकार के हो सकते हैं–व्यक्तिगत क्रियाशीलता प्रतिवेदन और संयुक्त क्रियाशीलता प्रतिवेदन। पहला प्रतिवेदन उन क्रियाओं तक सीमित होता है जो कि केवल एक उत्तरदायी अधिकारी के निर्देशन में पूरी की गई हैं जबकि दूसरा प्रतिवेदन प्रत्येक अधिकारी के निर्देशन में पूरी की जाने वाली क्रियाओं के सामूहिक परिणामों को प्रदर्शित करता है।

(ब) वित्तीय प्रतिवेदन–ये प्रतिवेदन संस्था की वित्तीय स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। ये प्रतिवेदन प्रबन्ध का अंशधारियों के प्रति दायित्व निभाने का मूल्यांकन करते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

(i) स्थिर वित्तीय प्रतिवेदन– ये प्रतिवेदन किसी निश्चित तिथि पर व्यवसाय की वित्तीय स्थिति (सम्पत्ति, ऋण और दायित्व की स्थिति) का एक चित्र प्रस्तुत

NMDC-129

करते हैं। स्थिति विवरण और उसके सहायक विवरण (जैसे–देनदारों का विवरण) स्थिर प्रतिवेदन कहलाते हैं।

(ii) प्रावैगिक वित्तीय प्रतिवेदन–ये प्रतिवेदन व्यवसाय की वित्तीय स्थिति के परिवर्तनों को प्रदर्शित करते हैं। इनमें निम्न प्रतिवेदन सम्मिलित होते हैं–

(अ) वित्तीय नियंत्रण प्रतिवेदन– इस प्रतिवेदन में व्यवसाय के आर्थिक चिट्ठे में वास्तविक अंकों की बजटीय अंकों से तुलनात्मक स्थिति दर्शायी जाती है। इसे तुलनात्मक आर्थिक चिट्ठा भी कहते हैं। ऐसा प्रतिवेदन व्यवसाय की वित्तीय स्थिति की जाँच और रोकथाम में सहायक होता है।

(ब) कोषों की प्रभावशीलता का प्रतिवेदन–यह प्रतिवेदन व्यवसाय की विभिन्न सम्पत्तियों में विनियोजित कोषों की प्रभावशीलता का माप होता है। इसमें विभिन्न सम्पत्तियों में विनियोजित कोषों की मात्रा का उनसे प्राप्त की गई आयसे सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। विभिन्न सम्पत्तियों में विनियोजित कोषों की लाभप्रदता एवं प्रभावशीलता के माप के लिये भिन्न–भिन्न कसौटियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। उदाहरण के लिये देनदारों की वसूली की प्रभावशीलता के माप के लिये ''औसत संग्रह अवधि'' की गणना की जा सकती है तथा स्कन्ध के लिये ''स्कन्ध आवर्त'' ज्ञात किया जा सकता है।

(स) वित्तीय स्थिति के परिवर्तन का प्रतिवेदन– इसके अन्तर्गत वे प्रतिवेदन आते है जो दो लेखावधियों के बीच व्यवसाय के कोषों में परिवर्तन का विश्लेषण करते हैं। रोक प्रवाह विवरण और कोष विवरण इसी के अन्तर्गत आते हैं।

3.3 प्रतिवेदन की विधियाँ (Models of Reporting)

प्रबन्धकीय प्रतिवेदन प्रणाली में इस बात की स्पष्ट व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रतिवेदन किस रूप में तैयार हो। प्रतिवेदन निम्नलिखित चार रूपों में तैयार होता है :

1. विवरण :

यह विधि सबसे ज्यादा प्रचलित है। इसे परम्परागत विधि के नाम से जाना जाता है। इसमें प्रायः निम्न से सम्बन्धित सूचनाएं व्यवस्थित की जाती हैं :

1. बजट समंकों और वास्तविक निष्पादन क्षमता की तुलना।
2. एक अवधि के दौरान तुलनात्मक चित्र।
3. किसी विशेष मद के अवधि विशेष के दौरान का सांख्यिकीय विश्लेषण।

2. आरेख / चित्र :

विवरणों के रूप में तैयार किये गये प्रतिवेदनों की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसमें सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण नीरस है और सूचनाओं को पढ़ने

वाला सूचना के रूप में दिये गये समंकों को पढ़ने में ज्यादा रूचि नहीं दिखाता है। आरेख/चित्र सूचनाओं को ज्यादा अच्छी प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। इसमें सूचना प्राप्त करने वाला सूचनाओं में रूचि रखता है और ऐसी सूचनाओं को समझने में ज्यादा समय भी नहीं लगता है।

3. **अनुपात** :

विवरण तथ्यों निरपेक्ष प्रस्तुतीकरण कहते हैं। जब तथ्यों को संक्षिप्त और सापेक्ष रूप में प्रस्तुत करना हो तो अनुपात का प्रयोग किया जाता हे। इन अनुपातों को कभी–कभी प्रतिवेदन के प्रमुख भाग के रूप में प्रस्तुत न करके उससे संलग्न परिशिष्ट में दिखाया जाता है। अनुपातों को प्रतिशतों में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। चालू अनुपात, तरलता अनुपात, रहतिया आवर्त, समता पूँजी आवर्त अनुपात, कार्यशील पूँजी आवर्त अनुपात, ऋण समता अनुपात, शोधन क्षमता अनुपात, शुद्ध मूल्य दायित्व अनुपात एवं विभिन्न संचालन और लाभदायक अनुपातों को प्रतिवेदन में दिखाया जा सकता है।

4. **सूत्र** :

प्रतिवेदनों में सूत्रों का प्रयोग भी होता है।महत्वपूर्ण सूत्रों की प्रयोग विधि एवं उनके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष को विस्तृत ढंग से इन प्रतिवेदनों में दिखाया जा सकता है। लाभ–मात्रा अनुपात, समविच्छेद बिन्दु, विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय एवं विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की तकनीकियों का विस्तृत व्यौरा इसी विधि द्वारा प्रतिवेदनों में सम्मिलित किया जा सकता है।

3.4 विभिन्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन (Reporting at different levels of Management)

प्रबन्ध इन प्रतिवेदनों का प्रयोग प्रबन्धकीय व्यवसाय की आन्तरिक आवश्यकताओं के लिए करता है। इन्हें अनौपचारिक प्रतिवेदन भी कहते हैं। इन प्रतिवेदनों की सूचनाएँ प्रारूप एवं भेजने का समय प्रबन्ध की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। ये प्रतिवेदन विभिन्न प्रबन्ध स्तरों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं जिनका विवरण इस प्रकार हैं :

3.4.1 1. उच्च प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन :

एक कम्पनी में उच्च स्तरीय प्रबन्ध संचालक मण्डल का होता है। संस्था का प्रमुख अधिकारी ही प्रत्यक्ष रूप से संचालक मण्डल को प्रतिवेदन भेजता है। संचालक मण्डल को दिये जाने वाले प्रतिवेदन में उन सभी सूचनाओं का समावेश होना चाहिए जो कम्पनी की नीति–निर्धारण में उन सभी सूचनाओं का समावेश होना चाहिए जो कम्पनी की नीति–निर्धारण में आवश्यक हो। संचालन मण्डल को दिये जाने वाले प्रतिवेदनों में विक्रय, लाभ, विनियोजित पूँजी, पूँजी प्रत्याय, सम्पत्तियाँ एवं दायित्व

स्पष्ट रूप से दिखलाये जाते हैं। वास्तविक समंकों के साथ बजट के लक्ष्य या पिछले वर्ष के समंक भी प्रतिवेदन में दिखाये जाते हैं।

संस्था के उच्च स्तर के प्रबन्ध में निदेशक एवं महाप्रबन्धक भी आते हैं। नीति–निध ारिण व नियंत्रण के लिए, इस स्तर के प्रबन्ध की ज्यादा विस्तृत सूचनायें प्रदान नही की जाती है। पूरे संस्था की स्थिति को मोटे रूप में प्रवृत्तियों, अनुपातों, सूचकांकों और विचलनों की सहायता से प्रतिवेदनों को निदेशक और महाप्रबन्धक के पास संचालक मण्डल की सभा के पूर्व प्रस्तुत किया जाता है। अपवाद के सिद्धान्त पर आधारित ये प्रतिवेदन मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक आधार पर तैयार किये जाते हैं। प्रमुख उच्च स्तरीय प्रबन्ध प्रतिवेदन निम्नलिखित है :

(क) संक्षिप्त लाभ–हानि खाता।

(ख) संक्षिप्त आर्थिक चिठ्ठा।

(ग) संक्षिप्त विचरण प्रतिवेदन।

(घ) सांराशित विक्रय प्रतिवेदन।

(ङ) मास्टर बजट।

(च) रोकड़ बजट।

(छ) पूँजी व्यय बजट।

(ज) कोष प्रवाह विवरण।

(झ) स्कन्ध सम्बन्धी प्रतिवेदन।

(ञ) यंत्रों एवं श्रमिकों के उपयोग का प्रतिवेदन।

(ट) शोध एवं स्तरीय प्रतिवेदन।

3.4.2 (2) मध्य प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन :

मध्य प्रबन्ध के कार्य संचालन में उत्पादन प्रबन्धक, विक्रय प्रबन्धक और क्रय प्रबन्धक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। विभागीय प्रबन्धकों को भी मध्य प्रबन्ध स्तर के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इस स्तर को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदन ज्याद विस्तृत सूचनाएं देते है। इन प्रतिवेदनों को अपेक्षाकृत कम अवधि के अन्तर पर प्रस्तुत किया जाता है। प्रबन्धक के इस स्तर को प्रस्तुत किये जाने वाले प्रमुख प्रतिवेदन निम्नलिखित हैं–

(क) बिक्री बजट, उत्पादन बजट एवं कच्चे माल का बजट।

(ख) देनदारी की स्थिति।

(ग) विक्रय, उत्पादन एवं कच्चे माल का विवरण।

(घ) निष्क्रिय क्षमता प्रतिवेदन।

(ङ) संयंत्र उपयोग प्रतिवेदन।

(च) कच्ची सामग्री के स्कन्ध स्तर का प्रतिवेदन।

(छ) प्रतिस्थापन एवं विस्तार परियोजना का प्रतिवेदन।

(ज) विभागीय लाभ का प्रतिवेदन।

(झ) श्रम उपयोग विचरण का प्रतिवेदन।

(ञ) विभागीय प्रशासन व्यय प्रतिवेदन।

3.4.3 3. निम्न प्रबन्ध स्तरीय प्रतिवेदन :

निम्न स्तर के प्रबन्धकों में फोरमैन, क्षेत्रीय बिक्री के पर्यवेक्षक आदि आते हैं। इस स्तर के प्रबन्ध को अपेक्षाकृत ज्यादा विस्तृत सूचनाओं की आवश्यकता रहती है। इस स्तर के प्रबन्धक दैनिक कार्यों के निरीक्षण के लिए उत्तरदायी होते हैं। अतः इन्हें प्रतिवेदन शीघ्रता से प्रेषित किये जाते हैं। इस स्तर के अधिकांश प्रतिवेदन दैनिक अवधि के आधार पर तैयार किये जाते हैं। प्रमुख प्रतिवेदन निम्नलिखित हैं :

(क) संयंत्र उपयोग प्रतिवेदन।

(ख) वास्तविक श्रम उपयोग प्रतिवेदन।

(ग) बिक्री संक्षेप।

(घ) उत्पादन संक्षेप।

(ङ) प्राप्त आदेशों का सारांश।

(च) आय व्यय का दैनिक प्रतिवेदन।

(छ) देनदारों की स्थिति का प्रतिवेदन।

इस स्तर के प्रतिवेदनों में अधिकतर मात्रायें ही दिखायी जाती हैं और इनका सारांश ही बाद में मध्य प्रबन्ध के पास प्रतिवेदन के रूप में भेजा जाता है।

3.5 सैद्धान्तिक प्रश्न :

प्रश्न– 1 आन्तरिक प्रयोग के लिए किस प्रकार के प्रतिवेदन हो सकते हैं? प्रत्येक का विवेचन कीजिए।

प्रश्न–2 लेखांकन प्रतिवेदन शब्द से आप क्या समझते हैं? एक प्रतिवेदन को कब आदर्श प्रतिवेदन कहा जा सकता है?

प्रश्न–3 (अ) प्रबन्ध के तीन स्तरों को परिभाषित कीजिए।

(ब) प्रत्येक स्तर पर सूचनाओं की आवश्यकता की क्या प्रकृति है?

(स) तीनों स्तरों में से प्रत्येक के सम्बन्ध और फीड बैक को दिखाते हुए, प्रबन्ध के समग्र प्रकृति को उदाहरणीकृत कीजिए।

प्रश्न–4 'नियंत्रण प्रतिवेदन' एवं 'सूचना प्रतिवेदन' में अन्तर बतलाइये।

प्रश्न–5 प्रतिवेदन देने की विधियों का उल्लेख कीजिये।

इकाई–4 मानव संसाधन लेखांकन (HUMAN RESOURCE ACCOUNTING)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 मानव संसाधन लेखांकन का अर्थ

4.2 मानव संसाधन लेखांकन की मुख्य विशेषतायें

4.3 मानव संसाधन लेखांकन के उद्देश्य

4.4 मानव संसाधन लेखांकन के लाभ

4.5 क्या मानव संसाधन सम्पत्ति है ?

4.6 मानव संसाधन का मूल्यांकन :

4.6.1 ऐतिहासिक लागत विधि

4.6.2 पुनर्स्थापन लागत विधि

4.6.3 अवसर लागत विधि

4.6.4 मॉडल्स के आधार पर

4.7 मानव संसाधन लेखांकन की बाधायें

4.8 सैद्धान्तिक प्रश्न

4.0 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- मानव संसाधन लेखाकंन का अर्थ ज्ञात होगा।
- मानव संसाधन लेखांकन की मुख्य विशेषतायें ज्ञात होगी।
- मानव संसाधन लेखांकन के उद्देश्यों की जानकारी होगी।
- मानव संसाधन लेखांकन के लाभों की जानकारी होगी।
- मानव संसाधन लेखांकन की प्रक्रिया ज्ञात होगी।

4.1 मानव संसाधन लेखांकन का अर्थ (Meaning of H.R.A.) :

मानव संसाधन लेखांकन को एक ऐसी लेखांकन पद्धति के रूप में माना जा सकता है, जिसके प्रयोग से मानव संसाधनों को सम्पत्ति के रूप में मान्यता प्रदान की जाती हो और अन्य भौतिक साधनों की भांति जिनके मूल्य को माप कर लेखा पुस्तकों में दर्ज किया जाता हो। इसके माध्यम से मानव संसाधनों के सम्बन्ध में बहुमूल्य

सूचनाओं का सृजन व प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है। कुछ विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त धारणाएं निम्नलिखित हैं :

1. **आर०एल० बुडरफ के अनुसार–** "मानव संसाधन लेखांकन एक संगठन के मानव संसाधनों में किये गये विनियोग को पहचानने व रिपोर्ट करने का प्रयास है। मूलतः यह एक सूचना प्रणाली है जो प्रबन्ध को व्यवसाय के मानव संसाधनों मे कालावधि में हो रहे परिवर्तनों को सूचित करती है।"

2. **अमरीकन लेखाकन संघ समिति के अनुसार–**"मानव संसाधनों में सम्बन्ध में समंको की पहचान व मापन तथा हित रखने वाले पक्षों को इस सूचना के संवहन की प्रक्रिया ही मानव संसाधन लेखांकन है।"

3. **फलेमहोल्ज** का विचार है कि व्यक्तियों को संगठनात्मक संसाधन के रूप में लेखांकित करना चाहिए उनके अनुसार "मानव संसाधन लेखांकन संगठन के लिए व्यक्तियों की लागत व मूल्य का मापन है।"

4.2 मानव संसाधन लेखांकन की मुख्य विशेषताएं (Main Features of H.R.A.)

मानव संसाधन लेखांकन की विभिन्न परिभाषाओं के निरूपण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस लेखांकन की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :–

1. इस लेखा विधि में मानव संसाधनो की पहचान की जाती है। मानव संसाधनों में संगठन में कार्यरत सभी प्रकार के व्यक्तियों को शामिल किया जाता है।
2. मानव संसाधनों में किये गये विनियोग का अभिलेखन किया जाता है।
3. मानव संसाधनों की लागत व मूल्य का मापन किया जाता है।
4. मानव संसाधनों में हो रहे परिवर्तनों का भी रिकार्ड रखा जाता है।
5. मानव संसाधनों के सम्बन्ध में उक्त ढंग से सृजित सूचना को वित्तीय विवरण के माध्यम से हित रखने वाले पक्षो को संवहित किया जाता है।

4.3 मानव संसाधन लेखांकन के उद्देश्य (Objects of H.R.A.)

यह पद्धति एक ऐसी विचारधारा है जिसका उद्देश्य वित्तीय रूप में यह पता लगाना होता है कि–

1. संस्था में दक्ष, रूचि रखने वाले व नौकरी के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्तियों की मात्रा व मूल्य कितना है।
2. संस्था में कार्यरत व्यक्तियों से मिलने वाला लाभ तथा उसकी लागत (अर्थात उन व्यक्तियो को भर्ती करने, आकर्षित करने व बनाये रखने में निहित लागत) से अधिक है या नहीं।

3. संस्था में कार्य को अभिप्रेरित व कार्य के प्रति समर्पित करने वाली विशेषताओं का सही मात्रा में मापन हो रहा या नहीं।

इन्ही तीन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मानव संसाधन लेखांकन का आविर्भाव हुआ है और फलतः ये ही मानव संसाधन लेखांकन के तीन महत्वपूर्ण पहलू भी हैं।

4.4 मानव संसाधन लेखांकन के लाभ (प्रयोग) या महत्व (Advantages or Uses or Importance of H.R.A.)

मानव संसाधन लेखांकन द्वारा सृजित सूचना से अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते है। मुख्यतः इस लेखांकन का प्रयोग या लाभ अग्रवत है :–

1. मानवशक्ति के अल्पकालीन व दीर्घकालीन नियोजन, विकास व प्रयोग हेतु मानव संसाधन लेखांकन श्रेष्ठ, वैज्ञानिक व वास्तविक आधार प्रदान कर सकता है।
2. मानव संसाधनों का लागत लाभ विश्लेषण किया जा सकता है और इस विश्लेषण के प्रकाश में बोनस सुविधाओं, सेविवर्गीय क्षतिपूर्ति, पुरस्कार व दण्ड सम्बन्धी योजनाओं को लागू किया जा सकता है। इस प्रकार का विश्लेषण सेविवर्गीय मूल्यांकन, निष्पादन मूल्यांकन व प्रोन्नति की योजना में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।
3. विनियोग पर प्रत्याय की अवधारणा को मानव सम्पदा पर लागू करके मानव संसाधनों के विकास में किये गये विनियोग पर नियन्त्रण औजार के रूप में मानव संसाधन लेखांकन का प्रयोग किया जा सकता है।
4. मानव लेखांकन पद्धति को लागू करने से विनियोग सम्बन्धी निर्णय अधिक वास्तविक व व्यावहारिक हो सकेंगे।
5. मानव संसाधन लेखांकन द्वारा सूचित सूचनाओं का महत्व बाह्य व्यक्तियों के लिए भी होगा। विशेषकर ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं जैसे वित्तीय संस्थाए व बैकर्स के लिए ये सूचनाएं इस मायने में महत्वपूर्ण होगी कि वे सरलतापूर्वक ऋण देने के सम्बन्ध में अपने निर्णय को तय कर सकेंगी।
6. अंश निर्गमन के समय भावी अंशधारियों, ऋणपत्र व बॉण्डस निर्गमन के समय वित्तीय संस्थाओं व सम्वर्द्धन, विविधीकरण, एकीकरण, आदि सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार करते समय विभिन्न सरकारी विभागों के लिए भी ये सुनिश्चित सूचनाएं महत्वपूर्ण हो सकती है।

4.5 क्या मानव संसाधन सम्पत्ति है? (Is Human Resource an Asset)

अर्थशास्त्रियों का मत– मानव की दक्षता बुद्धि व ज्ञान पूँजी है या नहीं इस अवधारणा पर अर्थशास्त्रियों ने काफी चिन्तन व तर्क किये है। सत्रहवीं शताब्दी

के मध्य में अर्थशास्त्री सर विलियम पेटी ने मानव संसाधन को मौद्रिक रूप में मूल्यांकित करने का प्रयत्न किया था और तब से इस अवधारणा को व्यापक स्तर पर अनेक अर्थशास्त्रियों ने प्रयुक्त किया है। व्यापक स्तर पर मानव को उत्पादन का साधन मात्र न मानकर पूंजी मानने का श्रेय पेटी के अतिरिक्त प्रख्यात व प्रतिष्ठित, नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों को जाता है। बीसवी शताब्दी के मध्य में कुछ अर्थशास्त्रियों को मानव पूँजी अर्थशास्त्री की श्रेणी में रखा गया। इनमें से थियोडोर डब्ल्यू शुल्ज प्रमुख है जिनका मत है, ''मानव प्राणी को पूंजीगत वस्तु न मानने का कारण मानव छवि के विषय में भावनात्मक दृष्टि व उसके मापने में निहित जटिलता और अव्यावहारिकता ही है।'', लिस्टर सी. थरो के अनुसार, ''मानव प्रणियों की उत्पादकता सम्बन्धी क्षमता के मापन के साधन के रूप में ही मानव पूँजी अवधारणा को आर्थिक विश्लेषण में लागू किया गया।'' जो अर्थशास्त्री मानव पूँजी की अवधारणा का विरोध करते है उनका तर्क यह है कि व्यक्तिगत दक्षता व योग्यता को कभी भी पूँजी नही माना जा सकता क्योंकि उनके हस्तान्तरणीयता की कमी होती है और उपके मापन में कठिनाई होती है। लेकिन यह तर्क सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारात्मक है।

लेखापालकों का मत– लेखापालकों ने भी प्रारम्भ में मानव संसाधन को पूंजी या सम्पत्ति नही माना ओर इसे कभी भी खाताबहियों व वित्तयी विवरणों में नही दिखाया। इसके लिए कई कारण उत्तरदायी थे– (1) व्यक्तियों को सम्पत्ति के रूप में समझना व खातों में दर्शाना सरल नहीं है, परिभाषा के अनुसार सम्पत्ति वह है जिसे हस्तान्तरित किया जा सके और संस्था की समाप्ति पर जिनका कोई मूल्य हो, परन्तु व्यक्तियों को बेचा नहीं जा सकता और न ही व्यवसाय की समाप्ति पर उनका कोई मूल्य ही होला है, और जो सम्पत्ति नोटिस देकर संस्था को छोड़ दे उसे किसी भी मायने में सम्पत्ति नहीं कह सकते है। (2) प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण लेखा पद्धति अंशधारियों, सरकार, बाह्य व्यक्तियों के प्रति ही सेवा अर्पण का कार्य करती रही है, आन्तरिक प्रबन्धक को सूचना प्रदान करने का नहीं। फलस्वरूप मानव संसाधन के उसी अंग का लेखा रखा जाता रहा है, जो उनके द्वारा अर्पित सेवा के बदले में किये गये भुगतान (वेतन व मजदूरी) से सम्बन्धित रहा हो। (3) मानव संसाधन के लागत व मूल्य की मापन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण भी इन्हें सम्पत्ति नहीं माना गया।

परन्तु हाल ही में लेखापालकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। वर्तमान काल में व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण व उनके विकास पर बड़ी मात्रा में धन खर्च किया जा रहा है जिसके पीछे उद्देश्य यही है कि योग्य व कुशल व्यक्तियों से संस्था को भविष्य में सतत् रूप में लाभ मिलता रहेगा। अतः इन व्यक्तियों की भर्ती, प्रशिक्षण आदि पर किया गया व्यय विनियोग है न कि आयगत व्यय। चूंकि संस्था को एक सतत् चलने वाली इकाई माना गया है, अतः मानव संसाधनों के विकास पर किये गये खर्च से प्राप्त भावी लाभ के कारण

इस विनियोग को सम्पत्ति माना जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान में लेखांकन विशेषज्ञों द्वारा मानव संसाधन को सम्पत्ति की मान्यता प्रदान की गयी है।

4.6 मानव संसाधन का मूल्यांकन (Valuation of Human Resources)

मानव संसाधन को सम्पत्ति मानने के बाद दूसरी समस्या उसके सम्पत्ति के रूप में मूल्य–मापन की है इस सम्बन्ध में अब तक जो भी शोध कार्य हुए हैं उनके अनुसार मूल्य मापन की निम्न विधियाँ है–

1. ऐतिहासिक लागत विधि (Historical Cost Method)
2. पुनर्स्थापन लागत विधि (Replacement Cost Method)
3. अवसर लागत विधि (Opportunity Cost Method)
4. मॉडल्स के आधार पर (On the basis of models)

4.6.1 (1) ऐतिहासिक लागत विधि–

भौतिक सम्पत्तियों के मूल्यांकन ही यह विधि मानव संसाधनों के मूल्यांकन में भी प्रयोग की जा सकती है। इस विधि के अनुसार व्यक्तियों को भर्ती करने, चुनाव करने, कार्य पर लगाने, प्रशिक्षित करने व विकसित करने में जो कुछ भी खर्च किया जाता है उन्हें ही पूंजीकृत कर दिया जाता है। व्यक्तियों की सेवा काल की अवधि का अनुमान लगाकर पूंजीकृत मूल्य को उस सम्पूर्ण अवधि के दौरान समान किस्तों में अपलिखित किया जाता है। न अपलिखित किये गये मूल्य को सम्पत्ति के रूप में दर्शाया जाता है।

आलोचनात्मक समीक्षा– भौतिक सम्पत्तियों की भांति मानव संसाधनों की सेवा काल का ठीक–ठीक पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है। साथ ही मानव संसाधनों को प्रशिक्षित व विकसित इसलिए किया जाता है कि संस्था के लिए उनका मूल्य भावी वर्षों में बढ़ जाय। उक्त विधि में इस मूल्य सम्वर्द्धन को ध्यान में नही रखा जाता है। बल्कि दूसरी तरफ उनका मूल्य वर्ष प्रति वर्ष अपलेखन के कारण कम होता जाता है। इस विधि द्वारा मूल्यांकित रकम की सूचना विनियोजकों के लिए कोई महत्व नही रखती हैं। प्रबन्ध के लिए भी ऐतिहासिक लागत की सूचना कोई मायने नहीं रखती है। थियोडोर डब्ल्यू. शुल्ज ने इस विधि को अस्वीकार करते हुए लिखा है,

"प्रत्येक प्रकार की मानव पूंजी का मूल्य उसके द्वारा प्रदत्त सेवाओं के मूल्य पर निर्भर करता है न कि उसके मूल्य लागत पर।"

4.6.2 (2) पुनर्स्थापन लागत विधि–

इस विधि के अनुसार मानव संसाधनों का पुनर्स्थापन मूल्य (अर्थात विद्यमान मानव संसाधनों को प्रस्थापित करने की लागत) ज्ञात किया जाता है। इसको दो तरीकों

से ज्ञात किया जा सकता है। प्रथम, एक विशेष पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति के स्थान पर प्रतिस्थानापन्न व्यक्ति को, जो उस पद पर वही कार्य कर सकता है, लगाने पर होने वाली लागत को मूल्य माना जा सकता है। जैसे एक उत्पादन अध ीक्षक की पुनर्स्थापन लागत दूसरे उत्पादन अधीक्षक को नियुक्त करने में होने वाली लागत को माना जा सकता हैं। इसे पदीय पुनर्स्थापन लागत कहते है। इसमें पुराने पदाधिकारी की जगह नये पदाधिकारी की भर्ती, चुनाव, कार्य पर लगाना व विकास करने में होने वाले व्ययों को शामिल करते हैं। द्वितीय, किसी विशेष व्यक्ति को पुनर्स्थापित करने में होने वाली लागत को मूल्य माना जा सकता है। इस लागत को व्यक्तिगत पुनर्स्थापन लागत कहते हैं। यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जो पहले वाले व्यक्ति के सभी पदों पर समान सेवा कर सकता हो, बदलने में होने वाले व्ययों को शामिल किया जाता है। व्यक्तिगत पुनर्स्थापन लागत की अवधारणा आर्थिक मूल्य की अवधारणा से मिलती–जुलती है। लागत को निर्धारित करते समय मानव संसाधनों को चालू मूल्य व कीमत स्तर में परिवर्तनों को भी ध्यान में रखा जाता है।

आलोचनात्मक समीक्षा– इस विधि की अच्छाई यह है कि वह व्यवसाय में कार्यरत कर्मचारियों का आर्थिक मूल्य ज्ञात करने में सहायता करती है। इसके द्वारा अनुमानित मूल्य वर्तमान मूल्य पर आधारित है, जो प्रबन्ध की निर्णयन प्रक्रिया में पर्याप्त सहायक होता है परन्तु व्यवहार में ऐसे व्यक्ति की खोज करना जो पहले से कार्य कर रहे व्यक्ति के समान ही योग्य हो, कठिन कार्य बन जाता है। इस तथ्य के कारण पुनर्स्थापन लागत अवास्तविक बन कर रह जाती है। यही नहीं पुनर्स्थापित लागत का अनुमान भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न–भिन्न लगाया जा सकता है।

4.6.3 (3) अवसर लागत विधि–

इसके कभी–कभी प्रतिस्पर्द्धात्मक बोली विधि भी कहते है। इस विधि का प्रयोग तभी किया जाता हैं जब कर्मचारियों की उपलब्धि सीमित हो। अर्थात् मानव सम्पदा का अर्थ सीमित कर्मचारियों से लगाया गया हो। एक सीमित कर्मचारी की सेवाओं को प्राप्त करने से लाभ में होने वाली वृद्धि को ज्ञात किया जाता है। सामान्य प्रत्याय की दर से लाभ में इस वृद्धि का पूँजीकरण कर लिया जाता है और इस पूँजीकृत मूल्य को संस्था की आधार पूँजी में जोड़ दिया जाता है एवं इस नयी पूँजी की रकम के आधार पर सामान्य दर से लाभ की गणना की जाती है। इस नयी पूँजी पर आकलित लाभ या मूल पूँजी पर अर्जित लाभ पर आधिक्य को पूँजीकृत कर लिया जाता हैं। आधिक्य लाभ के इसी पूँजीकृत मूल्य तक अधिकतम बोली लगायी जाती है। प्रतिस्पर्द्धात्मक बोली लगाकर अवसर लागत ज्ञात कर ली जाती है। जिन विभागों या विनियोग केन्द्र अधिकारियों द्वारा सीमित कर्मचारी की भर्ती करने की इच्छा को प्रकट किया जाता है वे ही प्रतिस्पर्द्धात्मक बोली लगाते हैं।

NMDC-129

अवलोचनात्मक समीक्षा– इस विधि के प्रयोग से मानव संसाधनों का पुनर्मूल्यांकन सम्भव होता है जो प्रबन्ध के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इस सूचना से प्रबन्ध मानव संसाधनों का उचित ढंग से नियोजन व विकास कर सकता है। पुनर्स्थापन लागत की कमियों को यह विधि दूर करती है परन्तु इसका प्रयोग तभी किया जा सकता है जब संस्था में कार्यरत कर्मचारी सीमित हो। अन्य शब्दों में यह विधि उन कर्मचारियों को सम्पत्ति मानती ही नहीं जो सीमित न हो। सीमित व अन्य वर्ग विभेद के कारण कर्मचारियों के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यही नहीं उच्च प्रबन्ध की दशा में बोली लगाना सम्भव ही नहीं होता है। अतः उच्च प्रबन्ध के मूल्य मापन में इस विधि का प्रयोग असम्भव है। यही नहीं एक कर्मचारी को कार्य पर लगाने से लाभ में भावी वृद्धि का पता लगाना भी जटिल कार्य है।

4.6.4 (4) मॉडल्स के आधार पर–

बहुत से विद्वानों ने मानव संसाधनों के मूल्यांकन की समस्या को हल करने के प्रयास में कुछ माडल्स निर्मित किये है। इनमें से कुछ प्रमुख माडल्स का वर्णन नीचे किया गया है :–

(अ) लेव एवं श्वार्ज मॉडल्स (Lev and Schwartz's Model)– यह मॉडल भावी आय के वर्तमान मूल्य पर आधारित है तथा बचे हुए सेवा काल से संस्था के लिए कर्मचारी (व्यक्ति) के आशंसित आर्थिक मूल्य को मान्यता प्रदान करता है। भावी आय का अनुमान लगाया जाता है और यह आय कर्मचारी के अवकाश ग्रहण की तिथि तक की अवधि के लिये होती है। इन आयों को एक उचित दर से हासिल करके वर्तमान मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। सामान्यतः यह दर संस्था के लिए पूंजी की लागत की दर के बराबर ही मानी जाती है। इस मॉडल का सूत्र इस प्रकार है।

$$V = \frac{E_{(t)}}{(1 + r)^{t-x}}$$

यहा पर V = व्यक्ति का मानव पूंजी मूल्य

x = व्यक्ति की वर्तमान आयु

$E_{(t)}$ = अवकाश ग्रहण तक व्यक्ति की भावी वार्षिक अनुमानित आय

x = ह्रासित दर

t = अवकाश ग्रहण की आयु

इस मॉडल की यह मान्यता है कि कर्मचारी संस्था में नौकरी करते हुए भविष्य में अपनी भूमिका को नहीं बदलेंगे। लेव एवं श्वार्ज ने सभी कर्मचारियों को समान व समरूप वर्गो में (जैसे, अकुशल, अर्द्धकुशल व कुशल) में बांट दिया है। विभिन्न आयु वर्ग वाले व्यक्तियो की औसत आय ज्ञात करके और सम्बन्धित वर्ग को ध्यान में रखते हुए मानव संसाधनों का वर्तमान मूल्य निर्धारित किया जाता है। भारत में

भेल ने इसी मॉडल का प्रयोग किया है।

आलोचनात्मक समीक्षा– यह मॉडल आर्थिक मूल्य की अवधारणा को लेकर चला है और कर्मचारी के बचे हुए सेवाकाल के लिए ही मानव पूंजी मूल्य को ज्ञात किया जाता हैं परन्तु जब कर्मचारी अवकाश ग्रहण की तिथि से पहले ही संस्था को छोड़ देता है या उसकी मृत्यु हो जाती है तो इस मॉडल से ज्ञात किया गया मूल्य सही नहीं माना जा सकता हैं। यह मान्यता भी गलत है कि कर्मचारी अपनी भूमिका को नही बदलता है। कभी–कभी तो संस्था की भूमिका ही बदल जाती है ऐसी स्थिति में कर्मचारी के मूल्य में भी परिवर्तन सम्भव लगता है। इस मॉडल में इन सब तथ्यों को ध्यान में नहीं रखा गया है।

(ब) फ्लेमहोल्ज माडल (Flamholtz's Model)– यह माडल लेव एवं श्वार्ज के मॉडल की कमियों को दूर करता है इस मॉडल में कर्मचारियों के सेवा स्तर (भूमिका) में होने वाले परिवर्तनों व अवकाश ग्रहण की निश्चित तिथि से पूर्व ही अवकाश लेने की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए भावी आय को हासिल करके मानव संसाधन का मूल्य ज्ञात किया जाता है। इस मॉडल के अनुसार एक कर्मचारी के मूल्य मापन में निम्न पग निहित होते है :–

1. भविष्य में कर्मचारी संस्था में कितनी अवधि तक बना रहेगा– इसका अनुमान लगाया जाता है।

2. भविष्य में कर्मचारी कौन सा पद ग्रहण कर सकेगा अर्थात उसकी भूमिका में क्या परिवर्तन होगा, इसका भी अनुमान लगाया जाता है।

3. कर्मचारी के पद से संस्था को क्या मूल्य प्राप्त होगा– इसका भी अनुमान लगाया जाता है।

4. अन्त में कर्मचारी को विभिन्न पदों पर प्राप्त भावी आय को हासिल करके कर्मचारी का मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि कर्मचारी की कार्य प्रवृत्ति व मनोदशा तथा संगठनात्मक संरचना व प्रबन्ध विधि को ध्यान में रखना पड़ता है।

आलोचनात्मक समीक्षा– यह मॉडल कर्मचारी के कैरियर में होने वाले परिवर्तनों व अवकाश तिथि से पूर्व नौकरी छोड़ने की सम्भावनाओं को ध्यान में रखता है जिसके कारण इसे लेव व श्वार्ज माडल से अधिक उपयुक्त माना जाता है, परन्तु कर्मचारी के विभिन्न पदों पर आसीन होने की सम्भावनाओं और विभिन्न पदों से होने वाली आय अंशदानों का अनुमान लगाना सरल कार्य नहीं है। साथ ही ऐसा अनुमान एक खर्चीला कार्य है। यह पता लगाना भी जटिल कार्य है कि कर्मचारी कितनी अवधि तक सेवा में बना रहेगा। इन सभी तथ्यों के कारण वैध समंको को प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

NMDC-329

(स) जग्गी एवं लाऊ मॉडल (Jaggi and Lau's Model)– यह मॉडल इस कमी को पूरा करता है कि प्रत्येक कर्मचारी के सम्बन्ध में कैरियर में परिवर्तन व पूर्वावकाश की सम्भावना ज्ञात करना जटिल कार्य है। अतः इस मॉडल में समूह का मूल्यांकन किया जाता हैं। संस्था के सभी कर्मचारियों को अलग–अलग समूहों में एकरूपता के आधार पर बांट दिया जाता है भले ही वे अलग–अलग विभागो में कार्य करते हों। समूह के अनुसार भावी आय का अनुमान लगाकर उसे ह्रासित कर लेते है और प्रत्येक समूह के ह्रासित मूल्य को जोड़कर समूचे मानव संसाधनों का मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। इस मॉडल की यह मान्यता है कि एक समय अवधि के दौरान कर्मचारियों के कैरियर में उतार–चढ़ाव कमोबेश स्थिर रहता है।

आलोचनात्मक समीक्षा– यह मॉडल समूह को लेकर चलता है और इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी के मूल्य मापने हेतु बताये गये पूर्व के दो मॉडल्स की कमियों को दूर करता है। परन्तु कर्मचारियों को समूह में बांटना और उस समूह की भावी आय ज्ञात करना बहुत ही जटिल कार्य माना जाता है।

(द) हरमैन्सन माडल (Hermanson's Model)– यह मॉडल इस सामान्य विश्वास पर आधारित है कि कर्मचारी का वेतन व संस्था के लिए उस कर्मचारी का मूल्य इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता हैं। इस मॉडल में एक कर्मचारी के भावी वेतन का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है। अगले कुछ वर्षो (सामान्यतः 5 वर्षो) के लिए वार्षिक मजदुरी या वेतन का अनुमान लगाया जाता है और उसे ह्रासित कर लेते हैं। इस प्रकार से आकलित वर्तमान मूल्य को जोड़कर सभी कर्मचारियों का मूल्य ज्ञात करते हैं जिसे क्षमता कारक या क्षमता अनुपात से गुणा कर देते हैं। क्षमता अनुपात की गणना भारांकित औसत के आधार पर ज्ञात की जाती है। भार प्रदान करते समय चालू वर्ष को अधिक और भूत वर्ष को कम भार दिया जाता है।

आलोचनात्मक समीक्षा – क्षमता कारक (अनुपात) के प्रयोग से मानव संसाधन के निष्पादन अन्तर को समायोजित कर देने के कारण मानव संसाधन का उचित मूल्य ज्ञात करने की सम्भावना बढ़ जाती है। वेतन और संस्था के लिए कर्मचारी का मूल्य– इन दोनों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने की मान्यता भी सही प्रतीत नहीं होती है। भार देने की प्रक्रिया को भी दूषित ठहराया गया है। मॉडल में पाँच वर्ष की अवधि का चुनाव भी कृत्रिम प्रतीत होता है।

4.7 मानव संसाधन लेखांकन की बाधाएं (Obstacles of H.R.A.)

वर्तमान मे मानव संसाधन को सम्पत्ति के रूप में मानते हुए वित्तीय विवरणों में दर्शाया जाय परन्तु यह भी सत्य है कि अभी तक इसे पूर्णतः वैज्ञानिक रूप नहीं प्रदान किया गया है। इसमें अभी बहुत सी कमियां है और साथ ही बहुत सी बाधाएं भी हैं। कुछ बाधाएं निम्नवत् हैं :–

1. मानव संसाधन के मूल्य मापन हेतु कोई निश्चित व पर्याप्त प्रमाप निर्धारित नहीं किया गया है।
2. श्रम संघों द्वारा भी इस लेखांकन का विरोध किये जाने का भय व्याप्त है।
3. कुछ लोग इस तथ्य का भी विरोध करते हैं कि मानव प्राणी सम्पत्ति है। इस विरोध का आधार भावनात्मक है। वे सोचते हैं कि ऐसा करने से मानव गुलाम बनकर रह जायेगा।
4. यह भी सुनिश्चित नहीं किया गया है कि मानव संसाधन को किस वर्ग की सम्पत्ति (स्थायी सम्पत्ति, चल सम्पत्ति या विनियोग या अमूर्त) माना जाय।
5. अन्य सम्पत्तियों की भाँति मानव सम्पदा को संस्था में ही बने रहने की दशा पूर्णतः अनिश्चित है क्योंकि कर्मचारीगण पूर्णतः संस्था को छोड़ने के लिए स्वतन्त्र होते हैं।
6. मानव संसाधन के मूल्य मापन में प्रयुक्त विभिन्न मॉडल में जिस भावी आय के अनुमान की बात की गयी है उसके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान का अभाव है। इस अनिश्चयपूर्ण विश्व में भावी आय का अनुमान कभी भी सही नहीं हो सकता।

4.8 सैद्धान्तिक प्रश्न :

1. मानव संसाधन लेखांकन की परिभाषा दीजिए? इसकी विशेषताओं व उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
2. मानव संसाधन लेखांकन क्या है ? इसके लाभ तथा बाधाओं का वर्णन कीजिए?
3. क्या मानव संसाधन को सम्पत्ति माना जा सकता है ? सम्पत्ति के रूप में इसके मूल्य मापन में प्रयुक्त ऐतिहासिक लागत विधि की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. मानव संसाधन लेखांकन में प्रयुक्त किन्हीं दो मॉडल्स की व्याख्या कीजिए।

इकाई–5 स्फीति लेखा–विधि (INFLATION ACCOUNTING)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 स्फीति लेखाविधि का अर्थ

5.3 स्फीति लेखाविधि के उद्देश्य

5.4 स्फीति लेखाविधि की तकनीकें

5.4.1 प्रतिस्थापन लागत दृष्टिकोण

5.4.2 क्रय शक्ति दृष्टिकोण

5.4.3 सी0सी0ए0 पद्धति की सीमायें

5.5 स्फीति लेखाविधि के लाभ

5.6 स्फीति लेखाविधि के दोष

5.7 सैद्धान्तिक प्रश्न

5.8 व्यवहारिक प्रश्न

5.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको

- स्फीति लेखाविधि का अर्थ ज्ञात होगा।
- स्फीति लेखा–विधि के उद्देश्यों की जानकारी होंगी।
- स्फीति लेखा–विधि की विभिन्न तकनीकें ज्ञात होंगी।
- स्फीति लेखा–विधि के लाभ ज्ञात होगें।
- स्फीति लेखा–विधि के दोष ज्ञात होगें।

5.2 स्फीति लेखाविधि का अर्थ (Meaning of Inflation Accounting)

स्फीति लेखा–विधि मूल्य–स्तर के परिवर्तनों का वित्तीय विवरणों पर पड़ने वाले प्रभाव की समस्या के समाधान के लिये वित्तीय लेखापालों द्वारा विकसित की गई लेखा प्रणाली को ही स्फीति लेखा–विधि कहते हैं। यह वह तकनीक है जिसके द्वारा सामान्य मूल्य स्तर के परिवर्तनों को प्रदर्शित करने के लिये वित्तीय विवरण पुनर्वर्णित किये जाते हैं ताकि लेखांकन मदों का मूल्य–स्तर में परिवर्तन के प्रभाव को तटस्थ कर दिया जाये। ये परिवर्तन स्फीतिकारी हो सकते हैं अथवा अपस्फीतिकारी। किन्तु अधिकतर अर्थव्यवस्थाओं में स्फीतिकारी प्रवृत्ति ही पायी जाती है।

अमरीकन इन्स्टीट्यूट आफ सर्टिफाइड पब्लिक एकाउन्टैन्ट के अनुसार "स्फीति लेखा–विधि लेखांकन की एक पद्धति है जिसके अन्तर्गत सभी आर्थिक घटनाओं को उनकी चालू लागत पर रिकार्ड किया जाता है।" स्फीति लेखा–विधि में चालू लागत का आशय 'रिपोर्ट देने की तिथि पर प्रचलित लागत' से होता है।

5.3 उद्देश्य

स्फीति लेखा–विधि का प्रमुख उद्देश्य मूल्य–स्तर में परिवर्तनों के कारण वित्तीय विवरणों द्वारा दर्शाये गये परिणामों की विकृति को रोकना होता है जिससे लाभ का सही निर्धारण हो सके तथा संस्था की विनियोजित पूंजी को सही अर्थों में अक्षुण्ण बनाये रखा जा सके। ये दोनों समस्यायें एक दूसरे से सम्बन्धित है। संस्था की विनियोजित पूँजी को अक्षुण्ण रखने के लिये यह आवश्यक है कि क्रय–शक्ति के रूप में सम्पत्तियों के मूल्य समान बने रहें। ऐसा होने पर सही ह्रास ज्ञात किया जा सकता है और लाभ का सही अंक ज्ञात किया जा सकता है। स्फीति में वृद्धि की स्थिति में यदि ह्रास की गणना सम्पत्ति की मूल लागत पर की जाती है तो लाभ–हानि खाते पर ह्रास का प्रभार कम होने के कारण शुद्ध लाभ की राशि बढ़ जायेगी और यदि इसे लाभांश के रूप में वितरित कर दिया जाता है तो यह वितरण पूँजी में से होगा। अतः स्पष्ट है कि मूल लागत पर ह्रास की गणना से न तो लाभ की सही गणना ही की जा सकती है और न ही विनियोजित पूँजी को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सकता है। स्फीति लेखा–विधि का उद्धेश्य लेखा–विधि की इस कमी को दूर करना है।

5.4 स्फीति लेखाविधि की तकनीकें (Techniques of Inflation Accounting)–

यद्यपि सभी लेखापाल इस बात से सहमत हैं कि स्फीति के परिवर्तनों के आधार पर वित्तीय विवरणों में समुचित समायोजन किये जायें किन्तु इसके लिये अपनायी जाने वाली तकनीक के सम्बन्ध में काफी मतभेद रहे हैं। लेखापालों द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर उनके दृष्टिकोणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है:–

5.4.1 1. प्रतिस्थापन लागत दृष्टिकोण (Replacement Cost Approach)

5.4.2 2. क्रय–शक्ति दृष्टिकोण (Purchasing Power Approach)

प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय विवरणों की केवल उन मदों को चालू लागत पर दिखलाया जाये जो कि स्फीति के परिवर्तनों से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। ये मदें हैं–स्थायी सम्पत्तियाँ, ह्रास और स्कन्ध। इस दृष्टिकोण को आंशिक

पुनर्मूल्यन लेखाविधि भी कहते हैं। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय विवरणों में सभी मदों को उनके चालू मूल्य पर दिखलाया जाये और इसके लिये उनमें आवश्यक समायोजन किये जायें। इसे पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा– विधि भी कहते है।

आंशिक पुनर्मूल्यन लेखा–विधि (Partial Revaluation Accounting)

इस विधि के अन्तर्गत मूल्य–स्तर में वृद्धि के समायोजन के लिये सम्पत्ति के प्रतिस्थापन की अतिरिक्त लागत को पूरा करने के लिये वित्तीय विवरणों में विशेष नियोजन किये जाते हैं ताकि संस्था की पूँजी अक्षुण्ण रहे। इसके लिये इस विधि में मूल्य स्तर के परिवर्तनों से प्रभावित प्रमुख मदों को उनके चालू मूल्यों पर दिखलाने के लिये निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है–

(i) स्थायी सम्पत्तियों का किसी समुचित पद्धति से पुनर्मूल्यन करके चालू मूल्य पर दिखलाना।

(ii) सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन की अतिरिक्त लागत को पूरा करने के लिये समुचित ह्रास व्यवस्था करना।

(iii) सामग्री को उसके चालू प्रतिस्थापन मूल्य के अधिकतम निकट मूल्य पर निर्गमित करके दिखलाना।

(i) स्थायी सम्पत्तियों का चालू मूल्य पर परिवर्तन

लेखा–विधि की परम्परागत रीति के अनुसार स्थायी सम्पत्तियों को उनकी मूल लागत पर दिखलाया जाता है किन्तु मूल्य–स्तर में परिवर्तनों के फलस्वरूप स्थायी सम्पत्तियों की क्रय–शक्ति में आये परिवर्तनों के समायोजन के लिए इन सम्पत्तियों की मूल लागत को चालू मूल्य में परिवर्तित करना होता है। इसकी निम्नलिखित तीन वैकल्पिक विधियाँ हैं–

(अ) बाजार मूल्य पर–इस विधि के अनुसार विभिन्न स्थायी सम्पत्तियों का बाजार मूल्य ज्ञात करके उन्हें लेखा–पुस्तकों में इसी मूल्य पर दिखलाया जाता है किन्तु इस विधि की सफलता बाजार मूल्य के सही आगणन पर निर्भर करती है। सामान्यतया नई मशीनों, संयंत्रों व भवनों के मूल्य तो बाजार में ज्ञात किये जा सकते हैं किन्तु पुरानी सम्पत्तियों के मूल्य ज्ञात करना बहुत कठिन है। सम्पत्तियों के डिजाइन, तकनीकी आदि में परिवर्तन आ जाने से पुरानी सम्पतियाँ बाजार में अप्रचलित होकर अप्राप्त हो जाती हें। ऐसी स्थिति में तो पुरानी सम्पत्तियों के बाजार मूल्य का ज्ञात करना और भी अधिक कठिन हो जाता है।

(ब) मूल्य ठहराना–इस विधि के अनुसार प्रत्येक लेखाविधि के अन्त में सम्पत्तियों का मूल्य ठहराया जाता है तथा उन्हें उस मूल्य पर दिखाया जाता है जिस पर उनका प्रतिस्थापन किया जा सके। यह मूल्य–ठहराव पेशेवर मूल्यांककों द्वारा किया जाता है।

(स) निर्देशाकों द्वारा–इस विधि के अन्तर्गत सम्पत्तियों के चालू मूल्य की

गणना के लिये मूल्य निर्देशांक का प्रयोग किया जाता है। इस गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\text{Current Value of Assets} = \text{Original Cost} \times \frac{\text{Index Number of Current Year}}{\text{Index Number of Purchase Year}}$$

(ii) ह्रास की गणना

प्रत्येक स्थायी सम्पत्ति का एक आर्थिक कार्यकाल होता है जिसके बीतने पर उस सम्पत्ति को हटाकर उसके स्थान पर नयी सम्पत्ति लानी पड़ती है। नयी सम्पत्ति के लिये बहुत बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। ह्रास आयोजन का उद्देश्य इस पुनर्स्थापन के लिये आवश्यक कोषों की व्यवस्था करना होता है। ह्रास आयोजन से संस्थान के लाभ कम हो जाते हैं तथा इस राशि की सीमा तक ये लाभ लाभांश के रूप में बाँटने से बच जाते हैं। चूँकि ह्रास एक गैर–रोकड़ व्यय होता है, अतः ह्रास के आयोजन से इस सीमा तक संस्था में प्रतिवर्ष कोष निर्मित होते जाते हैं। किसी संस्था में आयोजित वार्षिक ह्रास की राशि को या तो संस्था में लगाया जा सकता है या कहीं संस्था के बाहर विनियोजित किया जा सकता है। दोनों ही स्थितियों में ह्रास का आयोजन पुरानी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के लिये कोष प्रदान करता है। यदि ह्रास की राशि को प्रतिवर्ष विनियोजित किया जाता है तो सम्पत्ति के जीवनकाल के अन्त में इन विनियोगों को बेचकर नयी सम्पत्ति के क्रय के लिये आवश्यक कोष प्राप्त कर लिये जाते है और यदि इसे व्यवसाय में ही रहने दिया जाता है तो इससे संस्था की कार्यशील पूँजी बढ़ेगी जिसमें से नयी सम्पत्ति के लिये आवश्यक कोष प्राप्त किये जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि लाभों से स्थायी सम्पत्तियों के लिये ह्रास का आयोजन उनके प्रतिस्थापन के लिये कोष प्रदान करता है।

(iii) स्कन्ध का चालू मूल्य पर परिवर्तन

स्फीति में परिवर्तन के समय लाभों की सही गणना के लिये यह आवश्यक है कि विक्रीत माल की लागत में स्कन्ध को उसके चालू मूल्य के अधिकतम निकट मूल्य पर दिखलाया जाये। इस समस्या के समाधान के लिये निम्न सुझाव दिये जाते है–

(अ) 'लिफो' पद्धति का प्रयोग–यदि विक्रीत माल का मूल्यांकन मूल लागत के आधार पर किया जाता है तो स्कन्ध का निर्गमन एवं मूल्यांकन लिफो पद्धति के आधार पर किया जाना चाहिये। यह पद्धति वित्तीय लेखा– विधि के अन्तर्गत मान्यता भी प्राप्त कर चुकी है। इस पद्धति के अन्तर्गत सबसे अन्त में आया माल सबसे पहले बिका या निर्गमित किया माना जाता है तथा अन्तिम स्कन्ध प्रारम्भिक क्रयों का अवशेष माना जाता है और उसका मूल्यांकन भी इन क्रयों के लागत–मूल्य पर ही किया जाता है। इस पद्धति में विक्रीत माल को अति शीघ्र की क्रयों का भाग मानने के कारण विक्रीत माल की लागत अपने चालू मूल्य के समान रहती है। अतः व्यवसाय के लाभ मूल्य स्तर के परिवर्तनों से बहुत कम प्रभावित होते हैं।

किन्तु यह ध्यान रहे कि लिफो पद्धति के प्रयोग से विक्रीत माल की लागत सदैव ही चालू मूल्य के समान नहीं रहती। इसका कारण यह है कि यदि अन्तिम स्कन्ध प्रारम्भिक स्कन्ध से कम है तो प्रारम्भिक स्कन्ध के मूल्य का एक भाग (जो कि ऐतिहासिक लागत पर होता है) लाभ निर्धारण में वर्ष की लागत में सम्मिलित हो जायेगा। अतः ऐसी स्थिति में बेचे गये माल का लागत में प्रयुक्त प्रारम्भिक स्कन्ध को चालू मूल्य पर लाना चाहिये तथा चिट्ठे में अन्तिम स्कन्ध को भी चालू मूल्य पर दिखलाया जाये।

(ब) 'प्रतिस्थापन लागत' का प्रयोग–इस विधि में विक्रीत माल की लागत में स्कन्ध को उस मूल्य पर दिखलाया जाता है जिस पर उसे बाजार से पुनः क्रय किया जा सके। यद्यपि यह विधि वित्तीय लेखा–विधि में सामान्य स्वीकृति नहीं प्राप्त कर सकी है, फिर भी बहुत से लेखपाल एवं अर्थशास्त्री इस विधि का प्रयोग वांछनीय मानते है।

पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा–विधि (Complete Revaluation Accounting)

स्फीति में परिवर्तन की दशा में परम्परागत आधार पर तैयार किये गये वित्तीय विवरणों की तुल्यता समाप्त हो जाती है क्योंकि इन विवरणों की मदें विभिन्न आकार के रूपयों में दी गयी होती हैं और ऐसे विवरणों से कोई विश्लेषक त्रुटिपूर्ण एवं भ्रमात्मक निष्कर्ष निकाल सकता है। किन्तु लेखों में निश्चितता व वस्तुपरकता बनाये रखने के लिये इन्हें परम्परागत आधार पर तैयार करना आवश्यक होता है। इस समस्या के समाधान के लिये वित्तीय लेखापाल पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा–विधि का सुझाव देते हैं।

जे0बैटी के शब्दों में, "पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा–विधि सभी स्थायी सम्पत्तियों को चालू मूल्यों पर समायोजित करती है और इसके अतिरिक्त, चालू सम्पत्तियों की क्रय–शक्ति में हुई हानि (अथवा बढ़ोत्तरी) को ध्यान में रखते हुए पूँजी को अक्षुण्ण बनाये रखने को आश्वस्त करने का प्रयत्न करती है।" इस विधि के अन्तर्गत संस्था के वार्षिक खाते स्फीति के परिवर्तनों को ध्यान किये बिना प्रचलित रीति से तैयार किये जाते है तथा स्फीति के परिवर्तनों को दिखलाने के लिये इनके अतिरिक्त पूरक विवरण भी तैयार किये जाते हैं। **I.A.S.C.** ने भी पूरक विवरणों का ही सुझाव दिया है। इन पूरक विवरणों में वित्तीय विवरणों की विभिन्न मदों के स्फीति के परिवर्तनों के अनुरुप आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें उनके चालू मूल्य पर दिखलाया जाता है। ध्यान रहे कि ये पूरक विवरण परम्परागत आधार पर तैयार किये गये वित्तीय विवरणों के स्थानापन्न न होकर उनके पूरक होते हैं।

आंशिक पुनर्मूल्यन लेखा–विधि और पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा–विधि में प्रमुख अन्तर यह है कि पहली पद्धति में केवल स्थायी सम्पत्तियों व उन पर ह्रास और स्कन्ध को चालू मूल्यों पर लाया जाता है किन्तु दूसरी पद्धति में वित्तीय विवरणों की समस्त मदों को चालू मूल्यों पर लाया जाता है तथा इन्हें दिखलाने के लिये परम्परागत वित्तीय

विवरणों के अलावा पूरक विवरण तैयार किये जाते हैं।

पूरक विवरणों की तैयारी–इसकी निम्न दो मान्य विधियाँ हैं–

(1) चालू क्रय शक्ति पद्धति

(2) चालू लागत लेखा–विधि पद्धति

चालू क्रय शक्ति पद्धति (Current Purchasing Power Method) :

इस पद्धति को सामान्य मूल्य–स्तर लेखा–विधि अथवा समान रूपया लेखा–विधि भी कहते हैं। इस विधि का प्रादुर्भाव मई 1974 में ब्रिटेन के **इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स** ने किया। इसके अन्तर्गत आर्थिक चिट्ठा और आय विवरण की समस्त मदों को चालू रुपये की क्रय शक्ति में परिवर्तित करके दिखलाया जाता है और इस प्रकार वित्तीय विवरणों पर मुद्रा की सामान्य क्रय–शक्ति में परिवर्तनों के प्रभावों को दूर किया जाता है। इसमें किसी मद विशेष के मूल्य की वास्तविक वृद्धि या गिरावट की उपेक्षा की जाती है। वित्तीय विवरणों को चालू रुपये की क्रय–शक्ति पर लाने के लिये किसी प्रचलित और स्वीकृत सामान्य मूल्य निर्देशांकों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये भारत में **रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया** द्वारा प्रकाशित **थोक मूल्य सूचकांक** को इसके लिये प्रयोग किया जा सकता है। इसके पश्चात् वित्तीय विवरणों की मदों का विश्लेषण करके उनके उदय के समय का पता लगाया जाता है ताकि उस समय के सामान्य मूल्य–स्तर की तुलना चालू मूल्य–स्तर में आये परिवर्तन के आधार पर इन मदों को समायोजित किया जा सके।

पूरक वित्तीय विवरणों की तैयारी में मौद्रिक मदों और अमौद्रिक मदों के बीच भेद किया जाता है।

(अ) मौद्रिक मदें–ये वे मदें होती है जिनकी राशियाँ मूल्य–स्तर में परिवर्तनों पर ध्यान दिये बिना किसी समझौते द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार से मौद्रिक इकाई में (अर्थात रूपयों में) निश्चित होती है। इन मदों की देय या प्राप्य राशियों पर सामान्य मूल्य–स्तर में परिवर्तन का कोई प्रभाव नही पड़ता है। प्रायः ये मदें चालू वर्ष के लेन–देनों का परिणाम होती हैं। इन मदों में रोकड़ शेष, देनदान, ऋण पत्रों में विनियोग, प्राप्य बिल, अदत्त व्यय, पूर्वदत्त व्यय आदि (अर्थात् स्कन्ध को छोड़कर समस्त चालू सम्पत्तियां) तथा चालू दायित्व और ऋणपत्र व पूर्वाधिकार अंश पूंजी सम्मिलित हैं। किन्तु ये सभी मदें अपने चालू मुद्रा पर ही दिखाई गई होती हैं, अतः इनमें किसी प्रकार का समायोजन करने की आवश्यकता नहीं होती है।

सामान्य मूल्य–स्तरों में परिवर्तन पर मौद्रिक मदों के धारण से संस्था पर पड़ने वाले प्रभाव को लाभ–हानि खाते में पृथक से दिखलाया जाता है। मुद्रा प्रसार के काल में मौद्रिक सम्पत्तियों के धारकों को हानि होती है क्योंकि इन सम्पत्तियों से वसूल होने वाली राशि तो निश्चित होती है किन्तु मुद्रा मूल्य की गिरावट के फलस्वरूप इस वसूल की गयी धनराशि की क्रय–शक्ति पहले से कम होती है। इसी तरह मौद्रिक दायित्वों के धारकों को इस काल में लाभ होता है क्योंकि इन पर भुगतान

की जाने वाली धनराशि की क्रय शक्ति उस समय से कम होती है जिस समय में ली गई थीं।

मौद्रिक मदों के धारण से लाभ–हानि की गणना के लिये निम्न प्रक्रिया अपनानी चाहिये–

(i) चालू वर्ष के प्रारम्भ के मौद्रिक दायित्वों को प्रारम्भिक निर्देशांक के आधार पर तथा वर्ष में हुई इनमें वृद्धि को औसत निर्देशांक के आधार पर परिवर्तित करते हैं। यदि औसत निर्देशांक की सूचना नहीं है तो वर्ष में हुई वृद्धि की निरपेक्ष राशि को ध्यान में रखते हैं। इन दोनों के परिवर्तित मूल्य के योग से चालू वर्ष के अन्त में मौद्रिक दायित्वों के मूल्य को घटा देने पर मौद्रिक दायित्वों के धारण से लाभ की राशि ज्ञात की जाती है।

(ii) उक्त की भाँति चालू वर्ष के प्रारम्भ की मौद्रिक सम्पत्तियों को प्रारम्भिक निर्देशांक के आधार पर तथा वर्ष में हुई इनमें वृद्धि को औसत निर्देशांक के आधार पर परिवर्तित करके इनके योग से चालू वर्ष के अन्त में मौद्रिक सम्पत्तियों के मूल्य को घटाकर मौद्रिक सम्पत्तियों के धारण से हानि की राशि ज्ञात की जाती है।

(iii) उक्त (i) और (ii) का अन्तर ही शुद्ध मौद्रिक लाभ या हानि होता है।

(ब) अमौद्रिक मदें–ये वे होती हैं जिनके मूल्य सामान्य स्फीति में परिवर्तन पर परिवर्तित होते जाते हैं। अतः यह माना जाता है कि मुद्रा की क्रय–शक्ति के परिवर्तनों से इन सम्पत्तियों के धारकों को न तो कोई लाभ होता है और न कोई हानि। इन मदों में स्कन्ध, स्थायी सम्पत्तियाँ, समता अंश पूँजी आदि सम्मिलित होते हैं। पूरक विवरणों में इन मदों को विवरण की तिथि पर चालू मुद्रा मूल्य के आधार पर पुनर्वणित करके दिखलाया जाता है।

सी0पी0पी0 पद्धति के आधार पर वित्तीय विवरणों की तैयारी– इसके लिये निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जाती है–

(1) स्थायी सम्पत्तियों और अंश पूँजी को चालू प्रतिस्थापन लागत पर दिखलाया जाय। इसके लिये प्रत्येक मद की मूल लागत को एक परिवर्तन कारक अर्थात चालू वर्ष के मूल्य–स्तर के ऐतिहासिक मूल्य–स्तर से अनुपात से गुणा किया जाता है। सूत्र रूप में–

Converted Value of the Item = Original Cost of the Item x Conversion Factor

When, Conversion Factor = Current Year Index ÷ Year of Purchase

Alternatively, Converted Value of the Item

$$= \frac{\text{Base (or Current) Year Index}}{\text{Year of Purchase Index}} \times \text{Original Cost of the Item}$$

सम्पत्ति को उसके चालू मूल्य पर दिखलाने से यदि इसके मूल्य में वृद्धि होती

है तो वृद्धि की अतिरिक्त राशि से सम्बन्धित सम्पत्ति खाता डेबिट तथा पूनर्मूल्यन संचय खाता क्रेडिट किया जाता है। इस खाते का प्रयोग समता अंश पूँजी को चालू मूल्य पर दिखलाने से हुई वृद्धि की हानि को पूरा करने के लिये किया जाता है।

(2) ह्रास–योग्य सम्पत्तियों पर ह्रास की गणना उनकी पुनर्वर्णित चालू लागत के आधार पर की जायेगी। यदि ऐतिहासिक लागत के आधार आगणित ह्रास की राशि दी हो तो उसे चालू मूल्य निर्देशांक का सम्बन्धित सम्पत्ति के क्रय के वर्ष के निर्देशांक के अनुपात से गुणा किया जाता है।

(3) वर्तमान वर्ष के चिट्ठे में सभी मौद्रिक मदें अपने चालू मूल्य पर ही होती हैं। अतः पूरक चिट्ठे में उन्हें उसी मूल्य पर दिखलाया जाता है। किन्तु तुलनात्मक चिट्ठा में पिछले वर्ष की मौद्रिक मदों को उपर्युक्त (1) में दिये सूत्र के आधार पर तथा वर्ष में हुई वृद्धि को औसत निर्देशांक के आधार पर पुनर्वर्णित किया जायेगा।

(4) अमूर्त सम्पत्तियों पर विचार करते समय सावधानी से काम लेना चाहिये। चूँकि इन सम्पत्तियों के वसूली–योग्य मूल्य का अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है, अतः रूढ़िवादिता की सामान्य परिपाटी का पालन करते हुए इनके पुनर्मूल्यन का कार्य त्यागा जा सकता है।

(5) मौद्रिक मदों के रोके रखने से क्रय शक्ति में परिवर्तन का लाभ अथवा हानि को पूरक लाभ–हानि खाते में पृथक से दिखलाया जायेगा। इस सम्बन्ध में ध्यान रहे कि मौद्रिक मदों से लाभ को लाभांश के रूप में नहीं वितरित किया जा सकता है।

(6) वर्ष–पर्यन्त चलने वाले लेन–देनों, जैसे क्रय, विक्रय, संचालन व्यय आदि को चालू मूल्य पर लाने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\frac{\text{Base (or Current) Year Index}}{\text{Average Index of the year}} \times \text{Historical Value of the item}$$

यदि औसत निर्देशांक के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है तो इसके लिये बीच वर्ष के निर्देशाक अथवा अवधि के प्रारम्भ और अन्त के निर्देशांकों के औसत का प्रयोग किया जा सकता है।

(7) विक्रीत माल की लागत तथा अन्तिम स्कन्ध का मूल्य निर्धारित करने के लिये यह ज्ञात करना होगा कि विक्रीत माल किस समय की क्रय है। इसके लिये संस्था में प्रयुक्त स्कन्ध निर्गमन पद्धति पर ध्यान देना होगा। उदाहरण के लिये फिफो पद्धति के अन्तर्गत बिक्रीत माल की लागत प्रारम्भिक स्कन्ध और चालू क्रय का भाग माना जायेगा। दूसरी ओर लिफो पद्धति के अन्तर्गत विक्रीत माल की लागत में अधिकतर चालू क्रयें ही सम्मिलित होती हैं। हाँ, यदि चालू क्रय विक्रीत माल की लागत से कम है तो प्रारम्भिक स्कन्ध का एक भाग भी विक्रीत माल की लागत में सम्मिलित होगा। इस स्थिति में अन्तिम स्कन्ध गत वर्ष या वर्षों की क्रयों

का भाग होगा। अतः विक्रीत माल की लागत में सम्मिलित प्रारम्भिक स्कन्ध के लिये वर्ष के प्रारम्भ का निर्देशांक, चालू क्रयों के लिये वर्ष का औसत निर्देशांक तथा पिछले वर्षों में क्रय किये माल के लिये इनके क्रय के वर्ष का निर्देशांक प्रयोग किया जाता है। यह ध्यान रहे कि यदि अन्तिम स्कन्ध का शुद्ध वसूली मूल्य उसके इस प्रकार ज्ञात किये गये चालू क्रय शक्ति मूल्य से कम हो तो इसे उसके शुद्ध वसूली मूल्य पर ही दिखलाया जायेगा।

लाभ का निर्धारण (Determination of Profit)

सी0पी0पी0 पद्धति के अन्तर्गत लाभ के निर्धारण की दो पद्धतियाँ है–(1) शुद्ध परिवर्तन पद्धति तथा (2) आय–विवरण परिवर्तन (या पुर्नवर्णन) पद्धति।

(1) शुद्ध परिवर्तन पद्धति–यह पद्धति इस सामान्य लेखांकन सिद्धान्त पर आधारित है कि एक लेखाविधि में समता में परिवर्तन की राशि ही लाभ होती है। इस परिवर्तन को ज्ञात करने के लिये निम्न प्रक्रिया अपनानी होगी–(अ) ऐतिहासिक लेखा–विधि पद्धति से तैयार किये गये प्रारम्भिक आर्थिक चिट्‌ठे को वर्ष के अन्त की चालू क्रय–शक्ति के रूप में बदला जाता है। इसमें मौद्रिक और अमौद्रिक सभी मदें पूर्व वर्णित आधार पर उचित परिवर्तन कारकों का प्रयोग करते हुए बदली जाती है। समता अंश पूंजी को भी बदला जाता है। आर्थिक चिट्‌ठे के दोनों पक्षों का अन्तर संचित होता है। वैकल्पिक व्यवस्था के अनुसार समता अंश पूँजी को न बदला जाय तथा आर्थिक चिट्‌ठे के अन्तर को 'समता' माना जाये।

(ब) ऐतिहासिक लागत लेखा–विधि पद्धति के अन्तर्गत तैयार किये गये अन्तिम आर्थिक चिट्‌ठे को भी बदला जाता है। हाँ, मौद्रिक मदें नहीं बदली जातीं। समता अंश पूँजी को भी बदलने के पश्चात् आर्थिक चिट्‌ठे के दोनों पक्षों का अन्तर 'संचित' माना जाता है। यदि समता अंश पूँजी को पुनर्वर्णित नहीं किया गया है तो अन्तर 'समता' माना जायेगा।

(स) यदि समता पूँजी को भी बदला गया है तो वर्ष के अन्त में संचित का प्रारम्भिक संचित पर आधिक्य वर्ष का लाभ होगा। यदि समता पूँजी को नहीं बदला गया है तो वर्ष के अन्त में समता का प्रारम्भिक समता पर आधिक्य लाभ होगा।

(2) आय विवरण परिवर्तन (या पुनर्वर्णन) पद्धति–इस पद्धति के अन्तर्गत ऐतिहासिक लागत के आधार पर तैयार किये गये आय–विवरण को सी0पी0पी0 के शब्दों में पुनर्वर्णित किया जाता है। इसके लिये निम्न आधार अपनाये जाते हैं–

(अ) बिक्री और परिचालन व्ययों को वर्ष के लिये लागू औसत दर पर बदला जाता है।

(ब) बिक्री की लागत को फिफो या लिफो की मान्यता को ध्यान में रखते हुए पूर्व वर्णित आधार पर बदला जाता है।

(स) ह्रास की गणना सम्पत्ति के पुनर्वर्णित मूल्य पर की जा सकती है अथवा

सम्पत्ति की ऐतिहासिक लागत पर आगणित ह्रास की राशि को उस सम्पत्ति पर लागू 'परिवर्तन कारक' के आधार पर बदला जा सकता है।

(द) कर और लाभांश को उन निर्देशांकों के आधार पर बदला जायेगा जो कि इनके भुगतान की तिथि पर प्रचलित थे।

(इ) इस पद्धति के अन्तर्गत मौद्रिक मदों के धारण से लाभ या हानि की पृथक से गणना करनी होगी तथा कुल लाभ अथवा हानि की राशि ज्ञात करने के लिये इसे आय विवरण में लिखा जायेगा।

चालू क्रय शक्ति पद्धति के दोष (Disadvantages of C.P.P. Method)–

(1) इस पद्धति के अन्तर्गत मुद्रा के मूल्य में आये परिवर्तनों का लेखा किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत सम्पत्तियों के मूल्य में परिवर्तनों का ध्यान नहीं दिया जाता है। अतः यह हो सकता है कि सामान्य मूल्य–स्तर में तो वृद्धि हो रही हो किन्तु किसी विशिष्ट मशीन के मूल्य में लगातार कमी आ रही हो। इस स्थिति में इस पद्धति के अन्तर्गत इस मशीन को चिट्ठे में सामान्य मूल्य सूचकांक में आयी वृद्धि के आधार पर बढ़ाकर ही दिखलाया जायेगा।

(2) सी0पी0पी0 पद्धति निर्देशांकों पर आधारित है जोकि सांख्यिकीय माध्य होते हैं। इसीलिये इस पद्धति का व्यक्तिगत फर्मों के लिये सूक्ष्मता से प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(3) सही मूल्य निर्देशांक का चयन भी एक कठिन कार्य है क्योंकि विभिन्न मूल्य स्थितियों के लिये बहुत से निर्देशांकों की गणना की जाती है।

(4) इस पद्धति से ज्ञात किये गये लाभों में धारण लाभ और मौद्रिक मदों से लाभ और हानि सम्मिलित होते हैं किन्तु ऐसे लाभ–हानि की राशि से संस्था की कुशलता का माप सम्भव नहीं।

उपर्युक्त कमियों के कारण ही **सेन्डीलैन्ड्स समिति** ने चालू लागत लेखा–विधि पद्धति के उपयोग की सिफारिश की है।

चालू लागत लेखा–विधि पद्धति (Current Cost Accounting Method) :

मूल्य–स्तर के परिवर्तनों की सूचना देने में सी0पी0पी0 पद्धति के अपर्याप्त होने की सामान्य शिकायत पर इंग्लैण्ड की सरकार ने **सर फ्रेन्सिस सेन्डीलैन्ड्स** की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति की रिपोर्ट सितम्बर 1975 में प्रकाशित हुई जिसमें इस समिति ने चालू लागत लेखा–विधि पद्धति की सिफारिश की। इस समिति की सिफारिशों का पर्याप्त व्यापक अध्ययन और विचार–विमर्श के पश्चात् '**Inflation Accounting Committee**' ने मार्च 1980 में जारी किये गये **Statement of Accounting Practice-16** द्वारा अब इस पद्धति को अपनाने का अंतिम निर्णय ले लिया है।

सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत लाभ–हानि खाते और चिट्ठे की प्रत्येक मद अपने चालू मूल्य/लागत पर दिखलायी जाती है न कि सी0पी0पी0 पद्धति की तरह सामान्य मूल्य स्तर पर। इस पद्धति का उद्धेश्य कम्पनी की परिचालन सम्पत्तियों के रखरखाव और प्रतिस्थापन के लिये पर्याप्त आयोजन/समायोजन करना तथा व्यावसायिक कार्यकरण से लाभ और मूल्य वृद्धि काल में रखी सम्पत्तियों से लाभ को पृथक–पृथक दिखलाना है।

सी0सी0ए0 पद्धति की प्रमुख बातें–

(1) स्थायी सम्पत्तियों का मूल्यांकन–चिट्ठे में स्थायी सम्पत्तियों को 'व्यवसाय के लिये उनके मूल्य' पर दिखलाया जायेगा, न कि उनकी हासिल मूल लागत पर। 'व्यवसाय के लिये उनके मूल्य' के निम्न तीन अर्थ होते हैं–

(अ) शुद्ध प्रतिस्थापन मूल्य– इसका आशय मौजूदा प्रकार की सम्पत्ति की नई इकाई के क्रय के लिये आवश्यक धन में से उसके व्यतीत जीवनकाल का ह्रास घटाने के पश्चात् राशि से होता है।

(ब) शुद्ध वसूली मूल्य–इसका आशय मौजूदा सम्पत्ति के अब विक्रय से प्राप्त शुद्ध रोकड़ मूल्य से होता है।

(स) आर्थिक मूल्य–इसका आशय सम्पत्ति को उसके बकाया जीवन काल में प्रयोग करने से अर्जित होने वाली शुद्ध आय के वर्तमान मूल्य से होता है।

SSAP–16 के अन्तर्गत उपरोक्त तीनों में से प्रथम को सर्वोत्तम माना है। किन्तु यदि किसी सम्पत्ति की शुद्ध प्रतिस्थापन लागत उसके शुद्ध वसूली मूल्य और आर्थिक मूल्य दोनों से अधिक है तो ऐसी स्थिति में सम्पत्ति को उसके शुद्ध वसूली मूल्य और आर्थिक मूल्य में जो भी अधिक हो, पर मूल्यांकित करना चाहिये। स्व–अधिकृत भूमि और भवन का व्यवसाय के लिये उनका मूल्य ज्ञात करने के लिये सामान्यतया उनके वर्तमान प्रयोग के लिये खुले बाजार मूल्य को लिया जायेगा तथा इस मूल्य में उनके अधिग्रहण के अनुमानित व्ययों को जोड़ा जायेगा। संयंत्र व मशीनरी को उसकी शुद्ध चालू प्रतिस्थापन लागत पर मूल्यांकित करना चाहिये। स्थायी विनियोगों को अन्य स्थायी सम्पत्तियों की तरह ही दिखलाया जायेगा। उद्‌धृत विनियोगों को स्कन्ध बाजार के औसत मूल्य पर की चालू लागत के आधार पर शुद्ध सम्पत्ति मूल्य पर किया जायेगा जिसमें ये विनियोग किये गये हैं अथवा इन्हें इनसे होने वाली भावी आय के वर्तमान मूल्य के आधार पर मूल्यांकित किया जा सकता है। चालू सम्पत्ति की भाँति रखे विनियोगों का स्कन्ध और चालू कार्य की भाँति दिखलाया जायेगा। इस पद्धति के अन्तर्गत मौद्रिक सम्पत्तियों और सभी दायित्वों को उनकी ऐतिहासिक लागत पर दर्शाया जाता है अर्थात् इनमें कोई समायोजन की आवश्यकता नहीं होती है।

सी0सी0ए0 पद्धति के अनुसार स्थायी सम्पत्तियों के ह्रासित मूल्य और ऐतिहासिक लागत लेखा–विधि पद्धति से उनकी हासिल ह्रासित मूल लागत के अन्तर को

शुद्धघाती लाभ कहते हैं तथा इसे 'चालू लागत लेखा–विधि संचय' अथवा पुनर्मूल्यन संचय में हस्तान्तरित कर दिया जाता है।

(2) चालू लागत परिचालन लाभ की गणना–इसकी गणना के लिये ऐतिहासिक लागत लेखा–विधि पद्धति से ज्ञात परिचालन लाभ में निम्न समायोजन किये जाते हैं–

(अ) ह्रास समायोजन– सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत चालू वर्ष के लिये ह्रास की गणना सम्बन्धित सम्पत्ति के चालू मूल्य पर की जाती है। यह गणना सम्पत्ति के प्रारम्भिक चालू मूल्य और अन्तिम चालू मूल्य के औसत के आधार पर की जाती हैं। मूल्य वृद्धि के काल में सम्पत्ति के चालू मूल्य के बढ़ जाने के कारण सी0सी0ए0 के अन्तर्गत आयोजित ह्रास एच0सी0ए0 के अन्तर्गत आयोजित ह्रास से अधिक होगा। अतः इसके लिये अतिरिक्त ह्रास आयोजन की आवश्यकता होती है। यह ही ह्रास समायोजन कहलाता है। इसके लिये लाभ–हानि का खाता डेबिट तथा चालू लागत लेखा विधि संचय खाता क्रेडिट किया जायेगा।

ह्रास की पिछली कमी– यह चालू वर्ष के लिये वर्ष के अन्त में सम्पत्ति की चालू लागत पर चार्ज किये जाने चाहिये वाले ह्रास और सम्पत्ति की औसत चालू लागत पर वास्तव में चार्ज किये गये ह्रास का अन्तर होता है। यह ह्रास तब–तब उत्पन्न होता रहेगा जब–जब सम्पत्ति का पुनर्मूल्यन किया जायेगा। सम्पत्ति के पुनर्मूल्यन से ह्रास का पिछला आयोजन अपर्याप्त हो जाता है और तब पिछली कमी की व्यवस्था की आवश्यकता हो जाती है। पिछले वर्षो में कम आयोजित ह्रास की राशि के समायोजन के लिये सी0सी0ए0 संचय खाता डेबिट तथा सम्पत्ति खाता क्रेडिट किया जायेगा।

(ब) विक्रय की लागत के लिये समायोजन या कोसा–सी0सी0ए0 पद्धति इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त पर आधारित है कि परिचालन लाभ या हानि के निर्धारण के लिये चालू लागत का मिलान चालू आगम से हो। चूँकि बिक्री की राशि चालू मूल्य पर होती हैं, अतः इसमें किसी समायोजन की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु विक्रय की लागत में सम्मिलित उपयुक्त कच्चा माल (या विक्रीत तैयार माल) की गणना उपभोग (या विक्रय) की तिथि पर कच्चे माल (या तैयार माल) की वर्तमान प्रतिस्थापन लागत के आधार पर की जायेगी, न कि इनके क्रय मूल्य के आधार पर। चूँकि उपयुक्त (या विक्रीत) कच्चे माल (या विक्रीत माल) की प्रत्येक व्यक्तिगत मद की उपभोग (या बिक्री) की तिथि पर चालू लागत की सदैव तैयार उपलब्धि आवश्यक नहीं होती है, अतः इसके लिये विक्रय लागत में सम्बद्ध मूल्य निर्देशांकों के आधार पर कुल विक्रय लागत समायोजन किया जाता है। परिचालन लाभ की गणना के लिये कोसा की राशि से लाभ–हानि खाता डेबिट तथा चालू लागत लेखा–विधि संचय खाता क्रेडिट किया जायेगा। कोसा की आवश्यकता विक्रय की लागत की गणना में सम्मिलित अन्य मदों, जैसे मजदूरी, ह्रास को छोड़कर अन्य परिचालन व्यय आदि के लिये भी होती है।

सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत चिट्ठे के अन्तिम स्कन्ध को व्यवसाय के लिये उसके मूल्य पर दिखलाया जाता है, न कि उसकी मूल लागत व बाजार मूल्य के निम्नतम मूल्य पर। यहाँ पर स्कन्ध के व्यवसाय के लिये मूल्य का आशय उसके प्रतिस्थापन मूल्य और शुद्ध वसूली मूल्य की निम्नतम राशि से होता है। प्रतिस्थापन मूल्य की गणना के लिये चिट्ठे की तिथि पर सम्बद्ध मूल्य निर्देशांक का प्रयोग किया जा सकता है। सी0सी0ए0 पद्धति के अनुसार मूल्यांकित स्कन्ध के मूल्य में हुई वृद्धि को सी0सी0ए0 संचय में हस्तांतरित कर दिया जाता है।

(स) मौद्रिक कार्यशील पूँजी समायोजन—मौद्रिक कार्यशील पूँजी का आशय व्यापारिक देनदारों, प्राप्य बिलों और पूर्व भुगतानों के योग का व्यापारिक लेनदारों, देय बिलों और अदत्त व्ययों के योग पर आधिक्य से होता है। मूल्य–स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप (न कि व्यवसाय के परिचालन स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप) व्यवसाय की शुद्ध मौद्रिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता में वृद्धि के लिये आवश्यक समायोजन को मौद्रिक कार्यशील पूँजी समायोजन कहते हैं। इसके लिये ऐतिहासिक लागत के आधार पर मौद्रिक कार्यशील पूँजी में हुई कुल वृद्धि से व्यवसाय के परिचालन–स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप मौद्रिक कार्यशील पूँजी में हुई वृद्धि को घटाया जायेगा। परिचालन–स्तर में वृद्धि से मौद्रिक कार्यशील पूँजी में वृद्धि ज्ञात करने के लिये वर्ष के प्रारम्भ और अन्त की मौद्रिक कार्यशील पूँजी की मदों को वर्ष के मूल्यों के औसत परिवर्तन के आधार पर समायोजित किया जाता है। समायोजित अन्त की मौद्रिक कार्यशील पूँजी का प्रारम्भिक मौद्रिक कार्यशील पूँजी पर आधिक्य परिचालन–स्तर में वृद्धि का परिणाम होता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि व्यापारिक लेनदारों में समायोजन सामग्री के मूल्य–निर्देशांकों के आधार पर किया जाता है तथा व्यापारिक देनदारों में समायोजन तैयार माल के मूल्य–निर्देशांकों के आधार पर। मूल्य–स्तरों में वृद्धि के परिणामस्वरूप आवश्यक अतिरिक्त शुद्ध मौद्रिक कार्यशील पूँजी की व्यवस्था के लिये इस राशि से लाभ–हानि खाता डेबिट तथा सी0सी0ए0 संचय खाता क्रेडिट किया जाता है।

(द) दन्तिकरण समायोजन—दन्तिकरण का आशय ऋण पूँजी और अंशधारियों के कोषों के अनुपात से होता है। सी0सी0ए0 का उद्देश्य अंशधारियों के लिये सही लाभ का निर्धारण होता है। एक कम्पनी की शुद्ध परिचालन सम्पत्तियों (अर्थात् स्थायी सम्पत्तियों और शुद्ध कार्यशील पूँजी का योग) की वित्त–व्यवस्था के लिये अंशधारियों के कोषों के साथ–साथ ऋणों व अन्य मौद्रिक दायित्वों का भी उपयोग किया जाता है। चूँकि इन ऋणों का भुगतान उसी मौद्रिक राशि में किया जाता है, अतः ये मूल्य परिवर्तन से अप्रभावित रहते हैं। मूल्य–वृद्धि की अवधि में इन ऋणों से क्रय की गई सम्पत्तियों का व्यवसाय के लिये मूल्य इन ऋणों से अधिक हो जाता है। यह आधिक्य (ऋण–पूँजी पर ब्याज घटाने के बाद) अंशधारियों को उस समय उदित होता है जबकि साधारण व्यवसाय के दौरान उस सम्पत्ति का प्रयोग या विक्रय किया जाता है। चालू लागत परिचालन लाभ की गणना में ऋण –पूँजी की विद्यमानता

पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। फलतः अंशधारियों को देय लाभ का कम आकलन होता है। अतः व्यवसाय के सही परिचालन लाभ के निर्धारण के लिये चालू वर्ष के ह्रास, विक्रय की लागत और मौद्रिक कार्यशील पूँजी तीनों के समायोजनों की शुद्ध ऋणों का आशय **ऋणों का आशय** ऋण–पत्र, उधार तथा करों के लिये आयोजन के योग से हस्तस्थ रोकड़, बैंक शेष और विपण्य प्रतिभूतियों के योग को घटाकर प्राप्त राशि से होता है, तथा विनियोजित कुल परिचालन पूँजी का आशय शुद्ध ऋणों और समता कोषों के योग से होता है। संक्षेप में, दन्तिकरण समायोजन के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है–

$$\text{Gearing Adjustment} = \frac{B}{B + S} \times A$$

जबकि,

B = Net Borrowings

S = Shareholders' Funds

A = Total of Current Cost Adjustments.

दन्तिकरण समायोजन में अधिक शुद्धता के लिये औसत दन्तिकरण अनुपात का प्रयोग उचित होगा। इसके लिये शुद्ध उधारों और अंशधारियों के कोषों का वर्ष के प्रारम्भ और अन्त की राशियों का औसत लेकर दन्तिकरण अनुपात ज्ञात किया जायेगा। दन्तिकरण समायोजन के लिये सी0सी0ए0 संचय खाता डेबिट तथा लाभ–हानि खाता क्रेडिट किया जायेगा।

(इ) स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय पर समायोजन–किसी स्थायी सम्पत्ति के विक्रय पर लाभ या हानि की गणना ऐतिहासिक लागत और प्रतिस्थापन लागत दोनों के आधार पर की जा सकती है। प्रतिस्थापन लागत पर आकलित लाभ (अथवा हानि) और ऐतिहासिक लागत पर आकलित लाभ (अथवा हानि) का अन्तर ही स्थायी सम्पत्ति के विक्रय पर समायोजन कहलाता है। इस लाभ या हानि की राशि को सी0सी0ए0 लाभ–हानि खाते में ले जाते है।

सी0सी0ए0 पद्धति के गुण (Merits of C.C.A. Method):

सी0सी0ए0 पद्धति को विश्व भर के लेखापालों ने संतोषजनक पाया है। इस पद्धति के निम्न गुण है :

1. इस पद्धति से तैयार किये गये वित्तीय विवरण ऐतिहासिक लेखा–विधि की तुलना अधिक अर्थपूर्ण और प्रकट करने वाले होते हैं। इससे व्यवसाय के प्रबन्धन में कुशलता आती है।
2. परिचालन लाभ और धारण लाभ के बीच स्पष्ट भेद कर दिये जाने के कारण इस पद्धति से व्यवसाय की परिचालन कुशलता का सही माप सम्भव है।

3. चालू लागत पर ह्रास के आयोजन के कारण स्फीति काल में यह पद्धति लाभों को अधिक दिखलाने से रोकती है। साथ ही इससे सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन के लिये पर्याप्त कोष उपलब्ध होते हैं।

4. यह पद्धति मूल्य स्तरों में वृद्धि के कारण व्यवसाय की शुद्ध मौद्रिक कार्यशील पूँजी की बढ़ी आवश्यकता को स्पष्ट करती है और इसका लाभों पर प्रभाव को दर्शाती है।

5. अंशधारियों को उपलब्ध चालू लागत लाभ की गणना से संचालकों को कोषों के रोकने और लाभांश नीति बनाने में सहायता मिलती है।

6. इस तकनीक को पुस्तपालन प्रणाली में सम्मिलित किया जा सकता है और वित्तीय विवरणों को नियमित रूप से सी0सी0ए0 पद्धति से तैयार किया जा सकता है।

5.4.3 सी0सी0ए0 पद्धति की सीमायें (Limitations of C.C.A Method)

1. यह ह्रास की पिछली कमी के लिए समुचित प्रावधान नहीं करती–इस पद्धति के अन्तर्गत ह्रास की पिछली कमी के लिए ''चालू लागत लेखा–विधि संचय'' को चार्ज किया जाता है जो कि एक पूँजीगत संचय होता है। यदि इसे लाभांश के लिए उपलब्ध आगम संचय से चार्ज किया जाय तो प्रबन्ध को इस सीमा तक लाभों के वितरण से रोका जा सकेगा जिसके कि सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के लिए प्रयोग किया जा सकेगा।

2. नई प्रकार की सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के लिए कोषों के प्रावधान में असफल– सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत विद्यमान सम्पत्तियों के चालू मूल्य के आधार पर ह्रास का प्रावधान किया जाता है। इस प्रकार संकलित कोष एक सुधरी हुई और बड़ी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के लिए अपर्याप्त हो सकते हैं।

3. अपर्याप्त दन्तिकरण समायोजन–इस पद्धति के अन्तर्गत स्थायी सम्पत्तियों और स्कन्ध के मूल्य के लिए कोई दन्तिकरण समायोजन न किया जाना अनुचित है क्योंकि इन सम्पत्तियों की वित्त व्यवस्था अंशतः ऋणों से ही जाती है।

4. मूल्यांकन प्रक्रिया में व्यक्तिपरकता–वास्तविक सम्पत्तियों का व्यवसाय के लिए मूल्य निश्चित करना बहुत कठिन है। इसके अतिरिक्त इस प्रक्रिया में व्यक्तिपरकता का तत्व रहता है। कम्पनियों में इन सम्पत्तियों का मूल्यांकन सामान्यतया प्रबन्धकों व संचालकों के विवेक से किया जाता है।

5. मौद्रिक मदों पर बढ़ोत्तरी या हानि की उपेक्षा– यह पद्धति फर्म के मौद्रिक मदों पर क्रय शक्ति में बढ़ोत्तरी व हानियों की उपेक्षा करती है। बदलते मूल्य स्तरों के समय अधिकतर मौद्रिक प्रकृति की सम्पत्तियों और दायित्वों वाली कम्पनी के लिए इसकी गणना बहुत महत्वपूर्ण होती है।

6. अवसाद काल में कम उपयोगी– सी0सी0ए0 पद्धति स्फीतिकारी दशाओं में बहुत उपयोगी है किन्तु अवसाद काल में यह पद्धति इतनी उपयोगी नहीं होती है।

5.5 स्फीति लेखाविधि के लाभ (Advantages of Inflation Accounting)

(1) आर्थिक चिट्ठे में स्थायी सम्पत्तियों व दायित्वों को उनके चालू मूल्य पर प्रदर्शित करने से व्यवसाय का आर्थिक चिट्ठा संस्था की वित्तीय स्थिति का सही एवं सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। इस तरह स्थायी सम्पत्तियों के चालू मूल्यों पर ह्रास की गणना व उपभुक्त स्कन्ध को उसकी चालू लागत पर चार्ज करने के कारण इसके लाभ–हानि खाता वर्ष भर संचालन के उचित व वास्तविक लाभ को प्रदर्शित करता है जो कि 'आर्थिक लाभ' के समान होता है। लेखा–लाभ के आर्थिक लाभ के समान रहने पर ही व्यवसाय की पूँजी को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सकता है।

(2) यह प्रणाली भिन्न तिथियों पर स्थापित दो संयत्रों की लाभप्रदता की सही तुलना में सहायक होती है क्योंकि इसमें यह तुलना दोनों संयत्रों के चालू मूल्यों के आधार पर की जायेगी।

(3) सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यन से व्यवसाय में विनियोग का सही मूल्य ज्ञात हो जाता है तथा इसके आधार पर 'प्रयुक्त पूँजी पर प्रत्याय' की गणना अधिक सही व शुद्ध होती है। व्यवसाय स्वामियों, लेनदारों व प्रबन्ध सभी के लिए यह प्रत्याय ही अधिक उपयोगी होती है।

(4) स्फीति में वृद्धि के काल में लेखाकरण की इस विधि के अन्तर्गत ज्ञात की गई लाभ की मात्रा उस लाभ से कम होने की प्रवृत्ति रखती है जो कि ऐतिहासिक लागत पर ह्रास काटने से निकाला गया होता है। इस प्रकार इस विधि के प्रयोग से श्रम संघ, कर्मचारी, अंशधारी व सामान्य जनता व्यवसाय के लाभों के सम्बन्ध में गुमराह नहीं होते। इससे उनके अपने–अपने दावों के निबटारे में अधिक परेशानी नहीं आती। साथ ही इससे आय–कर का भार कम हो जाता है।

(5) बहुत पहले ही क्रय की गई सम्पत्तियों की मूल लागत के आधार पर ह्रास की गणना करना तथा व्यय और आगमों की अन्य मदों को चालू मूल्य पर दिखलाना लेखा–विधि की अनुरूपता की अवधारणा के विरूद्ध होगा।

(6) प्रतिस्थापन लागत के आधार पर ह्रास की गणना किये जाने से इस विधि के अन्तर्गत स्थायी सम्पत्तियों के प्रयोग–योग्य न रहने पर उनका सरलतापूर्वक प्रतिस्थापन किया जा सकता है।

(7) इस विधि के अन्तर्गत प्रकाशित खातों में स्थायी सम्पत्तियों के चालू मूल्य दिखलाने से संस्था में 'स्वामियों की समता' का उचित मूल्य निर्धारित किया जा सकता है। इससे व्यावसायिक निर्णय में शुद्धता लायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त

NMDC-129

चालू मूल्यों पर तैयार किये गये वित्तीय विवरणों के ज्ञात किये गये अनुपात प्रबन्ध को अधिक विश्वसनीय और अर्थपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं।

(8) इस विधि के प्रयोग से संचालन को प्रभावित करने वाले वास्तविक कारकों का खातों में समावेश हो जाता है। इससे व्यावसायिक लेखे प्रावैगिक रहते हैं और उनमें मूल्य–स्तर के परिवर्तनों को समायोजित किया जा सकता है।

5.6 स्फीति लेखाविधि के दोष (Disadvantages of Inflation Accounting)

(1) लेखापालों का मत है कि ह्रास स्थायी सम्पत्तियों की लागत में स्वाभाविक कमी को दर्शाता है, अतः ह्रास प्रभार मूल लागत की पुनर्प्राप्ति का प्रतीक होता है। इसलिए सम्पत्ति की मूल लागत पर ह्रास की गणना करना ही तर्कयुक्त है। यद्यपि आलोचकों का यह तर्क काफी वजनदार है किन्तु सम्पत्ति की प्रतिस्थापन की समस्या को भुला देना उचित प्रतीत नहीं होता।

(2) आलोचकों का तर्क है कि सम्पत्ति के प्रतिस्थापन के समय उसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं संस्थापित की जा सकती है। वस्तुतः तकनीकी विकास, उत्पादन में परिवर्तन, संस्था के आकार में परिवर्तन आदि के कारण बहुधा भिन्न संयंत्रों व अन्य सम्पत्तियों की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में सम्पत्ति के पुनर्मूल्यन का कोई महत्व नहीं रह जाता है। यह तर्क कुछ सीमा तक नहीं है किन्तु पुनर्मूल्यन का उद्देश्य तो संस्था की पूँजी को अक्षुण्ण बनाये रखना होता है। पूँजी को अक्षुण्ण रखने का आशय व्यवसाय की समस्त सम्पत्ति की कुल क्रय–शक्ति से होता है, न कि किसी एक सम्पत्ति की क्रय शक्ति से। अतः किसी एक सम्पत्ति की क्रय–शक्ति में परिवर्तन आ जाने का समस्त सम्पत्तियों की कुल क्रय–शक्ति का प्रभाव बहुत नगण्य हो जाता है।

(3) सम्पत्ति की प्रतिस्थापन लागत का अर्थ बहुत ही अस्पष्ट है तथा इसका सही अनुमान सम्भव नहीं। लेखापालों में तो इस बात पर भी मतभेद है कि चालू वर्ष को आधार माना जाय अथवा प्रतिस्थापन के वर्ष को। दूसरे विकल्प में अनिश्चितता की मात्रा बढ़ जाती है तथा पहले विकल्प में आयोजित ह्रास की राशि सम्पत्ति के प्रतिस्थापन की वास्तविक लागत से कम या अधिक हो सकती है।

(4) इसके आधार पर ज्ञात किया गया लाभ, ह्रास प्रभाव व सम्पत्तियों का मूल्य आय–कर अधिकारियों को स्वीकार नहीं होता। अतः यह गणना व्यर्थ है किन्तु यह तर्क ठीक नहीं क्योंकि खातों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य प्रबन्ध को व्यवसाय की स्थिति व लाभप्रदता के सम्बन्ध में सही जानकारी देना होता है। आय–कर के लिए आय का निर्धारण तो एक सहायता उद्देश्य ही होता है।

(5) इस विधि के प्रयोग से मूल्य वृद्धि के काल में संस्था के लाभ की मात्रा कम हो जाती है, कम आय–कर दिया जाता है तथा इससे मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति

और भी तेज हो जाती है। यद्यपि आलोचकों का यह तर्क सही है किन्तु न्यायोचित यही होगा कि संस्था वास्तविक रूप से कमाये गये लाभों पर ही कर दे। ऐतिहासिक लागत पर आकलित लाभ पर कर देने का अर्थ होगा कि संस्था पूँजीगत सम्पत्तियों पर भी आय–कर देने को बाध्य हो रही है। वस्तुतः पूँजीगत आय पर 'पूँजी–कर' लगना चाहिए, न कि 'आय–कर'।

(6) यह विधि अधिक खर्चीली व श्रम साध्य है। इसके प्रयोग से लेखा–कार्य में अत्यधिक जटिलतायें आ जाती है। अतः यह विधि वांछनीय नहीं। यह तक सही तो है किन्तु लेखा–विधि में मशीनों के प्रयोग से यह कार्य सरलतापूर्वक निष्पादित किया जाता है।

(7) कुछ लोगों का विचार है कि इसके अन्तर्गत पूरक विवरणों को तैयार करने से जनता में भ्रम फैलेगा और सामान्य स्वीकृत सिद्धान्तों से तैयार किये गये लेखों के प्रति जनता का विश्वास उठ जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस विधि के प्रयोग में अनेक समस्यायें व कठिनाईयाँ है किन्तु प्रबन्ध लेखापाल का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह स्फीति में परिवर्तनों का लाभ व विनियोजित पूँजी पर पड़ने वाले प्रभावों को खातों में अवश्य दर्शाये अन्यथा संस्था की क्रियाओं में हित रखने वाले विभिन्न पक्ष उसकी स्थिति व लाभप्रदता के सम्बन्ध में भ्रामक निष्कर्ष निकालेंगे।

उदाहरण–1: ऐतिहासिक लागत लेखा–विधि पद्धति के आधार पर निम्नलिखित सूचना से सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत मौद्रिक कार्यशील पूँजी समायोजन आगणन कीजिये :

	Jan. 1,2008	**Dec.31, 2008**
Account receivable	40,000	72,000
Accounts Payable	22,000	36,800
Monetary working capital	18,000	35,200
Price index of materials	200	230
Price index for finished goods	150	180

Solution :

Computation of Monetary Working Capital Adjustment

		Rs.
Increase in monetary working capital during 2008 as per HCA (35,200—18,000)	17,200	
Average Value of Closing MWC :		
Accounts receivable 72,000 x 165/180	= 66,000	
Accounts payable 36,800 x 215/230	= 34,400	
	--------------	31,600

Less Average value of opening MWC :		
Accounts receivable 40,000 x 165/150	= 44,000	
Accounts payable 22,000x215/200	= 23,650	
	--------------	20,350

Increase in MWC on Account of increase in volume		11,250

Monetary Working Capital Adjustment		5,950

The amount of MWCA would be charged to Profit and Loss Account and Credit to Current Cost Accounting Reserve.

उदाहरण–2: निम्नलिखित समंक से विक्रय–लागत समायोजन की गणना करो:–

	Historical Cost Rs.	**Index of Goods**
Opening Stock	80,000	100
Purchases	4,40,000	110 (Average)

Total Available for Sale	5,20,000	
Less Closing Stock	1,20,000	120

Cost of Sales	4,00,000	

Solution :

Calculation of Cost of Sales Adjustment

	Current Cost Rs.
Opening Stock (80,000 x 110/100)	88,000
Add : Purchases	4,40,000

Total Available for Sale	5,28,000
Less Closing Stock (1,20,000 x 110/120)	1,10,000

Currrent Cost of Sales	4,18,000
Historical Cost of Sales	4,00,000

Cost of Sales Adjustment	18,000

उदाहरण–3: ए लि0 के चिट्ठे ने अन्य बातों की बीच निम्नलिखित दशार्या :

	31-12-2007	31-12-2008
Inventories	5,50,000	6,10,000
Book Debts	4,50,000	5,50,000
Cash at Bank	60,000	80,000
Advances for supply materials	1,00,000	1,26,500
Due to suppliers	2,50,000	3,22,000

2008 में सामग्री मूल्यों में 15 प्रतिशत और तैयार माल में 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सी0सी0ए0 पद्धति के अन्तर्गत एम0डब्ल्यू0सी0ए0 की गणना करो।

Solution :

	Opening MWC	Closing MWC
	Rs.	Rs.
Book Debts	4,50,000	5,50,000
Advances for supply of materials	1,00,000	1,26,500
	5,50,000	6,76,500
Less Due to suppliers	2,50,000	3,22,000
Net MWC	3,00,000	3,54,500

Calculation of MWCA under CCA System

		Rs.
Increase in MWC as per HCA (3,54,500—3,00,000)		54,500
Average Value of Closing MWC :		
Book debts 5,50,000 x 105/110	= 5,25,000	
Advances 1,26,500 x 107.5/115	= 1,18,250	
	6,43,250	
Less Creditors 3,22,000 x 107.5/115	3,01,000	
		3,42,250
Average Value of Opening MWC :		

Book debts 4,50,000 x 105/100	= 4,72,500	
Advances 1,00,000 x 107.5/100	= 1,07,500	
	5,80,000	
Less Creditors 2,50,000 x 107.5/100	2,68,750	
		3,11,250
Volume Increase		31,000
MWCA		23,500

5.7 सैद्धान्तिक प्रश्न :

प्रश्न–1: (i) चढ़ती कीमतों और (ii) उतरती कीमतों का तुलनात्मक वित्तीय विवरणों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रश्न–2 वित्तीय विवरणों पर परिवर्तनशील स्फीति के प्रभाव का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिये।

प्रश्न–3 परिवर्तनशील स्तर द्वारा वित्तीय सूचना को विकृत करने वाली विभिन्न रीतियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्रश्न–4 पुनर्मूल्यन लेखा–विधि से आप क्या समझते हो? इसके गुण दोष क्या हैं? आंशिक और पूर्ण पुनर्मूल्यन लेखा–विधि में भेद कीजिए।

प्रश्न–5 'खाते मुद्रा स्फीति की उपेक्षा करते हैं और मुद्रा स्फीति उनका उपहास करती है।' समझाइये।

प्रश्न–6 निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये– (अ) पुनर्मूल्यन लेखा–विधि,
(ब) चालू लागत लेखा–विधि पद्धति।

5.8 व्यावहारिक प्रश्न :

प्रश्न–1 प्राप्त स्थायी–सम्पत्तियों की लागत पर आधारित ह्रास और क्रय की गई स्थायी सम्पत्तियों के वर्षों में सम्बन्धित मूल्य निर्देशांक इस प्रकार थे–

Year	Depreciation Cost	Index
2005	Rs. 15,000	50
2006	Rs. 20,000	65
2007	Rs. 25,000	70
2008	Rs. 30,000	100

वित्तीय विवरण तैयार करने की तिथि पर लागू मूल्य निर्देशांक 115 मान लीजिये। यदि 'ऐतिहासिक लागत की क्रय शक्ति' पद्धति का प्रयोग किया जाता है,

आय विवरण पर दिखलाये जाने वाले अतिरिक्त ह्रास की गणना कीजिये।

(Ans : Rs. 21,560)

प्रश्न–2 गत वर्ष मूल्य सूचकांक 125 से बढ़कर 175 हो गया और चालू वर्ष में 175 से 225 हो गया। गत वर्ष की रूपयों में बिक्री 24,000 रू0 थी और चालू वर्ष में 30,000 रू0 थी।

(अ) तुलनात्मक आय विवरण के उद्देश्य से आपको दोनों वर्षों के अंकों को चालू वर्ष के अन्त में विद्यमान मूल्य–स्तर में परिवर्तन करना है। आप यह मान लीजिये कि सम्पूर्ण दोनों वर्ष बिक्री समान रूप से हुई और मूल्य स्तर में परिवर्तन भी समान था।

(ब) परिवर्तित अंकों की तुलना से क्या अतिरिक्त सूचना प्रदर्शित होती है? आप उनका निवर्चन कैसे करते हैं?

(Ans : (a) Rs. 36,000, Rs. 33,750)

प्रश्न–3 दिया गया है :

	2007	**2008**
	Rs.	**Rs.**
Debtors	60,000	90,000
Stock	90,000	1,20,000
Cash	33,000	45,000
Creditors	38,000	40,000
B/P	19,000	20,000

Price Index Numbers are-

2007	200
2008	220

मौद्रिक हानि लाभ–की गणना करो।

(Ans : Net Loss on monetary items Rs. 12,600)

शून्य आधार बजट (Zero Base Budgeting)

रूपरेखा

शून्य आधार बजट का अर्थ

शून्य आधार बजट के कदम

शून्य आधार बजट के लाभ

शून्य आधार बजट की सीमायें

सैद्धान्तिक प्रश्न

शून्य आधार बजट तकनीक बजट की एक नयी तकनीक है। इस तकनीक का प्रयोग सर्वप्रथम 1962 में अमेरिका में किया गया था। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **जिम्मी कार्टर** ने इसका प्रयोग राज्य के व्ययों को नियंत्रित करने के लिए किया था जब वे जार्जिया राज्य के गवर्नर थे।

सामान्य बजट के निर्माण में गत वर्ष के बजट को आधार माना जाता है। बजट निर्माण की इस विधि के अन्तर्गत पिछले वर्ष की कमियों का समावेश वर्तमान वर्ष में हो जाता है क्योंकि पिछले वर्ष के बजट से ही वर्तमान वर्ष के बजट का पथ–प्रदर्शन होता है। दूसरी ओर जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, शून्य आधार बजट के अन्तर्गत वर्तमान वर्ष के बजट के निर्माण में शून्य को आधार माना जाता है अर्थात् शून्य आधार वर्ष बजट में प्रत्येक वर्ष को नये वर्ष के रूप में माना जाता है तथा गत वर्ष को आधार नहीं माना जाता है। वर्तमान वर्ष के बजट का मूल्यांकन वर्तमान परिस्थिति के ही आधार पर किया जाता है। इसी के आधार पर भविष्य की गति–विधियों का अनुमान लगाया जाता है। **पीटर ए पहर** के अनुसार–''शून्य आधार बजटन ऐसी नियोजन एवं बजटन प्रक्रिया है जिसमें यह अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक प्रबन्धक को शून्य आधार से अपनी सम्पूर्ण बजट माँग को विस्तारपूर्वक न्यायसंगत ठहराना पड़ता है एवं वह मांग किये गये धन को क्यों व्यय करेगा, इसके औचित्य को भी सिद्ध करने का भार प्रत्येक प्रबन्धक पर डाल दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से कि सभी क्रियाएँ 'निणर्य संकुलों' में विश्लेषित की जाती हैं जिनका व्यवस्थित विश्लेषण द्वारा मूल्यांकन किया जाता है तथा उन्हें महत्व के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है।''

शून्य आधार बजट के अन्तर्गत प्रबन्धक को यह निर्णय लेना पड़ता है कि वह व्यय क्यों करना चाहता है। विभिन्न मदों पर किये जाने वाले व्ययों की प्राथमिकता उसके निर्णय पर आधारित होती है।

शून्य आधार बजटन के कदम (Steps in Zero-base Budgeting) :

शून्य आधार बजटन में निम्नलिखित कदम उठाये जाते हैं–

1. सर्वप्रथम बजट के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाना चाहिए। उद्देश्य सुनिश्चित

होने की ही स्थिति में उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जा सकता है। अलग–अलग संस्थाओं के उद्देश्य भी अलग–अलग होते हैं। हो सकता है एक संस्था कर्मचारियों पर किये जाने वाले व्ययों में कटौती करना चाह सकती है, जबकि दूसरी संस्था एक परियोजना की जगह पर दूसरे को लागू करना चाह सकती है, इत्यादि।

2. किस परिस्थिति में और किस सीमा तक शून्य बजट को अपनाया जायेगा, का भी निर्धारण हो जाना चाहिए।

3. लागत एवं लाभ विश्लेषण भी किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम उसी परियोजना को अपनाया जाना चाहिए जिससे लाभ की सम्भावना सर्वाधिक हो। लागत विश्लेषण से विभिन्न परियोजनाओं को अपनाये जाने की प्राथमिकता के निर्धारण में काफी मदद मिलती है।

शून्य आधार बजट के लाभ (Advantage of Zero-base Budgeting)

शून्य आधार बजट के मुख्य लाभ निम्नलिखित है :–

1. विभिन्न क्रियाओं की प्राथमिकता के निर्धारण तथा उन्हें लागू करने में सहायता।

2. शून्य आधार बजट से प्रबन्ध की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। इसके माध्यम से केवल उन्हीं क्रियाओं को अपनाया जायेगा जो व्यवसाय के लिए आवश्यक होती हैं।

3. शून्य आधार बजट से आर्थिक व व्यर्थ क्षेत्रों को पहचानने में मदद मिलती है। इसके आधार पर आर्थिक क्षेत्रों को छाँटकर भावी कार्यकलाप का निर्धारण किया जा सकता है।

4. प्रबन्ध साधनों का सर्वोत्तम/अनुकूलतम प्रयोग करने में सफल हो सकते है। किसी मद पर व्यय तभी किया जायेगा जब यह आवश्यक होगा अन्यथा नहीं।

5. शून्य आधार बजट उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होता है जिनका उत्पाद, उत्पादन से सम्बन्धित नहीं हो। इस विधि से व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया की उपयुक्तता के भी निर्धारण में सहायता मिलती है।

6. शून्य आधार बजट व्यवसाय के लक्ष्यों से भी सम्बन्धित होगा। केवल वे ही चीजें (क्रियाएं) स्वीकार की जायेंगी जिनसे संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

शून्य आधार बजटन की सीमाएँ (Limitations of Zero-base Budgeting)

शून्य आधार बजटन की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. शून्य आधार बजटन का सफल क्रियान्वयन तभी किया जा सकता है जबकि उच्च प्रबन्धक वर्ग का खुले दिल से सहयोग प्राप्त हो।

2. जिन संस्थाओं के साधन सीमित होते हैं, उनके लिए इस प्रणाली को लागू

NMDC-129

करना सम्भव नहीं होता है।

3. इस प्रणाली की सबसे बड़ी समस्या निर्णय पैकेज के निर्धारण एवं क्रम स्थान प्रदान करने की है। यह क्रम कौन प्रदान करेगा? कैसे प्रदान करेगा ? तथा किस सीमा तक क्रियान्वयन होगा ? आदि जटिल समस्याएँ हैं।

बोध प्रश्न

प्रश्न–1. शून्य–आधार बजटन क्या होता है ? इसके कदमों को बतलाइये।

प्रश्न–2. शून्य आधार बजटिंग से आप क्या समझते हैं? इसके लाभों तथा सीमाओं को बतायें।

◆◆◆